यूनानी द्रव्यगुणादर्श

तृतीय खण्ड

हकीम दलजीत सिंह

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी
(उत्तर प्रदेश)

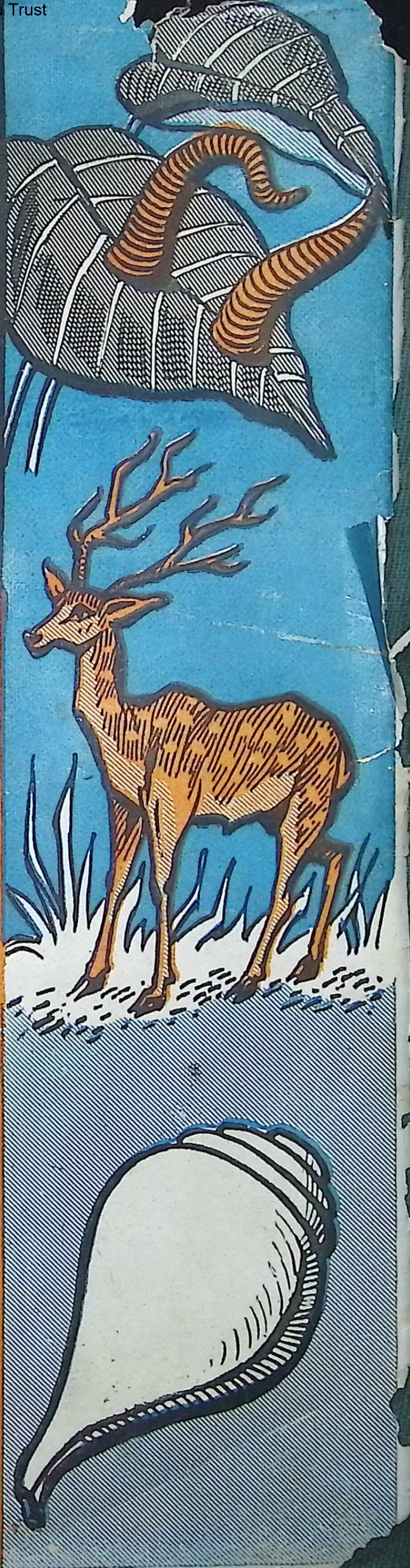

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

(तृतीय खण्ड)

[जांगम-पार्थिव-विभिन्न औषधाहारद्रव्य सम्वलित]

लेखक

वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह

आयुर्वेदीय विश्वकोशकार, आयुर्वेद बृहस्पति (डी० एस-सी०, ए०)

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

प्रकाशक
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

© प्रकाशकाधीन

लेखक
वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह
श्रीचुनार आयुर्वेदीय यूनानी औषधालय
चुनार, जिला : मीरजापुर (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण
१९७७
प्रतियाँ : २,०००

~~मूल्य : पचीस रुपये~~

आयु० एवं तिब्बी अकादमी
रुपया-७५
उत्तर प्रदेश

मुद्रक
जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०
गोलघर, वाराणसी।

प्रस्तावना

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश की ओर से वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह द्वारा प्रणीत यूनानी द्रव्यगुणादर्श तृतीय खण्ड को समस्त चिकित्सा शास्त्र के विशेषतः यूनानी तिब्बी के छात्रों और विद्वानों के करकमलों में समर्पित करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है ।

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है । फलतः यह भारत की भावी पीढ़ियों की शिक्षा-दीक्षा का माध्यम भी यथाशीघ्र बनेगी । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हिंदी में ऐसे सभी प्रमुख विषयों पर उच्चस्तरीय ग्रन्थ प्रकाशित हों जो जनसाधारण के बीच लोकप्रिय हों और जिनसे जनता का उपकार हो रहा हो । यूनानी तिब्बी एक ऐसा ही विषय है । भारत में यूनानी चिकित्सा पद्धति का प्रचार आयुर्वेद की तरह व्यापक एवं लाभदायक रहा है । आज भी अनेक अच्छे हकीम उपलब्ध हैं जो इस पद्धति से निदान एवं चिकित्सा के क्षेत्र में चमत्कार दिखाते ही रहते हैं । ऐसी स्थिति में इस महत्त्वपूर्ण विषय पर हिंदी में ग्रंथ का अभाव खटकनेवाली बात है ।

आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बी चिकित्सा पद्धतियों को संसार के प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है । यूनानी तिब्बी चिकित्सा पद्धति का प्रादुर्भाव एवं विकास प्रारंभ में यूनान एवं उससे संबंधित देशों में हुआ । अतीत में यूनान आदि देशों के साथ जैसे-जैसे भारत के सांस्कृतिक संबंध में वृद्धि हुई वैसे-वैसे पारस्परिक संपर्क से ज्ञान-विज्ञान के परस्पर आदान-प्रदान का भी कार्य चलता रहा जिसके परिणामस्वरूप आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली का यूनानी तिब्बी पर और यूनानी तिब्बी चिकित्सा प्रणाली का आयुर्वेद पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और दोनों ने एक-दूसरे के सिद्धान्तों एवं औषधियों को अपने में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया । यह आदान-प्रदान भारत में मुस्लिम शासकों के कार्यकाल में और अधिक उन्नत हुआ जिससे यूनानी तिब्बी चिकित्सा में त्रिदोष सिद्धान्त की तरह सौदा, सफरा, बलगम और खून के मूलभूत सिद्धान्तों को प्रश्रय मिला और आयुर्वेद में अहिफेन, अकरकरा, खुरासानी अजवाइन, ईसबगोल आदि औषधियों का समावेश किया गया ।

यूनानी तिब्बी चिकित्सा प्रणाली के अधिकांश ग्रंथ अरबी एवं फारसी में लिखे गये हैं और देश के सर्वतोमुख विकास के साथ-साथ यह अनुभव किया जाता है कि यूनानी तिब्बी चिकित्सा का प्रसार राष्ट्रभाषा में भी हो । आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी ने इस दिशा में प्रयत्न किया है और वह ठाकुर दलजीत सिंहजी द्वारा लिखित यूनानी द्रव्यगुणादर्श के दो भागों को राष्ट्रभाषा में पूर्व में ही प्रकाशित कर चुकी है ।

ठाकुर दलजीत सिंहजी अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान हैं और इन भाषाओं में लिखित तिब्बी साहित्य को उन्होंने आत्मसात् किया है। इसके अतिरिक्त वे संस्कृत के भी पंडित हैं तथा आयुर्वेद के विद्वान और निपुण वैद्य भी। अतः इस विषय पर चिंतन और ग्रंथ रचना के लिए निःसंदेह आप एक अधिकारी विद्वान हैं।

इस ग्रंथ का पहला भाग १९७२ में प्रकाशित हुआ था जिसे उत्तर प्रदेश शासन ने बीरबल साहनी पुरस्कार से पुरस्कृत किया है। इसमें यूनानी तिब्बी का इतिहास, उसके मूलभूत सिद्धांत, परिभाषाएँ तथा भेषज कल्पना आदि हैं। इसका दूसरा भाग १९७४ में प्रकाशित हुआ जिसमें तिब्बी चिकित्सा पद्धति में व्यवहृत वानस्पतिक औषध द्रव्यों का वर्णन है। इसके प्रस्तुत तीसरे भाग में प्राणिज द्रव्योपयोग विषयक विमर्श है। इसके प्रकाशन के साथ ही हिंदी में यूनानी द्रव्यगुण के संबंध में प्रामाणिक जानकारी का बहुत दिनों से चला आ रहा अभाव दूर होगा ऐसा विश्वास है। हमें यह भी विश्वास है कि यूनानी तिब्बी के अध्ययन से आयुर्वेदज्ञों का भी लाभ होगा। ऐसे अत्यंत उपयोगी ग्रंथ के लेखन के लिए वैद्यराज हकीम दलजीत सिंहजी अभिनन्दन के पात्र हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रण तथा कलेवर को सुन्दर एवं आकर्षक बनाने में श्री तरुण भाई, संचालक, जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०, वाराणसी ने हमें पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। अतः मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

सत्यपाल गुप्त
अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

लेखक के दो शब्द

यूनानी द्रव्यगुणादर्श का तृतीय एवं अन्तिम खण्ड पाठकों को प्रस्तुत किया जा रहा है। चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में यूनानी चिकित्सा पद्धति का मुख्य एवं मध्यवर्ती स्थान है। पूर्व एवं पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान एवं प्रसार में इसने मध्यवर्ती श्रृंखला का कार्य किया है। इस चिकित्सा पद्धति में सभी साधनों से प्राप्त ज्ञान सामग्री का ग्रहण एवं समावेश उदारतापूर्वक किया है। फलतः इनके निघण्टु-ग्रन्थों में भी अनेक ज़ीवन द्रव्यों का समावेश समय-समय से किया जाता रहा हैं। अपने राज्य एवं सत्ता प्रसार के साथ-साथ मुसलमान शासकों और विद्वानों ने इन द्रव्यों के ज्ञान एवं उपयोग का भी विस्तार किया। मुसलमानी शासन का भारत में दीर्घकालीन सम्बन्ध होने के कारण तथा इस्लाम धर्मावलम्बियों के भारतीय समाज का अंगभूत हो जाने के कारण इनकी चिकित्सा पद्धति को भी भारतीय परम्परा में स्थान प्राप्त हो गया। यद्यपि धर्मभेद की भांति भारतीय चिकित्सा पद्धति अर्थात् आयुर्वेद एवं यूनानी एक दूसरे से पृथक् स्वतंत्र रूप से चलती आ रही हैं। किन्तु साहचर्य के कारण इनका एक दूसरे से प्रभावित होना भी स्वाभाविक है। जहाँ तक औषध द्रव्यों का सम्बन्ध है, इनके लिये किसी चिकित्सा पद्धति विशेष की सापेक्षता नहीं है। सभी चिकित्सक किसी भी द्रव्य का चिकित्सोपयोग अपने सिद्धान्तानुसार कर अपनी चिकित्साक्षमता को बढ़ा सकते हैं। आयुर्वेदीय निघण्टुओं में भी समय-समय से नवीन द्रव्यों का समावेश होता रहा है। आज भी चिकित्सा व्यवहार में आयुर्वेदीय चिकित्सक भी अनेक यूनानी औषधियों एवं योगों का उपयोग करते हैं। तिब्बी लेखकों ने अपनी रचनाओं में न केवल अनेक नवीन एवं विदेशी द्रव्यों का उल्लेख किया है, अपितु भारतीय औषधियों का विवरण एवं गुणकर्मादि का विचार अपने ढंग से किया है। अनेक आयुर्वेदीय द्रव्यों के विनिश्चय में यूनानी वर्णन बहुत सहायक सिद्ध होता है। आज के वैज्ञानिक प्रगतिकाल में इन औषध-द्रव्यों के गुणकर्मादिका प्रमापन एवं परीक्षण आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा किया जा रहा है। एतदर्थ इन औषध-द्रव्यों के श्रृंखलाबद्ध पूर्व-इतिवृत्त का ज्ञान अत्यावश्यक है। औषध द्रव्यों के ऐतिहासिक इतिवृत्त के अध्ययन में यूनानी साहित्य अपना विशिष्ट स्थान रखता हैं। प्राचीनकाल में भारत का व्यावसायिक सम्बन्ध सुदूर पूर्व एवं पश्चिम से और अनेक व्यावसायिक द्रव्यों के आयात-निर्यात का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य एवं अभिलेखों में मिलता है, किन्तु इनके प्राप्ति साधन आदि पर कोई प्रकाश नहीं मिलता। यूनानी निघण्टुओं में ऐसे अनेक द्रव्यों का भी उल्लेख मिलता है।

अधिकांश मौलिक यूनानी साहित्य अरबी-फारसी में होने के कारण यह साहित्य सर्वसाधारण वैद्य समाज को उपलब्ध नहीं हो सका, तथा लिपि दोष के कारण कुछ-का-कुछ पढ़ा और लिखा भी जाता रहा है। इन सब तथ्यों को दृष्टिकोण में रखते हुए 'यूनानीद्रव्यगुणादर्श' ग्रन्थ का सृजन किया गया है, जिसके प्रथम (सिद्धान्त विषयक) एवं द्वितीय (उद्भिज्ज औषधाहार द्रव्य वर्णनीय) खण्ड प्रसिद्ध हो चुके हैं। इस तीसरे एवं अन्तिम खण्ड में शेष प्राणिज औषधाहार द्रव्य तथा खनिज औषधाहार द्रव्य एवं अलकतरा आदि उक्त वर्गेतर द्रव्यों का वर्णन किया गया है। इस भाग में भी द्रव्यों के वर्णन का प्रारूप प्रायः पहले की ही भाँति हैं। इसमें भी अरबी-फारसी नामों के लिप्यन्तरण में पूर्ण सतर्कता बरती गयी है। इससे मौलिक ग्रन्थों में भी सही उच्चारण की कठिनाई इस ग्रन्थ में दूर हो गयी है। जान्तव द्रव्यों के खण्ड में जन्तुओं का यथासम्भव सही आधुनिक वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं नाम देने का प्रयास किया गया है। इससे उक्त द्रव्यों के प्राचीन वर्णन एवं इतिवृत्त का सम्बन्ध आधुनिक श्रृंखला के साथ करने में सुगमता होगी। ग्रन्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों से तथा विभिन्न वर्ग के पाठकों के लिए उपयोगी बनाने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। विषय की दुरूहता एवं विस्तृत क्षेत्र को देखते हुए

कमियाँ भी हो सकती हैं। आशा है, पाठकगण अग्रिम संस्करण हेतु यदि कोई हो, उपयोगी सुझाव देने का अनुग्रह करेंगे।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु निदेशक आयुर्वेद एवं अध्यक्ष आयुर्वेदिक-तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश के प्रति आभार प्रगट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। प्रकाशन में शीघ्रता कराने हेतु अकादमी के अधिकारियों ने जो अभिरुचि ली है, एतदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। पाण्डुलिपि को अन्तिमस्वरूप देने में हमारे अनुज प्रोफेसर रामसुशील सिंह द्रव्यगुण विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आद्योपान्त सहायता मिली है तथा प्रूफ आदि देखने का कार्य भी उन्होंने बड़ी तत्परता से किया है, जिससे मुद्रण कार्य में बहुत शीघ्रता हुई है। एतदर्थ मैं उनके लिए हार्दिक शुभकामनाएँ एवं शुभाशीर्वाद देता हूँ। जन्तुओं के आधुनिक वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं संज्ञा निर्धारण में विश्वविद्यालय के जन्तुशास्त्र विभाग (जूलोजी डिपार्टमेण्ट) के डॉ० बी० प्रसाद से सहायता प्राप्त हुई है। एतदर्थ मैं उनका धन्यवाद प्रकाश करता हूँ।

जीवनशिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लिमिटेड के संचालक श्री तरुण भाई भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं जिनकी अभिरुचि के कारण मुद्रण का कार्य उत्तम रूप से एवं शीघ्र सम्पन्न हो सका है। अन्ततः मैं उन सभी आचार्यों के प्रति कृतज्ञताप्रकाश करना चाहता हूँ, जिनकी कृतियों से मुझे इस ग्रन्थ के सृजन में यत्किंचित् भी सहायता मिली है।

आयुर्वेदानुसंधान प्रासाद
चुनार, मीरजापुर

दलजीत सिंह

आधारभूत प्रधान ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाएँ और उनका संक्षिप्त परिचय एवं संकेत चिह्न

यूनानी

(अरबी, फारसी, उर्दू)

१. फिरदौसुल हिकमत—सन् ८५० ई० में इब्बनुत्तबरी द्वारा लिखित अरबी ग्रन्थ।

२. मुफरदात कानून—लगभग सन् १००० ई० में शैखुर्रईस बूअलीसीना द्वारा लिखित अल्क़ानून नामक अरबी ग्रन्थ का द्रव्यगुण विषयक एक भाग। (शैख)

३. अद्विया सदीदी।

४. नफ़ीसी फने सानी इलमुल् अद्विया—पन्द्रहवीं शती के मध्य में मुल्ला नफीस द्वारा लिखित अरबी ग्रन्थ तथा विद्वद्वर हकीम कबीरुद्दीन साहब लिखित इसकी उर्दू टीका (नफीसी)।

५. मेअत मसीही—अबुसहल मसीही लिखित अरबी ग्रन्थ।

६. तोहफतुल्मोमिनीन—सन् १६६९ ई० में हकीम मोहम्मद मोमिन लिखित फारसी ग्रन्थ। (तोहफा)

७. इख्तियारात बदीई—सन् १३६८ ई० में हाज़ी जीनुल्अत्तार द्वारा लिखित ग्रन्थ।

८. मख्जनुल्अद्विया—सन् १७७० ई० में मीरमोहम्मद हुसेन लिखित द्रव्यगुणविषयक विस्तृत फारसी ग्रन्थ।

९. तालीफ़शरीफ़ी—सन् १४०२ ई० में प्रकाशित तथा हकीम मोहम्मद शरीफ खाँ द्वारा भारतीय औषधियों के संबंध में लिखा हुआ फारसी ग्रंथ।

१०. मुफरदात नासिरी—सन् १८८१ ई० में प्रकाशित, हकीम मोहम्मद नासिर द्वारा लिखित फारसी ग्रन्थ।

११. मुफरदात अजीजी।

१२. नासिरुल्मोआलजीन—सन् १८८६ ई० में प्रकाशित फारसी ग्रन्थ।

१३. मुहीत आज़म—सन् १८९८ ई० में हकीम मोहम्मद आजम खाँ लिखित विस्तृत फारसी द्रव्यगुण-विषयक ग्रन्थ।

१४. उम्दतुल् मोहताज—सन् १८६६ ई० में प्रकाशित सैय्यद अहमद उर्रशी ही लिखित अरबी ग्रन्थ।

१५. पिजिश्कीनामा—मीरज़ा अली अकबर खां हकीम बाशी लिखित फारसी ग्रन्थ।

१६. गंजबादावर्द—खाँने जमाँ फीरोजजंग लिखित फारसी ग्रन्थ।

१७. बुस्तानुल् मफरदात—सन् १९०१ ई० में प्रकाशित उर्दू यूनानी निघंटुविषयक ग्रन्थ।

१८. मख्जन मुफरदात व मुरक्कबात अर्थात् खवासुलूअदविया—सन् १९०५ ई० में प्रकाशित मुंशी गुलाम नबी साहब लिखित उर्दू ग्रन्थ।

१९. मख्जनुल् मुफरदात—मौलवी हकीम मोहम्मद फजलुल्ला साहब लिखित उर्दू ग्रन्थ।

२०. जड़ी बूटी में ख़वास—सन् १९१३ ई० में प्रकाशित, हकीम मौलवी मोहम्मद अब्दुल् अजीज साहब संकलित उर्दू ग्रन्थ।

२१. मख्जनुल् अद्विया डाक्टरी—सन् १९१५ ई० में प्रथम बार तथा उसके बाद प्रकाशित संस्करण, हकीम व डाक्टर गुलाम जीलानी खाँ साहब लिखित एवं अनूदित पाश्चात्य (एलोपथी) मेटीरिया मेडिका का उर्दू संस्करण (म० डा०)।

२२. खजाइनुलअदविया—हकीम मौलवी नज्मुल्गनी साहब रामपुरी लिखित उर्दू ग्रन्थ। यह ग्रन्थ सन् १९३६ ई० में विस्तृत ८ भागों में प्रकाशित हुआ है।

२३. उसूल इल्मुल्अद्विया—हकीम मोहम्मद अब्दुल्हलीम लिखित ग्रन्थ।

२४. किताबुल् अदविया—दफतर अल्मसीह दिल्ली से उर्दू में प्रकाशित विद्वद्वर हकीम मोहम्मद कबीरुद्दीन महोदय द्वारा उर्दू लिखित यूनानी निघन्टुग्रन्थ।

२५. मोअल्लिमुल् अदविया—हकीम मसीहुज्जमा, नदीवी प्राध्यापक तकमीलुत्तिब कालेज लखनऊ लिखित उर्दू यूनानी निघंटु ग्रन्थ।

२६. जामेउल् हिकमत।

२७. मिफताहुल खजाइन।

२८. कुश्ताजात फीरोजी।

२९. आयुर्वेदिक फार्माकोपिआ—श्री कविराज जगन्नाथ प्रसाद वैद्य वाचस्पति।

३०. रिसाला छोटी चंदन

३१. रिसाला सलाजीत तथा

अल्हकीम, मशीरुल्अतिब्बा, हामिउस्सेहत, अल्मोआलजीन, अल्तबीब, अश्शिफा, हमदर्दसेहत, प्रभृति प्रसिद्ध यूनानी उर्दू माहाना (मासिक पत्र)

आयुर्वेदीय

(संस्कृत, हिंदी)

१. चरक संहिता	(च०)
२. सुश्रुतसंहिता	(सु०)
३. अष्टांगसंग्रह	(अ० सं०)
४. अष्टांग हृदय	(अ० हृ०)
५. काश्यपसंहिता	(का० सं०)
६. चक्रदत्त	(च० द०)
७. भावप्रकाश	(भा० प्र०)
८. कैयदेवनिघण्टु	(कै० नि०)
९. धन्वन्तरीय निघण्टु	(ध० नि०)
१०. राजनिघिण्टु	(रा० नि०)
११. राजवल्लभ निघण्टु	(राज०)
१२. वैद्यमनोरमा	(वै० म०)
१३. मदनपाल निघण्टु	(म० नि०)
१४. वृहन्निघण्टु रत्नाकर	(बृ० नि० र०)
१५. वैद्यजीवन	(लोलिम्बराजवृत्त)
१६. योगरत्नाकर	(यो० र०)
१७. आयुर्वेद प्रकाश	(आ० प्र०)
१८. गदनिग्रह	(ग० नि०)
१९. निघण्टु संग्रह	(नि० सं०)
२०. क्षेम कुतूहल	(क्षे० कु०)
२१. निघण्टु रत्नाकर	(नि० र०)
२२. द्रव्यगुणसंग्रह	(द्र० गु० सं०)
२३. मदनविनोद निघण्टु	(म० वि० नि०)
२४. शिवदत्त निघण्टु	(शि० नि०)
२५. शार्ङ्गधर संहिता	(शा० सं०)
२६. बंगसेन	
२७. शोढल निघण्टु	(शो० नि०)
२८. भैषज्यरत्नावली	(भै० र०)
२९. द्रव्यगुणविज्ञानम्	(द्र० गु०)
३०. बिहार की वनस्पतियाँ	(बि० व०)
३१. वनौषधिदर्शिका	(व० दर्शि०)
३२. जन्तुजगत	
३३. शालग्राम निघण्टु भूषण	(शा० नि०)

३४. रसकामधेनु	(र० का० धे०)
३५. रसरत्नसमुच्चय	(र० र० स०)
३६. रसेन्द्रचूडामणि	(र० चू०)
३७. रसार्णव	(रसा०)
३८. रसतरंगिणी	(र० त०)
३९. रसरत्नाकर	(रसायनखण्ड)
४०. रसामृत	
४१. भस्मविज्ञा	
४२. सन्दिग्धनिर्णय वनौषधिशास्त्र	(स० नि० व० शा०)
४३. यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान	(यू० द्र० गु० विज्ञा०)
४४. द्रव्यगुणविज्ञान	
४५. पाश्चात्य द्रव्यगुणविज्ञान	(२ भा०)

तथा

आयुर्वेद, या आयुर्वेदविज्ञान, आयुर्वेद गौरव, धन्वन्तरि । प्राणाचार्य, वैद्यसम्मेलन पत्रिका, सचित्र आयुर्वेद प्रभृति आयुर्वेदिक हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि मासिकपत्र-पत्रिकाएँ ।

अनुभूत चिकित्सासागर

अन्यान्य भाषा के निघण्टु (प्राणिज, उद्भिज्ज, खनिज विज्ञान) विषयक ग्रन्थ ।

बंगला

वनौषधिदर्पण	दो भाग
भारतीय वनौषधि	दो भाग
भारतीय भैषज्य तत्त्व	
मेटीरिया मेडिका	

मराठी

वनौषधिगुणादर्श	
औषधि संग्रह	श्री डा० वामन गणेश देसाई कृत (औ० सं०)
भारतीय रसशास्त्र—	,, ,, (भा० र० शा०)
उद्भिज्ज शास्त्र	
वनौषधि प्रकाश	
वनौषधि विज्ञान	

गुजराती

निघण्टु आदर्श
वनस्पतिशास्त्र

अंगरेजी

1. Indian Medicinal plants: 4 Volumes.
2. Glossary of Indian Medicinal plants by R. N. Chopra.
3. Pharmacographia Indica by Dymock (3 Parts)
4. Materia Indica by Ainslic
5. Supplement to the Pharmacographia of India by Moheedin Sherif.
6. Materia Medica of Madras.
7. Indian Materia Medica by K. M. Nadkarni 3rd edition (2 volumes.)
8. Watt's Dictionary of Economic products of India.
9. Wild flowers of Kashmir
10. Blatter Flora Arabica
11. Forsk Flora Aeg. Arabica
12. Delite flora Aegyptica
13. Vegetable gums and resins by F. N. Howes, D. Sc.
14. Potter's New-Cyclopaedia of Botanical Drugs and Preparations by R. C. Wren, F. L. S. published 1907, 1915, 7th edition 1957
15. A text-book of Pharmacognosy by Henry G. Greenish D. Sc.
16. Indian Pharmacopoeia
17. Indian Pharmacopoeial Codex
18. Drugs of Hindoostan by Dr. S. C. Ghose.

●

संकेताक्षर

हिं०	हिंदी	उड़ि०	उड़िया
अ०	अरबी	मा०	मारवाड़
फा०	फारसी (ईरानी)	बं०	बंगला
यू०	यूनानी	म०	मराठी
सु०	सुरयानी	गु०	गुजराती
	सीरिया की भाषा	बम्ब०	बम्बई
इ०	इब्रानी	सिंध	सिंधी
सं०	संस्कृत	सिं०	सिंहली (लंका)
उ०	उर्दू	कच्छ	कच्छी
मी०	मीरजापुरी	को०	कोंकण
कु०	कुमाऊँ	ता०	तामिल
ग०	गढ़वाली	ते०	तेलगु
ने०	नेपाली	मल०	मलयालम
क०	कश्मीरी	मद०	मदरासी
पं०	पंजाबी	द०	दक्षिणी
आ०	आसामी	कना०	कनाड़ी (कन्नड़)
बि०	बिहारी	का०	काठियावाड़
को०	कोल	ले०	लेटिन
संथा०	संथाल	अं०	अंगरेजी
खर०	खरवार	फ्रा०	फ्रांसीसी
		ज०	जरमनी

यूनानी द्रव्य गुणादर्श तृतीयखंड की विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठांक
प्राक्कथन	
(जाङ्गम वा प्राणिज द्रव्योपयोग-विषयक विमर्श)	१-२
अण्ड और धात (खुस्या और मनी)	३-४
अंडा	५-६
अंबर (अग्निजार)	६
अबाबील	७
आदमी व औरत	७-८
आबरेशम	८-९
इस्पंज	९-१०
उकाब	१०
उल्लू	१०-११
ऊँट	११-१३
ऊदबिलाव	१३
ऊन	१३-१५
ओझड़ी	१५
कछुआ	१५-१७
कठफोरा(डा)	१७-१८
कनखजूरा	१८-१९
कनसलाई	१९
कबूतर	१९-२०
कमला	२०
करांकुल	२०-२१
कस्तूरी	२१-२३
किर्मिज	२३
किलकिला	२३-२४
किसारी	२४
कुत्ता	२४-२५
कुमरी	२५-२६
कुर्री	२६
केंचुआ	२६-२७
केकड़ा	२७-२८
कोयल	२८
कौआ	२८-२९
कौड़ी	२९-३०
कौंवारी	३०
खच्चर	३०-३१
खंजन	३१
खटमल	३१-३२
खमीर	३२-३३
खरगोश, खरहा	३३-३४
खुर	३४
खून या रक्त	३४-३५
गगनभेड़ वा हवासिल	३५
गदहा	३६
गदही	३६-३८
गदही का दूध	३६-३८
गाय और बैल	३८-३९
गाय	३८-४१
बैल	४१-४२
गिंजाई	४२
गिद्ध	४२
गिरगिट	४३
गिलहरी	४३-४४
गीदड़	४४
गुबरैला	४४-४५
गुर्दा	४५
गूह या बीट	४५
गैंडा	४५-४६
गोरोचन	४६-४७
गोह	४७-४८
घोंघा-घोंघी	४८-४९
घोड़ा, घोड़ी	४९-५०
घोड़ी का दूध	५०-५१
चंडूल	५१-५२
चकवा	५२
चकोर	५२-५३
चटक	५३
चमगादड़	५३-५४
चमड़ा या बाल	५५
चरबी	५५-५६

चित्तल ५६-५७
चीचड़ी ५७
चीता ५७
चील ५८
चूहा ५८-५९
जंगली चूहा (घूँस) ५९
च्यूँटा-च्यूँटी ५९
च्यूँटी ५९-६०
छछूँदर-छछूंदरी ६०
छिपकली ६१-६२
जबाद ६२-६३
जिगर ६३
जीभ ६४
जूंदबेदस्तर ६४-६५
जुगनू ६५
जूँ ६५-६६
जोंक ६६-६७
झिंगवा ६७
झींगुर ६८
टटेरी, टिटिहरी ६८
टिड्डी ६८-६९
तिल्ली (प्लीहा) ६९
तीतर ७०-७१
तेंदुआ ७१
तेलनी मक्खी ७२
तोता ७३
थन ७३-७४
दिल ७४
दीमक ७४
दुग्ध(क्षीर) वर्ग ७४-८२
दूध ७५-७७
दुग्ध विकार ७७
दही ७७
छाछ ७८-७९
घी, मक्खन ७९-८०
और पनीर ८०-८२
धनेश ८२
नख ८२-८३
नीलकंठ ८३
नीलगाय ८३
नेवला ८३-८४
पंडुक (फाख्ता) ८४-८५
पपीहा ८५
पर ८५-८६
पसीना ८६
पहिना ८६-८७
पाचा (हाथ-पैर) ८७-८८
पित्त ८८
पित्ता ८८
पूँछ ८८
पेशाब वा मूत्र ८८-८९
फादजहर हैवानी ८९-९०
फेफड़ा ९०-९१
बन्दर ९१
बकरा व बकरी ९१-९४
हलवान् (एक वर्षीय छाग शिशु) ९३-९४
बकरी का दूध ९४-९५
बकरी का खुर ९५-९६
बगला ९६
बगेरी ९७
बटेर ९७-९८
बत्तख ९८-९९
बया ९९
बर्रे, भौंरा ९९-१००
बहरी १००
बाघ या शेर १००-१०१
बाज १०१-१०२
बाम १०२-१०३
बामनी, बभनी १०३
बारहसिंगा १०४
बाल १०४-१०५
बिच्छू १०५
बिल्ली १०५-१०६
बिषखपरा १०६-१०७

बीरबहूटी	१०७
बुलबुल	१०७-१०८
भेड़ और भेड़ा	१०८-१०९
भेड़ के गले की ग्रन्थि (गुद्दद)	११०
दुंबा	११०-१११
भेडिया	१११-११२
भैंस व भैंसा	११२-११३
भैंस का दूध	११३
मकड़ी व मकड़ी	११३-११४
मक्खी	११४-११५
मगर	११५-११६
मच्छड़	११६-११७
मछली	११७-११८
संगसरमाही	११९
मज्जा (भेजा)	११९-१२०
मांस	१२१-१२३
मुरगा व मुरगी	१२४-१२५
मुरगाबी	१२५-१२६
मूंगा (मर्जां)	१२६-१२८
मेढक	१२८-१२९
मैना	१२९
मैल	१२९-१३०
मोती	१३०-१३१
मोर	१३१-१३३
रीछ या भालू	१३३-१३४
रेगमाही	१३४-१३५
रोहू	१३५
लटोरा	१३५-१३६
लकड़बग्घा	१३६-१३७
लवा	१३७-१३८
लाख	१३८
लाल	१३८-१३९
लोमड़ी	१३९-१४०
शख	१४०-१४१
शकरतीगाल	१४१
शहद	१४१-१४३
एवं मोम	१४३-१४५
शामा, श्यामा	१४५
शिश्न	१४५
शुतुरमुर्ग	१४५-१४६
संगदान	१४६
संजाब	१४६-१४७
सकंकूर	१४७
सकुची	१४७
समुंदरफेन	१४८
समूर	१४८-१४९
सरेस	१४९
सरेश (म) पनीर	१५०
सांडा	१५०
सांप	१५०-१५१
सारस	१५१-१५२
सालारमंदरा	१५२
साही	१५३
कांटा चूहा	१५३-१५४
सिंगी	१५४-१५५
सिंह	१५५
सिर, सरी	१५५-१५६
सींग	१५६
सींप	१५६-१५७
सुरागाय	१५७
सूंस, सूईस	१५७-१५८
सूअर	१५८-१६०
सौरी	१६०
हंस	१६०-१६१
हड्डी	१६१
कुर्री	१६१
हरिन	१६१-१६२
हरियल	१६३
हरेवा	१६३
हाथी	१६३-१६५
हिलसा	१६५
हुदहुद	१६५-१६६
ह्वेल	१६६-१६७

प्राक्कथन १७१-१७२

खनिज औषधाहार द्रव्यों का यूनानी वर्गीकरण

जविल् अरवाह विज्ञानीय

अध्याय १

प्रकरण १

गंधक १७३

प्रकरण २

पारा (सीमाब) १७४
शिंगरफ १७५
रसकपूर १७५-१७६
दारचिकना १७६

प्रकरण ३

संखिया १७६-१७७
हड़ताल १७७-१७८
मैनसिल १७८

जविन्नुफूस विज्ञानीय

अध्याय २

प्रकरण १

नौसादर १७९-१८०

प्रकरण २

शोरा कलमी

प्रकरण ३

फिटकिरी १८१-१८२
फिटकिरी गुलाबी १८३

प्रकरण ४

कपूर १८३

जाविल अज्साद (लोह) विज्ञानीय अध्याय ३

प्राक्कथन १८५-१८६

प्रकरण १

सोना (तिला) १८७

प्रकरण २

चाँदी (नुक़्रा) १८८-१८९

प्रकरण ३

ताँबा (मिस) १८९
ताँबे का मैल १८९

प्रकरण ४

क़लई (वंग) १९०

प्रकरण ५

सीसा (सुर्ब) १९१-१९१

प्रकरण ६

जस्ता (जस्त) १९१-१९२
जस्ते का फूल १९२-१९३

प्रकरण ७

लोहा (आहन) १९३-१९४

अज्सदाद मुरक्कबा (मिश्रलोह) विज्ञानीय

अध्याय ४

प्रकरण १

पीतल १९५-१९६

प्रकरण २

काँसा १९५-१९६

फर्अ अज्साद(उप-धातु) विज्ञानीय

अध्याय ५

प्राक्कथन १९७

प्रकरण १

सोने की उपधातु

सोनामक्खी १९८-१९९

प्रकरण २

चाँदी की उपधातु

रूपामक्खी १९९

प्रकरण ३

ताँबे की उपधातुएँ

रूसोख्तज (संगरासिख़) २००
जंगार २००
दहनए फिरंग २०१
नीला थोथा (तूतिया) २०१-२०२

प्रकरण ४

लोहे की उपधातु

मण्डूर २०२-२०३
हीराकसीस २०३-२०४
अभ्रक (अबरक) २०४
चुम्बक २०५
शिलाजीत २०५-२१०

प्रकरण ५

जस्ते की उपधातु

(सीसे और कलई की भी)

संग बसरी २१०–२११
खमरिया २११

प्रकरण ६
सीसे की उपधातुएँ

मुरदासंख २११–२१२
सफेदा २१२
सिंदूर २१३
सुरमा २१३–२१४
सुरमी २१४–२१५

अहजार मा'दनिया (हजरियात–पाषण) विज्ञानीय
अध्याय ६

प्राक्कथन २१७-२१८

प्रकरण १
रत्न–मणि

हीरा (अलमास) २१९–२२०
मानिक (याकूत) २२०–२२१
नीलम (कबूद) २२१
पुखराज (,, जर्द) २२१–२२२
पन्ना (जमुर्रद) २२२
ज़बरजद्द २२३
गोमेद २२३
लहसुनिया २२२–२२४

प्रकरण २
उपरत्न

अकीक २२५–२२६
संगेयशब २२६
लाजवर्द २२६–२२७
बिल्लौर २२८
सूर्यकान्त (आतशी पत्थर) २२८–२२९
चन्द्रकान्त २२९
फीरोजा २२९–२३०
वैक्रान्त (तुरमुरी) २३०
कहरुवा २३०
संगसुलेमान २३०

प्रकरण ३
किल्स(सुधा)प्रधान यौगिक

प्राक्कथन २३१
चूना २३३–२३४
गोदंती (हड़ताल गावदंती) २३४
खड़िया २३४–२३५
सुरमा सफेद २३५

प्रकरण ४
रमल–रेग (सिकता) प्रधान यौगिक

बालू २३६
संगजराहत २३६–२३७
संगेरेशम (कौशेयाश्मा) २३७
जहरमोहरा (फादजहर मादनी) २३७–२३८
हज्र ुल्यहूद (बेरपत्थर) २३८–२३९
कल्बुल्हजर २३९–२४२
संगमरमर २४२
शादनज २४३
काँच २४३
कुरंड २४४
कसौटी २४२–२४५

तीन या गिल (मृत्तिका) विज्ञानीय
अध्याय ७

चीनी (मिट्टी) २४७
गिल सफेद २४७
गिलअरमनी २४८
गिल मख़्तूम २४८–२४९
गिल मुलतानी २४९
गेरू २४९–२५०
हसनधूप २५०
गोपीचन्दन २५०

मिल्ह व अलकली (लवण–क्षार विज्ञानीय
अध्याय ८

प्राक्कथन २५१

प्रकरण १
नमक (लवण)

संधानमक २५२–२५३
समुद्रनमक (नमक दरियाई) २५३
सोंचर तमक २५३–२५४
सांभर नमक २५४

काला नमक नोन २५४–२५५
खारी (नमक) २५५–२५६

प्रकरण २
क्षार

बूरए अरमनी २५६
सुहागा २५६–२५७
सज्जी २५७–२५८

विभिन्न संमिश्र औषधाहार–द्रव्य विज्ञानीय विभाग ३ के विषयों की विषयानुक्रमणिका

अरगजा २६१
अलकतरा २६१–२६२
ईंट २६२
कांजी २६२–२६३
कागज २६३
काजल २६३–२६४
क़ीर २६४
कोयला २६४
लकड़ी २६५
हड्डी २६५
पत्थर २६५
चक्की की झाड़न २६६
तेजाब
धुआँ
पानी २६६
फुक्काअ २६७
बर्फ २६७
बारूद २६८
मिट्टी का तेल २६८
रोशनाई २६९
साबुन २६९

प्राक्कथन

जाङ्गम वा प्राणिज द्रव्योपयोग-विषयक विमर्श

अन्य प्राणियोंकी भाँति मानव-शरीर अपनी रचनामें एक ही प्रकारके विभिन्न शरीरधारक पदार्थों (घटकों) से संघटित है। संभवतः समस्त प्राणियोंके शरीरोंके विश्लेषण एवं विघटीकरणसे जो शरीरधारक घटक पाये गये हैं, वे एक समान हैं। अन्तर केवल यह है कि किसी प्राणीमें कोई घटक अधिक हैं, कोई कम। इस न्यूनाधिक्यको दृष्टिमें न रखकर यदि विचार करें तो जिन घटकोंसे एक प्राणिशरीर संघटित है, समस्त प्राणिशरीरमें वे बराबर हैं।

अन्वेषणकर्त्ताओंके विचारमें जंगमोंकी प्रत्येक जातिके लिए शरीरघटकोंके प्रमाणका अनुपात भिन्न-भिन्न हैं, तथा उसके लिए वही स्वास्थ्यका मापदंड समझा जाता है। जबकि वे घटक उक्त शरीरमें उसी निर्दिष्ट प्रमाणपर स्थिर हों तब शरीर स्वस्थ रहता है। जिस समय कि बाह्याभ्यन्तर हेतुओंसे उन घटकोंमें निर्दिष्ट प्रमाणकी अपेक्षया न्यूनाधिक्य हो जाता है, उस समय उक्त शरीरके लिए वह रोगभूत बन जाता है। उसका प्रतीकार इस तरह संभव हो सकता है कि वह खास अंश वा घटक जो कम हो गया है, उसे बढ़ा दिया जाय और जो बढ़ गया है उसे कम कर दिया जाय।

इस प्रयोजनके लिए उद्भिज्ज, जंगम और खनिज द्रव्योंका उपयोग किया जाता है। इनमेंसे खनिज और उद्भिज्ज उसी दशामें उपकारक होते हैं जबकि शरीरमें उनको ग्रहण करने और उनको विश्लेषित करके शरीरके लिए आवश्यक घटकों (वा धातुओं) के उत्पन्न करनेका सामर्थ्य विद्यमान हो। इसके विपरीत जंगमों (हैवानात) में ये शरीरधारक घटक (धातु) बने-बनाये विद्यमान होते हैं। अतएव जंगमावयवोंके चिकित्साके हेतु उपयोग करना खनिज और उद्भिज्ज द्रव्योंकी अपेक्षया अधिक उपयुक्त, उचित एवं लाभकारी प्रतीत होता है। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि चतुर चिकित्सक निदान द्वारा शरीरधारकप्रधान धातुके तारतम्यको मालूम कर ले और शरीरको धारण करनेवाले पदार्थोंमेंसे जिस पदार्थका क्षय हुआ हो उस पदार्थकी पूर्तिके लिए उसी पदार्थका (उसके उपयुक्त अन्य प्राणियोंके उक्त अवयव अर्थात् समान का) अथवा उसके समान गुणवाले अन्य (समानगुण) और समानगुणभूयिष्ठ द्रव्य सेवनकर उस धातुकी पूर्ति और उस धातुके क्षयसे उत्पन्न विकारको नष्ट करें।

चरकाचार्यऔर काश्यप–"धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारविकारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति, ह्रासं तु विपरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारैरभ्यस्यमानैः। × × ×। सर्वधातूनां सामान्याद्वृद्धिः विपर्ययाद्ध्रासः। तस्मान्मांसमाप्याय्यते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः, तथा लोहितं लोहितेन, मेदो मेदसा, वसा वसया, अस्थि तरुणास्थ्ना, मज्जा मज्ज्ञा, शुक्रं शुक्रेण, गर्भस्त्वामगर्भेण॥" (च० शा० अ० ६)। "रक्तं रक्तप्रशमनं मांसं मांसविवर्धनम्। (काश्यप मांसगुणविशेषीयाध्याय २४)। इस प्रकरणमें इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन अपने-अपने शब्दोंमें किया है। इस सिद्धान्तके अनुसार रक्तक्षयमें रक्त और मांसरसका विशेषतः यकृत् के मांसरसका, मूत्रक्षयमें (पेशाब कम होनेपर) गोमूत्र-अजामूत्र आदि मूत्रोंका, शुक्रक्षयमें शुक्र या शुक्रोत्पादक अवयव-वृषणके रसक्वाथका, अस्थिक्षयमें तरुणास्थिका या प्रवाल-मुक्ता शुक्ति आदि अस्थिप्रधान द्रव्योंका, मेदके क्षयमें मेद (चर्बी)-कृत आदि द्रव्योंका सेवन कराया जाता है।

सुश्रुताचार्य लिखते हैं—"यकृद्वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम्। (उत्तरस्थान अ० ४५)। यूरोप और अमेरिकाके वैज्ञानिक अद्यावधि इस जटिल समस्याके समाधान एवं सुलझानेके लिए सिरफोड़ कोशिश कर रहे हैं कि कौन सा रोग किन शरीरधारक धातुओं वा घटकोंके न्यूनाधिक्यसे उत्पन्न होता है, तथा उसके पूरा करनेके लिए क्या उपाय करने चाहिए। इसके परिणामस्वरूप वे भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि शरीरधारक पदार्थोंमेंसे

जिस पदार्थका क्षय वा विकार प्रकट हुआ हो उसमें अन्य प्राणियोंके उसी पदार्थका सेवन करानेसे उसकी पूर्ति एवं तत्क्षयजन्यविकारका नाश होता है। यही कारण है कि इन जंगमावयवोंका आभ्यन्तरीय प्रयोग करके रोगोंकी चिकित्सा करनेका अंग पाश्चात्य वैद्यकमें बहुत प्रचलित हुआ है। इसे इन्द्रियांग चिकित्सा (Organo-therapy) कहते हैं। इसमें यकृत्, प्लीहा, मज्जा, अग्न्याशय, पैराथायराईड, थायराईड, जननग्रंथि आदि शरीरके अनेक अवयव विविध रोगोंमें सफलतासे प्रयुक्त हो रहे हैं। अस्तु, यह सुनिश्चित है कि जब यह कठिन प्रश्न हल हो गया तब औषधि-चिकित्सा जो आयुर्वेद, यूनानी, पाश्चात्यवैद्यक ((एलोपैथी), समचिकित्सा (होमियोपैथी) प्रभृति चिकित्साके अनेकानेक भेदोंके होते हुए भी अद्यावधि एक प्रकारसे अपूर्ण है, पूर्णताकी कोटितक पहुँच जायगी।

जंगमों (हैवानात) से जो-जो चीजें काममें लायी जाती हैं, वे प्रायः निम्न हैं[1] :—

खुस्या वा मनी (मुष्क व शुक्र), अण्डा (बैजा), खुर, खून, गूह वा वीट (विट्, बुराज), गुर्दा (वृक्क), गोरस, गोरोचन, चमड़ा वा खाल, चर्बी, मेद वा तेल (वसा व पियः), जिगर (यकृत्—कबिद), जीभ (जबान), तिल्ली (प्लीहा–तिहाल), थन, दांत, दिल (हृदय–कल्ब), दुग्ध (दूध), नख, पर, पसीना, पाचा, पित्ता, पित्त, पूँछ, पेशाब (मूत्र–बौल), पैर, फेफड़ा, बाल (केश–लोम), भेजा (मज्जा–मग्ज), मांस, मैल, शहद (अस्ल–मधु), शिश्न (कजीब), सींग (शृङ्ग–कर्न), स्नायु, हड्डी (अस्थि) आदि।

चिकित्सा-विशारदोंने इन्हीं जङ्गमावयवोंको विभिन्न विधियोंसे शोधित करके अथवा भस्म बनाकर नांनाविध रोगोंकी चिकित्सामें या उक्त प्राणोंक्रे वर्णन प्रसंगमें बहुत उपकारी पाया है, जिनका आवश्यक नातिसंक्षेपविस्तरेण विवरण आगेके प्रकरणोंमें किया गया है। आशा है, हकीम और डॉक्टरोंकी भाँति वैद्यगण भी इनका व्यवहारकर अपनी चिकित्साको यशस्वी बनानेका सत्प्रयास करेंगे। फिर आयुर्वेदमें तो इनका विशद विवरण ही नहीं हुआ है, अपितु आयुर्वेद ही इस चिकित्सांग (इन्द्रियांग चिकित्सा) का प्रवर्तक या मूल है, यदि ऐसा कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आयुर्वेद के लिए यह कोई नवीन विषय नहीं है। केवल वैद्यों द्वारा उपेक्षित है।

वैद्योंको यदि इस ग्रन्थके इस विभागके अध्ययन से इस विषयकी कुछ भी जानकारी और अपनी चिकित्सामें इनके प्रयोगकी प्रेरणा मिली तथा इसके प्रयोगसे उनको कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। सुतरां आगे इनका अकारादिवर्णक्रमानुसार आवश्यक विवरण किया जा रहा है।

●

---

[1] आयुर्वेदमें पशु आदि जङ्गम प्राणियोंसे प्राप्त होनेवाले द्रव्योंका उल्लेख इस प्रकार किया गया मिलता है—"तत्र × × ×, जङ्गमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः ॥" (सु० सू० अ० १ श्लोक ३०)। चरकसंहितामें यह विशेष लिखा है—"मधूनि गोरसाः पित्तं वसामज्जासृगामिषम्" विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुश्रृङ्गनखाः खुराः। जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशालोमानि रोचनाः ॥ (सू० अ० १)। अर्थात् जाङ्गम द्रव्य ये हैं—मधु, गोरस (दूध), पित्त, वसा (चर्बी), मज्जा, असृक् (रक्त), आमिष (मांस), विट् (मल), मूत्र, चर्म, रेतस् (वीर्य), अस्थि (हड्डी), स्नायु, श्रृङ्ग (सींग), नख, खुर, केश, लोम, रोचना (शुष्कपित्त) आदि।

अण्ड और धात (खुस्या और मनी)

अण्ड नाम—(हिं०) अं (आं) ड, आँडी; (अ०) खुस्यः (द्विव०-खुस्यतान, खुस्यतैन, उन्सियैन, उन्सियान, बैजः; (फा०) खायः; (सं०) मुष्क, अण्ड, वृषण; (अं०) टेस्टिकल (Testicle)।

धात नाम—(हिं०) धात, बीज; (अ०) मन्नी, नुत्फ़ः; (फा०) माद्दए तौलीद, आबेपुश्त; (सं०) शुक्र, वीर्य, रेतस्; (अं०) सीमेन् (Semen), स्पर्म (Sperm)।

वर्णनादि—प्राणियोंके शरीरमें शिश्नके नीचे अण्डकोशमें दो वृषण (खुस्यतैन) होते हैं, जिनका प्रधान कार्य शुक्र (मनी) धातुको उत्पन्न करना है। चिकित्सामें इन दोनों (अण्ड और धात) का पृथकशः अथवा जिसके अंडे या वृषण जो मिल सकें अथवा उनमेंसे एकका दूसरेके स्थानमें उपयोग किया जा सकता है। जिस प्राणिका शुक्र मिलना कठिन हो, समानगुणधर्मी होनेसे उसके अण्ड (अण्डे वा वृषण) का उपयोग करना चाहिए (चक्रपाणि)। हकीमों द्वारा पुंस्त्वनाशमें जुंदबेदस्तर तथा जबादका प्रयोग होता है। ये दोनों विशिष्ट प्राणियोंके वृषण एवं वीर्य हैं। जिस प्रकार संस्कृत 'अण्ड' शब्दके अण्डा और वृषण दोनों अर्थ होते हैं, उसी प्रकार अरबी 'खुस्यः' और 'बैजः' शब्दके भी उक्त उभय अर्थ होते हैं।

यह प्राणियोंके सभी अवयवोंमें निम्न श्रेणिका अवयव है, किन्तु इसके श्रेष्ठ होनेमें कोई संदेह नहीं। इनमें श्रेष्ठ प्राणिका अण्ड श्रेष्ठतर होता है, वृद्धसे युवाका उत्तम, और सर्वोत्तम ताजे मुरगेका अण्ड होता है।

प्रकृति—शुक्र समस्निग्धोष्ण है। शुक्रोत्पत्तिका स्थान होनेसे वृषण वा अण्ड भी समस्निग्धोष्ण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इससे मलकी अपेक्षया पोषणांश (गिजाइयत) अधिक प्राप्त होता है। इसके सेवनसे शुक्रकी वृद्धि होती है तथा कामोद्दीपन होता है। शैख़ का कथन है कि यदि अण्ड खूब पच जाय चाहे देरमें ही सही, तो उससे शरीरको वहुत पुष्टि प्राप्त होती है जिसका कारण उसमें पोषणांशका प्राचुर्य है। दीर्घपाकी एवं दुष्टदोषोत्पादक होनेके कारण वृद्ध प्राणि जैसे बकरा और ऐसे प्राणिका अण्ड सेवन नहीं करना चाहिए जिसका मांस गुरु होता हैं, जैसे भैंसा। यदि ऐसा अवसर आवे तो गरम मसाला और पाचन द्रव्योंके साथ इनका सेवन करें।

आयुर्वेदीय मत-शुक्र (या शुक्रोत्पादक वृषण) के भक्षणसे शुक्रकी वृद्धि होती है (च० शा० अ० ६/१०)। अतः शुक्रके क्षयमें अथवा वाजीकरणके लिए शुक्र या वृषण खिलाना चाहिए ऐसा आयुर्वेदका मत है। इनमें भी समान अर्थात् स्वयं शुक्रका सेवन शुक्रक्षयमें सर्वोत्तम है। घडियालका वीर्य सर्वश्रेष्ठ वृष्य (शुक्रवर्धक) है। माता-पिताके शुक्रकी अल्पतासे होनेवाले आसेक्य नामक षण्ढ (नपुंसक) को शुक्रपान करानेसे निःसंदेह पौरुष-लाभ होता है।[1] इसीलिए आयुर्वेदमें इस हेतु अनेक प्राणियों (मनुष्य, पशु, पक्षी) के शुक्र तथा उसका मिलना कठिन होनेपर

---

[1] शुक्रं शुक्रेण (आप्यायते) भूयस्तरम् (च० शा० अ० ६)। गन्धमार्जारवीर्यं तु वीर्यकृत् कफवातकृत् (भा० प्र०)। नक्ररेतो वृष्याणां (श्रेष्ठम्) (च०सू० २६।४७)। पित्रोरत्यल्पबीजत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत्। स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ (सु० शा० २।३८)।

उसके वृषण और पक्षियोंके अण्डेका प्रयोग हुआ हैं।[1] आजकल पाश्चात्य चिकित्सामें भी नपुंसकोंको शुक्रवृद्धि एवं वाजीकरणके लिए जो शुक्र या अण्डसत्व आदिका विविध रूपमें मुख या सूची (इञ्जेक्शन) द्वारा प्रयोग कराया जाता है, वह उक्त आयुर्वेदीय मतका पिष्टपेषण मात्र करता है। पुरुषके वृषण निकालकर बानरके वृषण लगानेका आधुनिक शस्त्रकर्म भी कोई नवीन नहीं है। पौराणिक गाथा है कि गौतमके शापसे इन्द्रके वृषण गिरे गये। देवोंने मेषके वृषण लगाकर इन्द्रको पुनः स्वस्थ कर दिया। अतएव इन्द्रका नाम मेषवृषण भी है। यह गाथा शस्त्रकर्म द्वारा वृषण-विनिमयके आधुनिक शस्त्रकर्मकी प्राचीनता सिद्ध करती है (आ० क्रि० शा०)। अण्डके दो अर्थ हैं। चिड़िया, हंस, मुर्गा, मोर, केकड़ा कछुआ, शिशुमार (सूइस), घडियाल इत्यादिके प्रसंगमें अण्डका अर्थ अण्डे लेना चाहिए। तथा भैंसा, सॉड, बकरा आदिके प्रसंगमें उसका अर्थ वृषण लेना चाहिए। दोनों अण्ड समानगुण होनेसे शुक्रकी वृद्धि करते हैं।

---

[1] चटकानां सहंसानां दक्षाणां शिखिनां तथा। शिशुमारस्य नक्रस्य भिषक् शुक्राणि संहरेत् ॥ (च० चि० अ०२। पा० २।१०), कुलीरकूर्मनक्राणामण्डान्येवं तु भक्षयेत्। महिषर्षभबस्तानां पिबेच्छुक्राणि वा नरः॥ (सु० चि० २६।२६)। घृतं माषान् सबस्ताण्डान् साधयेन्माहिषे रसे। मर्जयेत्तं रसं पूतं फलाम्लं नवसर्पिषि ॥ ईषत्सलवणं युक्तं धान्यजीरक नागरैः। एष वृष्यश्च बल्यश्च बृंहणश्च रसोत्तमः ॥ (चि० अ० २ पा० १)। "शुक्राणि इति यद्यप्युक्तं तथाऽपि चटकादि शुक्रग्रहणस्याशक्यत्वात् समानगुणानि तदण्डान्यपीह गृह्यन्ते।" (चक्रपाणिदत्त)। पिप्पली लवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते। शिशुमारस्य वा खादेत्ते हि वाजीकरे भृशम् ॥

अंडा

नाम—(हिं०) अंडा; (अ०) बैज़, बैज़ा (बहु० व०—बैज़ात); (फा०) तुख्म मुर्ग़, खाये मुर्ग़; (गु०) ईंडा; (सं०) अण्ड, डिम्ब; (बं०) डिम्; (अं०) एग (Egg)।

वर्णन—अण्डा प्रसिद्ध प्राणिज द्रव्य है, और परिंदों विशेषकर मुर्गीका अंडा आहार और औषधके लिए उपयोग में लिया जाता है। तथापि अंडा शब्द से यहाँ मुर्गीका अंडा अभिप्रेत होता है। तीतर, चकोर, लवा तथा बतखके अंडे मुर्गीके अंडेके समान होते हैं। अंडेके यह मुख्य तीन भाग होते हैं—(१) अंडे की ज़र्दी या अंडपीत (Ovi vitallus–ले०; the yolk of egg–अं०); (२) अंडेकी सफेदी (Ovi albumen–ले०; the white of egg–अं०); तथा (३) अंडेका छिलका (पोस्तबैज़ाए मुर्ग़–फा०; क़श्रबैज़ा–अ०; कुक्कुटाण्डत्वक्–सं०; the egg shell–अं०;) ये तीनों औषध के काम आते हैं।

रासायनिक संगठन—प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट)को छोड़कर अंडेमें आहारके समस्त उपादान पाये जाते हैं। इसमें प्रोभूजिन (प्रोटीन), चरबी और सुधा (कैल्सियम्), फॉस्फरस (भास्वर), लोह, पोटैसियम् इत्यादि खनिज बहुत परिमाणमें होते हैं और ऐसे रूपमें रहते हैं कि उनका पाचन और शोषण अत्यंत सहजमें होता है।

अंडेकी सफेदी (Ovi albumen)—में ऐल्ब्युमेन (Albumen) १५ से १८ प्रतिशत, किंचित् श्लेष्मा, वसा, शर्करा, एक्सट्रैक्टिव मैटर, लेसिथिन (अण्डसत्व) तथा रक्षा जिसमें क्षारमय लवण होते हैं और जल ८२ से ८५ प्रतिशत पाया जाता है। एक अंडेमें इसका प्रमाण लगभग ५ ड्राम तक होता है।

अंडेकी जर्दी (Ovi vitellus)—एक घन, पिच्छिल पीला या ललाई लिए पीला, अपारदर्शक (Opaque) क्षारीय द्रव है। इसमें जल ५०%, विटेलीन (vitelline) १६%, निरिन्द्रिय लवण १५%, तैलके गोलाणु (Globules), वसा ३०%, गंधक और फॉस्फरस एक कोशके भीतर होते हैं।

अण्डत्वक् (Ovi testa-egg shell)—एक सफेद, कठिन, भंगुर, सुधामय (calcareous) पदार्थ है जो कार्बोनेट ऑफ लाइम, फॉस्फेट ऑफ लाइम और किंचित् गंधक एवं अयस्, कुछ सेन्द्रियक पदार्थ १ से ५%, और लवण, यथा क्लोराइड्स, आयोडाइड्स, सल्फेट्स एवं फॉस्फेट्स ऑफ पोटैसियम्, कैल्सियम् और मैगनीसियम् से संगठित होता है।

प्रकृति—ज़र्दी प्रथम कक्षामें उष्ण एवं तर। सफेदी प्रथम कक्षामें शीतल एवं तर। अंडेका छिलका द्वितीय कक्षामें शीत एवं रूक्ष है। गुण-कर्म—ज़र्दी शोणितवर्धन, बलकारक और बाजीकर; सफेदी संशमन एवं शीतजनन (दाहप्रशमन) और अंडेका छिलका संग्राही, उपशोषण एवं लेखन (जाली) है। इससे रक्त अधिक उत्पन्न होता और शरीर पुष्ट एवं बलवान होता है तथा कामशक्ति बढ़ती (वाजीकरण) है। कामावसाद (क्लीवता) दूर करनके लिए इसका हलवा बनाकर खिलाते हैं। कच्चे अंडेकी अपेक्षया हलका उबला हुआ अंडा लघु और अधिक उबला हुआ गुरु वा चिरपाकी होता है। सफेदीसे पुष्टि (गिजाइय्यत) कम प्राप्त होती है और यह दीर्घपाकी (यह विचारणीय है) है। दग्ध स्थानपर एवं जलनदार जख्मोंके लिये बनाये जानेवाले मरहमोंमें अंडेकी सफेदी मिलाकर लगाते हैं। अडेके छिलके को (विशेषकर मुर्गीके अंडेके छिलके जो कैलसियम फॉस्फेट्स के यौगिक हैं) मसी (सोख्ता) वा भस्म बनाकर नेत्ररोगों विशेषकर नेत्रशुक्ल (फूली) में सुरमाकी भाँति आँखमें लगाते हैं। इसे नाकमें प्रधमन करने से नासागत रक्तपित्त (नकसीर) आराम होता है। शुक्रप्रमेह, शीघ्रपतन, श्वेतप्रदर और मधुमेहमें इसकी भस्मका उपयोग करते हैं। श्वेतप्रदर में इसके सेवनसे बड़ा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त दमा ,पुरानी खाँसी, रक्तकास, उरःक्षत, राजयक्ष्मा, प्रमेह और अतिसारमें भी इसके सेवनसे लाभ होता है। पक्षाघात, अर्दित, वातशूल आदि रोगोंमें अंडेके तेल (रोग़न जर्दी बैज़ा The yellow oil) की मालिश करते हैं तथा श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया), नपुंसकता, दौर्बल्य

आदि रोगोंमें शहद वा दूधके साथ इसको खिलाते हैं। तेल निकालनेकी विधि भेषजकल्पना-प्रकरणमें देखें। **अहितकर**—(ज़र्दी) कतिपय उष्ण प्रकृतियों में उष्णताकी वृद्धि कर देता है। **निवारण**—दूध। **प्रतिनिधि**—मुर्गेके वृषण। **मात्रा**—दो से चार अंडे तक। कुक्कुटाण्डत्वग्भस्म १२५ मि०ग्रा० से २५० मि०ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक। **अनुपात**—शहद या ताजा मक्खन।

आयुर्वेदीय मत—पक्षियों (हंस, चकोर, मुर्गी, मोर तथा चटक आदि तथा मछली आदि)-के अंडे रस और विपाकमें मधुर, किंचित् स्निग्ध, गुरु, अविदाही, वृष्य, शुक्रल, वातघ्न, सद्योबलकर तथा शुक्रक्षय, खाँसी, हृद्रोग और व्रणमें हितकर हैं (च. सू. अ. २७ तथा चि. अ. २; भा. प्र. मांसवर्ग)। चरकने अंडेकी जर्दीको गायके घीमें भूनकर वाजीकरणके लिए देनेको लिखा है।

अंबर (अग्निजार)

नाम— (हिं०; अ०) अंबर; (फा०) शाहबू; (सं०) अंबर, अग्निजार; (ले०) अंबर ग्रेसिआ (Ambra gresea); (अं०) अंबर ग्रिस (Ambergris)।

वर्णन और प्राप्तिस्थान—अंबर स्पर्श ह्वेल (Sperm Whale) नामक मत्स्यके उदरसे प्राप्त होनेवाला एक प्रसिद्ध सुगंधित बहुमूल्य प्राणिज द्रव्य है। रंगके विचारसे सर्वोत्तम अंबर अशहब (शुक्लता प्रधान श्यामवर्ण) अंबर है। यह निकोबार (काले पानीका एक टापू) तथा भारतीय समुद्रके अन्यान्य टापुओंसे आता है। प्राचीन कालमें अरब और यूनानवासी इसे भारतवर्षसे ले जाते थे।

परीक्षा—अंबरके शुद्ध एवं उत्तम होनेकी पहचान मुल्लानफ़ीस ने इस प्रकार लिखी है—अंबरको एक शीशामें डालकर कोयलोंकी अग्निपर रखें। यदि वह सम्पूर्ण पिघल जाय और तेलकी भाँति बहने लगे तो शुद्ध समझा जाता है, वरन् अशुद्ध।

रासायनिक संगठन—इसमें अंब्रीन (Ambrein) ८५% और किंचित् भस्म प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहिले दर्जेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—ओजों (प्राणशक्तियों–अरवाह) और शरीर शक्तियोंका संरक्षक, सौमनस्यजनन, ज्ञानेन्द्रिय (हवास), हृदय एवं मस्तिष्कको बल देनेवाला, दीपन और ग्राही है तथा प्रकृत देहोष्माको जागृत करता और शारीर-शक्ति एवं वाजीकरण शक्तिको उत्तेजित करता (बल्य एवं वाजीकर) है।

उपयोग—अंबरको अधिकतया वातनाडियों, मस्तिष्क और हृदयके शीतजन्य व्याधियों में प्रयुक्त करते हैं। पक्षवध, अर्दित, कम्पवात, धनुःस्तंभ एवं अपतानक, स्वाप (सुन्नता), मस्तिष्क दौर्बल्य, नाडीदौर्बल्य, हृदयदौर्बल्य, शीतल हृत्स्पंदन (खफ़क़ान) आदि विकारोंमें इसे अकेला या अन्य माजून—मुफ़र्रेह और याकूतीके योगोंमें मिलाकर अंबर खिलाया जाता है। कामोत्तेजक होनेके कारण यह नपुंसकताके योगोंमें सम्मिलित किया जाता है। यदि प्रकृत देहाग्नि निर्बल पड़ गई हो, तो उसे उद्दीप्त करनेके लिए तथा कफज उन्माद, पुराना नजला (प्रसेक), मूर्च्छा, अपतन्त्रक, अतिशोधन (वमनविरेचन-सिरावेध आदि) से तथा अति स्त्रीसंगसे उत्पन्न अशक्तता आदि तथा वात-कफ और दौर्बल्यप्रधान रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। आमाशयावसाद (मेदेकी कमजोरी) और आमाशयिक द्वारशूल निवारण करनेके लिए भी इसका उपयोग कराया जाता है। **अहितकर**–अन्त्र और यकृत्को। **निवारण**–बंशलोचन और बबूलका गोंद। **प्रतिनिधि**–कस्तूरी और केसर। **मात्रा**–१२५ मि०ग्रा० से ३७५ मि०ग्रा० (१ रत्तीसे ३ रत्ती) तक परंतु इससे आधी मात्रा देना ठीक है।

आयुर्वेदीय मत—पेटकी व्याधिरूप अग्निजार (अंबर) कटु, उष्णवीर्य, पित्तकर तथा वात, कफ, सन्निपात, शूल और शीतजन्य व्याधियोंका नाश करनेवाला है (रा. नि.)। अग्निजार त्रिदोषघ्न, धनुर्वात आदि (आक्षेपप्रधान) वातरोगोंका नाश करनेवाला, पारदके योगोंके साथ देनेसे उसके वीर्य (गुण)-को बढ़ानेवाला, दीपन तथा पाचन है (र. चू.)।

अबाबील

पृष्ठवंशी (Vertebrata) **: पक्षिवर्ग** (Class : Aves)

फैमिली : हिरुन्डिनिडी (Family : Hirundinidae)

नाम—(हिं०) कन्हैया, सयानी; (अ०) खुत्ताफ़; (फा०) परसत्वक्, बाबुवानह; (ले०) हिरुन्डो रस्टिका *Hirundo rustica*; (अं०) स्वालो (Swallow)।

वर्णन—काले रंगकी एक चिड़िया जिसकी छातीका रंग कुछ खुला होता है। इसके पैर बहुत छोटे होते हैं जिससे यह बैठ नहीं सकती और दिनभर आकाशमें बहुत ऊपर झुंडके साथ उड़ती रहती है। इसके घोंसले पुरानी दीवारोंपर मिलते हैं। यह पृथ्वीके सब देशोंमें होती है।

प्रकृति—**मांस** तीसरे दर्जेके आदिमें गरम और रूक्ष; भस्म सर्द एवं रूक्ष और विट् अत्यंत उष्ण एवं रूक्ष। गुण-कर्म तथा उपयोग–इसके **मांस**का कबाव अवरोधोद्घाटक है, तथा रक्ताल्पता, प्लीहाके रोगों और वस्त्यश्मरीके लिए लाभकारक है। ४·५ ग्राम (४½ माशे)की मात्रामें इसके पिसे हुए सूखे चूर्णको फाँकनेसे दृष्टिशक्ति बढ़ती है। इसकी भस्मका गण्डूब या शहदके साथ लेप करनेसे गलशुण्डी (कौआ) और कण्ठगत समस्त व्याधियाँ नष्ट होती हैं। इसके बच्चेकी भस्मको रुधिरमें मिलाकर अथवा भेजा मधुमें मिलकर नेत्रमें लगानेसे नेत्रको लाभ होता (चक्षुष्य) तथा मोतियाबिंदकी आरंभिक अवस्थामें भी उपकार होता है। यह नाखूना (अर्जुन), फूली और जाला (सबल)के लिए लाभदायक है। इसका ताजा रक्त अत्यंत कान्तिदायक तथा त्वचागत चिह्नोंका नाशक है। गोपित्तके साथ यह बालोंको सफेद करता है। इसके पित्तका नस्य वालोंको काला बनाता है। परंतु मुखमें दूध रखें जिसमें दाँत काले न हों। इसके झोंझको जलाकर उसमेंसे ४·५ ग्राम (४½ माशे)की मात्रामें मिलानेसे बन्ध्यत्व दूर होता है। इसके नेत्रको चमेलीके तेलमें रगड़कर पेड़ूपर लगानेसे भी बन्ध्यत्व दूर होता है और यह परीक्षित है (मख्जन)।

इसके सिरको जलाकर भस्मकर मद्यमें डालने से नशा नहीं होती। इसकी विष्ठा सफेद बालों पर लगानेसे बाल काले हो जाते हैं। असमयमें सफेद हुए बाल इसके पित्तका नस्य देनेसे काले हो जाते हैं। अबाबीलके सुखाए हुए हृदय का चूर्ण समभाग चीनी मिला दूधके साथ सेवन करनेसे कामोत्तेजना होती है।

अबाबीलोंमें मिश्री अबाबील श्रेष्ठ होता है। इनके अंडे बल्य एवं कामोद्दीपक हैं। कफे अबाबील जिसे अबाबील मिश्री, खानए अबाबील, मूए अबाबील और अबाबीलकी मस्ती कहते हैं, इसके घोसलोंसे प्राप्त होता है। यह मुर्गेके खुले हुए चोंचके समान होता है। कोई सफेद और कोई लाल रंगका होता है। सफेद रंगवाला शुद्ध पंजाबी सालबमिश्री जैसा कठोर होता है। किंतु सूखने पर सरलतासे टूट जाता है। प्रकृति–गरम और रूक्ष। गुण-कर्म–यह अत्यंत कामोद्दीपक, शुक्रमेहघ्न, हृदय और नाड़ियों को वल प्रदान करने वाला है। अहितकर–गर्भवती एवं पित्तल प्रकृतिको। प्रतिनिधि–नेत्र रोगोंमें चमगादड़ का भेजा। प्रधान कर्म–नेत्र रोगोंमें परम गुणकारक और रक्ताल्पतानाशक है।

आदमी व औरत

पृष्ठवंशी (Vertebrata) **: स्तनधारीवर्ग** (Class : Mammalia)

फैमिली : होमोनिडी (Family : Homonidae)

नाम—(हिं०) आदमी, मनुष्य, नर; (अ०)आदम (मी), इन्सान; (फा०) मर्दुम, आदमी; (सं०) मनुष्य (नर, नारी व स्त्री-पुरुष (मादास्त्री); (ले०) होमो सेपिएन्स *Homo sapiens*; (अं०) मंन (Man)।

वर्णन—जरायुज जाति (Viviparous) का एक प्रसिद्ध स्तनपायी प्राणी जो अपने मस्तिष्क या बुद्धिबल की अधिकताके कारण सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ है। इसकी मादा को संस्कृतमें "स्त्री", अरबीमें 'औरत', फारसीमें 'जन' और अंग्रेजीमें वूमन (Woman) कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोगिता—इसका मूत्र क्षारीय, तिक्त एवं कटु है। तुरन्त पित्त उत्पन्न करता है तथा सन्निपात भूतावेशजनित मालीखोलिया (मद)में लाभकारी है और विषविकार भी नष्ट करता है। इसका निरन्तर सेवन रसायनका काम करता है। हैजेके रोगी को पेशाब करके पिलानेसें लाभ होता है। नीला कपड़ा जलाकर उसकी राख करके साथ पिलानेसे मूर्च्छित रोगी भी होशमें आजाता है। मानवमूत्र कृष्ण सर्पके विषका अगद है। ताँबेके बर्तनमें मनुष्यके मूत्र को पकाकर बनाया हुआ नमक आँखके जाले और झाईं को दूर करनेके लिये परीक्षित है।

निहारमुंहका थूक कर्णकृमियों को नष्ट करता है, तथा दाद, झांई, व्रणचिह्न, नाखूना (तर्फा) और नेत्र शुक्ल (फूली) को दूर करता है। पक्षियों की बीटके साथ मस्सों को नष्ट करता है। कानके मल का लेप आधाशीशी के दर्दके लिए लाभकारी है। सींगी और रक्तमोक्षण द्वारा प्राप्त रक्तके लेपसे वातरक्त एवं संधिशूल आराम होता है। आर्तवशोणितके लगानेसे नाड़ीव्रण पूरित होता है तथा शिरःशूल शांत होता है। पीनेसे यह घातक विषवत् है। शुक्र व्यङ्ग, किलास और झाईंको दूर करता है। जली हुई हड्डीका चूर्ण ४ माशे समभाग चीनी मिलाकर तीन दिन तक खानेसे संधिशूल, वातरक्त और गृध्रसी रोग आराम होता है। हड्डीको जला पीसकर नस्य लेनेसे मृगी आराम होती है। जलाई हुई हड्डीका चूर्ण प्रति दिन ७ माशेकी मात्रामें तीन दिन तक सेवन करानेसे मृगी बिल्कुल जाती रहती है। यदि इसका पुनराक्रमण हो तो सात मक्खियोंके सिर पानीमें पीसकर नाकमें टपकायें। इससे पुनः आक्रमण नहीं होगा। चौथिया ज्वरके रोगीको बतलाये बिना मृत मनुष्यकी हड्डी खिलानेसे ज्वर दूर होता है। बालकके प्रथम गिरे हुये दुग्ध दन्तका जो पृथ्वी पर न गिरे हो लेकर चाँदीकी तावीजमें रखकर–यदि स्त्री अपने पास रखे तो गर्भवती न हो। मनुष्यकी विष्टा समस्त पीत विषोंसे छुटकरा प्रदान करता है। नेत्राश्रु रोगकीटाणुनाशक है। (ख० अ०)।

आयुर्वेदीय मत—स्त्री दुग्धका नस्य तृष्णा एवं हिक्का नाशक है (च० चि० अ० २२।१७)। स्त्रीस्तन्यमें ऊपरकी त्वचा पकाकर देनेसे अत्यग्नि दूर होती है (च० चि० अ० १३)। आदमीका (मनुष्य) मूत्र विषहर है (सु० सू० अ० ४५; अ० सं० सूत्रस्थान), तिक्त, रेचन, मोहहर, कृमिहर, पित्तरक्त, कफ और वातनाशक है (यो० र०)। नरमूत्र तीक्ष्ण, क्षारयुक्त, लवण, रसायन, गरनाशक, और रक्तपामाहर है। (भा० प्र०)।

आबरेशम

(मशक-कुल)

नाम—(हिं०) रेशम, रेशमका कोआ (या), ककून, कोसा; (अ०) इबरेसम; (फा०) अ (आ) बरेशम, रेशम; (सं०) कृमिकोश, कोष (श); (अं०) सिल्क पॉड (Silk pod), रॉ सिल्क कोकून (Raw silk–cocoon)।

रेशम का कीड़ा—(हिं०) कुसवारी, कुसारी, किरिम पिल्ला, कुसियारी; (अ०) दूदुल् हरीर; (फा०) किर्म आबरेशम, किर्म बादामा; (सं०) कोषकार, कोशकार (-कृत्), कोशकीट; (लै०) बॉम्बिक्स मोराइ (*Bombyx mori* Moth.); (अं०) सिल्क-वर्ममॉथ (Silk-worm Moth)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें रेशम कश्मीर, बिहार, बंगाल और महीसुरमें होता है।

वर्णन—आबरेशम एक कीड़े (किरिमपिल्ला) का घर है, जिसको वह अपने मुखके लारसे अपने ऊपर बनाता है। यह कीड़ा शहतूतके वृक्षोंपर पाला जाता है। बेर (*Rhamnus jujuba*) पर पलने वालेको बॉम्बिक्स मिलिट्टा (*Bombyx mylitta*) कहते हैं। जब उसकी पत्तियाँ खाकर वह खूब मोटा-ताजा हो जाता है, तब उसके मुंहसे एक महीन तार निकलने लगता है। अब किरिमपिल्ला उसके पत्रपर अपना घर बनाना चाहता है। इसीलिये अपने मुंहसे तार बुनना प्रारम्भ करता है, जिसमें वह स्वयं आवृत्त हो जाता है। यहाँ तक कि वह अंडेके बराबर हो जाता है। इस प्रकार इस कीड़ेके बनाये हुए लंब-गोल (अंडाकार) वस्तु (कोश) को रेशमका कोया–अबरेशम कहते हैं। कीड़ा इसके भीतर मर जाता है। पर कभी जीवित भी निकलता है। जब

वह जीवित रहता है तब परदार बनकर कोयेको काटकर बाहर आता है। यह कोया निकम्मा होता है। इसका रेशम नहीं बनता। अरबीमें इसको 'क़ज़' कहते हैं। यह उभय भेद रेशमखाम (कच्चा रेशम) कहलाते हैं। जब तक यह घर (कीटगृह) अपनी खास शकलमें रहता है और उससे रेशम निकलता है, उसको कोया अवरेशम या आबरेशम ख़ाम (जलमें उबाले हुए को हरीर) कहते हैं। इसीको कैंचीसे कतरकर और भीतरी मरे हुये कीड़े को निकालकर चूर्ण बना 'अबरेशम मुक़र्रज़' के नामसे उपयोग करते हैं। औषधके लिए उत्तम अबरेशम वह है जो सफेदी लिए पीला और फूला हुआ हो। प्रायः लोग पीलेको उत्तम समझते हैं, विशेषतः उस समय जबकि इसे धोकर बारीक करने पर यह पतला (रकीक़) हो जाय। परन्तु जब अबरेशमके कोयेसे बारीक-बारीक धागे वस्त्र तैयार करनेके लिए निकाल लेते हैं- तब औषधमें इसका आन्तरिक उपयोग नहीं होता। पानीमें उबाला हुआ और जिससे कीड़ा निकल गया हो ऐसे कोयेका उपयोग हकीम लोग नहीं करते।

कल्प तथा योग—शर्बत अबरेशम सादा, जुवारिश शाही, खमीरा अबरेशम सादा (व जदीद), खमीरा अबरेशम हकीम इर्शदवाला (इर्शदी), खमीरा अबरेशम शीरा उन्नाबवाला, खमीरा अबरेशम ऊदमस्तगीवाला।

प्रकृति—पहले दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष। गुण-कर्म-सौमनस्यजनन, मस्तिष्क-हृदय-यकृत-फुफ्फुस और आमाशय को बल देने वाला, दोषों को पतला करने वाला, कफको निकालने वाला तथा चेहरेके रंग को निखारने वाला। और (जलाया हुआ) लेखन तथा व्रणशोषण है। उपयोग—ऊपरलिखे हुये गुणोंके कारण कतरकर चूर्ण बनाए हुए कच्चे अबरेशम (अबरेशम खाम मुक़र्रज) को सौमनस्यजनन हेतु जवाहरमोहरा, याकूती, मुफर्रेह और माजूनोंमें डालते हैं। यह हृदय तथा उरोफुफ्फुसरोग एवं ज्वर की विशिष्ट औषधि है तथा मनःप्रसाद और दोषोंको पतला करता है। वायुका अनुलोमन करता और एकाहिक ज्वर एवं प्रतिश्याय ज्वरको दूर करता है। कास-श्वास, शीतल प्रसेक और प्रतिश्यायमें जबकि कफ गाढ़ा हो, इसको पतला एवं उत्सर्गित करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। जलाया हुआ (मसीकृत या मुहरक़)अबरेशमका चूर्ण नेत्रव्रण, नेत्रस्राव और नेत्रकण्डू प्रभृति नेत्ररोगोंमें सुरमे की भांति लगाया जाता है। इसे सद्योव्रण पर छिड़कनेसे रक्तस्राव बंद होता है और व्रण शीघ्र भर आता है। रक्तस्तंभन, बल्य एवं ग्राही होनेसे अतिरज, श्वेतप्रदर और जीर्णं अतिसार रोगोंमें प्रायः अन्य संग्राही औषध द्रव्योंके साथ इसका आंतरिक उपयोग करते हैं। अहितकर—वृक्कको। निवारण—असारून। प्रतिनिधि—गावज़बानपत्र। मात्रा—१$\frac{१}{२}$ ग्राम से ३-५ ग्राम (१॥ माशा से ३-५ माशा) तक। आंतरिक प्रयोगके लिये इसकी भस्मकी मात्रा २०० मि०ग्रा० से ६०० मि०ग्रा० (१॥–५ रत्ती) तक।

रेशमी कपड़ा (कौशेय वस्त्र)—रेशमी कपड़ा पहननेसे शरीरमें जूयें (ढीलें) नहीं होने पातीं। यह क्षौम (कत्तान) वस्त्रसे अधिक उष्ण है। रेशमका कीड़ा—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरे दर्जेमें रूक्ष है। उपयोग—रेशमके कीड़ेका क्वाथ करके पीनेसे हृत्स्पंदन आराम होता है। १०$\frac{१}{२}$ माशा रेशमके कीड़ेका चूर्ण प्रतिदिन हरीराके साथ खानेसे अत्यंत वाजीकरण है, कपोलोंका रंग निखारता और शरीरको पुष्ट करता है।

आयुर्वेदीय मत—आबरेशम (कोशकार) को घीमें भून खीलों (धानके लावों) के चूर्णको मिला शर्करा एवं मधुके साथ चाटनेसे शूलयुक्त रक्तपित्तोत्थ उदररोग नष्ट होता है (सु. उ. अ. ४०)।

इस्पंज

छिद्रिष्ठ संघ (Phylum : Porifera)

नाम—(हिं०) इस्पंज, मुआ बादल; (अ०) इस्फ़ंज, सहाबुल्बहर; (फा०) अब्रे मुर्दः, अब्रे कोहन, स्पंग; (लें०) स्पांजिया ऑफिसिनेलिस (*Spongia officinalis or spongilla*); (अं०) दी स्पंज (The Sponge)।

वर्णन—समुद्रमें एक प्रकारके अत्यंत छोटे कीड़ोंके योगसे बना हुआ, मुलायम रूईकी तरहका सजीव पिंड जिसमें बहुतसे छेद होते हैं और जिनमेंसे होकर पानी आता है। यह पिलाई लिए धूसर या बादामी, स्थिति-

स्थापक और विषमाकार होता है। पनडुब्बा लोग इसे जलमग्न चट्टानोंसे, जिनसे ये संलग्न होते हैं, संग्रह करते हैं। ताजा होनेपर यह एक प्रकारके सरेशी परार्थसे आवृत्त होता है। सड़नेसे बचानेके लिए इसको पृथक् कर देते हैं। इसमें पानी सोखनेकी बड़ी शक्ति होती है। पानी सोखनेपर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है और निचोड़नेपर उससे पानी निकल आता है।

रासायनिक संगठन—सूखे इस्पंजमें जेलाटीन, ऐल्ब्युमेन और आयोडीन होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—मसी बनाया हुआ (अन्तर्धूमदग्ध) इस्पंज उपशोषण, लेखन और रक्तस्तंभन है।

वक्तव्य—इस्पंजके शोधन और मसीकल्पनाकी विधिके लिए लेखक द्वारा लिखित 'यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान–पूर्वार्ध अथवा 'यूनानी द्रव्य गुणादर्श प्रथम खण्डका 'परिभाषा एवं भेषजकल्पनाखंड' अवलोकन करें।

उपयोग—इस्पंज जलको सोखता है, इसलिए इसको कपड़ेकी जगह उष्ण वा शीतल जलमें भिगोकर रोगीके शरीरको पोंछते या सेक करते हैं। रक्तस्रावको रोकनेके लिए तथा प्रवाहिका, अतिसार एवं अन्त्ररोगोंमें इस्पंजकी मसी खिलाते हैं। नये और पुराने जख्मोंपर इसको छिड़कते हैं। नकसीरको रोकनेके लिए इसका प्रधमन नस्य देते हैं। नेत्रको निर्मल करनेके लिए इसे आँखोंमें लगाते हैं। मात्रा–१ ग्राम से १·५ ग्राम (१माशा से १$\frac{1}{2}$ माशा)।

उकाब

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षिवर्ग** (Class : Aves) : **फालोनीफार्मीज गण** (Order : Faloniformes)

नाम–(हिं०) गरुड़, गीध, काब; (अ०) उक़ाब, क़ाब, (फा०) उलुवः; (सं०) गरुड़; (अं०) (Eagle)।

वर्णन—बड़ी जातिका एक गिद्ध। इसकी दृष्टि वहुत तीव्र होती है। सुनते हैं कि उकाब या शार्दूलकी छाया पड़नेसे दीन-दरिद्र भी राजा बन जाता है। यह एक प्रकारका, बहुत बड़ा शिकारी पक्षी है जिसका सिर एवं गर्दन सफेद और शेष परोंका रंग चीलकी तरह रंग-विरंग, नख दो इंच लंबे अर्ध चन्द्राकार तथा पंजे इतने तेज और दृढ़ होते हैं कि जिस वस्तुपर गड़ जायँ फिर कठिनतासे खुल सकें।

प्रकृति—मांस दूसरे (मतांतरसे पहले) दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस गोमांसके समीप है। यह रदीउल्कैमूस है तथा शीत, वात और (रतूबत) को लाभकारी है। यदि नेत्रमें नजलेका पानी उतरने लगे तो इसका पित्त लगाना चाहिए। जाला और फूलीको भी यह पित्त काटता है। इसका रुधिर लगानेसे सूजन उतर जाती है। इसकी विष्ठा झाईं आदिका चिह्न दूर करती है। अपतन्त्रकमें इसकी धूनी लाभकारी होती है। इसके पित्तके लेपसे स्त्रीका स्तनशोथ मिटता और दूधकी उत्पत्ति बहुतायतसे होती है। घाव और व्रणके ऊपर इसका भेजा शहद एवं एलुआके साथ लेप करनेसे वह भर जाता है।

उल्लू

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षीवर्ग** (Class : Aves) : **ऐक्सीपिट्रीज गण** (Order : Accipitres)
फैमिली : स्ट्रिजिडी (Family : Strigidae)

नाम—(हिं०) उल्लू, कुचकुचवा, खूसट, कुम्हारकाडिंगरा, घुघुआ, घुग्घू; (अ०) बूम, ग़राबुल्लैल; (फा०) बूक़, शाहबूम; (सं०) उलू(ल्लू)क, नक्तचारी, दिवांध-घर्घर(क), घूक; (बं०) पेचक; (ले०) आथेनेब्रामा इंडिका (*Athenebrama indica*); (अं०) आउल (Owl)।

वर्णन—दिनमें न देखनेवाला एक पक्षी। यह प्रायः भूरेरंगका होता है। इसका सिर बिल्ली की तरह गोल और आँखे भी उसीकी तरह बड़ी और चमकीली होती हैं। संसारमें इसकी सैकड़ों जातियाँ हैं। यूनानी

निघंटुग्रंथोंमें इसके इन चार भेदोंका उल्लेख मिलता है—(१) बड़ा जिसको फारसीमें 'बूक़' और 'शाहबूम' और हिंदीमें 'उल्लू' कहते हैं; (२) मध्यम कदका काला इसको फारसीमें 'चोग़द' और हिंदीमें 'खूसट' कहते हैं—(३) इन दोनों से छोटा; (४) सबसे छोटा—इसको फारसीमें 'मुर्ग़हक' और हिंदीमें 'पेचा' कहते हैं। रंगके विचारसे भी यह कई प्रकारका होता है। प्रायः सभी देश और जातिवाले इसे अभक्ष्य मानते हैं। तांत्रिक लोग इसके मांसका प्रयोग उच्चाटन आदि प्रयोगमें करते हैं। आयुर्वेदमें 'छोटा' और 'बड़ा' भेदसे उल्लू दो प्रकारका लिखा है।

प्रकृति—मांस दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष है। गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस सेवन करनेसे मनुष्य मूर्ख एवं निर्बुद्धि हो जाता है। इससे उन्माद उत्पन्न होता है। यद्यपि इसके विभिन्न अवयव भिन्न-भिन्न विधिसे प्रयोग करनेसे नाना प्रकारके रोगोंको दूर करते हैं ऐसा उल्लेख मिलता है, तथापि खजाइनुल्‌ अदवियाके लेखकके अनुसार इसका कोई अंग सेवनीय नहीं अर्थात् इसका प्रत्येक अंग अभक्ष्य है।

आयुर्वेदीय मत—उल्लूका मांस पित्तकारक, भ्रान्तिकारक और वायुको प्रकुपित करनेवाला है (वै० निघ०)। छोटे उल्लूका मांस भी उक्त गुणोंवाला है। कौवा, उल्लू, बाज, गिद्ध आदि प्रसह जातीय पक्षियोंका मांस सिंह आदि के समान गुणवाला होता है। विशेषता यह है कि ये शोषके लिए उपयोगी हैं (ध० नि०)।

नव्यमत—उल्लूका मांस उष्ण, वातकारक और पित्तनिःसारक है तथा शोथ, उन्माद और निर्वीर्यतामें उपयोगी है (इं० ड्रु० इं० पृ० ५४५)।

ऊँट

पृष्ठवंशी : स्तनिन वर्ग : जरायुधारी-स्तनिन उपवर्ग : शफिन (खुरिन्) गण : युग्माङ्गुलीय उपगण
फैमिली : कैमेलिडी (Family : Camelidae)

नाम—(हिं०) ऊँट (स्त्री०—ऊँटनी); (अ०) इबिल, जमल, बईर, अबु, अयूब; (फा०) शुतुर, उश्तुर; (बं०) ऊँट; (सं०) उष्ट्र, क्रमेलक; (ले०) कामेलुस ड्रोमेडेरिउस (*Camelus dromedarius* Linn.); (अं०) कैमेल (Camel)।

वक्तव्य—भिन्न-भिन्न भाषाके शब्द संस्कृत 'क्रमेल'से मिलते-जुलते उच्चारित होते हैं, जैसे—इबरानी 'गमेल', यूनानी 'कैमेलोस (Kamelos)', रोमन 'कमेलस', अरबी 'जमल', इटली 'कम्मेलो', स्पेनीय 'कमलो', जर्मनी 'कमीलु', फ्रांसीसी 'कमु (Chameau)' और अंग्रेजी 'कैमेल'। फारसी 'शुतुर', या 'उश्तुर' शब्द क्रमशः संस्कृत 'धूसर' या 'उष्ट्र' जैसा जान पड़ता है।

प्राप्तिस्थान—इसका आदि स्थान अरब और मिश्र है। अरबके अतिरिक्त यह ईरान, दक्षिण तुर्किस्तान, उत्तर पश्चिम भारतवर्ष, अफरीका, भूमध्यसागर तथा सिनिगलनदी तटके मध्यवर्ती प्रदेश और कनारी द्वीपमें वास करता है।

वर्णन—यह बहुत बड़ा और प्रसिद्ध चौपाया है, जो सवारी और बोझ लादनेके काममें आता है। यह गरम और जलशून्य स्थानों (रेगिस्तानी मुल्कों) में अधिक होता है। अरबनिवासी इसका नाना भाँतिसे उपयोग करते हैं।

उपयुक्त अंग—दूध, घी, मांस, पनीरमाया (माये शुतुर ऐराबी), मूत्र, वसा, अस्थि, रोम, मींगनी और इसकी नाकका कीड़ा।

कल्प तथा योग—जिमाद शीरशुतुर, (हृच्छूल और आमाशय शूलनाशक एक प्रयोग)-ऊँटनीका दूध ऽ१।। सेर और लाहौरी नमक दोनोंको नरम आँचपर धीरे-धीरे पकायें जिसमें उबाल न खाए। जब गाढ़ा होने लगे तब इसमें ६ माशे काश्मीरी केशर मिलाएँ और आँचसे उतारकर केवल कोयलेकी आगपर रखकर पकाएँ। जब हलुआकी

तरह गाढ़ा हो जाय तब उतारकर छाँहमें सुखाकर रखें। फिर चूर्णकर शीशी में बन्द करें। **मात्रा**—१२५ मि० ग्राम से २ ग्राम (१ रत्ती से २ माशे तक) ठंढे पानी से देवें। **गुण-कर्म तथा प्रयोग**—इससे हृच्छूल और आमाशय शूलमें तत्कालीन लाभ होता है।

दूध-प्रकृति—रूक्षता लिये उष्ण। **गुण-कर्म**—लघु, पतला, जलांशकी प्रचुरताके कारण मूत्रल, प्रमाथी, लेखन, श्वयथुविलयन, विरेचनीय तथा आर्तवजनन है। **उपयोग**—विरेचन और मूत्रल होनेसे यह जलोदर, प्लीहोदर, अर्श और शोथमें लाभदायक हैं। इसके अतिरिक्त प्लीहोदर, यकृत् और प्लीहाके रोगोंमें जिनमें ज्वर न हो, इसका उपयोग लाभदायक होता है। इसके पीने और लगानेसे नेत्र को दृष्टिशक्ति सम्पन्न होती है। चीनी मिलाकर पीनेसे यह श्वास और कष्टश्वासको दूर करता, शरीरका बल बढ़ाता, क्षुधा उत्पन्न करता, कामोद्दीपन करता और मुखमंडलको निखारता है। यह आर्तवका प्रवर्तन करता और आमाशयशूल और हृच्छूलमें तत्काल लाभ पहुँचाता है। **अहितकर**–देरसे उदरगह्वरमें उतरता है और तृष्णाजनक है। **निवारण**–शर्करा। **प्रतिनिधि**–गोदुग्ध। **मात्रा**–पाचनानुसार। ऊँटका मूत्र जलोदर और शोथके लिए बहुत गुणकारक है। ऊँटनीके दूधकी भाँति इसका उपयोग करना चाहिये। इसका मूत्र गरम करके कानमें टपकानेसे कर्णशूल आराम होता और ऊँचा सुननेको भी लाभ होता है। **मांस** रूक्ष, गुरु, कामोत्तेजक, उत्तमांगोंको बलप्रद तथा चतुर्थक, गृध्रसी, कूल्हेका दर्द, कृष्ण कामला और सदाह मूत्रमें उपयोगी बतलाया जाता है। सिरका और काँजी, सिरकामें पड़ी हुई टेंटी (कबर) का अचार और प्रकृति उष्ण न हो तो अदरकका मुरब्बा, इनका सेवन इसके दोषोंका निवारण है। ऊँटकी चर्बी अर्शाङ्कुरोंपर लगाते हैं। इसकी मींगनीको घोलकर नस्य लेनेसे नकसीरका खून बंद हो जाता है। इसे उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ मृगीके रोगीको पिलाते हैं। ताजी मींगनियोंको पीसकर कंठमाला पर लगाते हैं। इसके बालोंको जलाकर क्षतोंपर छिड़कानेसे उनसे रक्त बहना बंद होता है। ऊँटकी नाकका कीड़ा अपस्मारीको सेवन कराते हैं।

ऊँटके बच्चेका मांस—सांद्र आहार प्रदान करता है। यह दीर्घपाकी एवं उष्ण है। (नफ़ीसी)।

आयुर्वेदीय मत—मांस उष्ण लघु, स्वादु और चक्षुष्य है तथा वायु, अर्श, मेद और पित्त एवं कफका नाश करनेवाला है (ध० नि०)। यह शीतल, लघु, त्रिदोषनाशक, बल-पुष्टिप्रद, मधुर, रुचिकारक तथा वीर्यवर्धक है (रा० नि०)। यह कटु, दीपन, वातकफनाशक, कुष्ठनाशक और गुल्म एवं उदररोगनाशक है तथा शोथ, क्रमि और विषनाशक है (भा० प्र०)। यह क्षयहर है (सु० उ० अ० ४१)।

ऊँटनी का दूध रूक्ष, उष्ण, किंचित् नमकीन और लघु होता है तथा वात, कफ, अफारा, क्रमि, सूजन, गुल्म, उदर रोग, विष और बवासीरमें हितकारी है (च० सू० २७ अ०; सु० सू० अ० ४५; वाग्भट सू० २ अ०)।

रक्तगुल्ममें ऊँटनीके दूधके साथ कांकायन वटी देनी चाहिए। शोथ, आनाह (कब्ज), तृषा और मूर्च्छा-रोगमें ऊँटनीका दूध देना चाहिये। (च० चि० अ० १३)। सोंठ, कालीमिर्च और पीपलके साथ महीनेभर (प्रति दिन ऊँटनीका दूध पीनेसे जलोदर अच्छा होता है। (च० चि० अ० १४)।

ऊँटनीका दही विपाकमें कटु, भारी, विरेचक तथा वात, अर्श कुष्ठ, क्रमि और उदर इनका नाश करता है। (सु० सू० अ० ४५)।

ऊँटनीका घी विपाकमें कटु, शोथ, क्रमि और विषनाशक, अग्निदीपन, कफ और वातहर तथा कुष्ठ, गुल्म और उदरका नाशक होता है। (सु० सू० अ० ४५)।

ऊँटका मूत्र–कुछ तिक्त तथा श्वास, कास, शोथ, कुष्ठ, उन्माद, वातरोग और क्रमिका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४५)। सफेद आककी जड़ या पागल कुत्तेकी हड्डी ऊँटकी वसाके साथ लगानेसे मस्से झड़ जाते हैं (च० चि० अ० १४)। ऊँटकी हड्डीकी भस्म हस्तिमेहमें हितकारी है। (सु० चि० अ० ११)। ऊँटकी हड्डीका चूर्ण यवक्षारसे भावितकर, पीस, गोली बना पानीमें घिसकर लगानेसे साध्य फूली (शुक्र) कट जाती है (भै० र०)।

नव्यमत—ऊँटनीका दूध शोथ, श्वास, साधारण कण्ठमाला, कैंसर, अर्श, अन्त्रकृमि, तथा त्वग्रोगमें हितकर है (नादकर्णी)। ऊँटका मूत्र उत्तेजक, पित्तवर्धक, हृदयोत्तेजक और शोथरोगमें हितकर है (इं० ड्र० इं० पृ० ५४५)।

ऊदबिलाव

पृष्ठवंशी : स्तनिनवर्ग, : जरायुधारी स्तनिन उपवर्ग : क्रव्यभुजगण

फैमिली : मुस्टेलिडी (Family : Mustelidae)

नाम—(हिं०) उ(ऊ)दबिलाव, ओद; (अ०) कुज़ाअ, कुंदुस (ज), क़ल्बमाई; (फा०) सगे आबी; (सं०) उद्र, उद्विडाल; (म०) जलमाञ्जार; (ते०) नीरुकुक; (कना०) नीरनाई; (ले०) लुट्रा लुट्रिओला *(Lutra lutreela* Shaw*)*; (अं०) ओट्टर (Otter)।

वर्णन—नेवलेके आकारका, पर उससे बड़ा एक जंतु जो जल और स्थल दोनोंमें रहता है। यह प्रायः नदीके किनारोंपर पाया जाता है और मछलियाँ पकड़-पकड़कर खाता है। इसके कान छोटे, पंजे जालीदार, नाखून टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती हैं। रंग इसका भूरा होता है। लोग इसे मछली पकड़वानेके लिए पालते हैं। भारतवर्षमें तीन-चार प्रकारका ऊदबिलाव मिलता है। परन्तु उन सबमें ऊद प्रायः अधिक देख पड़ता है। यूरोपमें लुट्रा वुल्गारिस *(Lutra vulgaris)* जातीय ऊदबिलाव होता है। किन्तु अमेरिकाका ऊदबिलाव उपर्युक्त सभीसे वृहत् और देखनेमें अधिकांशमें बीवर (जुंदबेदस्तर) की तरह होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस उग्र ओर मछलीकी तरह सुस्वाहु होता है। इसका नमक लगाया हुआ मांस सेवन करना जानु और कटिके लिए गुणकारी है। वृद्ध, शीत प्रकृतिवालों, वातग्रस्त और गठियाके रोगीको इसका मांस सेवन करना और इसका खाल पहिनना लाभकारी है। इसकी खाल शरीर पर धारण करनेसे बहुत गरमी पैदा होती है। इसकी खालका टुकड़ा पैरके नीचे रखने या खालका मोजा पहिननेसे वातरक्तमें विशेष प्रभाव होता है। इसकी जोभ पागल कुत्तेके काटे हुए स्थानपर बांधनेसे विषको चूस लेती है। इसकी जीभ जलाकर क्षतोंपर छिड़कनेसे लाभ होता है। इसे लेपोंमें मिलाकर प्रयोजित करने से व्रणका पूरण शीघ्र होता है। इसके सूत्रमें मिट्टी सानकर चौथियाके रोगीके गले में बांधनेसे दौरा बंद होता है। इसकी हड्डीकी धूनीसे आधाशीशी दूर होता है। इसका पित्ता घातक विष होनेसे अभक्ष्य है। इसे आँखमें लगानेसे जाला और फूली कट जाती है। इसका फेफड़ा वातरक्तमें लाभकारी है। इसका भेजा जलाकर या यूँही नेत्रमें सुरमेंकी भाँति लगानेसे धुँध जाता रहता है। दद्रु और व्यंगपर भी इसे लगानेसे लाभ होता है तथा यह मूत्ररोगमें भी लाभकारी है। विरेचनीय होनेसे यह जलोदर में गुणकारी है। वैद्यकमें भी इसके उक्त गुण लिखे हैं। इसकी चरबीकी मालिशसे पुराना गठिया नष्ट होता है। अहितकर—अभिष्यंद रोगमें। निवारण—काला सुरमा।

ऊन

फैमिली : बोविडी (Family : Bovidae)

नाम—(हिं०) ऊन; (अ०) सूफ़; (फा०) पशम; (सं०) ऊर्ण; (ले०) लेनी (Lanae); (अं०) वूल (Wool)।

वर्णन—भेड़, बकरी आदिका रोआँ (या) भेड़के ऊपरका बाल होता है, जिससे कम्बल और पहननेके गरम कपड़े बनते हैं। भारतवर्षमें उत्तराखण्ड या हिमालयके तटस्थ देशोंकी भेड़ोंका ऊन (Sheep's wool) अच्छा होता है। कश्मीर और तिब्बत इसके लिये प्रसिद्ध हैं। पंजाब, हजारा और अफगानिस्तानकी कोच वा ऊरल नामकी भेड़का भी ऊन अच्छा होता है। गढ़वाल, नैनीताल, पटना, कोयंबटूर और मैसूर आदिकी भेड़ोंसे भी बढ़िया ऊन

निकलता है। ऊन और बालमें भेद यह है कि ऊनके तागे बहुत बारीक होते हैं। इसके कई भेद हैं। उनमें एक भेदके तार लंबे होते हैं, दूसरे भेदके तार बहुत छोटे होते हैं। इनके अतिरिक्त एक बीचका भेद भी है। ऐसे ही बारीकी, मोटाई और मुलायमियतके विचारसे भी इनके अनेक भेद होते हैं। स्पेन देशमें एक जाति भेड़की है, जिनको 'मेरीनो' कहते हैं। इनका ऊन ऐसा बारीक और मुलायम होता है कि उनसे बुनी हुई बानात रेशम की सी चटक रखती है और बहुत मुलायम होती है। काश्मीर, तिब्बत और नेपाल आदि देशोंमें एक प्रकारकी बकरी होती है जिसके रोएँके नीचेकी तहमें पशम वा पशमीना होता है। इसीको काश्मीरमें 'असली तूस' कहते हैं, जो दुशाले आदिमें दिया जाता है। ऊन लाल, काला और सफेद होता है।

उपयुक्त अंश—ऊन, ऊनके बने वस्त्र और ऊनकी चर्बी (यह ब्रिटिश फॉर्माकोपिआमें संमत है)।

ऊनकी चर्बी—(अ०) शहमुस्सूफ़; (फा०) पिमः, पशम; (सं०) ऊर्णवसा; (ले०) एडेप्स लेनी (*Adeps lanae*); (अं०) वूल फैट (Wool fat)। वर्णन—यह अर्धस्वच्छ, सूक्ष्म पीतवर्णकी एक लेसदार वस्तु होती, जिसमेंसे भेड़के पशुकी अत्यंत हलकी गंध आती है। यह १०४° से ११२° अंश फारनहाइटके उत्तापपर पिघल जाती है। जलानेसे इसकी लौ बहुत धुएँदार होती है। इसमें ७०% कोलेस्टेरिन (Cholesterin) पाई जाती है। इसकी प्रतिक्रिया किंचित् खट्टी होती है। कोलेस्टेरीनके अतिरिक्त इसमें लेनोलीन, पामिटिक, स्टियरिक, ऑलीइक और वैलेरियानिक एसिड्स तथा राख पाई जाती है। विलेयता—क्लोरोफॉर्म और ईथरमें तो यह सुविलेय होती है। किन्तु सुरासार (९०%) में किंचित् न्यून विलीन और जलमें सर्वथा अविलेय होती है। इसके यह दो भेद होते हैं—(१) पशमकी पानीवाली चर्बी (Hydrorus Wool fat—Lanolin); और (२) भेड़की ऊनकी शोधितजलरहित चर्बी (Anhydrous Wool fat—Cholesterin)। इसके यह उभय भेद ब्रिटिश फार्माकोपियामें सम्मत हैं।

प्रकृति—ऊन सफेद, लाल और काले होते हैं। कालेमें लालसे अधिक उष्णता है, और लाल सफेदसे अधिक उष्ण है। ऊन साधारणतया दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है। उत्तम वह है जो कोमल और शुद्ध हो। गीलानी के अनुसार पहिननेके लिए परमोत्कृष्ट भेड़का वह ऊन है जो उसकी खालसे मिला हुआ हो। यह कोमल होता है। इसको 'मर अज़ी' कहते हैं। इसमें भी वह श्रेष्ठ है जो गर्दन, जाँघ और पुट्ठों पर से लिया गया हो। जाँघका ऊन परमोत्कृष्ट होता है। इसमें रूक्षता कम और गर्मी अधिक होती तथा समप्रकृतिके समीपतर होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इब्नरकिअ ने लिखा है कि अन्य प्रकारके ऊनोंसे खास इस ऊनका कपड़ा अच्छा होता है। उनकी अपेक्षया इसकी उष्णताभी अधिक होती है। इसका कपड़ा प्रत्येक प्रकृतिके अनुकूल है। वृक्कको गरम रखता है; कटिको शक्ति देता है, वाजीकरण करता और शीत प्रकृतिवालोंको स्थूल करता हैं। जलानेके उपरांत ऊनका उष्ण वीर्य कुछ-कुछ लताफत के साथ हो जाता है। अतएव घावों पर लगानेसे उनके ढीले मांसको पिघला देता है और खुश्की पैदा करनेवाले प्रलेपोंमें समाविष्ट होता है। मलसे भरे हुए ऊनको उस अवयवमें भर देवें तो विदीर्ण हो जाय। एक रात-दिन रखकर बदल देवें, शीघ्र लाभ होगा। चोट लगे हुए था उखड़े हुए अंगपर लगानेसे लाभ होता है। इसको जला और धोकर नेत्रकी औषधियोंमें डालते हैं। लाल ऊन पित्ती उछलनेके लिये उत्तम है। गुलरोगनके साथ सूजन उतारता है और पागल कुत्तेके काटे हुए के लिए रामवाणका काम करता है। ऊनी कपड़ेसे देहमें उष्णता एवं रूक्षता उत्पन्न हो जातो है और खाल कठोर हो जाती है। खुजलीभी चलने लगती है। ढीले अंग कड़े हो जाते हैं। ऊँटकी ऊनके कपड़ेमें गर्मी और रूक्षता अधिक है। इकलीलुल्मलिक (नाखूना) और मक्खन ऊनमें लगाकर योनिमें धारण करनेसे रजःप्रवर्तन होता और बच्चा निकल जाता है। नौ महीने और साल भरके बच्चेका ऊन बहुत गरम है और पहिनने के लिये परमोत्तम है। पीठ और गुर्दे (मूत्रपिंडके) लिये बहुत उपयीगी है। इससे शरीरका वर्ण अरुण हो जाता है तथा कांति आ जाती है। इसका पोस्तीन (खाल) भी उक्त गुणोंसे युक्त होता है। यह वाजीकरण होता कथा वृक्क, वस्ति और नितंबको लाभ होता है। युवा पशुका बायान

हुआ पोस्तीन समताके साथ गरम होता है तथा देहके अनुकूल है। वृद्ध पशुके पोस्तीन में बहुत कम गरमी होती है। ऊनका फर्श वातरक्त में लाभकारी है। ऊनके कपड़ेसे शरीरमें जूँ नहीं पड़ती।

अहितकर—जिनकी प्रकृति गरम हो उनके तथा गर्मीकी ऋतुमें भी उपयुक्त या अनुकूल नहीं है। **निवारण**—उचित यह है कि इसके नीचे रूई या अतसीका कपड़ा रखें।

उनकी चर्बी—

नव्यमत—इसे त्वचापर मर्दन करनेसे साधारण चरबीकी अपेक्षा अतिशीघ्र अभिशोषित हो जाती है। अतएव त्वचा द्वारा अभिशोषित होकर अपना प्रभाव करसकनेवाली औषधियाँ इस चरबीमें मिलाकर प्रयोजित की जाती हैं। अतएव कतिपय मलहरोंके बनानेमें इस चरबीका उपयोग करते हैं। यह सड़ती-गलती नहीं और अपने बजनसे आधा भाग पानीसोख लेती है। जब इसके साथ इसकी तौलका आधा भाग (या समान भाग) सॉफ्ट पैराफीन मिला दें तब यह मलहरोंमें प्रयोजित करने के लिए उत्तम हो जाती है। यह मृदुताकारक है और मुखक्षोभ, नासिका और गुदाप्रभृतिमें लगाने के लिए तथा जले हुए स्थान (Burns & Scalds) पर लगाने के लिए उत्तम है।

ओझडी

नाम—(हिं०) ओझडी (री), ओझ (र), पचौनी; (अ०) क(कि)र्श, क़िब्बत्; (फा०) शकंबः, हजारखाना; (सं०) उदर।

वर्णन—ओझरी पेटके भीतरकी उस थैलीको कहते हैं जिसमें खाये हुए पदार्थ भरे रहते हैं। पागुर (जुगाली) करनेवाले जानवरोंमें यह आमाशयका स्थानापन्न है। पक्षियोंमें इस अवयवको पोटा (हौसलः–अ०) कहते हैं। सारांश यह कि जिस प्रकार मनुष्योंमें आमाशय है, उसीप्रकार पशुओंमें किर्श (अझडी) और पक्षियोंमें हौसल (पोटा) होता है। हकीमोंकी परिभाषामें केवल ओझडी कहनेसे बकरी और भेड़की ओझडी अभिप्रेत होती है। औषधके लिए जवान भेड़ या बकरीकी ओझडी उत्तम होती।

प्रकृति—गरम एवं तर। गिलानी इसे सर्द एवं रूक्ष बतलाते हैं। यह जितनी अधिक चिकनी होती है, उतनी ही गरमीकी ओर मायल होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांसकी अपेक्षया इससे रुधिर कम बनता है, और जो रुधिर बनता भी है वह उत्तम नहीं होता। इससे (कैमूस–Chyme) खराब बनता है। फुप्फुसके मांससे इसमें पोषणांश अधिक है। इसके खाने से कफ बहुत पैदा होता है। यह दीर्घपाकी है। इससे सान्द्र दोष (खिल्त) बनता है तथा यह मूर्खता, मृगी, सन्यास (सक्ता) और धुंध उत्पन्न करती है। इससे दृष्टि निर्बल हो जाती है। इसको खूब गलाकर पकाने चौर गरम मसाला एवं सिरकाके साथ खानेसे इसके दोषोंका निवारण होता है। गीलानी के अनुसार जो वस्तु इसको शीघ्र पचाती एवं सूक्ष्म बना देती है, वह पुराना सिरका, सुदाब और करफ्स है। अस्तु उसमें इन्हें डालकर पकाना चाहिए। जलवत् पतलेरक्तकी उत्पत्ति चाहनेवाले को तथा जिसे भोजनोपरांत धूम्रोद्गार आता हो उसे भी ओझडी खानी चाहिए। ओझड़ी पेटमें अधिक ठहरती है। अतएव इसे सेवन करनेवाले को जुवारिशात प्रयोगमें लाते रहना चाहिए।

कछुआ

सरीसृपवर्ग (Class : Reptilia) : **परिवर्मीगण** (Order : Chelonia)

नाम—(हिं०) कछुआ; (अ०) सुलहफ़ात; (फा०) संगेपुश्त; (सं०) कच्छप, कूर्म; (बं०) काछिम; (म०) कांसव; (गु०) काचबो; (लै०) किलोनिया (Chelonia); (अं०) टर्टल् (Turtle), टारटाइज (Tortoise)।

वक्तव्य—इनमें 'किलोनिया' और 'टर्टल' समुद्र कच्छप तथा टॉर्टाइज स्थल कच्छपके नाम हैं। वर्णन—एक प्रसिद्ध जल-स्थल(उभय)चर (Amphibia) प्राणी जिसकी पीठपर ढालकी तरहकी बड़ी कड़ी खोपड़ी होती है। इस खोपडी (कवच) के नीचे वह अपना सिर और हाथ-पैर सिकोड़ लेता है। इसकी गर्दन लंबी और दुम बहुत छोटी हीती है।

उपयुक्त अंग—मांस, रक्त, पित्त, कच्छपपृष्ठ[1] वा अस्थि (कचकड़ा—(अ०) ज़ब्ल) तथा इसकी भस्म, तेल वा चर्बी, और अंडा।

रासायनिक संगठन—कच्छपपृष्ठ अस्थि जैसा कठोर होता है; किंतु इसकी रचना बिलकुल अस्थि जैसी नहीं होती, अपितु बहुत कुछ मृगशृंगकी रचनाके अनुरूप होती है। उसमें भी मुख्य घटक कैल्सियम फॉस्फेट का होता है। यही कारण है कि कच्छपपृष्ठभस्म और शृंग भस्म दोनोंके गुण समान हैं। अतएव इन दोनोंका एक दूसरेके प्रतिनिधि रूपमें भी प्रयोग किया जा सकता है।

कल्प तथा योग—

वक्तव्य—कछुएकी पीठ बड़ा कठोर होनेसे सरलतया चूर्ण नहीं हो सकती। इसको पत्थरके चकलेपर जल या अर्क गुलाबमें चंदनकी भाँति घिस-सुखाकर चूर्ण किया जाता है या भस्म बनाई जाती है।

प्रकृति—दरियाई तथा नहरी दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं पहलेमें तर तथा जंगली उष्ण एवं रूक्ष हैं। अंडा भी उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कछुएका मांस कामोद्दीपक है और कटिको शक्ति प्रदान करता है। वायुको अनुलोभ करने तथा आर्तवशोणित बंद करनेके लिए इसके मांसका कबाब सेवन कराते हैं। इसके मांसके लेपसे सूजन उतर जाती है। आक्षेप और अपस्माररोगमें जंगली कछुएका रक्त पिलानेसे उपकार होता है। एक तोला इसका रक्त प्रति दिन खीरा-ककड़ीके बीजके शीराके साथ सेवन करनेसे उरःक्षत एवं यक्ष्मामें उपकार होता है। जौके आटे और शहदमें मिलाकर कालीमिर्चके बराबर गोलियाँ बनाकर एक-एक गोली प्रातःसायंकाल नीहार मुँह खिलानेसे मृगीरोगमें अपूर्व लाभ होता है। आमवात और वातरक्तजनित वेदनामें इसके बराबर लेप करनेसे लाभ होता है। इसके पित्तेको सुखाकर मधुके साथ आँखमें लगानेसे मोतियाबिंद और जाला नष्ट होता है। कंठरोहिणी, अपतन्त्रक और दुष्टव्रणोंमें इसके पित्तेका लेप गुणकारी है। मृगीके रोगीकी नाकपर इसका मलना लाभकारी है। हरीरेमें कालीमिर्चके बराबर कछुएका अंडा मिलाकर खिलानेसे बच्चोंकी पुरानी खाँसी जाती रहती है। इसमें दसवाँ भाग सौंफका चूर्ण मिलाकर वृषण शोथपर लेप करनेसे लाभ होता है। कछुएके अंडेकी जर्दीका पापड़ बनाकर खिलानेसे बालशोष आराम होता है। कछुएके एक अंडेकी जर्दी, ब्रांडी बीस बूँद डेढ़ तोले गोदुग्ध और मात्रानुसार मिश्री मिलाकर सेवन करानेसे भी उक्त लाभ होता है। इसकी चर्बी[2] आक्षेप और धनुष्टंकारके लिए गुणकारी है।

कच्छपपृष्ठ—लेखन और संग्राही है। इसका बुरादा सेवन करनेसे अर्शाङ्कुर नष्ट होते हैं। सूजन, कर्कटार्बुद (सरतान) और अर्शमें इसका लेप गुणकारी है। तीन दिन तक निरंतर इसकी धूनीदेनेसे बवासीरके मस्से

---

[1] आयुर्वेदीय रसग्रन्थोंमें तो नहीं, परन्तु यूनानी के आधुनिक रस एवं चिकित्साग्रंथोंमें अवश्य इसके उपयोग आदिका विवरण पाया जाता है।

[2] नादकर्णीके मतसे कंठमाला, फक्क (Rickets), पांडु और फुप्फुसविकारमें इसका विशेष उपयोग होता है। इससे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है जो पांडुपीत द्रव होता है। इससे मछलीकी तरह गंध आती है और इसका स्वाद अप्रिय होता है। औषधमें रसायन, पोषणकर्ता और स्निग्धकर्मके लिए इसका व्यवहार किया जाता है। मात्रा—१-२ ड्राम।

बिलकुल गिर पड़ते हैं। इसकी हड्डीकी राख काँच निकलने (गुदभ्रंश)में गुणकारी है। फुफ्फुसप्रणालीगत क्षत और चातुर्थक ज्वरमें इसे मधुके साथ चाटनेसे उपकार होता है। इसे जलाकर अंडेकी सफेदीके साथ लगानेसे गर्भाशयगत विशरणके लिए उपकारी है। यह गर्भपातकारी और बन्ध्यत्वदोषनिवारक है। कछुएकी पीठको पीसकर इसकी वर्तिका (पिचुवर्ति) योनिमें धारण करनेसे पुराना-से-पुराना एवं हठीला योनिस्राव एवं योनिक्षत आराम होता है। घावपर प्रथम तेल लगाकर उसे चिकनाकर देवें। पुनः कछुएकी जलाई हुई हड्डीको पीसकर उसपर छिड़कें। तीन दिनमें आराम हो जायगा। कर्कटार्बुद (सरतान) पर छिड़कने से भी उपकार होता है। अस्थिको तेलमें जलाकर और उसमें पीसकर पीठ और हाथ-पैरके दादपर लगायें तो कई दिन पीला पानी निकलकर उसकी जड़ जाती रहती है। हड्डीकी कंघी जूँ एवं रौक्ष्यहारी है। इसकी पीठको जलाकर बनाई हुई मसी अथवा भस्म विशेषकर उरःक्षतरोगमें गुणकारी मानी जाती हैं। इसके उपयोगसे भूख बढ़ जाती है। खाँसी और कफमें कमी आ जाती है और विरेक बन्द हो जाते हैं। कछुएकी कठोर पीठके खालरहित भागको पत्थरपर पानी डालकर घिसते हैं। जिस व्यक्तिको मन्थरज्वर (मोतीझाला) अपनी अवधि से अधिक समय तक बना रहता है, उसे दोनों समय शहद मिलाकर चटानेसे उपकार होता है। मन्थरज्वरके पश्चात् जब बालकोंको शोषरोग हो जाता है, उस समय भी इसको मुनक्काके साथ गोली बनाकर देनेसे लाभ होता है। मात्रा—१२५ मि०ग्रा० से २५० मि०ग्राम (१ रत्ती से २ रत्ती) तक। (श्रीस्वामी हरिशरणानंदजी)। इसमें सुधा (चूने)का अंश अधिक होता है। अतएव जिन रोगोंमें सुधांशकी कमी हुई हो उन रोगोंमें तथा बालशोष (बालकोंका सूखा रोग), खाँसी, श्वास, रक्तकास, रक्तष्ठीवन एवं उरःक्षत, राजयक्ष्मा और मन्थर ज्वरमें कच्छप पृष्ठकीभस्म सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है। अहितकर—मांसभक्षण हानिकर है। निवारण–मधु। मात्रा–जलाया हुआ ३·५ ग्राम (३१/२ माशा)। अंडा ४ जौ भर। रक्त तीन रत्ती पौन जौ भर। पीठकी भस्म २५० मि०ग्रा० से १ ग्राम (२ रत्ती से ८ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—कछुआ (मांस) मधुर, स्वादु, स्निग्ध, रूक्ष, शीतवीर्य, वल्य, वृष्य, बृंहण, पुंस्त्वकारक (नपुंसकतानाशक), वर्ण्य, नेत्रके लिए हितकारी, मेधाकारक, स्मृतिवर्धक, वातकफजनक, विष्ठाकारक एवं पथ्य हैं; तथा वात, शोथ और वातपित्त को नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५; कै० नि०; रा० नि०; भा० प्र०)। इसका चर्म पित्तनाशक, पाद कफनाशक और अण्डा स्वादु एवं वाजीकर हैं (रा० नि०)।

वक्तव्य—भगवान् मनुके मतसे कछुए की गणना भक्ष्य पंचनखीमें होता है। बृहत्संहितामें वराहमिहिरने कछुएकी जातियोंके लक्षण अच्छी तरह लिखे हैं।

नव्य मत—कछुएकी चर्बी कण्ठमाला, अस्थिवक्रता, पांडु और फुफ्फुसविकारोंमें प्रयुक्त होती है। (इं० ड्र० इं० पृ० ५४६)। कछुएसे एक प्रकार का तेल प्राप्त होता है, जिससे मछली की गंध आती है। यह रसायन, पुष्टिकर और स्निग्ध रूपसे व्यवहारमें आता है। मात्रा–४ मि०लि० से ८ मि०लि० (१ से २ ड्राम) तक। यक्ष्मोपचारार्थ डा० फ्रेंडमैन्स वैक्सिन आर्थात् कच्छपीय वैक्सिन (Vaccine of tortoise) के गुणों की परीक्षाके लिए जर्मनी द्वारा नियोजित आयोगका प्रतिवेदन इस प्रकार हैं—"यक्ष्मप्रतिषेधनीय संघर्षमें यह वैक्सिन मूल्यवान् है जैसे कि इसके १ या २ इंजेक्शनसे ही आश्चर्यजनक फल देखनेमें आया। यह वैक्सिन कच्छपके यक्ष्मकीटके शुद्ध कल्चरसे प्रस्तुत होता है। (इं० मे० मे०)।

कठफोरा (ड़ा)

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षीवर्ग** (Class : Aves) **कोरेसिईफार्मीज-गण** (Order : Coraciiformes)
फैमिली : पिसिडी (Family : Picidae)

नाम—(हिं०) कठफोरा(-ड़ा), -ड़(र)वा, पेड़खुद्दा, खुटकबढैया; (अ०) सोदानी; (फा०) दारकोब, दारबर, सारज; (बं०) काठ्ठोकरा; (सं०) दार्वाघाट; कुठाकु; शतपत्र; (ले०) ब्रेकिप्टेर्नुस बेंगालेन्सिस (*Brachipternus bengalensis*); (अं०) वुड-पेकर (Wood-pecker)।

वर्णन—खाकी रंगकी एक चिड़िया जो अपनी चोंचसे पेड़ोंकी छालको छेदती रहती है और छालके नीचे रहनेवाले कीड़ोंको खाती हैं। कठफोड़वा सैकड़ों प्रकारका होता है। इनमें हरे रंगका उत्तम होता है। कुछ स्थानोंको छोड़कर यह पृथ्वी-मंडलके प्रायः सभी स्थानोंमें पाया जाता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क। इसमें गर्मीकी उग्रता बहुत है। इसलाम धर्ममें इसका मांस भक्ष्य (हलाल) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस दूषित होनेसे इसका सेवन उचित नहीं, विशेषकर दुबले मनुष्यको इसका सेवन कथमपि न करना चाहिए। इसके सेवनसे कामाग्नि उद्दीप्त होती है। इससे मस्तिष्कको हानि पहुँचती है। सर्द रोगोंमें इसका सेवन गुणकारक है। इसका शोरबा कोष्ठमृदुकर है (ख० अ०; म० इ०)।

आयुर्वेदीय मत—मांस शीतल, लघुपाकी, अग्निदीपक, हृद्य, शुक्रजनक और वायुनाशक है।

कनखजूरा

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **मिरियापोडा-वर्ग** (Class : Myriapoda) : **किलोपोडा-गण** (Order : Chilopoda)

नाम—(हिं०) गोजर, (कन–) क (ख)न खजूरा; (बं०) काणबिच्छा; (अ०) अरबअ (प्राचीन), अबुसबअ (नवीन); (फा०) हजारपाव; (सं०) शतपाद(त्), शतपादिका, शतपदी, कर्णजलौ(लू)का; (ले०) स्कोलोपेन्ड्रा मोर्सिटान्स (*Scolopendra morsitans*); (अं०) सेन्टिपीड (Centipede)।

वर्णन—लगभग एक बित्ता लम्बा एक विषैला कीड़ा जिसके बहुतसे पैरहोते हैं। इसलिये इसे फारसीमें हजारपा (हजारों पैरवाला) और संस्कृतमें शतपदी (सैकड़ों पैरवाला) और प्रायः छः खंड़ोंमें विभक्त कहते हैं। पैरोंमें कोई छोटा और कोई बड़ा होता हैं। इसका शरीर गाँठदार और पीठपर बहुतसे गंडे पड़े होते हैं। यह लाल, काला आदि कई रंगोंका होता है। लाल मुँहवाले बड़े और विषैले होते हैं। पूँछ पतली और छोटी होती है। इसके जीभ होती है। कनखजूरा काटता और शरीरमें पैर गड़ाकर चिपटभी जाता है तथा बड़ी कठिनाईसे छूटता है। सुश्रुतके मतसे रंग भेदसे कनखजूरा आठ प्रकारका होता हैं। खजाईनुलअदवियामें भौम और सामुद्र भेदसे इसे दो प्रकारका लिखा है। कनखजूरा अभक्ष्य है।

प्रकृति—(तीसरे दर्जेमें) गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह अतितीव्र एवं घातक बिष है। कतिपय हकीमोंका यह कथन है कि नादेय कनखजूरेको जैतूनके तेलमें पकाकर मलनेसे बाल उड़ जाते हैं, किंतु इसके उपयोगसे उस स्थानपर खाज उत्पन्न हो जाती है। कनखजूरेको जलाकर बनाई हुई राख अपस्मारीकी नाकमें फूंकनेसे उसके मस्तिष्कसे दो कीड़े निकलकर रोगी अच्छा हो जाता है। पुराने ढाकके पेड़में रहनेके कारण रक्त वर्णके कनखजूरेको जीतेजी पकड़कर तमाखूकी हरी पत्तीमें सुखा लिया जाय और उसे खूब महीन पीसकर एक चावलकी मात्रामें इसका नस्य दिया जाय तो कैसाही दुःसाध्य मृगी रोग हो उसका भी इसके एक सप्ताहके उपयोगसे नाश होता है।

विषलक्षण[1] एवं चिकित्सा—इसके पैरोंमें विष होता है। यह जहाँ काटता है वहाँ किसी कदर जलन एवं सूजन होने लगती है। इसके पश्चात् वह शांत हो जाता है। इस जातिके अत्यंत विषधर जन्तुओंके काटनेसे तीव्र बेदना होती है; साँस कठिनाईसे ली जाती है; हृदयमें भय उत्पन्न हो जाता है और मधुर पदार्थोंके खानेको

---

[1] विषलक्षण—सुश्रुतके अनुसार इसके काटने या शरीरमें चिपट जानेसे सूजन, वेदना और हृदयमें दाह होता है। सफेद तथा अग्निवर्णके कनखजूरेके काटनेसे दाह, मूर्छा और बहुतसी सफेद फुंसियोंकी उत्पत्तिके लक्षण होते हैं। (सु० कल्प० ८ अ०)।

जी चाहता है। इसका प्रतिविष वही कनखजूरा है, जिसने काटा है। विधि यह है कि जिस जगह उसने काटा हो, उस जगह उसे कुचलकर बाँध देवें अथवा निम्न प्रयोग काममें लेवें—जरावंद तवील, पखानभेद, करीलकी जड़की छाल और मटरका आटा प्रत्येक समभाग लेकर कूटकर मद्य या मधुवारि (माउल् अस्ल) के साथ खिलावें। 'तिर्याक् अरबआ' और 'दवाउल् मिस्क' भी कल्याणकारक हैं, अथवा नमक और सिरकेका लेप या गरम तेलकी मालिश करें।

यदि कनखजूरा पानीमें गिरकर मर जाय तो उस पानीको काममें नहीं लेवें, क्योंकि उससे खाज, सूजन एवं जलन होती है। इसका उपचार भी उक्त पदार्थका मलना है। यदि तेल गरम करके कनखजूरेके ऊपर डालें तो वह मर जाय और उसके प्रत्येक गण्ड सन्धिस्थानसे पृथक् हो जाँय। अहितकर—खाज, दाह एवं सूजन आदि उत्पन्न करता एवं घातक विष है। निवारण—तेल और सिरका।

आयुर्वेदीय मत—इसके काटने या शरीरमें चिपट जानेसे सूजन, वेदना और हृदयमें दाह होता है। सफेद एवं अग्निवर्णके कनखजूरेके काटनेमें दाह, मूर्च्छा और बहुतसी सफेद फूंसियोंकी उत्पत्तिके लक्षण होते हैं। (सु० कल्प० अ० ८)।

कनसलाई

नाम—(हिं०) कनस(श)लाई; (अ०) हिर्रीश; (फा०) गोशखज़;

वर्णन—कनखजूरेकी तरहका और उसी जातिका एक छोटा कीड़ा। यह कनखजूरेसे पतला होता है। इसके भी बहुतसे पाँव होते हैं। किन्तु इसकी आकृति वैसी भद्दी नहीं होती और यह लाल रंगका होता है। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि यह कानमें घुस जाता है। मादनुश्शिफाके अनुसार कनसलाई आठ प्रकारकी होती है। इनमेंसे दो प्रकारकी कनसलाईके विषकी कोई दवा नहीं है। इसके काटनेसे मूर्च्छा आजाती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कनसलाई या कनखजूरेको पकड़कर सुखा लेवें और एक बत्तीमें लपेटकर तिल-तैलमें उसका काजल पार लेवें (म० मु०)। यह काजल पलक उखड़नेके रोगको अतीव गुणकारी है। यदि कनसलाई कानमें घुस जाय तो तेल गरम करके कानमें डालें या सिरका और नमक डालें। जब वह मर जाय तब उसे मोचनेसे उठा लेवें।

कबूतर

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **कोलम्बीफार्मीजगण** (Order : Columbiformes)
फैमिली : कोलम्बिडी (Family : Columbidae)

नाम—(हिं०) कबूतर, परेवा; (अ०) हमाम, सल्सलः; (फा०) कालूज; (सं०) कपोत, पारावत; (बं०) पायरा; (म०) परेवा; (गु०) पारेवा, कबूतर; (ले०) कोलुम्बा डोमेस्टिका (*Columba domestica*—पालतू कबूतर); कोलुम्बा लिविया (*C. livia*—जंगली कबूतर); (अं०) पीजेन (Pigeon)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध सुन्दर पक्षी जो कई रंगोंका होता है। आकार भी कुछ भिन्न-भिन्न होते हैं। पालतू (अहली) और जंगली भेदसे कबूतर दो प्रकारका होता है। जंगलीको अरबीमें 'यमाम' कहते हैं। 'लक्का' कबूतरका वह भेद है जो खूब छाती उठाकर चलता है और जिसकी पूँछ पंखेसी होती है।

कल्प तथा योग—अकसीर संगगुर्दा व मसाना, सफूफ दर्दगुर्दा।

प्रकृति—मलभूतद्रवयुक्त दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें रूक्ष। जंगली कबूतर अधिक उष्ण एवं रूक्ष होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कबूतरका मांस विशेषकर उसके बच्चेका मांस शीघ्रपाकी एवं अत्याहार (कसीरुल्गिजा) है, शुद्ध रक्त उत्पन्न करता और कृश एवं दुर्बल व्यक्तियों तथा नपुंसक वा कामावसादके रोगियोंके लिये बड़ा गुणकारी है। यह शरीरको परिबृंहित एवं पुष्ट करता और वाजीकरण करता है। पक्षवध, अर्दित और श्वास जैसे शीत कफज और वायुके (असबी) रोगोंमें इसका मांस या मांसरस (शूरबा) पुष्कल पिलाया जाता है। यह जलोदर एवं अश्मरीको नष्ट करता है। जंगली कबूतरको कालेनमकके साथ जला (सोख्ता) कर उसकी राख श्वासमें चटाते हैं और उक्त रोगमें इसे असीम गुणकारक बतलाते हैं। अहितकर—अधिक सेवन रक्तदाहजनक और कुष्ठकारक है। निवारण–सिरका, धनिया और कासनी। प्रतिनिधि–तीतरका मांस।

आयुर्वेदीय मत—परेवा (पारावत) का मांस कषाय, विपाकमें मधुर, गुरु, विशद और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६)। घरोंमें रहनेवाले कबूतर (कपोत) रसमें कषाय, मधुर, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य तथा रक्तपित्तनाशक होते हैं। जंगली कबूतर इनकी अपेक्षया लघु, शीतवीर्य, संग्राही (काबिज) तथा अल्पमात्रामें मूत्र उत्पन्न करते हैं। (च० सू० अ० २७/६९-७०)। जिस गर्भवती स्त्रीको रक्तका अतिस्राव होता है, उसको परेवाकी सूखी हुई विष्ठा २५० मि०ग्रा० से ६२५ मि०ग्रा० (२ रत्ती से ५ रत्ती) चावलके धोवनके साथ देनेसे रक्त-स्राव बंद होता है (गदनिग्रह)। रक्तपित्तमें गाँठदार रक्त आनेपर मधुके साथ कबूतरकी बीट चटावें (च०)। घरेलू कबूतर की बीटका चूर्ण चावलके धोवनके साथ पीनेसे गर्भस्रावके बादका रक्त बंद करनेमें अमोघ है। कबूतरकी बीट फोड़ेपर रखनेसे वह फोड़ेको फाड़ देती है। इसी प्रकार गीध और बगुला की बीट भी उक्त कार्य करती है।

कमला

नाम—(हिं०) कमला, झांझा, सूंडी; (अं०) कैटरपिलर (Caterpillar)।

वर्णन—कालेरंगका एक कीड़ा जिसके ऊपर रोएँ होते हैं। इनके मनुष्यशरीरमें लगजानेसे बड़ी खुजली होती है और सूज जाता है। यह बरसातमें पैदा होता और बेरके पेड़पर बहुत होता है। यह उनकीड़ोंमेंसे है, जो बड़ा होनेपर छोटेपन की अपेक्षया घट जाते हैं। अस्तु यह दो-तिहाईके घट जाता है।

प्रकृति—गरम एवं रूक्ष। गुण-कर्म तथा उपयोग—यह विषाक्त जन्तु है। इसके विषका निवारण रेंडीका तेल है। इसके मलने और पिलानेसे कमलाका विष नष्ट होता है।

कराँकुल

पृष्ठवंशी (Vertebrata) **: पक्षिवर्ग** (Class : Aves)
फैमिली : आर्डीइडी (Family : Ardeidae)

नाम—(हिं०) कराँकुल, कूँज, कुरच, टेंक; (अ०) कुर्की; (फा०) कुलंग; (सं०) क्रौञ्च, करा(ला)ङ्कुर; (बं०) कोंच बक; (लें०) आर्डिओला ग्रेइयाई (*Ardeola grayii* Sykes); (अं०) हेरन (Heron) या कर्ल्यु (Curlew)।

वर्णन—बगुलेकी जातिकी पानीके किनारेकी एक बड़ी चिड़िया जिसके झुंड ठंढे पहाड़ी देशोंसे जाड़ेके दिनोंमें आते हैं। यह 'कर्र' शब्द करती हुई पंक्ति बाँधकर आकाशमें उड़ती है। इसका रंग स्याही और कुछ सुर्खी लिये हुए भूरा होता है तथा इसकी गर्दनके नीचेका भाग सफेद होता है। खजाइनुल्अद्विया के लेखकके अनुसार कुंज दो प्रकारका होता है—सफेद और खाकी। इनमें सफेद अल्पप्राप्य है। उत्तम वह है जिसका बाजने आखेट किया हो, क्योंकि श्रम और व्याकुलताके कारण इसका मांस कोमल हो जाता है। गगनभेड़ इससे भिन्न है, (दे० 'गगनभेड़')।

प्रकृति—मांस दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष। इसमें उष्णताकी अपेक्षया रूक्षता बढ़ी हुई होती है। पित्त रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस अवरोधोद्घाटनकर्ता, कामोद्दीपनकर्ता, बल्य, वायुविकार-नाशक एवं शूल(कुलंज)नाशक है। इसका संगदाना मलसंगकारक है। यह सूखा पिसा हुआ चनेके पानीके साथ (वस्ति) वृक्कशूल नाशक है। इसका भेजा नेत्रमें लगानेसे रतौंधी जाती रहती है। भेजे का लेप श्वित्र और कण्डूपर भी लाभकारी है और शिरके बाल सफेद नहीं होने देता। इसका भेजा समभाग सौंफके साथ लगानेसे वहांके बाल पुनः नहीं उगते हैं। चमेलीके तेलमें कुलंगका पित्ता सा उसके सिरका भेजा या पित्ता और भेजा दोनों मिलाकर अथवा इनको पारेके साथ मिलाकर नस्य लेनेसे विस्मृति-रोगका नाश होता है और भूली हुई चीज स्मरण आ जाती है तथा बाल सफेद नहीं होने देता। चमेलीके तेलमें हल किया हुआ इसका पित्ता एक जौ की मात्रामें खानेसे भी विस्मृति रोगमें उपकार होता है और बाल सफेद नहीं होते। इसका पित्त चुकंदर या मर्ज़ञ्जोश (मरुवा) के रसमें मिलाकर तीन दिन तक नास लेनेसे अर्दित (लकवा) रोगका निश्चय ही नाश हो जाता है। किन्तु इसे विपरीत पक्षके नथुनेमें डालना उचित है। इसके उपयोगकालमें अखरोटका तेल पियें और मर्दन करें तथा अंधेरी कोठरीमें बैठें। इसके पित्तेका सुरमा मोतियाविन्द, रतौंधी और नाखूनाको कल्याणकारक है। श्वित्रमें इसका लेप गुणकारक है। सिरका और कांदा (वनपलाण्डु) या कांदाकृत सिरका में इसकी चर्बी मिलाकर पीनेसे प्लीहाकी सूजन उतरती है। इसकी चर्बी कानमें डालनेसे बधिरता जाती रहती है। अहितकर—मांस दीर्घपाकी है और सान्द्र दोष एवं सौदावी रक्त उत्पन्न करता है। निवारण—मांसको पर्युषित (बासी) करके पकाना। सिरका, नमक और गरम मसाले भी इसके निवारक हैं। प्रतिनिधि—किसी-किसी गुणमें जंगली कबूतरका मांस। मतांतर-से सारसभी इसका प्रतिनिधि। मात्रा—मांस आवश्यकतानुसार। भेजा और पित्ता २५० मि०ग्रा० से ३७५ मि०ग्रा० (२-३ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—करांकुलका मांस वृष्य, बल्य, अत्यन्त रुचिकारक, ज्वरमें हितकारक तथा पित्त, वात, शोष, मूर्च्छा, कास, अरोचक और अश्मरीका नाश करने वाला है। (ध० नि०; अत्रि० अ० २१ पद्मबीजे; कै० निघ०; च० द०)।

कस्तूरी

स्तनधारी-वर्ग (Class : Mammalia) **: पागुर या जुगाली करनेवाला-उपवर्ग** (Sub-class : Ruminantia) **: अंगुलेटा-गण** (Order : Ungulata)
फैमिली : सर्विडी (Family : Cervidae)

नाम—(हिं०, सं०, म०, गु०, बं०, कना०, ता०, ते०, मल०) कस्तूरी; (अ०) मिस्क; (फा०, द०) मुश्क; (ले०) मॉस्कस (Moschus); (अं०) मस्क(Musk)।

कस्तूरिया हिरन—(सं०) कस्तूरी मृग; (फा०) आहूए मुश्की (–खुतन); (ले०) मॉस्कस मॉस्किफेरस (*Moschus moschiferous* Linn.); (अं०) मस्क डीयर (Musk deer).

उत्पत्तिस्थान—तिब्बत, नेपाल, भूटान, कश्मीर, आसाम और चीनके अन्दर लुरकुटान तथा बैकालके पार्श्ववर्ती स्थानोंमें कस्तूरी मृग से मृग-नाभि (नाफ़ा) निकालनेकी प्रथा है। इनमें तिब्बतके मृगकी कस्तूरी उत्तम समझी जाती है। इससे हीन वर्ण भूटानकी और उससे हीन कश्मीरकी होती है।

वर्णन—यह एक सुगन्ध द्रव्य है जो एक विशेष जातीय मृग (कस्तूरी मृग) की नाभिसे प्राप्त होता है। मृग-नाभि कस्तूरी मृगकी जननेन्द्रियके ठीक सामने नाभिके पास, उदरदेशके भीतर, एक झिल्लीदार थैली-ग्रंथि (Preputial follicles) से निकलती है, और सुगन्धि केवल नर हिरनमें ही होती हैं। नाभि देशसे प्राप्त होनेसे

ही इसे 'मृगनाभि' वा 'नाफ़ा' कहते हैं। पहले कस्तूरी का रंग किंचित् लाल और कुछ-कुछ काला रहता है। यह जीवित मृगमें बहुत गीला होता है; किन्तु जब मृग मारा जाता है और उसकी नाभि पृथक्कर ली जाती है तब वह घन होने लगता है और क्रमशः धीरे-धीरे काले दानेदार पदार्थके रूपमें परिणत हो जाता है और कस्तूरी कहलाता है। इसका स्वाद तिक्त, सुगन्धमय और गन्ध अत्यन्त तीक्ष्ण और फैलने वाली होती है। सबसे उत्तम कस्तूरीका रंग कत्थई होता है। जिस कस्तूरी का रंग घुले हुए कत्था जैसा निकले, तथा नाफ़ाके भीतर कुछ काले श्याम दाने भी हों और उसकी गन्ध तीव्र हो, खाने पर कटुस्वादी और प्रिय-गंधी हो, वह सर्वोत्तम होती है। तिब्बतकी कस्तूरी प्रायः इसी वर्णकी निकलती है। नैनीताल और अल्मोड़ेकी कस्तूरीका रंग इससे हल्का होता है। इसमें श्यामता अधिक होती है। रामपुर, बिसहर और कुल्लूकी इससे भी अधिक श्याम होती है। कश्मीरकी कस्तूरी तो श्याम ही होती है।

वक्तव्य—यद्यपि कस्तूरी शब्दका प्रयोग प्रायः उन सभी द्रव्योंके लिए होता है जिनमें कस्तूरीके समान सुगंधि होती है, तथापि यह केवल एक विशेष जातिके हिरन (कस्तूरीमृग) की नाभिसे प्राप्त सुगन्ध-द्रव्यके अर्थमें रूढ़ हो गया है और इसका उक्त द्रव्यके अर्थमें मर्यादित प्रयोग होता है। अस्तु, अन्यान्य कस्तूरीगन्धी द्रव्योंके साथ तत्तद्द्रव्यबोधक विशेषणका भी प्रयोग किया जाता है, यथा—जवादि कस्तूरी, लताकस्तूरिका इत्यादि। कस्तूरीकी लेटिन और अंग्रेजी संज्ञायें संस्कृत 'मुष्क' (अंड) से क्रमशः फारसी और अरबी 'मुष्क' तथा 'मिस्क' द्वारा व्युत्पन्न हैं।

(१) कस्तूरी की परीक्षा—(१) असली कस्तूरी छूनेमें नरम और नकली कठोर होती है। (२) एक तागेको हींगके घोलमें डुबोकर तागेको सूईमें डालकर डुबाकर कस्तूरीके नाफ़ाके भीतरसे डालकर निकालें। इसके बाद यदि उसमें हींगकी गंध रह जाय तो कस्तूरी नकली है, ऐसा समझें। (३) मृगनाभि से कस्तूरीका दाना निकालकर जलमें डालें। यदि ये दानेदार बने रहें तो कस्तूरी असली और यदि वे घुल जाय तो नकली समझें। (४) इसके दानोंको कोयलेकी आगपर डालनेसे यदि ये पिघल जाँय और बुलबुला दे दें तो असली, यदि वे तुरन्त कड़े होकर राख हो जाँय तो नकली समझें।

रासायनिक संगठन—इसमें स्वल्प प्रमाणमें एक प्रकारका पिच्छिल, बेरंग, कस्तूरीकी प्रिय गंधयुक्त तेल होता है जिसे कीटोन (Ketone) या मस्कोन (Muskone) कहते हैं।

(२) कल्प तथा योग—दवाउलमिस्क सादा, दवाउलमिस्क बारिद (वा हार्र) सादा, दवाउलमिस्क बारिद (वा हार्र) जवाहरवाली, दवाउलमिस्क मोतदिल सादा, दवाउलमिस्क मोतदिल जवाहरवाली, दवाउलमिस्क मोतदिल जवाहरवाली हार्र व बारिद, माजून मुश्की।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है। गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, आमाशय तथा उत्तमांगोंको बलप्रद, प्रकृति देहाग्निको जागृत करने वाली, बाह्यान्तर्ज्ञानेन्द्रियोंको बलप्रद, दोषतारल्यजनन, अवरोधोद्घाटक, उष्णताजनन, आक्षेपहर और वाजीकर तथा प्रधानतः हृदय और मस्तिष्क बलदायक है।

उपयोग—उपर्युक्त गुणकर्मोंके कारण हृदय और मस्तिष्क दौर्बल्य, दिलकी धड़कन, वातिक उन्माद विशेषतः (मालिन्खोलिया मराक़ी), अपस्मार, अपतंत्रक, हिस्टीरिया, बालापस्मार, सन्यास, बुद्धिकौण्ठ्य (बलादत ज़ेहन), विस्मृति, पक्षवध, अर्दित, स्वाप एवं कम्पवायु और कालीखाँसी आदि श्लैष्मिक, वातिक और आक्षेपयुक्त रोगोंमें कस्तूरीका उपयोग करते हैं। दवाउलमिस्क इसका सुप्रसिद्ध योग है, जो उक्त रोगोंमें उपयोग किया जाता है। वाजीकरण हेतु इसे वाजीकर माजूनोंमें डालते हैं। शक्तिह्रासकी अवस्थामें इसको खिलानेसे पुनः शक्ति लौट आती है। अहितकर–उष्ण प्रकृति वालोंको तथा शिरःशूलजनक है। निवारण–अर्क गुलाब और वंशलोचन। प्रतिनिधि–तेजपत्र, अंबर, जबाद और जुंदबेदस्तर। मात्रा–२५० मि०ग्रा० से ३७५ मि०ग्रा० (२ रत्ती से ३ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—कस्तूरी रसमें तिक्त, कुछ खारी और कटु, उष्णवीर्य, भारी, बल्य, वृष्य तथा कफ, वात, शीत, विष, शोष और दुर्गन्धको दूर करने वाली है। (भा० प्र०)। राजयक्ष्मामें रात्रिस्वेद रोकनेके लिए इसका उपयोग होता है (आ० वि०)।

किर्मिज

कीट-वर्ग (Class : Insecta.) : **मत्कुण-गण** (Order : Hemiptera) :
लाक्षा-कुल (Family : Coccidae.)

नाम—(हिं०) किरमिज, किर्मिज; (अ०) दूदुस्सबागीन, दूदुल् क़िर्मिज़, सिब्ग़ अरमनी, क़फ़्र, अद्दूद तुस्सिब्ग़, क़िर्मिजदानः; (फा०) क़िर्मिज फरंगी, किर्म रंगरेजाँ, कमरंग, किर्मदानः; (सं०) रक्तकृमि; (गु०) किरमिज (जा); (ता०, कना०) किरमजी; (ते०) किरमजु; (ले०) कोक्कुस कैक्टी (*Coccus cacti* Linn.), डैक्टिलोपिउस कोक्कुस (*Dactylopius coccus*); (अं०) कोचिनील (Cochineal)।

वक्तव्य—अरबी संज्ञा 'क़िर्मिज़' फारसी 'किर्म' संज्ञाका अरबी रूपान्तर है, और किर्म संस्कृत 'कृमि'से तथा यूनानी 'वर्मीस' भी संस्कृत कृमिसे ही व्युत्पन्न हैं।

वर्णन—बीरबहूटीके समान लालरंगका एक अंडाकार-चपटा कीड़ा जो रेशम और ऊन आदि रंगनेके काममें आता है। इस प्रकारके मादा सगर्भा कृमियोंको सुखाकर दवाके काममें लेते हैं।

प्राप्ति—मेक्सिको, अमेरिका, राजपुताना, दक्षिण भारत। इसके दो भेद–काला और सफेद होते हैं। इसमें सफेद अधिक उत्तम होता है। इसका रंग भूरापन लिए हुए लाल होता है।

रासायनिक संगठन—कार्मीन नामक रंजक द्रव्य, कार्मीनिक अम्ल १०% आदि इसके संघटक द्रव्य हैं। यह जल एवं सुरासार में विलेय तथा अमोनिया जलमें पूर्ण विलेय होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (मतांतरसे उष्ण एवं रूक्ष)। **गुण-कर्म**–शीतसंग्राही, रक्तस्थापक आक्षेपहर, संधानीय, व्रणरोपण और श्वयथुविलयन।

उपयोग—रक्तस्थापन होनेसे इसे ७ माशे प्रतिदिन सप्ताहपर्यन्त मधुके साथ चाटनेसे आर्तव का रक्त बन्द हो जाता है। इसको पीसकर बुरकनेसे बवासीरके मस्से (अर्शाङ्कुर) सूख जाते हैं। इसे मधु व सिरकामें मिलाकर लेप करनेसे बड़े-बड़े क्षतों का संधान एवं पूरण होता है। अंगग्लानि, सकलांगगत क्षत विशेषतः वातनाड़ीगत क्षतमें इसका सिरके साथ उपयोग लाभकारी होता है। इसके काढ़ेसे धारनेसे जितनी ही कड़ी सूजन हो अवश्य उतर जाती है तथा इससे बाल धोनेसे वे लम्बे एवं सुन्दर होते हैं और उनमें जूओं की उत्पत्ति रुक जाती है। इसे सिरकाके साथ सेवन करनेसे गर्भधारण नहीं होता अर्थात् इसके खा जानेसे स्त्री बन्ध्यत्व को प्राप्त होती है। इसे रेशमके लाल डोरेमें बाँधकर ज्वर रोगीके किसी अंगमें बाँधनेसे ज्वर छूट जाता है (मख्जन, मुहीत)। यह काली खाँसी और वातनाडीशूल आदिमें उपकारक होता है (इं० मे० मे० २ भा० पृ० १५६)।

मात्रा—७ ग्राम या ७ माशा तक। नादकर्णीके मतके ६० मि०ग्रा० से ६२५ मि०ग्रा० ($\frac{१}{२}$ से ५ रत्ती) तक (इं० मे० मे०)।

किलकिला

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves)
फैमिली : ऐल्सोडिनिडी (Family : Alcedinidae)

नाम—(हिं०) किलकिला, मछरंगा; कौडिल्ला, कौड़िया; (अ) ज़म्मुजुल्माऽ (जम्मुज़ = चर्ग़, एक शिकारी पक्षी, माऽ = पानी); (बं०) मच्छरंग; (सं०) दात्यूह, अत्यूह, डाहुक; (अं०) किंग फिशर (King-fisher); (ले०) हॉल्कियोन स्मीइरेंसिस् (*Halcyon smyrensis smyrensis* Linn.)।

किलकिला (White-breasted King-fisher)
कौड़िल्ला (Pied King-fisher)
कौडल्ली (King-fisher)

वक्तव्य--किलकिला शब्द संस्कृत 'कृकल' से व्युत्पन्न है। कहते हैं कि जिस घर परसे मह उड़ता है और बोलता है उसके रहने वालोंमें किलकिल अर्थात् कलह उत्पन्न हो जाता है। इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया है। इसकी बोलीसे किलकिल शब्द निकलता है। मकालात एहसानी में इसे 'कोबिन' लिखा है। परन्तु कोबिनके डैनोंके पर सफेद और सिर तथा पूंछ काली और चोंच लाल होती है। यह हवामें ठहरकर पानीमें गिरती और छोटी मछली पकड़कर खाती है।

वर्णन—एक शिकारी पक्षी जिसकी चोंच लम्बी और काली, पूँछ छोटी तथा पीठके परोंका रंग जंगारवत् होता हैं। पेटका रंग पीलापन लिए जौज़ी, पैर लाल, कोई-कोई चितकबरा सफेद और काला होता है। आवाज तेज होती है। तालाब और झीलों पर हवामें उड़ता है और पानी की ओर टक लगा कर देखा करता है। जब कोई मछली देखता है, सहसा तेजीसे उस पर टूटता है और पानीमें डुब्बी लगाता है और हाथ आ जाने पर उसे खा लेता है। यह मुरदा (शव) पर नहीं बैठता और मछलीके सिवाय अन्य वस्तु नहीं खाता।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस दीर्घपाकी है (मुहीत)। इसके खानेसे पैत्तिक रक्त उत्पन्न होता है। यह शीत जनित रोगोंका प्रतिबंधक है (म० इं०)। निवारण—अफीम (मुहीत)।

किसारी

वर्णन—एक कालाई लिए लाल रंगका कीड़ा जिसके पर बदामी रंगके होते हैं। यह बबूल और बेरके पेड़पर रहता है और उनके पत्ते खाता है। बढ़कर जब आधी उँगलीके बराबर हो जाता है तब कबूतरके अंडेके बराबर घर बनाता है, जो बहुत कड़ा होता है। इसे बंदा या गोशा कहते हैं। प्रायः इसे काटकर बन्दूकपर बाँधते हैं। अन्तमें यह कीड़ा उस घरको फोड़कर उड़ जाता है। लोग उसे फाड़नेसे पूर्व उस घरको लेकर गरम पानीमें डाल देते हैं। फिर चरखेपर कातकर सूत बनाकर कपड़ा बुनते हैं। इस कपड़ेको 'टसर' कहते हैं।

प्रकृति—गरम और रूक्ष। कपड़ा दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उस कीड़ेको बन्दा सहित जलाकर शहदमें मिलाकर चटानेसे बालापस्मार और डब्बा जाता रहता है। कपड़े जलाकर राखको नाकमें फूँकनेसे नकसीर तुरन्त बन्द हो जाती है। वस्त्र धारण करनेसे शरीर कृश और गरम हो जाता है।

कुत्ता

पृष्ठवंशी (Vertebrata) **: स्तनिन-वर्ग** (Class : Mammalia) **: जरायुधारी स्तनिन उपवर्ग :** (Sub-Class : Bulbenia) **: क्रव्य (मांस)भुज-गण** (Order : Carnivora)
फैमिली : कैनिडी (Family : Canidae)

नाम—(हिं०) कुत्ता, कुक्कुर, कूकर; (अ०) कल्ब; (फा०) सग; (बं०) कुकुर; (सं०) कुक्कुर, श्वान, श्व, शुनः, रात्रिजागरः, वांताद (शी); (ले०) कैनिस फेमिलियारिस *Canis familiaris*; (अं०) डॉग (Dog)

वर्णन—भेड़, गीदड़ और लोमड़ी आदिकी जातिका एक हिंसक शिकारी पशु जिसे लोग साधारणतः खेत, घर आदिकी रक्षाके लिए पालते हैं। यह बड़ा परिश्रमी, विवेकशील, साहसी और प्रभु-भक्त होता है। यह

पालतू (अहली), जंगली (बर्री) और जलीय वा नादेय (माई) भेदसे तीन प्रकारका होता है। छोटा, बड़ा, और मध्य आदि भेदसे इसके तीन भेद किये गये हैं।

मादा—(हिं०) कुक(कु)री, कुतिया; (सं०) शुनी, कुक्कुरी; (अ०) कल्बः; (फा०) सगेमादः, बहुव०-(अ०) किलाब, अकाली(लि)ब, अकलब, कलीब; (फा०) सगहा।

प्रकृति—जंगली तीसरे दर्जेमें और पालतू (अहली) दूसरे दर्जेमें रूक्ष और गरम, बीस दिनका बच्चा (पिल्ला) गरम और तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सुगंधित औषधियोंके साथ इसकी यखनीसे उन्माद और मालीखोलियामें बड़ा लाभ होता है। पहली बार ब्याई हुई कुतियाका दुहा हुआ दूध आंखमें डालनेसे फूली नष्ट होती है। इसका पित्त नेत्रमें लगानेसे परवालके बाल नहीं उगते। कुत्तेकी विष्ठाके गण्डूष, प्रधमन और प्रलेपसे कण्ठशोथ (खुनाक) आराम होता है। इसके पनीरमायाको योनिमें रखने (हुमूल)से गर्भपात हो जाता है। विशेषतः काटनेवाले पागल कुत्तेका भुना हुआ कलेजा (यकृत) खिलानेसे पागल कुत्तेका विष नष्ट होता है। कुत्तेका सुखाया हुआ मूत्र बालोंपर मलनेसे बाल काले हो जाते हैं। इसके लिए कुतियाका मूत्र लेना चाहिए। एकरंग काले कुत्तेके बाल लटकाने या बांधनेसे मृगी जाती रहती है। इसके मूत्रकी मालिशसे मस्से दूर हो जाते हैं। इसकी चर्बी कण्ठमालामें लाभकारी है। आंख न खोले हुए कुत्तेके पिल्लेको उपलोंमें जलाकर भस्म कर रखें। नासूरमें इस राखके भरनेसे वे अतिशीघ्र सूख जाते हैं। इसकी जोभकी राख मूत्रमार्गस्थ व्रणको अच्छा करती एवं सूजाकमें लाभ पहुँचाती है। कुक्कुरास्थि अर्शोघ्न है। गृध्रसी, आमवात और हड़फूटन रोगमें कुत्तेकी हड्डीको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे लाभ होता है। हड्डीको पानीमें पीसकर उसमें रूई लत करके बत्ती बना गर्भाशयमें रखनेसे उसकी आर्द्रताका निवारण होता है। मूत्रमार्गविस्तृति (बंद कुशाद) में कुत्तेकी लारमें बत्ती तरकरके शिश्नके छिद्रमें रखनेसे उपकार होता है। इसी प्रकार उसकी जीभको जलाकर उस राखमें बत्ती लत करके रखनेसे भी लाभ होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको और क्रोधकारक है। निवारण-शीतल एवं स्नेहाक्त पदार्थ, चुकन्दर और प्याज।

आयुर्वेदीय मत—

कुत्तेकी हड्डी घिसकर लगानेसे भगंदर आराम होता है। कुत्तेकी जीभका चूर्ण बुरकनेसे सद्यःक्षत भर जाता है। (भै० र०)। कुत्तेकी विष्ठा 'माहेश्वर धूप' में काम आती है। इससे बिच्छूदंश भी दूर होता है।

कुमरी

नाम—(हिं०) टूटरू; (अ०) क़ुमरी; (फा०) मुर्गेहक़गो।

वक्तव्य—'कमर' शब्दमें सम्बन्धवाचक ईकार जोड़कर 'क़ुमरी' शब्द बनाया गया है। 'कमर' मिश्रका एक देश है, जिसे कोई-कोई इस्कंदरिया कहते हैं। क्योंकि उक्त पक्षीका रंग तद्देशीय मृत्तिकावत् होता है, इसलिए इसे क़ुमरी कहते हैं।

वर्णन—यह पंडुककी जातिका एक पक्षी है जो सफेद कबूतर और पंडुकसे उत्पन्न होता है। यह फाख्तेसे छोटा, प्रभुभक्त, मानव-प्रेमी, प्रियदर्शन एवं मधुरभाषी होता है। सफेद और पीला भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसका एक विशेष गुण यह है कि विषमिले आहारको देखते ही इसकी आँखें लाल हो जाती हैं। उनसे आंसू आने लगता है और वे पथरा जाती हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दुष्ट दोषोत्पादक और स्निग्ध एवं शीत प्रकृतिको सात्म्य है। इसका तेल मलनेसे शिशु शीघ्र चलने लगते हैं। इसका अंडा खानेसे शिशु समयसे पूर्व बोलने लगते हैं। इसे घरमें रखनेसे उस

घरमें रहनेवाले पर जादू-टोना आदि मंत्र प्रभाव और कुदृष्टि अर्थात् नजर नहीं लगता। (मख़्ज़न)। इसके शब्दसे सर्प आदि भौम कीट भागते हैं। (मु० ना०)। किसी-किसीके मतसे इसका मांस, रुधिर और अंडा स्वरको शुद्ध करनेवाला और प्रेम उत्पन्न करनेवाला है (मुहीत)। अहितकर—अति सेवनसे कुष्ठ और वातिक अन्यथा ज्ञान (वसवास) उत्पन्न करती है। निवारण–स्निग्ध पदार्थ (घी और बादामका तेल आदि) तथा तरल (लतीफ) द्रव्य। प्रतिनिधि–बटेर। मात्रा–आवश्यकतानुसार खा सकते हैं।

कुर्री

नाम—(हिं०) कुर्री, चबनीकी हड्डी, मुरकनी हड्डी; (अ०) गुज़रूफ (गजारीफ–बहु व०); (सं०) तरुणास्थि; (अं०) कार्टिलेज (Cartilage), ग्रिसल (Gristle)।

एक प्रकारकी कोमल अस्थि जो सफेद और मुड़नेवाली होती हैं। यह शीतल और अन्य धातुओं (आज़ाऽमुफ़रदा) शीघ्रपाकी होती है। शीतल प्रकृति वालोंके लिए इसका निवारण गाढ़ा मद्य है। (मुहीत)।

केंचुआ

ऐन्नेलिडा-संघ (Phylum : Annelida) : **कीटोपोडा-वर्ग** Class : Chaeetopoda) :
आलिगोकीटा-गण (Order : Oligochaeta)

नाम—(हिं०) केंचुआ, केचवा; (अ०) ख़रातीन (मृत्तिकाजात), अम्आउल् अर्ज़ (भूम्यन्त्र), हुम्रुल्अर्ज़, शहमुल् अर्ज़ (भूमिवसा); (फा०) जुग़ार, किर्मगिल ख़ुर्दः, किर्मेज़मी ; (सं०) भूनाग, गण्डूपद, किञ्कु(ञ्चि)लि (लु)क, (म०) गांडवल; (बं०) केंचा; (गु०) अणशलिया, अलशियुं; (ले०) **फेरीटिमा पोस्थुमा** (*Pheretima posthuma*); (अं०) अर्थ-वर्म (Earthworm अर्थभूमि, वर्मक्रिमि), मड-वर्म (Mud-worm)।

वर्णन—यह पेटके बल चलनेवाला लगभग एक बित्ता या उससे कम लम्बा लाल रंगका एक प्रसिद्ध कीड़ा है जो गीली जमीनमें विशेषकर बगीचों और उन स्थानों पर जहाँ गोबर और लीद आदि डाला जाता है, वर्षामें और शरद् ऋतुके प्रारम्भमें भूमि पर रेंगता हुआ पुष्कल दिखाई देता है।

रासायनिक संगठन—केंचुआ और उसकी बीटकी हुई मिट्टीमें भास्वर (फॉस्फोरस) और ताँबा होता है। केंचुएसे सत्वपातन करके ताँबा निकालनेकी विधियाँ आयुर्वेदीय रसशास्त्रमें वर्णित हैं। इस ताँबेको परम विषहर बतलाया जाता है।

प्रकृति—तीसरे (मतांतरसे पहले) दर्जेमें उष्ण एवं तर (मतांतरसे रूक्ष) है।

गुण-कर्म—इसका पान और लेप वाजीकर, उष्ण, श्वयथुविलयन, मूत्रल, अश्मरीघ्न और क्षतोंके लिए गुणकारी है। उपयोग–अधिकतया वाजीकर तिलाओं (पतले लेपों) और लेपों (जिमादों)में केंचुआका बाह्य प्रयोग किया जाता है। इससे शिश्नका शैथिल्य दूर होता है। पर कतिपय हकीम वाजीकरणके लिए इसका (शुद्ध केंचुआका) आंतरिक उपयोग भी कराते हैं। इसका चूर्ण माँस रसके साथ खिलाते हैं।[१] ९ माशे केंचुएके चूर्णका फांट पीनेसे पेशाब जारी होता है। इन्द्रीके क्षतपर ताजा केंचुआ पीसकर लेप करते और तीन दिन-रात बाँध रखते हैं। मोच, चोट-चपेट (जरबा व सक्ता) और उष्ण शोथोंमें भी इसका लेप गुणकारी है। अहितकर—आमाशय और अन्त्रके लिए। निवारण–बादाम और जैतूनका तेल। प्रतिनिधि–पतले लेपकी भाँति उपयोग करनेके लिए जोंक। मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

---

[१] चरकने राजयक्ष्मामें केंचुएको आहारके रूपमें देनेको लिखा है—'भ्रष्टान्मत्स्यान्च शब्देन दद्याद्गण्डूपदानपि'।

आयुर्वेदीय मत—केंकुएका चूर्ण कुसुम तेलमें मिलाकर पावोंपर लेप करनेसे वीर्यस्तम्भ हो लिंगको दृढ़ करता है। (भै० र०)।

केकड़ा

तिलचट्टा (संधिपादी) संघ (Phylum : Arthropoda) : छिलकेदार बाहरी आवरणवाला वर्ग (Class : Crustacea) : कोशस्थ जीवकुल।

नाम—(हिं०) कें (खें) कड़ा, केकड़ा (रा); (अ०) सरतान, अक़रबुल्माऽ (जल वृश्चिक), अबुल्बहर, अक़्रबुल्बहर (सामुद्र वृश्चिक); (फा०) पंजपायः, पंजपायक, खरचंग, गुलचंग; (सं०) कर्कट(क), कुलीर; (क०) कुलीर; (वं०) कांकड़ा; (म०) खेंकड़ा; (गु०) करचलो; (यू०) कार्किनोस (Karkinos); (लें०) सिल्ला सिरेटा (*Scilla serrata*); (अं०) क्रैब (Crab), कैन्सर (Cancer), ।

वर्णन—यह एक तीव्रगामी जलजंतु है, जो देखनेमें बड़ी मकड़ीकी तरह जान पड़ता है। कोई-कोई आकारमें इससे भी बड़ा छोटे पंजाके बराबर सफेद या मटमैला या लाल और काला (कृष्ण कर्कटक) भी होता है। इसके दो बड़े जबड़े, चंगुल, नख और दाँत होते हैं। पीठ कड़ी होती है। इसके सिर, पूंछ नहीं होती, नेत्र स्कंध पर होते हैं और मुख कक्षमें । दोनों जबड़े दोनों ओरसे फटे (चिरे) होते हैं और आठ पैर होते हैं। यह सिर और पूँछ दोनों ओर चलता है। इसके यह दो भेद होते हैं—(१) नहरी और (२) सामुद्र (सरतान बहरी[1] (खरचंगादरियाई)। इनमें बहते हुए मीठे पानीका और बड़ा नहरी केकड़ा उत्तम होता है। नर और मादा भेदसे भी यह दो प्रकारका होता है। इनमें औषधके लिए मादा श्रेष्ठतर समझी जाती है। मादाकी पहचान यह है कि इसकी पीठमें सूई चुभानेसे लेसदार सफेद द्रव निकलता है जो नरमें नहीं निकलता।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें केकड़ेको जलाकर बनाई हुई मसी (सरतान मुहरक़) प्रायः काममें आती है। उसीके गुण-कर्म तथा उपयोग यहाँ लिखे जाते हैं। इसको कल्पना-विधि इस ग्रंथके पूर्वार्धके भेषजकल्पना खंडमें देखें।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और स्निग्ध-मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम और तर है। **गुण-कर्म**–उष्णश्वयथुविलयन, लेखन, उरःक्षत, राजयक्ष्मा (सिल व दिक)हर, रक्तपूयष्ठीवनहर, कुक्कुर-वृश्चिक तथा अन्यान्य विषधर प्राणियोंके दंशका अगद है। **उपयोग**–साधारणतया केकड़ेकी मसीका उरःक्षत और राजयक्ष्मा अन्त्रक्षय, रक्तष्ठीवन और पूयष्ठीवन (खाँसीमें रक्त और पूयआना) इन रोगोंमें देते हैं। इन रोगोंमें इससे अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त गरम और खुश्क खांसीमें खरत्व, अंगोंकी खुश्की और अत्यन्त दौर्बल्य युक्त उष्ण प्रकृति वालोंको दिया जाता है। राजयक्ष्माके रोगियोंको, सर्प और वृश्चिक दंशमें इसका पान और लेप गुण-कारी है। अन्यान्य औषध द्रव्योंके साथ केंकड़ेकी टिकियां (क़ुर्स) बनाई जाती हैं जो क़ुर्ससरतानके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा उरःक्षत, राजयक्ष्मा और कासमें प्रयुक्त होती हैं। क़ुर्स सरतानमें कपूरका योग करनेसे क़ुर्ससरतान काफूरी बनता है। **अहितकर**–बस्तिको। **निवारण**–गिलमख्तू। **मात्रा**–केकड़ेकी मसी १ ग्राम से ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—केकड़ा, शंख और कछुआ आदि रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, बृंहण, वृष्य, मलमूत्र और कफको बढ़ानेवाला, सन्धानीय तथा पित्त, वात और रक्त विकारको दूर करनेवाला है।

---

[1] अल्सर्तानुल्बहरी (Sea crab)-**बू-अलीसीना** कहते हैं कि जब चिकित्सक (भिषक्) इसके विषयमें कहते हैं, तब उनका अभिप्राय किसी सामुद्र कर्कटसे नहीं होता, प्रत्युत इसकी विशिष्ट जाति विवक्षित होती है (कानून संचिका २, पृ० ३८१); **हुनैनने** जालीनूसके अपने अनुवादमें (Sepia)के अर्थमें जो मत्स्यका एक भेद है, इस शब्दका प्रयोग किया है। (इ० बै० संचि० ३, पृ० १०)।

(सु० सू० अ० ४६; ध० नि०)। सुश्रुतके अनुसार काला केकड़ा (कृष्ण कर्कटक) किंचित उष्ण और वायुनाशक है। केकड़ेके पैरोंको दूधमें पकाकर घीमें मिला दाँतोंपर मलनेसे अथवा केवल केकड़ेके पैरका चूर्णका मंजन करनेसे अथवा केकड़ेके पैरोंपर लेपकर देनेसे अथवा केकड़ेके पैर गलेमें बाँधनेसे सोनेमें दाँत किट-किटाना (दन्तशब्द) बन्द हो जाता है।

कोयल

पृष्ठवंशी (Vecrtebrata) : **पक्षिवर्ग** (Class : Aves) : **कुकुलीफार्मीज-गण** (Order : Cuculiformes)
फैमिली : कुकुलिडी (Family : Cuculidae)

नाम—(हिं०) कोयल, कोइल; (सं०) कोकिल (ला), पिक, परभृत; (बं०) कोकिल; (ले०) **यूडिनैमिस स्कोलोपेसिउस** *Eudynamis scolopaceous.* Linn.; (अं०) दी कोएल (The Koel), कुक्कू (Cuckoo)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध काले रंगका भारतीय पक्षी जिसकी आँखें लाल रंगकी होती हैं। वसन्तके आते ही इसकी मधुर तथा सुरीली कुकू सुनाई पड़ने लगती है।

उपयुक्त अंग—मांस, पर और पित्ता।

प्रकृति—मांस दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है। वैद्य शीतल लिखते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीत प्रकृति और शीतजन्य रोग पीड़ित व्यक्तिको इसका मांस गुणकारक है (म० इ०)। मांस संग्राही, आध्मानकारक, बल्य और कफवातनाशक हैं। इसके जलाये हुए पर घावोंको भरते और सुखाते हैं (म० मु०)। बुस्तानुल् मुफ़रदातमें यह अधिक लिखा है—मांस गुरु एवं दीर्घपाकी है। पित्ता गुणमें कौएके पित्ताके समान है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको तथा वायुकारक है।

निवारण—तेल और सिरका। प्रतिनिधि—कौएका मांस।

आयुर्वेदीय मत—मधुर, ग्राही, कफ वातनाशक, चक्षुष्य, बृंहण और बलवर्धन है। (ध० नि०)।

कौआ

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **पास्सेरीफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes)
फैमिली : कोर्विडी (Family : Corvidae)

नाम—(हिं०) कौआ, कौवा; (अ०) गुराब, सह्ल; (फा०) कुलाग़; (सं०) काक; वायस; (बं०) काक; (ले०) (१) **कार्वुस स्प्लेन्डेन्स** (*Corvus splendens* Vieill.); (अं०) हाउस क्रो (House Crow)।
(२) कार्वुस मैक्रोरिंकुस *Corvus macrorhynchus*; (अं०)जंगिल क्रो (Jungle Crow)

वर्णन—काले रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी। 'ग़ुराब' कौवेकी एक सामान्य अरबी संज्ञा है। यूनानी ग्रंथोंमें प्रायः कौवेके पाँच भेदोंका उल्लेख मिलता है, जिनमेंसे २ या ३ प्रकारके कौवे भारतमें देखनेको मिलते हैं। (१) छोटा–जिसकी गरदन खाकी और शेष शरीर काला होता है। मात्र कौवा शब्दसे यही अभिप्रेत होता है। अरबीमें इसे 'ग़ुज़ाफ़' कहते हैं। (२) बड़ा–जिसका समस्त शरीर अत्यन्त काला होता है। यह पहलेसे कुछ बड़ा भी होता हैं। फ़ारसीमें इसे 'ज़ाग' वा 'कुलाग़ बुज़ुग स्याह' और अरबीमें 'ग़ुराबुल् अस्वद' वा 'ग़ुराबनूह' कहते हैं। यहाँ जन साधारणमें इसी को 'डोमकौआ' वा काला कौआ और संस्कृतमें द्रोणकाक वा दग्धकाक कहते हैं। (३) छोटा काला कौआ। इन सबमें श्रेष्ठ बच्चा होता है।

उपयुक्त अंग—मांस, रक्त, पित्त, पर, हृदय, और बीट इत्यादि।

प्रकृति—वच्चा पहले दर्जेमें गरम और रूक्ष; अबलक अर्थात् छोटा दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष; काला बड़ा अर्थात् डोम कौवा तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष और काला छोटा पहले दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छोटे (अवलक) कौवेका मांस दोर्घपाकी, दूषित रक्त दोष उत्पन्न करने वाला (रदीउल्‌गिजा) तथा अवाजीकर है। इसीलिए इससे परहेज जरूरी है। डोम कौवाके भी यही गुण-धर्म हैं किन्तु उसकी यखनी शूलनाशक एवं वायुनाशक है। यदि उसको जीवित पकड़कर एक बर्तनमें रखकर उसके ऊपर लौह चूर्ण छिड़ककर सिरका भर देवें और बर्तनका मुंह बन्द करके ४० दिन तक घोड़ेकी लीदमें गाड़ रखें तो यह सब तेलकी तरह हो जाता है और यह तेल उत्तम खिजाब हैं। देर तक इसका प्रभाव रहता है। छोटा काला कौआ उत्कृष्ट एवं शुद्ध रक्त उत्पन्न कर्ता एवं बाजीकरण करता है। इन सबका पित्ता नाखूना (अर्जुन) और धुंधको लाभ कारी है। बीट-नेत्र ज्योतिवर्धक, व्यंग (बहक) और श्वित्रनाशक है। शुष्क रुधिरका लेप अर्शोघ्न और जले हुए परोंका लेप रोमसंजनन है। मोतियाबिन्दके प्रारम्भमें इसका पित्त नेत्रमें अंजन करनेसे लाभ होता है। काला कौएका पित्त शहदमें मिलाकर शिश्नमुण्ड (सुपारी)पर लेपकर स्त्रीसंग करनेसे स्त्रीको अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है जिसका वह पुरुषसे कदापि अलग होना नहीं चाहती। इसका पित्त तिलके तेलमें मिलाकर शिश्न पर मर्दन करनेसे उसकी वृद्धि होती है। **अहितकर**-असेवनीय हैं। **निवारण**-तेल, सिरका और सर्द एवं तर पदार्थ। **प्रतिनिधि**-प्रायः गुणकर्मोंमें एक दूसरेका प्रतिनिधि हैं।

आयुर्वेदोय मत—रस, वीर्य, विपाकमें सिंह आदिके समान तथा शोषरोगमें (राजयक्ष्माविकारवालोंको) विशेष हितकारक है (सु० सू० ४६ अ०)। काक मांस लघु, दीपन, चक्षुष्य, बल्य और बृंहण तथा क्षत दोष एवं क्षयनाशक है। (ध० नि०)। कौवेकी बीट व्रणविदारक होती है। कौवेका मांसरस विषघ्न है (च० चि० अ० २३)। कौवेके मांसको सरसोंके तेलमें पकाकर सेंधा नमक मिला सेवन करनेसे क्षयका नाश होता है (सु०)।

कौड़ी

मोलस्का-संघ (Phylum : Mollusca) : **गैस्ट्रोपोडा-वर्ग** (Class : Gastropoda) : **स्ट्रेप्टोन्यूरा-गण** (Order : Streptoneura) : **फैमिली : काइप्रिइडी** (Family : Cypraeidae)

नाम—(हिं०) कौड़ी; (अ०) वद्‌अ, वदअय; (फा०) कज (च) क, खरमोहरा, कुसगुर्बः; (सं०) कपर्द कपर्दिका, वराटक, वराटिका; (ता०, कों०, म०, कना०) कवड़ी; (गु०) कोडी; (लै०) किप्रिआ मोनेटा (*Cypraea moneta* Linn.); (अं०)पोर्सिलेनियस शेल (Porcelaneous shell), कौरी (Cowry), मेरिना शेल (Marina shell)।

वक्तव्य—शृंगारार्थ इसे गदहोंके कंठमें बांधते हैं। इसलिए फारसीमें इसका 'खरमोहरा' नाम पड़ा। सीप जातीय कौड़ी, शंख और घोंघा प्रभृति जीवोंका एक सामान्य अरबी नाम 'वद्‌अ' है और केवल कौड़ीके अर्थमें भी उक्त शब्दका व्यवहार होता है। इसके बड़े भेद (शंख)को फारसीमें 'सफ़ेद मोहरा' और 'बाद मोहरा' और छोटे भेद (घोंघा) हो शीराजीमें 'गोशमाही' कहते हैं।

वर्णन—यह सीप और घोंघे की भांति एक दरियाई जन्तुकी प्रसिद्ध अस्थि है जो समुद्रसे निकलती है। सफेद, लाल और पीला भेदसे यह तीन प्रकारकी होती है और आकृति भेदसे कई प्रकारकी। औषधके लिए प्रायः पीली कौड़ी, वह भी जो अच्छी, भारी, गठीली और बड़ी हो, वही अधिक कार्यमें ली जाती है।

रासायनिक संगठन—यह कैल्सियम कार्बोनेटका यौगिक है। यह जलमें अविलेय होता है किन्तु लवणाम्ल (Hydrcholoric acid)में झाग देकर विलीन हो जाती है। इसमें फांस्फेट, क्लोराइड और कार्बोनेट आफ कैल्सियम्, मैग्नेसियम्, फास्फेट, मैंगनीज और लवण (सोडियम क्लोराइड) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। गुण-कर्म-तीव्र रूक्षण, लेखन, नेत्रलेखन, व्रणलेखन, छेदनीय उष्णताजनन और श्लेष्मश्वयथुविलयन है। उपयोग-उपशोषण ओर उष्णताजनन होनेसे इसके प्रलेप अवयवोंके द्रवोंको सुखाता और कफज सूजनको उतारता है। लेखन और छेदन होनेसे यह सव्रणशुक्ल (फूली)को दूर करती है

और त्वचाके रंगोंको नष्ट करती है। यह व्रणलेखन भी है; इसलिए नेत्रव्रणको भी लाभ पहुँचाती है। छेदन होनेसे इसे सिरकामें पीसकर लेप करनेसे मस्से दूर होते हैं।

अहितकर—फुफ्फुसोंको। **निवारण**–मधु और सिरका। **प्रतिनिधि**–घोंघा। कान बहरा हो तो कानमें डालनेसे यह ज़ख़्मको भर देती है। आयुर्वेदमें इसकी भस्म (कुश्ता) जो एक प्रकारका चूना है (Shell ash)का आंतरिक प्रयोग भी होता है।

मात्रा—भस्म ३०० मि० ग्रा०से ६०० मि० ग्रा० या १००० मि० ग्रा० (२॥ से ५ वा ८ रत्ती) तक। आंतरिक प्रयोगार्थ भस्मका स्वाद चटपराहट लिए तिक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—कौड़ी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, वृष्य तथा वात, कफ, कर्णशूल, व्रण, गुल्म, शूल, परिणामशूल, नेत्ररोग, ग्रहणीरोग और क्षयका नाश करनेवाली है (ध० नि०; र० चू० म० ११)।

कौवारी

नाम—(हिं०) कौवारी; (फा०) क़व्वारी (म० इ०)

वर्णन—एक जल पक्षी जो जंगली बत्तखसे छोटा और काले रंगका होता हैं। इसका पंजा बत्तखके पंजाकी तरह और चोंच काली तथा किंचित् वक्र होती हैं। यह जल जंतुओंका आहार करती है। बरसातमें वृक्षों पर बच्चा देती है।

प्रकृति और गुण तथा प्रयोग—दूसरे दर्जेके अन्तमें उष्ण और रूक्ष। इसका मांस खानेसे वातिक रक्त और दुष्ट दोष उत्पन्न होता है तथा यह कफ़ज रोगोंको लाभकारी है। इसका अण्डा शुद्ध रक्तोत्पादक है। इसका रक्त ओर पित्त नेत्रमें लगानेसे नेत्रगत फूला व जाला दूर होता है। (म० इ०)

खच्चर

स्तनधारी-वर्ग (Class : Mammalia) : **अंगुलेटा-गण** (Order : Ungulata) : **पेरिस्सोडैकिला-उपगण** (Sub-order : Perissodachyla) : **फैमिली : इक्विडी** (Family : Equidae)

नाम—(हिं०) खच्चर, (अ०) जग़्ल, (फा०) खच्चर, (बं०) खच्चोर घोड़ा, (अं०) मुएल (Muel), म्यूल (mule)।

वर्णन—गदहे और घोड़ीके संयोगसे उत्पन्न एक प्रसिद्ध पशुजो घोड़ेसे बहुत मिलता-जुलता तथा उससे छोटा किन्तु गदहेसे बड़ा होता है। नर गदहे और मादा घोड़ीके संयोगसे उत्पन्न श्रेष्ठतर है। भारवहन और सवारी आदिकी क्षमता इसमें घोड़े और गदहेकी अपेक्षा अधिक होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह प्रधानतया गर्भनाशक, उदरशूलहर और गर्भधारणका प्रतिबंधक और खाद्यरूपेण अव्यवहार्य (हराम) है। केवल बाह्य प्रयोगमें आता है।

खच्चरका मांस आमवातनाशक है। इसकी चर्बी वातरक्त और गृध्रसी रोगको दूर करती है। इसका हृदय जैतूनके तेलमें पकाकर १॥ तोला प्रतिदिन असाउर्राईके स्वरससे तीन दिन तक खानेसे मनुष्यमें संतानोत्पादनकी क्षमता नहीं रह जाती अर्थात् वह वान्ध्य हो जाता है। ऋतुस्नानके उपरान्त इसका १२ ग्राम १ तोला १॥ माशा यकृत प्रतिदिनके हिसावसे तिरंतर तीन दिन तक सेवन करनेसे स्त्रीको गर्भधारण नहीं होता। इसी प्रकार इसके हृदय और मूत्रका सेवन गर्भशातक हैं। इसके काल और कर्णगूथ (खूँट)की वर्ति योनिमें धारण करनेसे भी उक्त गुण होवा है। खच्चरके खुर (मुफरदातनासिरीके अनुसार मादा और खजाइनके अनुसार नर खच्चरके सुम) की घूनीसे

अपरापातन होता है। तथा इससे विलेशय विषैले कीड़े-मकोड़े (और चूहें) भागते हैं। इसी प्रकार इसकी लीद और बालोंकी धूनीसे भी विषैले कीड़े-मकोड़े भागते हैं। इसका १ तोला ५॥ माशा सुम पीसकर विलायती मेंहदीके तेल (या घी)में मिलाकर खल्वाट सिरके बाल उड़ने पर लगानेसे वहाँ वाल उग आते हैं। इसकी खाल पास रखनेसे गर्भवती स्त्रीका गर्भ गिर जाता है और बिना गर्भ वालीको गर्भधारण नहीं होता। इसके खानेसे उदरशूल आराम होता है। इसका या गदहेका शिश्न माजूके साथ कूटकर जैतूनके तेलमें मिलाकर बालोंपर मलनेसे बाल काले होते हैं और बढ़ते हैं (मख़्ज़न)। इसका भेजा जैतूनके तेलके साथ कड़ो सूजनको उतारता है। इसकी लीदकी धूनीसे प्रतिश्याय आराम होता है। इसकी लीदकी राख सूंघनेसे जुकाम (प्रसेक) आराम होता है। इसकी लीदके रस और प्याजके रसमें थोड़ा केसर घोलकर कई बार कानमें भरनेसे कानका दर्द आराम हो जाता है। इसे गरम करके काममें लेना चाहिए। इसकी लीद सुखाकर यदि स्त्री खा लेवे तो कदापि गर्भधारण न हो। इसी प्रकार कानकी मैल खा लेने या उसकी वत्ती योनिमें धारण करने या उसकी खाल लटकानेसे भी गर्भधारण नहीं होता। (मुहीत)। इसकी चर्बीकी धूनीसे गर्भस्थ शिशु सहित जरायु निकल पड़ता और कीड़े-मकोड़े भी भाग जाते हैं। इसके मूत्र और कलेजेसे कपड़ा तर करके योनिमें रखनेसे गर्भधारण नहीं होता (मख़्ज़न मुफरदात), इसके कानकी मैल इसकी खालमें रखकर अपस्मारीको बाँधनेसे रोगका नाश होता है। (खजाइन)। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण–शीतल-स्निग्ध पदार्थ और तेल। प्रतिनिधि–दर्दके लिए तेंदुएकी चर्बी।

आयुर्वेदीय मत—इसका मांस बल्य, बृंहण, कफ, पित्तकारक (मद० व० १२) और बाजीकर (ता० श०) है।

खंजन

पृष्ठवंशी (Phylum : Chordata) **: पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) **: पास्सेरीज-गण** (Order : Passeres) **: मोटासिल्लिडी-कुल** (Family : Motacillidae)

नाम—(हिं०) खिड़ (खड़ि) रिच, खिड़हिच, खंजन, खंजरीट, ममोला; (अ०) सफ़्रागून, सअ्व अबुल्मलीह; (फा०) मुसीचः, सरीचः, ढुमजुंबानक, मुर्ग कखक; (सं०) खञ्जन, खञ्जरीऽ; (ले०) मोटेसिल्ला मॅंडरासपटेन्सिस (*Motacilla maderaspatensis* Gmelin.); (अं०) कॉमन वैगटेल (Common Wag-tail)।

वर्णन—चिड़ाकी तरहका एक प्रसिद्ध पक्षी जो सदा पूंछ हिलाता रहता है। भारतमें यह हिमालयकी तराई, आसाम ओर ब्रह्मामें अधिकतासे होता है।

प्रकृति—विषघ्न वीर्यके साथ दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके मांसमें कुछ कड़वाहट होती है। इसका मांस कच्चा या पका या जलाकर (भूनकर) खानेके उपरान्त मधुवारि (माउल्अस्ल अर्थात् शहद और पानी पकाया हुआ) पिलानेसे या भूनकर शहदके साथ खानेसे वस्तिवृक्कस्थ अश्मरी टूटकर निकल जाती है। पथरी तोड़नेका इसमें विशेष प्रभाव है। इसके लिए यह अत्यन्त गुणकारी एवं सुपरीक्षित है। यह परम मूत्रल भी है। मूत्रकृच्छ्र रोगमें इसका मांस सेवन करनेसे लाभ होता है। अहितकर–गरम और रूक्ष प्रकृतिको। निवारण–शीतल, मूत्रल द्रव्य। प्रतिनिधि–लटोरा।

खटमल

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) **: कीट-वर्ग** (Class : Insecta) **: हेमिप्टेरा-गण** (Order : Hemiptera) **: फैमिली : सिमिसिडी** (Family : Cimicidae)

नाम—(हिं०) खटमल, खटकीरा (ड़ा), उड़ुस; (अ०) फ़ुसाफिस, ज़म्ज, जमफ; (फा०) सुर्ख़क, सास, शबगज़; (सं०) मत्कुण; (ले०) (१) साइमेक्स लेक्टुरेरिउस (*Cimex lecturarius* (विदेशी प्रजाति); (२) साइमेक्स हेमिप्टेसस (रोटुण्डेटुस) *Cimex hemiptesus* (*rotundatus*); भारतीय प्रजाति। (अं०) वेड-वग (Bed-bug)।

वर्णन—खटमल जुँओंसे कुछ बड़ा होता है। यह गहरे लाल तथा काले रंगका, आकारमें अंडाकार और चपटा होता है और इसमें पंखोंका पूर्ण अभाव होता है। दिनके समय ये खाटके छेदोंमें छिपे रहते हैं, किन्तु रात होते ही रक्ताहारके लिए बाहर निकल आते हैं। ये मनुष्यका रक्त चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनके शरीरसे जो तीव्र दुर्गन्ध आती है, वह एक विशेष द्रवकी होती है जो इसके वक्षके अन्तिम भागमें स्थित ग्रंथियोंसे निकलता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रसंगनाशक और अपतन्त्रकहर है। यह खानेके काममें नहीं आता–अर्थात् अभक्ष्य (हराम) है। केवल बाह्य प्रयोगमें आता है।

इसे पीसकर गलेके भीतर चिपटी हुई जोंकको निकालनेके लिए इसका गण्डूष लाभकारी है। इसे पीसकर शिश्नके छिद्रमें डालनेसे मूत्रसंग मिटता है। इसके सुँघाने या धूनी देनेसे अपतंत्रक आराम होता है। बालखोरे पर इसका लेप लाभकारक है। शाखायुक्त सर्पदष्ट व्यक्तिको एक खटमल निगलवा देनेसे उपकार होता है (मख्जन)। इसे वस्त्रखंडमें मलकर तथा जलाकर उसकी धूनी देनेसे अपस्मारीको लाभ होता है (तालीफ़शरीफ़ी)। बंगालमें होनेवाले 'अहवा' नामक नासिका रोगमें इसे पीसकर नाकमें फूँकने या सुँघाने अथवा नाकमें लगानेसे लाभ होता है। इसका धूआँ नरकुलके द्वारा कंठके भीतर पहुँचाने अथवा मद्य एवं सिरकेमें पीसकर पीने या गण्डूष करनेसे कण्ठके भीतर चिपटी हुई जोंक निकल जाती है (मुहीत)। इसको मलकर सुँघाने या इसके काढ़ेका गण्डूष करानेसे भी कण्ठके भीतर लटकी हुई जोंक निकल जाती है। इसका उत्तम तिला बनता है। लगभग निर्विषैला है। (म० मु०)। मुफरदातनासिरी में खटमलको मलकर कागजके भीतर रखकर उसे लपेटकर जलाने और उसका धुआँ अपस्मारीकी नाकमें पहुँचानेको लिखा है।

खटमलको भगानेकी विधि—कनेरकी पत्तियोंका खूब गरम काढ़ा या केवल छाछ चारपाईके चूरोंमें डालनेसे खटमल नष्ट हो जाते हैं। (बु० मु०; खजाइन)।

खमीर

नाम—(हिं०) मावा, खमीर; (अ०) अजीन (अजीन) (बहु व०–उजुन), ख़मीर; (फा०) ख़मीर तुर्श, खमीर मायः; (ले०) फरमेन्टम् (Fermentum); (अं०) फर्मेण्ट (Ferment)।

वर्णन—गेहूँके आँटेमें तिल या जैतूनका तेल अथवा गाय, भैंस या बकरीका दूध, दहीका तोड़, घी या केवल जलमेंसे जो मिल जाय उसे डालकर रख देनेसे यदि वह दुर्गन्धयुक्त और अम्ल हो जाय तो उसे खमीर या खमीरः कहते हैं। इसमेंसे थोड़ा सा मिलाकर आँटेमें मिलाकर गूँधनेसे रोटीका फतीरोपन (अरबी 'फतीर' संज्ञाका अर्थ ताजा गुँधा हुआ आँटा है। अर्थात् खमीर का उलटा) जाता रहता है और वह फूलकर नरम हो जाती है। कभी खमीर और खमीरः संज्ञाद्वय का व्यवहार उस आटेके अर्थमें करते हैं जिसमें खमीर मिला कर थोड़ी देर रख देनेसे फूल गया हो। अधिक काल तक रखा रहने पर उसमें अम्लता भी आ जाती है। यहाँ पर उनमें से प्रथम प्रकार का वर्णन होगा।

प्रकृति—परस्पर विरोधी गुणधर्म युक्त, संमिश्र वीर्य और दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दोषोंको पतला करनेवाला (मुलत्तिफ़) लेखनीय, श्वयथुविलयन और शरीरके गंभीर भागोंसे दोषोंको आकृष्ट करनेवाला (जाज़िब) है। नमकके साथ यह शीतल शोथों, विशेषकर पैरके नीचेके शोथोंको सत्वर विलीन करता और उससे होनेवाली पीड़ाका शमन करता है। यह फोड़े-फुंसियों (दंमा मील)को पकाता तथा उनके अवरोधोंका उद्घाटन करता है—विशेषकर नमक मिला हुआ और दाँतका दर्द दूर करता है। पुदीनेका रस और राई प्रत्येक एक भाग, दोनोंको पीसकर तथा दोनोंसे तिगुना खमीर इन

सत्रको दस गुने पानीमें अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर उसे छानकर तौलें। जितना वह काढ़ा हो उससे दूना मधु मिलाकर चाशनी करें। इसके सेवन से पाचनशक्ति इतनी तीव्र हो जाती है, कि खाये विना नहीं रहा जाता। इससे दाहकारक दोषोंका अमाशयसे निर्हरण हो जाता है तथा कफका नाश होता है। यह वाजीकर है। यदि कोई वाजीकर माजून खाकर अविलम्ब उसको चाटा जाय तो इसका उक्त प्रभाव और भी शीघ्रतर होगा। इसको पानीमें घोलकर इससे चौथाई 'रोग़न बनफ़शा' मिलाकर गंडूष करने से कंठशोथ विलीन हो जाता है। इसे मेंहदीके तेल और नमकमें मिलाकर लेप करनेसे असाध्य सूजन भी उतर जाती है। परीक्षित है। खमीरको मीठे अनार या इसी तरह अन्य फलों जैसे अंगूर आदिके रसमें घोलनेसे वह मदिराकी जगह काम दे सकता हैं और यह रहस्य है। (मख्जन)। पुराने खमीरके लेपसे शरीरके गंभीर भागोंसे दोष बाहरकी ओर आकर्षित होते हैं। यह उनको विलीन भी करता है। यह गुण नयेमें नहीं होता। विशेषकर सड़े हुए खमीरके लेपसे दारवस एवं शीतपित्तमें बड़ा लाभ होता है। इसके हरीरामें थोड़ा सिरका मिलाकर पीनेसे उदरावष्टंभ होकर अतिसार बन्द होता है। (मुहीत)। अहितकर—रुग्ण वक्षको। निवारण–कतीरा। मात्रा–५। तोला तक।

खरगोश, खरहा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chodata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **यूथीरिया-उपवर्ग** (Sub-class : Eutheria) : **लैगोमॉर्फा-गण** (Order : Lagorpha)
फैमिली : लेपोरिडी (Family : Leporidae)

नाम—(हिं०) खरगोश (द०), खरहा, ससा; (अ०) अर्नब (वर्री), खुज़(ज्ज)ज, नमूर, क़ुवाअ; (फा०) ख़रगोश (ख़र = गदहा या बड़ा, गोश = कान); (सं०) शश, शशक; (ता०) मोसेल; (ले०) (१) जंगली खरगोश लेपुस रूफीकॉडेटुस *Lepus ruficaudatus*; (अं०) hare. (२) पालतू खरगोश-ओरीक्टोलागुस कूनीकुलुस *Oryctolagus cuniculus*; (अं०) Rabbit.

वर्णन—चूहेकी जातिका, पर उससे कुछ बड़े आकारका, एक प्रसिद्ध छोटा चतुष्पाद जंतु। काला, सफेद, खाकी और अबलख भेदसे खरहा कई प्रकारका होता है। इनमें सफेद खरहेका मांस सर्वोत्तम और कालेका निकृष्ट होता है। इसका एक भेद 'खरगोश दरियायी' भी है। फारसी खरगोशका अर्थ (ख़र = गदहा या बड़ा, गोश = कान) अर्थात् 'बड़े कानवाला' है।

उपयुक्त अंग—मांस, पित्ता, कलेजी, मींगनी, भेजा, चर्बी, रक्त, बाल, हड्डी, खाल, आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें स्निग्ध (तर) है। मतांतरसे रूक्ष काला और सफेद अत्यन्त उष्ण है। रूक्षता इसमें कम है और शीतवीर्य नहीं है।

गुण–कर्म तथा उपयोग—इसका मांस सान्द्र रक्त उत्पन्न करता तथा गोमांससे भी ग़लीज है और पक्षवध, अंगवध, अर्दित, शीतल वातव्याधियाँ और आमवातमें गरम मसालोंके साथ इसका सेवन गुणकारी है। जिस समय बालकके उदरमें दूध न हो उस समय उसे खरगोश का पनीरमाया खिलानेसे वह मृगीरोगसे सुरक्षित रहता है और स्वप्नमें नहीं डरता है। ऋतुस्नानोपरान्त इसके तीन दिन तक योनिमें धारण (हुमूल) करनेसे गर्भ नहीं रहता। (३ कीरात की मात्रामें) इसे मद्यके साथ पीनेसे चौथिया का नाश होता है तथा वस्तिगत रक्तसंचय दूर होता है और सर्पविष एवं अन्य औषधिजन्य विष का निवारण होता है। इसके पित्तासेवनसे मूर्छा करनेके तुल्य नींद आती है और सिरका पिलानेसे उसकी नींद टूटती है। रोग़न सुदाबके साथ इसके सेवनसे अपरापातन होता है। खरही की योनि पकाकर खानेसे स्त्री शीघ्र गर्भवती होती है। दो रत्ती इसका भेजा सेवन करनेसे कम्पवायुमें लाभ होता है, तथा बाल सफेव नहीं होते। इसकी जलाई हुई हड्डी का लेप कण्ठमालानाशक है। इसकी मींगनी एक प्रकारके

हस्तिमेह (सलसुल्बौल) का नाशक और मूत्रावरोधकारक, व्यंगनाशक एवं दृष्टिप्रसादक है। चर्बी शरीरमें उष्णता उत्पन्न करने वाली है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको एवं गुरु और दीर्घपाकी है। निवारण–कासनी, सिरका, खटमिट्ठा अनार, दही, सोआ और तेल। प्रतिनिधि–प्रायः गुणधर्मोंमें लोमड़ी और कतिपयमें चकवा। मात्रा–मांस यथाशक्ति, पनीरमाया ९ ग्राम (९ माशा) और पित्त एवं भेजा २५० मि० ग्रा० (२ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—खरहे (शश) का मांस कषाय, मधुर, स्वादिष्ट, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, रूखा, हलका, पित्त–कफनाशक तथा अल्पबल वातजसन्निपातमें प्रशस्त है। सुश्रुत के मतसे वीर्यमें अतिशीतल न होनेसे न वातका प्रकोप करता है, न प्रशम करता है। (च० सू० अ० २७/७२; सु० सू० अ० ४६/८०)। भावप्रकाशके अनुसार सभी ऋतुओंमें हितकर, अग्निप्रदीपक तथा ज्वर, अतिसार, शोष, रक्तविकार और श्वासरोगको भी दूर करनेवाला हैं। खरहेका मांस अर्शमें हितकारी है।

खुर

नाम—(हिं) खुर; (अ०); ज़िल्फ; (फा०) ज़ंगल:, कफ़शक; (सं०) क्षुर; (अं०) हूफ (Hoof)।

वक्तव्य—अरबी में ज़िल्फ (बहु व०–जुलूफ, अज़्लाफ) गाय, बकरी, भेड़ और हिरन आदिके खुरको कहते हैं जो फटे होते हैं। घोड़े, गदहे और खच्चर आदिके खुर (सुम)को जो फटे नहीं होते अरबीमें 'हाफ़िर वा हाफिर (बहुव०–हवाफिर)' कहते हैं। अस्तु जिल्फ़का अर्थ खुर और हाफिरका अर्थ सुम (बिना फटा हुआ खुर) है।

वर्णन—कुर्री (तरुणास्थि) निर्मित वह कठोर अंग जो गाय, बकरी, हिरन और ऊँट आदि पशुओंके हस्तपादतलपर जुड़ा (प्ररोहित) और चिरा हुआ होता है।

प्रकृति—शीतल एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सभी जानवरों का जलाया हुआ खुर पीले जलकी भाँति दस्तलानेवाला विशेषकर संधिवातहर है। मद्यमें मिलाकर लगानेसे भौमकीटों (हुवाम)के दंशमें तथा शहदके साथ आमवात और वातरक्तमें लाभ पहुँचाता है। बकरीका खुर जलाकर सिरकेमें मिलाकर लगानेसे खालित्य (दाउस्सालब) लाभ होता है। (मख्जन, मुहीत)। अहितकर—रूक्षताकारक। निवारण–शहद, सिरका और घी। प्रतिनिधि–सींग। मात्रा–केवल बाह्य प्रयोगोंमें आता है।

खून या रक्त

नाम—(हिं०) ल(लो)हू; (अ०) दम; (फा०) खून, (सं०) रक्त, रुधिर, शोणित, असृक्; (लै०) हीमा (Haema); (अं०) ब्लड (Blood)।

वर्णन—रक्त प्राणियोंके शरीरका रक्तवर्णका एक प्रसिद्ध धातु है। शरीरके सभी धातुओं (अख़्लात)में रक्त सर्वश्रेष्ठ है। उससे शरीरका पोषण और सुधार होता है।[1] प्राणियोंकी प्रकृतिके विविधताके कारण प्रत्येक प्राणीके रक्तमें भिन्नता पायी जाती है। प्रकृति–उष्ण एवं रूक्ष है। चिकित्सामें युवा एवं स्वस्थ प्राणीका शुद्ध रक्त ग्रहण करना चाहिए। शुद्ध वा उत्तम रक्त स्वादमें मधुर होता है। प्रधानकर्म–श्वयथुविलयन। यह केवल बाह्य प्रयोगमें आता है। आंतरिक प्रयोग अविहित (हराम) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सभी जानवरोंका रक्त सामान्यतः फूली (बयाजचश्म-नेत्रशुक्ल)नाशक एवं श्वयथुविलयन है। कबूतरका पर उखाड़नेसे जो खून निकले उसे तुरत आँखमें लगानेसे रतौंधी आराम होती है।

---

[1] आग्नेमामिषकरं प्राणदं रससंभवम्। (ध० नि०)।

उदर, उर, अन्त्र और वस्तिमें संचित हुआ रक्त विषतुल्य हो जाता है। इससे नाड़ीक्षीणता, दौर्बल्य, सदा बनी रहनेवाली मूर्च्छा, हाथ-पैरकी शीतलता और कण्ठावरोध प्रभृति अनिष्टकारक उपद्रव उठ खड़े होते हैं। इसके उपक्रम वा प्रतिकार वे ही हैं जो आमाशयमें जमेहुए दूधके (मख्जन)। कबूतर वा बगुलेका रक्त गुलरोगनमें मिलाकर शिरःजात आघात पर टपकानेसे सूजन नहीं होने पाती। इसी प्रकार आँखमें जब लालनुकता (लह्या) उत्पन्न हो जाता है, तब इसकी अथवा विशेषकर पक्षीके परकी डंडी और जड़का खून टपकानेसे चमत्कारी लाभ होता है। रक्त दीर्घपाकी होता है। उसमेंभी गाढ़ारक्त तो बहुतही गुरु होता है। भेड़, या बकरी व ऊँटका रक्त भूनकर खानेसे अतिसार बन्द हो जाता है। (मुहीत)।

आयुर्वेदीय मत—वमन या विरेचनके अतियोगसे (या अन्यकारणोंसे) जब जीवरक्त (शुद्धरक्त)का अतिस्राव हुआहो तब हरिण, अजा आदि जीवित प्राणियोंका ताजा रक्त रोगीको पिलाना चाहिए। (च० सि० अ० ६)। रक्तपित्त व्याधिसे जब रक्तका अतिस्राव हुआहो तब मधुयुक्त ताजा रक्त रोगीको पिलाना चाहिए, अथवा बकरीका पित्तयुक्त कच्चा यकृत् रोगीको खिलाना चाहिए। (सु० अ० ४५)। अरजस्का (जिसको आर्तव न आता हो) स्त्री, बकरी, भेड़ या जंगली सूअरका ताजा रक्त दही, खट्टेफलका रस और गायका घी मिलाकर पीवे। (च० चि०-अ० ३०)।

गगनभेड़ या हवासिल

पृष्ठवंशी : पक्षी-वर्ग (Class : Aves) : **स्टीगेनोपोडीज-गण** (Order : Steganopodes)
फैमिली : पीलीकैनिडी (Family : Pelecanidae)

नाम—(हिं०) गगनभेड़ (भाव्जन), घनचिड़ी; (अ०) हवासिल; (ले०) पेलीकेनस आनोक्रोटेलुस (*Pelecanas onocrotalus*); (अं०) पेलिकन (Pelican)।

वक्तव्य—इसका पोटा बड़ा होता है। इसलिए अरबीमें 'हवासिल' कहलाता है। हवासिल संज्ञा 'हौसल:' जिसका अर्थ 'पोटा' है, का बहुवचन है। इसका पोटा बड़ा होनेसे ही इसके लिए बहुवचनवाची 'हवासिल' संज्ञाका व्यवहार एक वचनमें किया गया।

वर्णन—एक जलपक्षी जो उड़नेमें अधिक समर्थ नहीं होता। इसकी चोंच लंबी-चौड़ी और नीचेको झुकी हुई होती है। इससे पुस्तरवार बनाते हैं। इसके पंख मुरगावीके-से पर्दादार होते हैं। श्वेत और धूसरकृष्ण वर्ण भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इनमें काला दुर्गंधित होता है। सफेदके चमड़ेसे पोस्तीन बनाते हैं। कालेका चमड़ा इसके लिए अनुपयोगी होता है। यह मिश्रमें बहुतायतसे होता है। हिंदुस्तानमें भी पायी जाती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं तर परन्तु इसमें उष्णताकी अपेक्षया तरी अधिक होती है। वैद्योंके अनुसार उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस गलीज एवं दीर्घपाकी, पोस्तीन शीत प्रकृतिको सात्म्य, किन्तु युवा एवं पित्तल (उष्ण) प्रकृतिको असात्म्य, और चर्बी शिरःशूल निवारक है तथा इसके खानेसे पेचिश और अन्त्रशूल (कुलंज) आराम होता है। इसका तेल शोथादिका विलीनकर्ता, सारक और वातनाड़ी बलदायक है तथा आमवात (संधिशूल), पक्षवध, अर्दित यथा अखिल शीत जन्य वेदनाओं एवं मस्तिष्क व्याधिमोंमें लाभकारी हैं। इसके तेल बनानेकी सामान्य विधि यह है कि गगनभेड़ (हवासिल)को पर व बाल एवं अन्त्रादिसे शुद्ध (रहित) करके मांस और बाजू दूर करके इसके तनेको कीमा बना और हड्डियोंको कूटकर तिलके तेलमें मन्दाग्निपर खूब पकायें। इसके बाद तेलको छानकर शीशीमें रख लेवें। (मख्ज़न, खजाइन)। वैद्योंके मतसे इसका मांस हलका है तथा पित्तजशूल, अर्श और सर्पविषमें लाभकारी है।

गदहा

पृष्ठवंशी संघ (Phylum : Chordata); **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
अंगुलेटा-गण (Order : Ungulata);
फैमिली : ईक्विडी (Family : Equidae)

नाम—(हिं०) गदहा, गधा; (अ०) हिमार, हिमार अहली; (फा०) खर, उलाग; (सं०) खर, गर्दभ, भारवाह, रासभ; (ले०) ईक्युअस आसिनेस (*Equus asiness* Linn.); (अं) ऐस (Ass)।

गदही

नाम—(हिं०) गदही, गधी; (अ०) अउतान; (फा०) मादएखर, खरेमादः।

वर्णन—एक प्रसिद्ध चौपाया जो नर और मादा होता है। यह बहुधा बोझ ढोनेके काम आता है। अरबका गदहा बहुत बलवान् होता है। लोग इसपर सवार भी होते हैं।

उपयुक्त अंश—खाल व चर्बी, मांस, कलेजा, शिश्न (इन्द्री), मस्तककी खाल, चर्बी, सुम (खुर), दूध (घी, दही, मक्खन), कानकी मैल, लीद, पेशाब, कानका रक्त आदि। विशेष विवरण हेतु उन-उन शीर्षकोंमें देखें।

प्रकृति—गदहेका मांस दूसरे दर्जेके आदिमें उष्ण और तीसरे दर्जेके आदिमें रूक्ष; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस गोरखर की अपेक्षया अधिक गलीज, दूषित एवं दीर्घपाकी होता है। इसके मांसको नमक, दालचीनी और सोंठके साथ पकाकर खानेसे और मांसरस पी लेनेसे, गठियामें असीम उपकार होता है। इसकी चर्बी खानेसे भी उक्त लाभ होता है। इसकी चर्बीके लेपसे व्रणवस्तु दूर होता है। अन्त्रस्थव्रणपूरणार्थ भी यह चर्बी लाभकारी है। इसका कलेजा (यकृत्) भूनकर नीहार मुँह खानेसे अपस्मार और चातुर्थक ज्वर आराम हो जाता है। इसके सुमको जलाकर प्रतिदिन साढ़े चार माशा खानेसे अपतानक और अपस्मार रोग दूर हो जाता है। इसके सीधे पैरका सुम लेकर छल्ला बनाकर पहिननेसे तथा ताजी लीदका रस कानमें टपकानेसे भी अपस्मार रोग आराम हो जाता है। कष्टप्रसवमें इसके सुमकी धूनी लाभकारी होती है। इसके सुमको जलाकर जैतूनके तेलमें मिलाकर लगानेसे कण्ठमाला, संधिवात और नाड़ीव्रण आराम होता है। इसकी लीद मस्तकपर लगानेसे नकसीरका खून बन्द हो जाता है। गदहेका मूत्र पीनेसे वृक्कशूल आराम हो जाता है। गदहेका ताजा शिश्न उष्ण औषधियोंके साथ पकाकर खानेसे जननेन्द्रिय विवर्धित हो जाती है। इब्नजह्रके अनुसार इसके कानकी मैल मद्य आदिमें मिलाकर पीनेसे अतिनिद्रारोग (मरजुन्नौम) उत्पन्न हो जाता है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। एक बित्ता भर गदहेके मस्तककी खाल निरन्तर वर्षभर बाँधे रखनेसे मृगी आराम हो जाती है। इसके कानका रुधिर बालापस्मारनाशक है। **अहितकर**—वायुको और वायुजन्य रोगोंकी वृद्धि करता है। **निवारण**—तेल, पिच्छिल पदार्थ तथा जुवारिश सकमूनियाके सदृश विरेचन औषधियाँ। **मात्रा**—मांस अभक्ष्य (हराम) है। अतः केवल बाह्य प्रयोगमें आता है।

आयुर्वेदीय मत—गदहेका मांस किंचिद् गुरु, लघु, पाकमें कटु, रुचिकारक, कफपित्तकारक और वल्य (बलप्रद) तथा बृंहण है। तथा जंगली (गोरखर) का मांस गदहेके मांसकी अपेक्षया गुणमें श्रेष्ठतर होता है। (ध० नि०; रा० नि०)। गाय, गदहा और घोड़ेके विष्ठासे सेंक देनेसे शुष्कार्श आराम होते हैं। (च० चि० अ० १४)। गदहेकी जली हुई हड्डीको कदलीक्षार या गायके रुधिरके साथ सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ आराम होता है।

गदही का दूध

नाम—(हिं०) गदहीका दूध; (अ०) लबनुल् अतान; (फा०) शीरेखर, शीरे खरे मादः, शीरे उलाग़; (सं०) गर्दभीपय (क्षीर), खरक्षीर; (द०) गदहेका दूध; (ता०) कजुदइप्पाल; (ते०) गाडिदेपालु; (मल०) कजुनप्पाल;

(कना०) कत्तेहालु; (म०) गाधर च दूद; (गु०) गध-नु-दूध; (सिंह०) नुहोकिरी; (ले०) लॅक असिनी(Lac asinae); (अं०) ऍसेज मिल्क (Asses' milk)।

वर्णन—गदहीके दूधमें जलांश (मस्तु) अधिक और पनीर (जुब्न) और स्नेहांश स्वल्प होता है। 'जामेउस्सनाएअ'में लिखा है कि इसी हेतु यह आमाशयसे शीघ्र नीचे उतर जाता है और अन्यान्य दूधोंकी अपेक्षया स्वल्प पोषण प्राप्त होता है । युवती, परिपुष्ट एवं स्वस्थ तथा नई व्याई हुई और मादी शिशु प्रसवकी हुई गदहीका दूध उत्कृष्टतर होता है । इसका धारोष्ण दूध पीना चाहिए और जो दुहनेके बाद ठंडा हो गया हो उसे नहीं पीना चाहिए।

प्रकृति—इसमें अन्य सभी दूधों की अपेक्षया शीत एवं तरी अधिक है। यह दूसरे दर्जे तक शीत और तीसरे दर्जेमें तर (स्निग्ध) है । वैद्य उष्ण एवं रूक्ष बतलाते हैं ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गदहीका दूध तरी एवं शीत उत्पन्न करनेवाला (शीत-स्निग्ध), मनः प्रसादकर, लेखन, स्रोतोऽवरोधोद्घाटक और उष्ण हृदयको बल देनेवाला है तथा मस्तिष्ककी रूक्षता, अनिद्रा, उरःक्षत राजयक्ष्मा, फुफ्फुसगत व्रण और पैत्तिक ज्वरोंमें गदहीका दुग्धपान परम गुणकारी है । प्रबल दोषोंमें इसकी परिणति अत्यल्प होती है । पित्तसे रिक्त आमाशय होनेपर यह उष्ण एवं रूक्ष प्रकृतिवालेको सात्म्य है । शिश्नपर मर्दन करने से यह कामेच्छाकी अभिवृद्धि करता है । यह गरमीके ज्वर, गरमीकी खांसी, रक्तष्ठीवन, रक्तपित्त, सांसचलने और दिलकी धड़कनमें लाभकारी है तथा जलोदर एवं कृशताको दूर करता है। यक्ष्मारोगमें काली गदहीका दूध लेना चाहिए । शैख़ के अनुसार गदही और बकरी इन दोनोंका दूध रक्तष्ठीवन, उरःक्षत, राजयक्ष्मा और कासके लिए गुणकारी है। वस्ति एवं मूत्रमार्गस्थ व्रणमें इसे पीनेसे उपकार होता है। गदहीका दूध नाक, कान और मूर्छामें टपकाने से मस्तिष्कको तरावट प्राप्त होती है, और अनिद्रा, उष्णता एवं रूक्ष मस्तिष्क व्याधि, नकसीर, उष्णताजन्य कर्णशूल तथा नेत्राभिष्यंद, नेत्रदाह, अश्रुस्राव, सुलाक़ और तरफ़ा आदि व्यधियां शान्त होती हैं । विशेषकर अंडे की सफेदी और गुलरोगनके साथ इसका उपयोग तरफ़ा के लिए लाभकारी है। सूती कपड़ेका एक साफ टुकड़ा लेकर गदहीके दूधमें भिगोकर सिरके अग्र भाग, कान और नेत्रके ऊपर रखने और गरम होने या सूख जाने पर उसे बदलते रहनेसे भी उक्त व्यधियां शान्त हो जाती हैं । कंठक्षत, दन्तवेष्ट, गलशुण्डिका एवं गलान्तग्रन्थिशोथमें तथा दांत और मसूढ़ोंको शक्ति देने और दन्तशूल मिटानेके लिए अकेला या अमलतासके गूदाके साथ इसका गण्डूष लाभकारी है। इसमें कहरुवा या सन्दरूस महीन पीसकर नाकमें टपकानेसे नकसीरका खून बन्द हो जाता है । कपड़े या रूईकी बत्ती गदहीके दूधमें भिगोकर शिश्नके छिद्रमें रखनेसे मूत्रदाह मिटता है; और खूनखराबा, गिल अरमनी तथा कद्दूके तेलके साथ इसकी बत्ती औपसर्गिक पूयमेह (सूज़ाक) में गुणकारी है । इसी प्रकार अकेला या उक्त औषधियोंके साथ उक्त रोगोंमें इसकी उत्तरवस्ति लाभकारी है। विष-औषधियोंके अवगुण निवारणके लिए इसका दूध पीना गुणकारी है। (मरख़्जन, मुहीत, खजाइन आदि)।

अहितकर—यह शीत एवं कफ प्रकृतिवालोंको असात्म्य और स्निग्ध (तर) प्रकृतिवालोंको भी अहितकर है। जिसके शीतजन्य कर्णक्ष्वेड, शिरोभ्रम और शिरःशूल हो उनको भी यह अहितकर है। उसे पीकर सोजाना तो बहुत ही हानिकारक है। इससे नेत्रकी रोशनी कम हो जाती है और नेत्रजालक उत्पन्न हो जाता है। यह मसूढ़ों और वातनाड़ियोंको शिथिल करता है। परन्तु इसे पीते ही सिरका और गुलाबजलसे कुल्ली कर लेनेसे इसके उक्त दोषका निवारण हो जाता है। इसके पीनेसे कभी-कभी मिचली एवं अम्लोद्गार आने लगता है, जिसका निवारण गुलकंद है। प्रतिनिधि—बकरी, स्त्री और भेड़का दूध। गदहीका दूध बकरी और भेड़ीके दूधसे पतला होता है। मात्रा—४ तोला से १४ तोले तक चीनी, कतीरा, कद्दूके बीजोंके तेल, बबूलके गोंद, सतमुलेठी आदि तथा तत्सदृश द्रव्योंके साथ।

आयुर्वेदीय मत—गधीका दूध मधुर, अम्ल, लवणानुरस, रूक्ष, गुरु तथा श्वास, खाँसी और बालकोंके रोगोंको दूर करने वाला है। (ध० नि०)। गदहेका मूत्र—संग्रहणी, शुक्रमेह, कुष्ठ और बुद्धिभ्रंश (खपत) इन रोगोंको

नष्ट करता, उदर एवं उदरगत कृमियोंको मिटाता तथा सूखी खुजली और जलोदरको लाभ पहुँचाता है। गधेका मूत्र–दीपन तथा गर (कृत्रिम विष), अपस्मार, उन्माद, ग्रहणीरोग, कृमि और विषका नाश करने वाला है। (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५)। राजनिघण्टुमें यह विशेष लिखा है—यह पथ्य, दीपन और बलप्रद है।

गाय और बैल

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **आर्टियोडैक्टिला-गण** (Order : Artiodactyla) : **रुमिनैन्टिआ-उपगण** (Sub-order : Ruminantia) **फैमिलो बोविडी** (Family : Bovidae)

नाम—(हिं०; गु०, म०, को०), गाय, गऊ, नर बैल, वर्धा, साँड़; (अ०) बकर (नर-सौर); (फा०) गाव, गावमादा, (नर-नरगाव); (सं०) गो, गौ, सुरभि, (नर-वृषभ); बलीवर्द, गौः(गो); (बं०) गो, गोरू; (ले०) बॉस टॉरुस (*Bos taurus* Linn.); (अं०) काउ (Cow); (नर) आक्स (Ox), बुलक (Bullock)। सूरागाय (Yak)।

वर्णन—समस्त संसारमें पाया जानेवाला और हाथीके समान स्थूल शरीरवाला होता है। यह प्रसिद्ध स्तनधारी चतुष्पद प्राणी है। इसको (नरको) बैल कहते हैं। जंगली बैलका कद छः फुटके लगभग ऊँचा होता है।

उपयुक्त अंग–(१) पित्त (ले०) Fel bovis; (अं०) Ox-gall or bile; (अ०) सफराउल् बक़र; (फा०) जहरएगाव। (२) रोचना, गोरोचन (ले०) Fel Bovinum Purificatum; (अ०) हजरुल्बक़र; (फा०) बादजहर-गावी, गावरया रोहन। (३) गोवत्साण्ड, बछड़ेका वृषण (अंड); (अ०) खसीउल् अजाजील; (फा०) खुस्या गोसांक। (४) दूध (अ०) लब्नुल्बक़र; (फा०) शीरगाव; (सं०) गोदुग्ध (–क्षीर), गव्य दुग्ध; (अं०) काऊज मिल्क (Cow's milk)। (५) दही (फा०) जुग़रात, मास्त; (अ०) सुगरात; (सं०) दधि; (अं०) कर्ड (Curd)। (६) मक्खन–(अ०) जबद; (फा०) मस्क; (सं०) नवनीत; (अं०) बटर (Butter)। (७) सींग (अ०) क़र्नुल्बक़र, क़र्नुस्सौर। (८) मांस (अ०) लहमुलबकर; (फा०) गोश्तगाव; (सं०) गोमांस; (अं०) बीफ (Beef)। (९) मूत्र-(अ०) बौलुल्बक़र; (फा०) पेशाबगाव; (सं०) गोमूत्र; (अं०) काउज युरिन (Cow's urine)। (१०) गोबर (अ०) ख़सा, अस्साउल्बक़र; (सं०) गोबर, गोमय; (अं०) काऊ-डंग (Cow-dung)।

रासायनिक संगठन—ऐल्ब्युमिन ४%, स्नेह (मक्खन ४%) शर्करा (दुग्धशर्करा) ५%, विभिन्न लवण २% तथा जल ८६% होता है। शरीरमें अस्थिनिर्माणके लिए तथा रक्तको उचित रूपमें गाढ़ा बनाये रखनेके लिए कैल्सियम फास्फेटकी अतीव आवश्यकता होती है तथा केवल आवश्यकता ही नहीं अपितु इसकी उपस्थिति अनिवार्य है। गोदूधमें वह प्रचुर परिमाणमें उपलब्ध है। गोदुग्धमें अन्य खनिज घटक पोटैसियम तथा मैगनीसियम सल्फेट (दोनों लवण विशेष), सोडियम् क्लोराइड (साँभर नमक) तथा स्वल्प परिमाणमें लौह फास्फेट (आयरन) के लवण हैं।

गायका दूध—

वर्णन आदि—इसके स्नेहांश (दुहनियत), सान्द्रांश अर्थात् छेना (जुब्नियत) और द्रवांश या जलांश अर्थात् छेनेका पानी (माइयत) ये तीनों उपादान अन्य दूधोंकी अपेक्षया समप्रमाणमें होते हैं। भैंसके दूधको छोड़कर जिसमें अपेक्षाकृत अधिक स्नेहांश एवं सान्द्रत्व होता है, शेष अन्य दूधोंकी अपेक्षया इसमें स्नेहांश अभिभूत होता है तथा किसी भाँति सान्द्रत्व भी अधिक होता है। जवान, मोटी और नयी गायका दूध श्रेष्ठ होता है।

प्रकृति—यह समशीतोष्ण स्निग्ध है तथा इसमें मलभूत द्रव होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह पुष्टिकर, प्रीणन, शीघ्रपाकी, वृष्य (शुक्रजनक), मस्तिष्क बलदायक, बृंहण और अवरोधोद्घाटक है तथा इससे पायखाना खुलकर होता है और यह व्रजोच्छ्राय उत्पन्न करता है। यह दिलकी धड़कन, दोषजज्वर रहित उरःक्षत, राजयक्ष्मा और फुफ्फुस-व्रणको लाभ पहुँचाता है और चिन्ता, वार्तिक

अन्यथाज्ञान (वसवास), विस्मृति और मालीखोलियाको दूर करता है तथा कपोलोंका रंग निखारता एवं नासारोगमें लाभ करता है। इसकी खीर और फीरनीसे कब्ज दूर होता है तथा कामोद्दीपन होता है। वंगके सकोरेको उसमें घिसकर उष्णशोथ एवं वातरक्त पर लेप करनेसे लाभ होता है। अहितकर—दीर्घपाकी है। इसका अतिसेवन अनेक रोगोंका जनक है। निवारण–शहद एवं शर्करा। प्रतिनिधि–वैद्योंके मतसे बकरी दूध।

नव्यमत—शरीरकी अस्थियों, वातनाड़ियों, मांसपेशियों तथा अन्यधातुओं की पुष्टि एवं वृद्धिके लिए जिन-जिन उपादानोंकी आवश्यकता होती है वह सबके सब दूधमें विद्यमान हैं। इसमें वे जीवनीय भी उपस्थित हैं जो बालकके फक्क तथा शोष या सूखा रोग और उन रोगोंकी जो पोषणके अभावसे होते हैं प्रकृति प्रदत्त औषध हैं। (इंडियन मेटीरीया मेडिका)।

आयुर्वेदीय मत—गोक्षीरको वेदों, पुराणों और आयुर्वेदमें भी अमृत एवं सब क्षीरोंमें श्रेष्ठ बताया गया है। गायका दूध अल्प अभिष्यन्दि, रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, रसायन, उत्तम जीवनीय, मेध्य, बल्य, स्तन्यकर, क्षतक्षीणके लिए हितकर तथा वात, पित्त, श्रम, भ्रम, मद, अलक्ष्मी, स्वास, कास, अत्यंततया सफेद सर, भूख, जीर्णज्वर, मूत्रकृच्छ और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ ४९; अ हृ० सू० ५)। गायका दही स्निग्ध, विपाकमें मधुर, दीपन, बलवर्धक, पवित्र, रुचिकर और वातहर है। और गुणकारी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ है। गायका घी विपाकमें मधुर, शीतल, वात, पित्त और विषनाशक, तथा नेत्रके लिए हितकर वस्तुओंमें श्रेष्ट, बलकारक और सब प्रकारके घीमें गुणोंमें श्रेष्ट है। (सु० सू० अ ४६)।

गाय का मांस—

प्रकृति—गरम और खुश्क। वक्तव्य–इसके मांसमें ऊँटके मांससे गर्मी व खुश्की कम है। परन्तु बकरीके मांससे खुश्की बढ़ी हुई है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीर्घपाकी एवं गलीज है तथा सान्द्र सौदावी रक्त उत्पन्न करता है। इसीलिए इसके सेवनसे सौदावी रोग उत्पन्न होते हैं, जैसे–कर्कटार्बुद (सरतान), कुष्ठ, प्लीहाशोथ, श्लीपद, सिराकुटिलता (दवाली), व्यंग (बहक), कच्छू, भ्रम और सिरका गंज (खालित्य)। इसका निरन्तर सेवन गठिया और गृध्रसीके रोगीके लिए अहितकर है। मद्य इसका उत्तम पाचक है। अस्तु जो मद्य न पीता हो उसे इसका सेवन उचित नहीं है। इसके सेवन करनेवालेको विरेचन द्वारा सौदाका शोधन करते रहना चाहिए। इसे सेवन करनेका श्रेष्टतर काल रबीकी ऋतु है यदि शीतल प्रकृति एवं मंदाग्गिवालेको इसे खानेकी इच्छा हो तो यह उचित है कि इसे खूब गलाकर पकाये और गरम मशाला डाले तथा इसे भक्षणोपरान्त छुहारेको छोड़कर राई, तेजपात, शहद और कोई मिष्ट पदार्थ सेवन करें और शीघ्र पानी नहीं पीवें। अपितु रूक्षता बढ़नेपर ही पानी पीवें। इसके साथ साथ सिरकेका सेवन उचित नहीं क्योंकि इससे सौदा अधिक उत्पन्न होता है। इसका भेजा और सिरका मांस कामोद्दीपक (वाजीकर है)। अहितकर–पूर्वमें उनका उल्लेख किया है। बछड़ेका मांस प्लीहाके लिए अहितकर हैं। निवारण–दालचीनी, कालीमिर्च और सोंठ डालकर पकाना और खूब गलाना। इसके लिए इसे खरबूजा एवं पपीताका छिलका या जंगली अंजीर या कचरी डालकर पकाना है।

आयुर्वेदीय मत—गोमांस केवल वातविषमज्वर, सूखी खाँसी, श्रम (थकावट), अति तीक्ष्ण अग्नि (भस्मक रोग), मांसक्षय इनमें हितकर है। (च० सू० अ० २७)। सुश्रुतमें इनके अतिरिक्त श्वासमें लाभकारी एवं पवित्र लिखा है। (सु०सू० अ०४६)। काश्यपसंहितामें इनके अतिरिक्त इसे कफ तथा पित्त कारक, गुरु, विदाहि एवं बृंहण भी लिखा है। गैंडेका मांस इसके समान होता है। भावप्रकाशमें इसके अतिरिक्त स्निग्ध, बलकारक, अस्वस्थोंके लिए अपथ्य तथा पीनसरोगनाशक बताया गया है। (भा० प्र०)।

पित्त—

प्रकृति—चौथे दर्जेके आदिमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गायका पित्त मिलाकर आहारमें गायके मांसका कबाब खिलानेसे उसी दिन कृच्छ्रश्वास रोग नष्ट हो जाता है। शरीरके काले दागों पर इसका पित्त लगानेसे वे दूर हो जाते हैं। इसका पित्त शहदमें मिलाकर नेत्रमें लगानेमें धुंध जाती रहती है। इसके पित्तको गंदनेके स्वरसके साथ लगानेसे अर्शके अंकुर मिटजाते हैं। विषनिवारणके लिए ७५० मि० ग्रा० (६ रत्ती)की मात्रामें इसका पित्त कतीरा और शहदके साथ जो इसका प्रतिविष है, पिलाते हैं।

चर्बी—

गुण-कर्म—सभी गुणोंमें सूअरकी चर्बीसे श्रेष्ठतर है।

आयुर्वेदीय मत—गुदा निकलने पर गोवसा लगा प्रवेश करदेनेसे गुदाका निकलना (गुदभ्रंश) दूर होता है। इसी प्रकार योनिभ्रंशमें करें (चक्रदत्त)।

गोबर—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहले या तीसरे दर्जेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गायके गोबरका पानी नाकमें टपकानेसे टीस जाती रहती है। मस्सोंपर गायका गोबर लगानेसे मस्से नष्ट हो जाते हैं। गर्भिणी स्त्रीको प्रसूतिके समय गोबरकी धूनी देनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है, तथा भ्रूण मृत हो गया हो तो मृतावस्थामें ही निकल जाता है और आँवल भी निकल जाता है। यही प्रयोजन कष्ट-प्रसूतिमें भी उपलकी धूनी देनेका है। घरमें गोबर सुलगानेसे कीट-पतंग भाग जाते हैं। गोबरके लेपसे गठिया, गृध्रसीशूल, सिरके गंज और दाउस्सालबमें उपकार होता है। कंठमाला, मस्सा और भिड़के काटेको सिरकेके साथ इसका सेवन लाभकारी होता है। शोथघ्न औषधियोंके साथ जलोदर और बाकलाके बीजके साथ स्तन-शोथको उतारता है। गर्भवती स्त्रीकी नाभिके नीचे इसका लेप करनेसे मृतभ्रूण निकल जाता है। यदि देर तक लेप करने देवें तो जीवित भ्रूण भी मृतप्राय हो जाता है। पेडूपर इसका लेप करनेसे कुलंज (शूल) आराम होता है। अहितकर—कासजनक है। निवारण—बकरीका दूध। मात्रा—९ माशे (तजकिरा दाऊद अंताकी)।

आयुर्वेदीय मत—गोबर रूक्ष, उष्ण, कटु किंचित पित्तको बढ़ाने वाला और हलका है तथा वायुविकार शिरःशूल, नेत्रतिमिर, व्रणशोथ ओर अर्शके मस्सों तथा चोटकी वेदनाको शांत करता हैं। (वृद्ध वैद्याधार)।

नव्यमत—ताजा गोबर जलेपर लगाया जाय तो जलन तथा पीड़ा शान्त करता हैं। यदि किसी चाकू अथवा अस्त्रसे कटे हुए व्रण अथवा खुरसट (Bruise) पर लगायाजावे तो रक्तप्रवाहको बन्द करता हैं और व्रणका रोपण कर देता है। चोट लगनेके कारण पीड़ा हो अवथा व्रणमें पीड़ा हो तो गरम करके पलस्तरके रूपमें प्रयोग करनेसे आशातीत लाभ होता है। (इं० मे० मे०)।

डा० ए० पी० रुडोल्फ सो० आई० ई०, पी० एच्० डी० के अनुसार गोबर प्रबल कीटाणुनाशक है, किन्तु मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि हिन्दू इस रहस्यको चिरकालसे जानते थे क्योंकि वह अपने भोजनालयोंको स्वच्छ रखनेके लिए इसीका प्रयोग करते आ रहें हैं।

गाय की हड्डी और सींग—

प्रकृति—सींग पहले दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गाय या बैलकी हड्डी जलाकर सिरकेमें मिलाकर लगानेसे खाज मिटती है।

आयुर्वेदीय मत—गायकी हड्डीका उपयोग माहेश्वर धूपमें हुआ है। गोदन्त (गवादन्त) को पानीमें घिसकर विन्दुमात्र लेप करनेसे अत्यन्त कठिन शोथका पाचन और भेदन होता है (भै० र०)। गायके ऊँचे उठे हुए सींगको छीलकर उससे कपड़ोंको धूपन करें। उस कपड़ेको पहनकर रमण करनेसे ध्वजभंगवालेका भी लिंग पतित नहीं होता।

गायके बछड़ेका वृषण (खुसीउल् अजाजील)—

बछड़ेका वृषण (गोवत्साण्ड) सुखाकर मद्यके साथ सेवन करनेसे कामोद्दीपन होकर शिश्नोच्छ्राय होता है। (मख़्जन)।

पेशाब (मूत्र)—

नाम—(हिं०) गायका मूत्र; (अ०) बौलुल्बकर; (फा०) पेशाब गाय; (सं०) गोमूत्र, गव्य; (अं०) काऊज यूरिन (Cow's urine)।

रासायनिक संगठन—गायके मूत्रमें घनीभूत रूपमें अमोनिया (Ammonia) होता है।

कल्प—गोमूत्रको २-३ बार ऊनी कपड़ेसे छानकर मिट्टी या लोहेके बरतनमें इतना पकावें जितनेमें वह गाढ़ा हो जाय। पीछे नीचे उतारकर, जितनेमें शुष्क हो जाय उतना धूपमें सुखाकर शीशीमें भरकर सुरक्षित रखें। गुण-कर्ममें यह गोमूत्रके समान है। मात्रा–१ से ३ मि० लि० (१ से ३ माशा) एक छटांक पानीमें मिलाकर देवें।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मूत्र लगानेसे झाइं दूर होती है।

आयुर्वेदीय मत—गोमूत्र सर्वमूत्रोंमें श्रेष्ठ है। अतः जहाँ विशिष्ट मूत्रका उल्लेख नहीं है या केवल मूत्र लिखा है, वहाँ पर गोमूत्रका ही प्रयोग करना चाहिये। (भा० प्र०)। गोमूत्र कटु, किंचित् मधुर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पित्तकर, तथा कफवात, कृमि, कुष्ठ, शूल, गुल्म, उदर, आनाह और कच्छूको दूर करनेवाला है। मूत्र प्रयोग साध्य विरेचन आदिमें गायके मूत्रका प्रयोग करना चाहिए। (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—चिकित्सामें इसका अन्तर्बाह्य उभयविध पुष्कल प्रयोग होता है। गोमूत्र मृदुसारक और मूत्रल है। अस्तु, यदि गोमूत्र स्वस्थ मनुष्यको दिया जाय तो उससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है; परन्तु मूत्रपिंड या वृक्क विकृत हो तो मूत्रका प्रमाण बहुत बढ़ता है। इसहेतु इसे खाली पेट २॥ तोलेकी मात्रामें देना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिन देनेसे धमनियां विकसित होती हैं और रक्तका दबाव कम होता है जिससे मूत्रका प्रमाण और भी बढ़ता है। २४ घंटेमें ६०-८० औंस पर्यंत बढ़ता है, तथा शोथ, उदर आदि लक्षण कम होते हैं। यकृद्दाल्युदर (Cirrhosis of the liver)के लिए १-२ औंसकी मात्रामें इसके प्रयोगकी बड़ी प्रशंसाकी जाती है। गोमूत्रसे भूख बढ़ती हैं और रोगीकी जीभ सुधरती है। केवल गोमूत्र देनेसे दस्त १-२ से अधिक नहीं होते। इसलिए उनके साथ घणसर (नागदन्ती मूल (Croton oblongifolia) देना पड़ता है। यह वृक्कके जीर्णशोथ (Chronic Nephritis) के लिए उत्तम औषध है। गोमूत्रकी जितनी प्रशंसाकी जाय उतनी ही कम है (डा० वा० ग० देसाई कृत—भारतीय रसशास्त्र)। डॉ० पी० एल० अग्निहोत्री एम० डी०, डी० एस०, ई० एम० आर० ए० एस० (लण्डन) कहते हैं कि चिकित्साक्षेत्रमें अपने जीवन-व्यापी अनुभवके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि किसी भी प्रकारके उदररोगके लिए गोमूत्र एक संतोषप्रद एवं पूर्ण औषधि है।

नादकर्णी—गोमूत्रका आभ्यन्तरिक प्रयोग यकृद्दाल्युदरमें बड़ा लाभ करता है। इसकी मात्रा २॥–५ तोले तक है। गोमूत्र मृदुविरेचक तथा मूत्रल है और इस गुणके लिए इसका प्रयोग पुनर्नवामण्डूर और मरिचादि तैलके बनानेमें किया जाता है। इन औषधियोंसे उदरगुहामें रहनेवाले अवयवों (यथा-यकृत्,-प्लीहा, वृक्क आदि)की वृद्धि सशूल, अजीर्ण, जलोदर, सर्वांगशोथ, कामला, महाकुष्ठ, भयंकर पुरातन खर्जू और दुःसाध्य त्वक् रोग निश्चित आराम होते हैं। (इं० मे० मे०)।

बैल

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस दीर्घपाकी, वायुकारक, सान्द्र रक्तोत्पन्न करता तथा वायु एवं

सौदाके रोग उत्पन्न करता है। इस्बंदको जवान बैलके पेशाबमें पका-पीसकर लगानेसे स्वाप (सुन्नता) दूर होता है। इसकी चर्बी लगानेसे कण्ठमाला और अर्श आराम होते हैं। वाजीकरणके लिए जवान बछड़ेका शिश्न एवं मुश्क सुखाकर रेतीसे रेतकर शहदमें मिलाकर खाना चाहिए। इसे ९ माशेकी मात्रामें अधभुने अंडेमें मिलाकर चाटनेसे भी वाजीकरण होता है और एक माशा दो अधभुने अंडेकी जर्दीके साथ खानेसे भी उक्त लाभ होता है। बैलके शिश्नके स्थानमें गायका भेजा घीमें तलकर वाजीकरण औषधयोगमें डालनेसे भी उक्त कार्य होता है। बैलका साफ किया हुआ पित्त, पिलाई लिए हरा, स्वादमें मधुर-तिक्त, जल एवं सुरामें विलेय, सारक, बल्य और पाचनकी कमजोरीमें बहुत गुणकारी है, विशेषतः उस दशामें जब भोजनोपरान्त वमन हो जाता है। पित्त उत्पन्न न होनेसे विबन्ध (कब्ज) रहता है। तब भी इसका सेवन हितावह है तथा विरेचन औषधियोंके साथ मिलाकर २॥ रत्तीसे ५ रत्ती तककी मात्रामें खिलाते हैं। बैलका गरम-गरम ताजा रक्त ७ तोलेकी मात्रामें विषवत् कार्य करता है।

गिंजाई

नाम—(हिं०) गिंजाई, ग्वालिन, घोड़सवार, घिनौरी; (अ०) हृद्बः; (सं०) गोपालिका।

वक्तव्य—खजाइनुल् अदवियामें इसे गिजाई लिखा है। यह सरवानीसे भिन्न है।

वर्णन—लम्बा, कालाई लिए हुए लालरंगका सलाईकी तरह एक बरसाती कीड़ा जो नमनाक स्थानोंमें एकत्र होता है। इसके पैर बारीक और बहुतसे होते हैं। इसके ऊपर बारीक बाल और गोल रेखायें होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शिश्न और वृषणोंको इसकी धूनी देनेसे वाजीकरण शक्ति बिल्कुल जाती रहती है। इसलिए बदमाश घोड़ोंको इसकी धूनी देते हैं। जंगलमें एक बड़ी गिंजाई होती है जिसकी लम्बाई न्यूनाधिक एक बित्ता होती है। यदि इसको सुखाकर घोड़ोंके वृषणोंके नीचे धूनी देवें तो वह बधिया (आख्ता) हो जाता है। (ख० अ०)।

गिद्ध

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षीवर्ग** (Class : Aves) : **ऐक्सीपिट्रीज-गण** (Order : Accipitres)
फैमिली : ईजीपिडी (Family : Aegipidae)

नाम—(हिं०) गिद्ध, गिध; (अ०) नस्र; (फा०) कर्गस; (सं०) गृध्र; (ले०) सारियोजिप्स जाति *Sareogyps spp.* (अं०) वल्चर (Vulture), टेलिअन (Taleon)। राजगिद्ध, गिद्धराज–King vulture.

वर्णन—एक प्रकारका बड़ा मांसाहारी प्रसिद्ध पक्षी जिसकी छोटी-बड़ी कई जातियाँ होती हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्ण तथा उपयोग—इसका मांस बहुत गरम और रूक्ष है। रूक्षता गरमीसे बढ़ी होती है। यह सान्द्र वायु, कुलंज (शूल) और पतले अन्त्रगत तथा हर स्थानके अवरोध (सुद्दे)का निवारण करता है, अश्मरीको तोड़कर निकाल देता है और कफका नाश करता है। इसके मांससे रद्दी कैमूस बनाता है। इसे खानेसे आक्षेप और एलाऊस नष्ट होते हैं। इसका पित्त आँखमें लगानेसे मोतियाबिन्दमें लाभ होता है इसकी चर्बी पिघलाकर कानमें डालते रहनेसे पुराना बहिरापन (बाधिर्य) नष्ट होता है। इसके अंडेका पतला लेप शिश्नको शक्ति प्रदानकरता है। इसकी बीट लगानेसे झांई साफ होती है और घेंघा (गलगण्ड–वरमगुलू) विलीन हो जाता है। इसके परकी राख तेलमें मिलाकर लगानेसे खुजली और घाव आराम होते हैं। अहितकर–इसका मांस रद्दी आहार है। निवारण–दालचीनी और सिरका।

आयुर्वेदीय मत—यह प्रसह (शिकारी) वर्गका पक्षी है। इसके गुणकर्मादि कौएके समान है। दे० "कौआ"।

गिरगिट

कार्डेटा-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia) :
स्क्वैमेटा-गण (Order : Squamata) :
फैमिली : ऐगेमिडी (Family : Agamidae)

नाम—(हिं०) गिरगि(ग)ट, गिर्गिट, गिरगिटान, गिरदा(दौ) ना; (अ०) हिर्बा, जम्लुल् यहूद; (फा०) आफ़ताबपरस्त, बूकल्मून; (सं०) कृकलास (क), उद्यानगोधिका; (ले०) कैलोलीज वर्सीकलर *(Caloles versicolor)*; (अं०) कामन इंडियन गार्डेन लिज़र्ड (Common Indian Garden Lizard)।

वर्णन—छिपकलीकी जातिका, पर उससे बड़ा एक जंतु जो सूर्यकी किरणोंकी सहायतासे अपने शरीरके अनेक रंग बदल सकता है। यह रंग परिवर्तन उसकी चर्म (Dermis) में वर्तमान रंगजीवकोषोंके फलस्वरूप होता है। इसकी पूँछ लम्बी होती हैं। इसकी गर्दनके बाल खड़े होते हैं। यह सदा सूर्यकी ओर दृष्टि रखता है। इसलिए फारसीमें इसे आफ़ताबपरस्त (सूर्योपासक) कहते हैं। गर्मीके दिनोंमें इसका सिर लाल हो जाता है। यह मक्खी, बिच्छू और कनखजूरेका शिकार करता है। इसके काटनेसे विषलक्षण प्रकट होते हैं।

उपयुक्त अंग—खून, पित्ता, चर्बी, मांस, अंडा आदि।

प्रकृति—चौथे दरजेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पलकोंके बाल उखाड़कर वहाँ इसका खून लगा देनेसे बाल फिर नहीं जमते। इसका पित्त आंखका जाला और फूली काटता है। इसकी चर्बी अग्नि पर पिघलायें और जो द्रव एवं रक्त एकत्रित हो उसे सिरके गंज पर लगानेसे एक बारमें लाभ होता है। इसका मांस पानीमें उबालकर वह पानी स्नानागारके पानीमें डालकर स्नान करनेसे कई दिन तक शरीर हरा बना रहता है। संधिशूलके लिए यह योग बहुत गुणकारक है—धतूरेका फल ४ नग, सोंठ ६ माशे और गिरगिट ३ नग—इनको आध पाव राईके तेलमें पका, तेल छानकर मालिश करें। गिरगिटको पकड़कर उसके गलेमें डोरा मजबूत बांधकर चाकूसे गलेसे मुंह और सिर तक चीरें और जो पीले रंगका द्रव एवं रक्त निकले, उसे लेकर कस्तूरी और आंवलासार गंधक उसमें पीसकर उसी समय पान पर लगाकर शिश्नके ऊपर इस प्रकार बाँधें कि सीवन और सुपारी बचे रहें। इससे अत्यन्त कामोद्दीपन होगा।

विष-लक्षण और उसकी चिकित्सा—गिरगिट किसीको काटता नहीं। परन्तु जब काट लेता है तब काटा हुआ प्राणी मर जाता है। इसका मांस और अंडा दोनों ही घातक विष हैं। मांस खानेसे वमन और हृच्छूल उत्पन्न होता है। इसका मांस खाये हुए की चिकित्सा उसी प्रकार करें जिस प्रकार तेलनीमक्खीके खाये हुएका करते हैं। अंडा खाये हुएको बाजपक्षीकी बीट अंगूरी शराबमें मिलाकर पिलायें और वमन करायें। गायका घी शरीरपर मलें। सूखा अंजीर मक्खन और पखानभेदके साथ खिलावें। (ख० अ०)।

गिलहरी

कार्डेटा-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
कृन्तक-गण (Class : Rodentia)
फैमिली : सिउरिडी (Family : Sciuridae)

नाम—(हिं०) गिलहरी, चेखुर; (अ०) फारतुन्नख्ल; (फा०) मूशकपरां; (सं०) वृक्षशायिका; (ले०) फ्यूनैम्बुलस पिन्नैन्टी *(Funambulus pennanti)*, फ्यूनैम्बुलस पाल्मारुम् *(F. palmarum)*; (अं०) स्क्विर्रेल (Squirrel)।

वर्णन—एक प्रकारका छोटा प्रसिद्ध जानवर जो एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिकामें बहुत अधिकतासे होता है। इसके बाल मुलायम और पूँछ लम्बी होती है। इसकी पीठ पर लम्बाईके रुख तीन-तीन काली और सफेद रेखायें होती हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम (मुहीत), मतांतरसे मांस गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका रक्त लगानेसे शरीरके दाग मिटते हैं। आँखमें लगानेसे दृष्टि तीव्र होती है। इसके मांससे मृगी रोग आराम हो जाता है।

गीदड़

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **थीरिया-उपवर्ग** (Sub-class : Theria) : **क्रव्यभुज-गण** (Order : Carnivora)
फैमिली : कैनिडी (Family : Canidae)

नाम—(हिं०) गीदड़, सिया(आ)र(ल), सिगट, स्यार; (अ०) इब्न आवा, कल्बबर्री; (फा०) शिगाल; (सं०) शृगाल, जम्बु(म्बू)क; (ले०); कैनिस ऑरिउस् (*Canis aureus*); (अं०) जैकल (Jackal)।

वर्णन—भेड़ या कुत्तेकी जातिका एक प्रसिद्ध जानवर जो लोमड़ीसे मिलता-जुलता है।

उपयुक्त अंग—मांस, यकृत्, पित्त, दूध, विष्ठा, खाल, हड्डी आदि।

प्रकृति—मांस गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस अवयवोंको बल देता और वात-कफज रोगोंको नष्ट करता है तथा मद (मालीखोलिया) एवं उन्मादको लाभ पहुँचाता है और जो मृगीरोग अन्तमें उत्पन्न हो उसे दूर करता है। यही दशा इसके यकृत्की है। ४॥ माशेकी मात्रामें इसका यकृत् खानेसे मृगी जाती रहती है। इसका दूध और पित्त आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है। तापतिल्लीके रोगीको १॥ माशा इसका पित्त पिलानेसे उपकार होता है। इलाजुलगुर्बा और तक्मिलएहिन्दी में लिखा है, कि गीदड़के पित्तमें कुछ काली मिर्च भरकर पाकशमें लटका देवें। जब सूख जावे, उसमेंसे दो मिर्च पानीमें पीसकर आवेगके दिन अपस्मारीके दोनों नथुनोंमें दो-तीन बूँद टपका देवें। इससे मृगी बिल्कुल जाती रहेगी। इसकी विष्ठा लगानेसे झाईं मिट जाती है। इसकी खाल कटिमें बाँधनेसे अर्शमें लाभ होता है। इसकी खालसे जलसंत्रास मिटता है। इसकी हड्डी बूरए अरमनीके साथ मिलाकर किलासके दागोंपर लगानेसे रंग बदल जाता है।

आयुर्वेदीय मत—माहेश्वर धूपमें गीदड़की विष्ठा उपयोजित की गयी है।

गुबरैला

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta)
कोलियोप्टेरा-गण (Order : Coleoptera)

नाम—(हिं०) गु(गो)बरैला, गुबरा(रौ)ला, गोबरौरा(ला); (अ०) जाल(जोअल), खुनफ़सा; (फा०) किर्म सिरगीं, खबज़दोर(क), खुरोक; (सं०) गोमयोत्था; (ले०) स्कैराबिउस (*Scarabeus*); (अं०) बीट्ल्स (Beetles)।

वर्णन—एक कीड़ा जिसमें पंखोंके दो जोड़े होते हैं। पंखोंका अगला जोड़ा दृढ़ होता है और उड़नेमें सहायता नहीं देता। ये कई प्रकारके होते हैं, जिनमें छोटा (खुनफ़शा) और बड़ा (जोअल) दो किस्में मुख्य हैं। एक जातिके गुबरैले गोबर ढूंढ़ा करते हैं। गोबर ढूंढ़ने तथा उसीमें निवास करने के उनके स्वभावके कारण ही सम्भवतः इन्हें 'गुबरैला' कहते हैं।

प्रकृति--दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छोटे प्रकारके कीड़े (ख़ुनफ़सा) को पीसकर आँखमें लगानेसे दर्द जाता रहता है। इसके सिरके पीछेकी त्वचा पृथक् करें और जो द्रव भीतरसे निकले उसे सीपमें लेकर उसमें १३॥ माशा एक पतलीसी बत्तीमें लगाकर शिश्नके छिद्रमें रख देवें और शेषको पेडू और वृषणोंपर मल देवें। इससे रुका हुआ मूत्र तुरन्त खुल जावेगा।

बड़े प्रकारके कीड़े (जोअल) के उदरका द्रव आँखमें लगानेसे दृष्टि तीव्र हो जाती है और जाला कट जाता है। इसकी पूँछ काटकर उसमें एक सलाई गड़ोएं और जो द्रव सलाईमें लगे उसे आँखमें फेरें। इससे रतौंधी जाती रहती है। इसको किसी तेलमें पका छानकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। इसका फांट बनाकर पीनेसे यकृद्-आमाशय और अन्त्रके दोष मल मार्गसे निकलते हैं। जलोदरके लिए सुपरीक्षित है। इसे जैतूनके तेलमें पका छानकर अर्शाङ्कुरों पर मलनेसे अर्शाङ्कुर कट जाते हैं। जालीनूसके कथनानुसार इस तेलको कानमें डालनेसे कानका दर्द आराम होता है। कण्ठमाला पर भी इसका लगाना सिद्धिदायक है। इसे उकौता पर लगानेसे लाभ होता है। इसे नलीमें बन्द करके गर्भवती स्त्रीकी जांघ पर बाँधनेसे शीघ्र प्रसव हो जाता है। बिच्छूके दष्ट स्थानपर इसे मल देनेसे लाभ होता है। यह बिच्छूके विषका अगद है।

गुर्दा

नाम—(हि०) गुर्दा; (अ०) कुल्यः; (फा०) गुर्दः; (सं०) वृक्क; (अं०) किड्नी (Kidney)।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध शरीरावयव है, जिसके द्वारा शरीरका द्रवांश मूत्रबनकर यकृत्से वस्तिमें होकर निकलता है। प्रत्येक प्राणीके दो वृक्क होते हैं, जो पृष्ठमध्यके दोनों और एक दाई और एक बाईं ओर स्थित होता है। सेवनार्थ जवान, मोटी और उसी समयकी बध की हुई बकरी का वृक्क श्रेष्ठ होता है।

प्रकृति—गरम औ रूक्ष मतांतरसे पहले दर्जेमें। शैख़के मतसे रूक्षता लिए हुए अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सेवन करनेसे यह वृक्क और कटिको शक्ति प्रदान करता है। इसकी चर्बी कठिन सूजनको उतारती है। प्राणीके समस्त अवयवोंमेंसे यही सर्वाधिक निकृष्ट होता है। इसलिए प्रकृति इसे पचानेकी ओर अधिक ध्यान नहीं देती। अहितकर–यह चिरपाकी, कुपोषक (रदीउल्‌गिजा) है तथा आमाशयसे नीचे देरमें उतरता है। निवारण–कालीमिर्च, दालचीनी और सिरका तथा गुर्देकी चर्बीको तिलतैल या जैतून तैलमें पकाना।

गूह या बीट

नाम—(हिं०) गूह, बीट; (अ०) बराज; (फा०) पायख़ाना; (सं०) विट्, विष्ठा, मल; (ले०) फीसेज (*faeces*); (अं०) स्टूल (stool), डंग (dung of any animal).

गैंडा

नाम—(हिं०) गेंडा, गैंड़ा; (अ०) मरमेस, जरीश, करकद्दन; (फा०) करगद्दन; (सं०) खृगल (अथर्व०), खड्ग (गि), वज्रचर्मा, खड्ग (ड्गि, ड्गी), गण्ड (क); (बं०) गैंडर; (ले०) राइनॉसेरॉस युनिकॉर्निस (*Rhinoceros unicornis* Linn); (अं०) दी ग्रेट वन-हॉर्न्ड राइनोसेरॉस (The great one-horned rhinoceros)।

वर्णन—भैंसे के आकारका एक सींगवाला एक बड़ा पशु जो नदीके किनारे ऐसे दलदल एवं कछारोंमें रहता है जहां जंगल होता है। आसामके घासयुक्त प्रदेशों तथा गंगा सागरके पास सुन्दरवनमें गैंडे बहुत मिलते हैं।

इसका चमड़ा बहुत मोटा एवं कड़ा होता है। इसकी ढाल बनाई जाती है। भारतीय गैंडेके नासा प्रदेश पर एक खड्ग होता है।

उपयुक्त अंग—खाल, मांस, सींग (क़र्नुल्ह़रबीब), दाँत, पंजा, रक्त और मूत्र।

प्रकृति—गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस शरीरावयव में केवल असीम सुस्ती ही नहीं उत्पन्न करता अपितु प्राणनाशका हेतु भी बनता है। इसकी सींग और सुमकी धूनी अर्श, कष्ट प्रसूति और विलेशायी विषकर जंतुओं (हवाम्म) के दंशमें लाभकारी है। तिलके तेलमें निकला हुआ इसकी खालका तेल फोड़े एवं व्रणोंको भर लाता है। इसकी सींगमें यह प्रभाव है कि इसकी अंगूठी बनाकर अंगुलीमें पहन लेनेसे शूल (कुलंज) रोग आराम हो जाता है। यदि इसे गर्भवती स्त्री पहिने तो गर्भपात हो जाय। इसे अर्शके रोगीको पहिनानेसे लाभ होता है। इसकी सींगके प्यालेमें पानी भरकर पीनेसे भी अर्शमें लाभ होता है। सींगको पीसकर खानेसे मृगी जाती रहती है। इसकी सींगका बुरादा गर्भाशयमें रखनेसे गर्भपात हो जाता है। गेंडेकी सींगके प्यालोंको विषपरीक्षाके काममें लेते हैं। योनिमें सींगकी धूनी देनेसे पुनः प्रसव वेदना आरम्भ होकर सुखपूर्वक प्रसव होता है। उपयोगके लिए काले नोंकदार सींगही सर्वोत्तम एवं ग्राह्य होते हैं और सदा इसे ही काममें लेना चाहिए।

आयुर्वेदीय मत—गैंडे (खड्गि) का मांस कषाय, विरूक्षण, मूत्रसंग्राहक, आयुवर्धक, पितरोंको (श्राद्धमें) हितकर (पित्र्यं), पवित्र तथा कफ और वातनाशक है। (सु० सू० अ० ४६/१०३)।

गोरोचन

नाम—(हिं०, बं०, म०, द०) गो (गौ) रोचन, गो (गौ) लोचन; (अ०) हजरुल्बकर; (फा०) संगगाव; (सं०) गोरोचना, रोचना, गोपित्त; (गु०) गोरोचन; गोरुचंदन; (उर्दू) गावरोहन; (ते०) गोरोचनमु; (लै०) फेल बोविनुम् प्योरिफिकेटुम् (*Fel bovinum purificatum*), फेल टॉरी डिप्यूरेटस् (Fel tauri depuratus); (अं०) प्योरिफायड ऑक्स-गॉल या ऑक्स बाइल (Purified Ox-gall or Ox-bile)।

वर्णन—फादज़हर हैवानी जान्तव अश्मरी (पथरी) का एक भेद है, जो गाय या बैलके पित्ताशयमें पायी, जाती है। इसका आकार गोल या अंडे जैसा, रंग कालाई लिए पीला और स्वाद कड़ुआ (तिक्त) होता है। इसमें कुछ सुगंध भी होती है। यह हलकी होती है और आसानीसे अंगुलियोंके मध्य रखकर तोड़ी जा सकती है। इसे तोड़ने पर मध्यमें कुछ खोखला और जैसे गोल कागजोंकी तहें जमाई गई हों अथवा वृक्षके कटे तनेसे उसकी स्तरें दिखाई दें, दृष्टिगोचर होता है। यह बाजारमें नकली भी मिलती है। असलीकी पहिचान इसके अन्दरके गोल दायरे समझे जाते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्ण—श्वयथुविलयन, वातहर, बृंहण, मूत्रल, आर्तवजनन तथा अश्मरीघ्न। उपयोग—इसका लेप श्वित्र, चेहरेके काले दाग और अर्शमें लाभ पहुँचाता है। प्रतिदिन २। माशे गोरोचनको अर्क गुलाबमें घिसकर अपस्मारीको पिलानेसे फिर उम्रभर रोगका पुनराक्रण नहीं होता। इसे नेत्रमें लगानेसे जालाकट जाता है और दृष्टि तीव्र होती है। मात्र–३१५ मि० ग्रा० से ६२५ मि० ग्रा० (२।।–५ रत्ती) तक। अल्पमात्रामें यह मृदुसारक है। गोरोचनमें ईस्ट्रोजन (oestrogen) उपयुक्त अर्थात् प्रचुर मात्रामें होनेके कारण यह योनि मार्गसे मासिक स्रावको जारी करता है।

गोरोचनके प्रभावसे रक्तमें दबाव बढ़कर वृक्कोंसे मूत्र अधिक मात्रामें छनता है। गोरोचनके प्रयोगसे मूत्र खुलकर आता है। वह व्यक्ति जिसे जोर लगाकर मूत्र उतारना पड़ता है, गोरोचनसे लाभ उठा सकता है। गोरोचनमें यह भी गुण है कि इसके प्रयोगसे मूत्रमें रेतक्षरणका रोगभी दूर हो जाता है।

गोरोचनसे यकृत्की शक्ति बढ़ती है। उसके स्राव नियमितता ग्रहण करते हैं। पांडुरोग दूर होता है। गोरोचन बच्चोंके पसली चलने तथा फुप्फुस रोगमें लाभदायक है। आँखमें लगानेसे फूलेको काट देता है और आँखकी ज्योति बढ़ती है। उत्तेजक होनेके कारण इसे जहाँ लगाया जाय, वहाँके रक्त परिभ्रमणको वढ़ा देता है। यही कारण है कि इसे पानीमें घिसकर श्वेत एवं रक्त कुष्ठपर लगानेसे लाभ होता है। व्रणनाशक होनेसे यह अर्श एवं व्रणोंपर लगाया जाता है। शराबमें घिसकर श्वेत कुष्ठकर लगानेसे काले बाल निकल आते हैं और शिरके गञ्ज पर लगानेसे पुनः बालों की जड़ें जम जाती हैं और बाल निकल आते हैं। परन्तु श्वेत बालोंको उखाड़कर इसे लगाना चाहिये।

गोरोचन मसूरके बराबर चुकन्दरके स्वरसमें घिसकर नस्य लेनेसे आँखमें मोतियाबिन्द नहीं उतरता। यदि उतरा हुआ हो तो कम हो जाता है। यह कफ क्षेत्रमें कमी करके पित्तको बढ़ाकर मोतियाबिन्दमें लाभ करता है।

प्रतिदिन स्नानके पश्चात् २ रत्तीकी मात्रामें गोरोचन सेवन करनेसे कुछ दिनोंमें ही मनुष्य मोटा हो जाता है। मिश्र और इराकमें क्षीण स्त्रियाँ मोटा एवं पुष्ट होनेके लिए बादामकी गिरी और खोपड़ेके साथ गोरोचन मिलाकर प्रयोग करती हैं। ऊष्ण प्रकृतिवालोंको इसे न खाना चाहिये। ४ ग्राम (४ माशे)की मात्रामें इसे खानेसे मनुष्य मर जाता है।

आयुर्वेदीय मत—गोरोचन रसमें तिक्त, उष्णवीर्य (भावप्रकाश, राजनिघण्टु और निघण्टरत्नाकरके मतसे शीत वीर्य) तथा वात, कफ, पांडुरोग, कामला और श्वित्रको दूर करनेवाला है। काश्यपसंहिता में इसे रसमें तिक्त, लवण, रूक्ष, उष्णवीर्य, वातनाशक, पिच्छिल, घन, पापनाशक तथा दरिद्रतानिवारक (मङ्गल्य) और पक्ष्मवर्धक लिखा है। भावप्रकाशमें इसे वशीकारक, मङ्गल तथा कांति बढ़ानेवाला तथा विष, 'अलक्ष्मी (दरिद्रता), गृहबाधा, उन्माद, गर्भस्राव, क्षत और रक्तदोषको दूर करनेवाला भी लिखा है। राजनिघण्टुमें इसे रुचिकारक, पथ्य, शृंगार-मंगल-मोहकारक, पाचन, कृमिकुष्ठनाशक, मूत्रग्रहनाशक और निघण्टरत्नाकरमें वृष्य भी लिखा है।

गोह

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia) : **स्क्वैमेटा-गण** (Order : Squamata) : **लैसरटिलिया-उपगण** (Sub-order : Lacertilia) : **फैमिली : वैरेनिडी** (Family : Varanidae)

नाम—(हिं०) गोह (स्त्री०), गोहटा (पुं०); (अ०) ज़ब्ब, ज़िब्ख़:; (फा०) सूसमार; (सं०) गोधा, गोधिका; (म०) घोरपड़; (लै०) वैरानुस मानिटर *Varanus monitor*, वैरानुस सैल्वेटर *V. salvator*; (अं०) मोनिटर लिजर्ड (Monitor Lizard).

वर्णन—छिपकलीकी जातिका एक प्रसिद्ध जंगली जंतु जिसके यह दो भेद होते हैं—(१) छोटी जिसे चंदन-गोह कहते हैं। (२) बड़ी और चपटी जिसे पटरा गोह कहते हैं। 'गोह' इसकी मादा को और 'गोहटा' नरको कहते हैं। अरबीमें नरको ज़िबख़ कहते हैं।

उपयुक्त अंश—मांस, चमड़ा (खाल), वसा, विष्ठा आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस वाजीकर (मुक़व्वीबाह) है। इसका मांसरस सान्द्रवायु और शूल (कुलंज) को नष्ट करता है। इसे पकाकर उसमें शीतल होने तक बिठाने (आबज़न करने) से भी वायुका नाश होता है। इसकी विष्ठा पीसकर आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है, तथा मोतियाबिन्दमें लाभ होता है। इसके लेपसे झाँई और काले दाग़ दूर होते हैं। यदि रोग बलवान हो तो सिरकाके साथ और निर्बल हो तो पानीके साथ इसका उपयोग करें। इसकी खाल (त्वचा) जलाकर जिस अंगपर मालिश करें वह इतना सुन्न हो जाता है कि उसे काट-

डालने पर कोई कष्ट अनुभव नहीं होता। चर्बी वाजीकर तथा शिश्नोच्छ्रायकारक है। अहितकर—उष्ण प्रकृति वालेको। निवारण—सिरकेके साथ पकाना।

आयुर्वेदीय मत—गोह (गोधा) का मांस रसमें कषाय और कटु, विपाकमें मधुर, वातपित्तशामक, शरीर पुष्टिकर (बृंहण) और बलको बढ़ाने वाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। पक्वाशयमें विष पहुँचने पर गोह मांस और रक्त सुखा-चूर्णकर देनेसे लाभ होता है।

घुन

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :
कोलियोप्टेरा-गण (Order : Coleoptera)
फैमिली : कुर्कुलियोनिडी (Family Curculionidae)

नाम– (हिं०) घु(घू)न, ढूंवारा; (अ०) सूस; (सं०) घु(घू)ण; (अं०) बीविल (Weervil), रङ्कूर (Rancour)।

वर्णन—एक प्रकारका छोटा कीड़ा जो अनाज, पौधे और लकड़ी आदिमें लगता है। इस कीड़ेकी कई जातियाँ होती हैं। लकड़ीका घुन अनाजके घुनसे भिन्न होता है। लकड़ीके घुनको अरबीमें "सूसुल् ख़शब" और गेहूँके घुनको सूसुल् हिन्त: कहते हैं। मात्र घुन संज्ञासे लकड़ीका घुन विवक्षित होता है। उसके पर होते हैं जिनसे उड़ सकता है।

घोंघा-घोंघी

मोलस्का-संघ (Phylum : Mollusca) : **गैस्ट्रोपोडा-वर्ग** (Class : Gastropoda) : **पेक्टिनीब्रैन्किएटा-गण** (Order : Pectinibranchiata) : **टीनियोग्लासा-उपगण** (Sub-order : Taenioglossa) : **प्लेटीपोडा-वंश** (Tribe : Platypoda) :
फैमिली : पिलिडी (Family : Pilidae)

नाम—(हि०) घोंघा, छोटा शंख; (अ०) वदअ; (फा०) हल्ज़ून ख़ुर्द; कच्चक; (शीराजी) गोशमाही; (अस्फ०) कुस्गुर्ब; (सं०) शम्बु(म्बू)क, लघुशंख, क्षुल्लक; (ले०) **(१) घोंघा**—पिलाग्लोबोसा *Pilaglobosa*. **(२) घोंघी**[1]—लिम्निआ प्लैनार्बिस *Limnaea planorbis*; (अं०) स्नेल-शेल (Snail Shell), एपुल स्नेल (Apple Snail), स्नेल (Snail) मुसेल (Mussel)।

वर्णन—शंखकी तरहका एक कीड़ा जो प्राय: नदियों, तालाबों तथा जलाशयोंमें पाया जाता है। इसकी बनावट घुमावदार होती है। इसके ऊपरका अस्थिकोश शंखसे बहुत पतला होता है। नहर आदिमें मिलनेवाले घोंघाको अरबीमें **हल्ज़ून नहरी** कहते हैं। **छोटा** और **बड़ा** भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसके छोटे भेदको घोंघी कहते हैं। वि० दे० "शंख"।

गुण-धर्म तथा उपयोग—आमाशयशूल और शूलरोगी (कुलंज) को इसका मांस जलाकर देनेसे बड़ा लाभ होता है। घोंघेकी हड्डी अत्यंत रूक्षताकारक, त्वचाको साफ करनेवाली, चर्मरोगोंमें लाभकारी तथा जलाई हुई प्लीहाके लिए गुणकारी, मूत्रमार्गस्थ क्षतको लाभकारी है और बहते हुए रक्तको बन्द करती है। इसे सिरकेमें

---

[1] **घोंघा और घोंघी एक ही संघ (Phylum) तथा वर्ग (Class) के जन्तु होते हुये भी इनके उप-वर्ग (Sub-class), गण एवं उपगण (Order & Sub-order) तथा जाति-प्रजाति (Genus, Species) आदि भिन्न-भिन्न हैं।**

पीसकर मस्तक पर लेप करने या नस्य करनेसे नकसीरका रक्त बन्द हो जाता है। घोंघेमें जो पानी भरा हुआ मिलता है, मसूरिकोत्पत्तिके समय आँखमें डालनेसे विस्फोट नहीं उत्पन्न होता। यदि विस्फोटोत्पत्तिके उपरांत डाले तो वह मिट जाता है और नेत्र की उष्णता, दाह एवं शोथ जाता रहता है। इसके लिए नहरी घोंघेमें भरे हुए पानीका उपयोग करना चाहिए। **अहितकर**—फुफ्फुसको। **निवारण**—शहद। **प्रतिनिधि**—कौडो। **मात्रा**—१ ग्राम से १.७५ ग्राम (१ माशेसे १॥। माशे)।

आयुर्वेदीय मत—घोंघा मधुर, तिक्त, कटु, शीतवीर्य, तीक्ष्ण, ग्राही, पाचन, दीपन, मल-मूत्रको करनेवाला तथा नेत्ररोग, स्फोटक, शीतज्वर, पित्तरोग और शूलका नाश करनेवाला है। शम्बूक मांसरस नेत्रोंमें लगानेसे आंख खराब नहीं होती। आंखोंमें चेचकके दाने निकले हों अथवा निकलनेसे हुए दृष्टिदोषमें इसे लगावें। (यो० र०)।

घोंघेकी भस्म मुखमें घी लगाकर गरम पानीसे या गरम पानीमें घोलकर पीनेसे पक्तिशूल नष्ट हो जाता है।

घोड़ा, घोड़ी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **थीरिया-उपवर्ग** (Sub-class : Theria) : **पेरिस्सोडैक्टिला-गण** (Order : Perissodactyla)
फैमिली इक्विडी (Family : Equidae)

नाम—(हि०) घोड़ा (मादा = घोड़ी); (अ०) फ़रस, फर्स (घोड़ी = रिमाक); (फा०) अस्प (घोड़ी = मदियाँ, अस्पे मादा); (सं०) अश्व (घोड़ी = अश्वी), घोट(क); (तु०) आत;। (ले०) इक्युअस कैबालुस (*Equus caballus* Linn.); (अं०) हॉर्स (Horse).

वर्णन—चार पैरोंवाला एक बड़ा प्रसिद्ध पशु जिसके पैरोंमें पंजे नहीं होते, गोलाकार सुम (टाप) होते हैं।

उपयुक्त अंग—दूध, दही, मक्खन, घी, कुमिस, मांस, मूत्र, पैर का पर (अरबी में अरन)।

नदघोटक, दरियाई घोड़ा—समुन्दरी घोड़ा (Hippopotamus)। यह युग्मांगुलीय प्राणी है जो अर्ध-जलाशयी होता है। यह केवल अफ्रीका में पाया जाता है। (अ०) फर्सुल् माऽ; (ले०) हिप्पोपोटेमुस् ऐम्फीबिउस (*Hippopotamus amphibius*); (अं०) सी हार्स (Sea-Horse)।

प्रकृति—दूसरे दर्जे के अंत में गरम और रूक्ष। कहते हैं ऐसे पालतू जीवों में जिनका मांस भक्ष्य होता है, इससे अधिक कोई गरम नहीं है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस भक्षण करने से शौर्य-बीरता एवं कठोरहृदयता उत्पन्न होती है। यह सर्व मांसों से अधिक ग़लीज है। इससे सैदावी रक्त बनता है। परंतु जिसकी प्रकृति में शीतल वायु का प्राबल्य है उसके लिए गुणकारक है और शीघ्रपचकर आमाशय से नीचे उतर जाता है। इसका कबाब दूध के साथ खाने से शीतल प्रकृतिवालों को रतिशक्ति प्राप्त होती है। परंतु इससे दूषित दोष उत्पन्न होता है। घोड़ेपर (अरन) कूटकर सिरकेमें मिलाकर खाने से सिर का दर्द जाता रहता है और गुड़ में लपेटकर खानेसे नहरुवा (इर्क मदनी) रोग दूर हो जाता है। बाल सहित बछड़े का चमड़ा जलाकर लगाने से फुसियाँ नष्ट होती हैं। इसकी ताजी लीद का पानी निचोड़कर नस्य करनेसे नकसीर का खून बंद हो जाता है। इसका गरम-गरम रक्त लगानेसे व्यंग (बहक)का रंग बदल जाता है। इसका ताजा रक्त विषवत् है।

विष-लक्षण और उसकी चिकित्सा—घोड़े को बध करते ही गरम-गरम ताजा रक्त ७॥ तोले पी लिया जाय तो कण्ठ के भीतर तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाता है। प्राण और ओजवाहिनी स्रोत बंद हो जाते हैं।

दस्त आने लगते हैं। नरखरा और कौआ शोथयुक्त हो जाते हैं। तीव्र मिचली और बेचैनी उत्पन्न हो जाती है। जिह्वा और कण्ठ रक्त वर्ण हो जाते हैं। पुट्ठे खिंच जाते और उद्वेष्ट (कुजाज) होने लगता है तथा मूर्च्छा होकर पीनेवाला मर जाता है। चिकित्सा इस प्रकार करें—रक्त को पिघलानेवाले द्रव्य खिलावें। शीतल द्रव्य कण्ठ के भीतर टपकावें। हृदय और मस्तिष्क को शक्ति देनेवाले आघ्राण औषध (लखलखा) सुंघायें। जौ का आटा शहद के पानी में मिलाकर उदरके ऊपर लगाएँ। किन्तु वमन कराने से बचें, जिसमें अन्न प्रणाली आमाशय में जमे हुए रक्त के निकलने से पीड़ित न होने पावें। **आरोग्यके लक्षण**—मलमार्गसे हिंगुल या केसर के रंग की एक वस्तु निकलने लगती है।

इसके दाँत बालक को बांधने से सुखपूर्वक बिनाकष्ट के दाँत निकल आते हैं। तिब के ग्रन्थों में यह लिखा है कि इसकी दाढ़ें (दंष्ट्रा) पिंडलियों में बाँधकर चलने से थकावट नहीं होती। बालकों के पेडू पर इसका पसीना लगाने से पुनः बाल नहीं निकलते और नस्य करनेसे नकसीर बंद हो जाती है, तथा कानमें डालनेसे कानका दर्द जाता रहता है। घोड़े का भेजा, सुअर की चर्बी और बिल्ली का रक्त—इन सबको सम प्रमाणमें लें और मिलाकर खाने से कामेच्छा जाती रहती है। बीस जौ के बराबर जीरेके पानीमें इसकी खाल पीने से थूक में रक्त आना बंद हो जाता है। मैनसिल खिलाने से घोड़ा मर जाता है। यदि घोड़े की सहवासेच्छा न हो तो बारसिंगे की पूँछ जला पीसकर मद्यमें मिलाकर शिश्न एवं वृषणों पर लगानेसे तुरन्त संगमेच्छा जागृत हो उठती है। यह चिकित्सा पुरुषोंके लिए भी लाभकारी है। घोड़े के बाल गृह द्वार पर फैला देनेसे उसके भीतर मच्छर नहीं घुसते। (इब्न जहर)। **अहितकर**—मांस उष्ण प्रकृतिवालों को। **निवारण**—उबाल लेना और खूब गलाना तथा दही एवं अंगूर या खट्टे अनारके दानोंका रस।

आयुर्वेदीय मत—घोड़े का मांस कषाय तथा मधुर रसयुक्त, लघु, अग्निकारक, बृंहण, बल्य, चक्षुष्य, कफ तथा पित्तकारक और वातनाशक है (भा० प्र०)

घोड़ी का दूध

नाम—(अ०) लबनुर्रिमाक; (फा०) शीर मादियाँ; (सं) अश्वापय (ध०, रा० नि०)

प्रकृति, गुण-कर्म तथा उपयोग—इसमें सान्द्रत्व (जुब्नियत) कम है। यह उष्ण एवं तर, लेखन, अवरोधोद्घाटक, मनःप्रसादकर, क्षुधावर्धक, वाजीकर और मूत्र-आर्तवजनन है तथा वस्तिस्थ एवं मूत्रमार्गस्थ व्रण के लिए गुणकारक है। इससे कपड़ा तर करके योनि के भीतर रखने से गर्भ रहता है। इसके पीनेसे चेचक नहीं निकलती। चेचक के ऋतु में इसे बालकों को पिलावें तो उस वर्ष चेचक नहीं निकलेगी और यदि निकलेगी भी तो सौ दानों से अधिक नहीं निकलेगी। इसका २। मासे पनीरमाया खानेसे पुराने दस्त और अन्त्रव्रण मिट जाते हैं। स्त्री के घोड़ी का दूध पीकर पुरुषके समागम करनेसे गर्भ रह जाता हैं। हकीम शरीफखाँ ने स्वरचित तालीफ शरीफ नामक फारसी ग्रंथ में लिखा है, कि इसका दूध खानेसे कतिपय लोगों को मैंने देखा कि वाजीकरण शक्ति, आमाशय और प्रकृति को लाभ पहुँचा। परन्तु अन्य ग्रंथों में लिखे इसके मादक गुण का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। **अहितकर**—आध्मानकारक है तथा पेट में आटोप (कराकिर) उत्पन्न करता है। **निवारण**—सौंफ और शहद। **प्रतिनिधि**—ऊँटनी का दूध।

आयुर्वेदीय मत—घोड़ी का दूध खट्टा, नमकीन, स्वादिष्ट, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, बलकारक तथा श्वास एवं वातनाशक है।

घोड़ी का दही दीपन, नेत्र के लिए अहितकर, वातप्रकोपक, रूक्ष, उष्ण, कषाय तथा कफ और मूत्र दोष का नाशक है। (सु० सू० अ० ४५)।

दरियायी घोड़ा[1]—इसका चमड़ा जलाकर व्रण पर छिड़कने से वे सूख जाते हैं। इसकी पसली जलाकर मटरके आटे में मिलाकर कर्कटार्बुद (सरतान) पर लेप करनेसे तीन दिनमें आराम होता हैं। इसका पित्त तीन दिन तक सायामें रखकर शहदमें मिलाकर आँखमें लगाने से मोतियाबिन्द आराम होता है। अफरिका वासियोंकी यह रीति है कि जब दूषित अन्न जल सेवनसे उनके उदरमें तीव्र शूल होता है तब वे इसका दाँत पीसकर पीते हैं। इससे उनको आरोग्य लाभ होता हैं। इसकी राख कैरूती या बकरी की चर्बी में मिलाकर लगानेसे बाल जम जाते हैं।

आयुर्वेदीय मत—घोड़े का मूत्र—तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन तथा वात, कफ, मानसरोग, क्रमिरोग, कुष्ठ, व्रण और विष को दूर करनेवाला है (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५)। हीराशोधनार्थ घोड़े के मूत्र का उपयोग रसेन्द्रसार संग्रह आदि रसग्रंथों में आया है।

चंडूल

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **पास्सेरिफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes)

फैमिली : ऐलैन्डिडी (Family : Alandidae)

नाम—(हिं०) चंडूल, ममोला, जाल जीभ; (अ०) क़ुबुरः, क़ुन्बुरः (फा०) चकावक।

वर्णन—गौरेयाके समान एक पक्षी जो किंचित् काले रंगका होता है। इसके कई भेद होते हैं। एक जिसके सिर पर चोटी होती है। इसका लैटिन नाम गैलेरिडा क्रिस्टाटा (*Galerida cristata* Linn.) है। अंगरेजी में इसे क्रेस्टेड लार्क (Crested lark) कहते हैं। दूसरा वह जिसके सिर पर चोटी नहीं होती है। इसे अगन कहते हैं। इसका लैटिन नाम ऐलैन्डा गुल्गुल *Alanda gulgul* Franklin है। अंग्रेजी में इसे दि स्माल स्काईलार्क (The small skylark) कहते हैं। तीसरा वह है जिसके पैर कुछ बड़े होते हैं। इसे भरत या भारत (सं० भारद्वाज) कहते हैं। अगन और भारतकी आवाज चंडूलसे तेज होती है। थोड़ा पिस्ता और टीडी खिला देनेसे आवाज अधिक परिष्कृत हो जाती है। यह भारतवर्षका हजारदास्तान अर्थात् बुलबुल है।

प्रकृति—गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हकीम राजी कहते हैं कि मांसरस सेवन करनेसे खुलकर मलोत्सर्ग होता है। बोटी मलबद्धताकारक है। मांस अंगोंको शक्ति देता है, रक्तविकारको शमन करता और शूलको लाभ पहुँचाता है। यद्यपि हर प्रकारके पक्षीका मांसरस मृदुसारक और बोटी संग्राही होता है, परन्तु चंडूल इस विषयमें सबसे आगे है। इससे उत्तम रस बनता है। शैख़ के मतानुसार यदि इसका मांस पच जाय तो इससे पुष्कल रक्त बनता है, परन्तु इसमें यह दोष भी है कि यह दीर्घपाकी है। इसका कबाब बनाकर निरन्तर सेवन करनेसे खूब मूत्र होता है। इससे वस्तिशूल और शूलरोगोंमें लाभ पहुँचाता है। जालीनूसके कथनसे यह ज्ञात होता है कि शूलरोगीको इसका मांसरस लाभ पहुँचाता है और यही सत्य है कारण कबाब संग्राही है और संग्राही द्रव्य शूलरोगमें लाभकारी नहीं हो सकती। शूलरोगियोंको निरन्तर इसका मांसरस पीना चाहिए। पार्श्वशूल और हृच्छूलमें इसका

---

[1] घोड़ा और दरियायी घोड़ा दोनों का संघ, उपसंघ, वर्ग, उपवर्ग, अववर्ग (**Infra-Class**) आदि तो समान हैं; किन्तु इसके आगे दरियायी घोड़ा **आर्टियोडैक्टिला-गण** (**Order : Artiodactyla**) तथा **सूईफॉमिस-उपगण** (**Sub-order : Suiformis**) में आता है। इसका लेटिन नाम हिप्पोपोटेमुस् ऐम्फीबिउस् (*Hippopotamus amphibius*) है।

मांस जलाकर देनेसे बड़ा उपकार होता है। इसका मांस पाचनकी शिथिलताको दूर करता है। इब्न जहर के मतसे इसका मांस अतिरिक्त रक्तस्रावको बन्द करता और वाजीकरण करता है। इसके अण्डेमें भी उक्त गुणधर्म पाया जाता है। इसकी बीट नरम करके लगानेसे मस्से दूर होते हैं। इसका ताजा रक्त शहतूतके रसमें मिलाकर गण्डूष करनेसे स्वर साफ होता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—बादामके तेलके साथ पकाकर खाना और अम्ल जल तथा कासनी सिरकेके साथ।

चकवा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **ऐन्सेरीफार्मीज-गण** (Order : Ansereformes) : **ऐनाटिडी-कुल** (Family : Anatidae) **ऐनाटिनी-उपकुल** (Sub-family : Anatinae)

नाम—(हिं०) चकवा (ह), चक्क (वा); (स्त्री) चकई, चकवी; (अ०) नुहाम (-मः); (फा०) सुर्ख़ाब; (सं०) चक्रवाक (स्त्री-चक्रवाकी); (ले०) कैसेर्का फेर्रुजीनिया *(Casarca ferruginea)*; (अं०) रुडी गूज (Rudy goose)।

वर्णन—हंसकी जातिका एक पंक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयोंके किनारे दिखाई देता है और बैशाख तक रहता है। इसकी लम्बाई हाथ भर तक होती है। मुस्तेलहात्में लिखा है कि अन्य पक्षियोंके विपरीत इसकी मादाको आर्तव स्राव होता है अर्थात महीनवारीका खून आता है, इसलिए इसे सुर्ख़ाब (सुर्ख = लाल, आब = पानी) कहते हैं।

प्रकृति—गरम और तर, वैद्य शीतवीर्य बतलाते हैं। परन्तु खजाइनुल्अदवियाके लेखकके मतसे यह गर्म और खुश्क प्रतीत होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—इसका मांस शरीरावयवको शक्ति देता, मल मूत्रका संग उत्पन्न करता, वायु और कफके विकारको दूर करता तथा शूल (कुलंज) में लाभ पहुँचाता है। यह सान्द्र रक्त उत्पन्न करता है तथा शुक्र वर्धक और कामोत्तेजक है। शीत प्रकृति वालों एवं वृद्धोंके लिए लाभकारी है तथा मल-मूत्र और स्वेदमें दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। **अहितकर**—उष्णप्रकृति वालोंके लिए अहितकर है। **निवारण**—सिरका और यवमण्ड (आशजौ)।

चकोर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) **गैलिनी-गण** (Order : Gallinae) **फैमिली : फैसिएनिडी** (Family : Phasianidae)

नाम—(हिं०, बं०) चकोर; (अ०) क़बज, दज्ज; (फा०) कबक, कबकेदरी; (सं०) उपचक्र, चकोर; (ले०) अलेक्टोरिस ग्रीआ *(Alectoris graea)*; (अं०) लार्क (Lark)।

वक्तव्य—क़बज फारसी 'कबक'से अरबी बनाया गया है।

वर्णन—एक प्रकारका बड़ा पहाड़ी तीतर जो नेपाल और नैनीताल आदि स्थानों तथा पंजाब, इटावा और अफगानिस्तानके पहाड़ी जंगलोंमें बहुत मिलता है। यह कबूतरके समान सुन्दर पक्षी है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म—वल्य, शोणितवर्धक और वाजीकर।

उपयोग—चकोरका मांस जीवनीय (कसीरुलगिजा) शीघ्रपाकी और शोणितवर्धक है। अस्तु, निर्बल और रोगोत्तरकालीन दौर्बल्य युक्त रोगियोंके लिए परम उपादेय है। अर्दित, पक्षवध और अन्यान्य कफज और वातरोगोंमें इसका उपयोग गुणदायक है। नपुंसकताके रोगियों और क्षीण व्यक्तियोंके लिए यह परमोत्तम आहार है।

अहितकर—उष्ण प्रकृति वालेको।

निवारण—सिकंजबीन और अम्ल पदार्थ।

चटक

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपगण** (Sub-order : Neornithes) : **पास्सेरिफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes)

नाम—(हिं०) चिडा, चिड़िया, गौरा, गौरवा, गरगवाः गवरैया; (अ०) उस्फूरः (फा०) कुञ्जिष्क; (सं०) चटक, कुलिङ्गः, (बं०) चरईपाखीः (लै०) पासेर डोमेस्टिकस (*Passer domesticus* Linn.); (अं०) हाउस-स्पैरो (House-Sparrow)। मादा—(हि०) गौरेया; (अ०) उस्फूरः; (सं०) चटकी।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी है जो साधारणतः घरोंमें छतों आदिके अन्दर घोंसला बनाकर रहता है। इसके यह दो भेद होते हैं (१) अहली (गृह) और (२) जंगली (अरण्य)। जंगलीको वगेरी कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर है।

गुण-कर्म—वाजीकर और बल्याहार है।

उपयोग—इसका मांस पौष्टिक और (कसीरुल् गिजा) जीवनीय है। पक्षवध, अर्दित, स्वाप, यकृद्दौर्बल्य, जलोदर, वृक्क दौर्बल्य, और नपुंसकत्व (कामावसाद) जैसे कफज और वात व्याधियोंमें यह श्रेष्ठतर पथ्याहार है। चिड़ोंका मग्ज (मस्तिष्क) अकेली बादामके तेलमें भूनकर या 'लबूबकबीर' जैसे वाजीकर माजूनोंमें योजित करके नपुंसकताके रोगियोंको खिलाते हैं। इसका मग्ज वाजीकर है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालों को। निवारण—अनारका रस। प्रतिनिधि—भेड़का मांस।

आयुर्वेदीय मत—गौरे (चटक) का मांस मधुर, स्निग्ध, बलवीर्यको बढ़ानेवाला, वायुशामक और सन्निपातको शान्ति करनेवाला है। (च० सू० अ० २७/७३)। **जंगली गौरा** (कुलिंग) का मांस मधुर, स्निग्ध, कफ और शुक्रवर्धक तथा रक्तपित्तनाशक है। **घरका गौरा** (गृह कुलिंग) अत्यन्त वीर्य उत्पन्न करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६/७१)। इसके अंडोंको लेकर गायके मक्खनमें पीस पैरों पर लेप करनेसे वीर्यस्तम्भन होता है।

चमगादड़

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **किरोप्टेरा-गण** (Order : Chiroptera)

नाम—(हिं०) चमगा(गी)दड; (अ०) ख़(खु)फ़्फ़ाश, मुर्ग़ईसा, मुर्ग़मसीह (हा); (फा०) शपरह, शवपरह,; (शीरा०) मूसकोर; (सं०) चर्मचटक (का), चर्मकी, जतु (तू) का, अजिनपत्रा; (लै०) टेरोपुस ईण्डिकुस *Pteropus indicus*. (अं०) बैट (Bat), फ्लाइंग फाक्स (Flying-fox)।

वर्णन—यह उड़नेवाले पक्षियोंकी तरहका एक प्राणी है जो उनकी तरह अंडे नहीं अपितु बच्चे देता है। इसकी मादाको ऋतुस्राव होता है तथा वह गर्भिणी भी होती है और बच्चोंको अपनी छातियोंका दूध पिलाकर पालती है। यह प्राणि केवल रात्रिमें शिकार पर निकलता है। दिनमें इसे कम दिखाई देता है और यह वृक्षों पर टहनियोंको पांवसे पकड़कर उल्टा लटकता रहता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और चौथे दर्जेमें शुष्क है। विष्ठा चौथे दर्जे तक गरम एवं खुश्क है। इसका दूध भी बहुत गरम है तथा सिंहनीके दूधके समीप है। वैद्यकके मतसे भी गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मास और दूध दोनों मूत्रल हैं। दूध अत्यन्त लेखन एवं आशुकारी है। इसके मांसका शोरबा मलमार्गसे मलोंका निर्हरण करता तथा पीत द्रवका भी निर्हरण करता है। यह कूल्हेके दर्द, पार्श्वशूल तथा उदर रोग (इस्तिस्काऽ)में लाभकारी है। इसको चमेली या तिलके तेलमें पकाकर अभ्यंग (मर्दन) करनेसे पक्षवध, कम्पवायु, संधिशूल एवं पृष्ठशूल और वातरक्त आराम होता है तथा सर्द सूजन उतरती है। इसके सिरको लोहे या तांबेके बर्तनमें जैतूनके तेलमें पकाकर बनाये हुए तेलके मालिशसे भी वातरक्त पक्षवध और कम्पवायु आराम होते हैं। इसका मांस पानीमें इतना पकाए कि खूब गल जाय। इस काढ़ेको इन्द्रियके ऊपर मलनेसे रुका हुआ मूत्र खुल जाता है। इसकी बूंदें ठंडी करके छिद्रमें भी डालें। स्त्रीको इसकी चर्बी खिलाने या योनिमें लगानेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इससे योनि या अन्य स्थानगत कर्कटार्बुद (कैंसर), भगंदर और उरःक्षततकमें भी लाभ उठाया जा सकता है। इसका भेजा तलवों या शिश्न पर मलनेसे कामोद्दीपन होता है और शिश्नको शक्ति प्राप्त होती है। इसके मांसकी राख मद्यमें मिलाकर पीनेसे मस्ती पैदा नहीं होती। इसके रक्तमें थोड़ा या समभाग दूध मिलाकर बालोंको उखाड़कर उनपर लगानेसे बाल नहीं जमते। बालकोंके पेड़ू एवं बगल वालोंसे रहित हो जाते हैं। न इससे त्वचाका वर्ण बिगड़ता है न कोमलता। चमगादड़के रक्तका लेप लगानेसे स्त्री स्तन अधिक नहीं बढ़ते। मूजज़ और तोहफतुल् मोमिनीनके मतसे चमगादड़का खून, भेजा और यकृत् पीसकर बाल उखाड़कर वहां लगा देनेसे पुनः उत्पन्न नहीं होते। रतौंधी और दृष्टिकी कमी होनेपर चमगादड़के रक्तकी बूंद आंखमें डालनेसे तथा इसके रक्तको जलाकर सुरमेंकी तरह आंखमें डालसे लाभ होता है। अत्यन्त लेखन एवं आशुकारी होनेसे इसके दूधका सेवन उचित नहीं है। इसके इन्द्रीपर लगानेसे शिश्नको शक्ति प्राप्त होती और कामशक्ति, संभोगशक्ति बढ़ती है। इसका दूध मूत्र खोलकर लाता है। आंखमें लगानेसे यह नेत्रगत जाला और नाखूना (अर्जुन) को काटता है। गिर गए हुए पलकोंके बाल उगानेके लिए पत्थरबेरको चमगादड़के दूधमें पीसकर नेत्रमें लगाते हैं। किन्तु यह नेत्रके लिए अहितकर है। अतएवं इसके प्रयोगसे जरूर बचना चाहिए। इसे ७ रत्तीकी मात्रमें सेवन करनेसे यह पथरीको निकालता है। इसकी विष्ठा आंखमें लगानेसे नेत्रजालक आदि कट जाते हैं। दाद पर भी इसका लेप लाभकारी है। इसकी हड्डीकी राखका सुर्मा आंखोंकी रोशनी बढ़ाता है। अहितकर—दूध प्रबल हानिकर, ४॥ माशेकी मात्रामें घातक है। मात्रा—दूध ७ रत्ती।

नव्यमत—चमगादड़ मांस खानेमें स्वादु होता है। उससे घृणाका कारण उसकी गंध है जो केवल उसकी त्वचामें होती है। उसके पंख और त्वचा उतारनेसे उसके मांसमें नहीं होती। इसके ताजे एवं गरम खूनके लेपसे मूंछ और दाढ़ीके बाल निकल आते हैं। चमगादड़के मांसमें शिश्नाग्र रखनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। इसी प्रकार पक्षाघातके रोगीको चमगादड़के मांसरसमें बिठानेसे लाभ होता है। शोथ, जलोदर, कोष्ठबद्धता, पक्षाघात, शिर व हाथोंका कांपना, जोड़ोंके दर्द इसके मांसरस सेवनसे अच्छे होते हैं। चभगादड़ मांससे साधित तिल तेल गृध्रसी पर लगानेसे लाभ करता है। इसी तेलको छातियों पर लगानेसे वह नहीं बढ़ती तथा वालोंमें लगानेसे वह गिरते नहीं।

चमड़ा वा खाल

नाम—(हिं०) चमड़ा, खाल; (अ०) जिल्द; (फा०) पोस्त, (सं०) त्वक्; (अं०) स्किन (Skin)।

वर्णन—प्राणिशरीरकी बाह्य त्वचा। सेवनके लिए प्राणीके स्तनपायी शिशुकी त्वचा उपयुक्त होती है। कारण इसमें तरी अभिभूत होती है। मतांतरसे भेड़ और बकरीके पुष्ट बच्चेका चमड़ा उत्तम होता है। परंतु मोटे ताजे मुर्गे और मुर्गीका चमड़ा स्वादिष्ट होता है। इसको खूब गलाकर सेवन करना चाहिए।

प्रकृति—प्रत्येक प्राणीकी प्रकृतिके अनुसार उसके चमड़ेकी प्रकृति होती है। मतांतरसे सर्द एवं खुश्क या समशीतोष्ण स्निग्ध, रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दीर्घपाकी, अल्पाहार (कलीलुल् गिजाऽ), दूषित रक्त उत्पन्न करता और सौदावियत उत्पन्न करता है। इसे काँजी, सिरका और गरम स्नेहोंके साथ पकानेसे उक्त दोषोंका निवारण हो जाता है। इसे खाली पेट खानेसे पित्त आमाशय पर गिरनेसे रुक जाता है। गरम मसाला, मद्य और अंजीर और शहद भी उसके उक्त दोषोंका निवारण करते हैं। शक्ति और दशा इसके पावोंके समीपतर है और वे ही इसके प्रतिनिधि हैं। साँप या शेरकी खाल कपड़ोंमें रखनेसे उसमें कीड़े नहीं लगते। चोटके स्थानपर बकरी या भेड़की ताजी खाल गरम-गरम बाँधनेसे लाभ होता है। कृष्णसर्पके काटनेपर ताजी गरम-गरम खाल लपेट देनेसे विषको खींचलेती है। नासूर और अग्निदग्ध स्थानपर चमड़ा जलाकर बुरकनेसे लाभ होता है। सद्यः क्षतसे रक्त बहता हो तो चमड़ा महीन कतरकर लगाना चाहिए। यदि जूता काटले और वहाँ सूजन न हो तो किसी पुराने जूतेका तला जलाकर लगानेसे लाभ होता है। यही नहीं अपितु वह जलाहुआ तला अग्निदग्धव्रण और चलनेके कारण काछ लग जानेमें लाभ करता है।

चरबी

नाम—(हिं० बं०, म०, गु०, द०, को०) चरबी, चर्बी; (अ०) शह्म, समीन; (फा०) पीह, पैयः; (सं०) स्नेह, वसा, वपा, मेदस्; (बं०) चिकना, चोर्बी; (क०) कोब्बु; (अं०) फैट (Fat)।

वक्तव्य—उपर्युक्त सभी भाषाके नाम प्रायः समस्त प्रकारकी चर्बियोंके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। सूअरकी चर्बीको अंग्रेज़ी और लेटिनमें क्रमशः लार्ड (Lard) और एडेप्स (Adeps) और भेड़की चर्बीको स्वेट (Suet) और सेव्रम् (Sevum) तथा गोवपाको अंग्रेजीमें टैलो (Tallow) कहते हैं।

वर्णन—यह एक सफेद या कुछ पीले रंगका प्रसिद्ध चिकना गाढ़ा पदार्थ (जांगम स्नेह) है जो मनुष्य और अन्यान्य प्राणियोंके शरीरमें त्वचाके नीचे पाया जाता है। यह बहुतसे पौधों और वृक्षोंमें भी पाया जाता है।

रासायनिक संगठन—तैल, वसा, मेद और मज्जा ये चारो पदार्थ स्नेह वर्गके हैं। इनमें तैल (रोगन-Oil) और बसा (शह्म Fat) शुद्ध स्नेह द्रव्य हैं। स्नेह ग्लिसरीन और स्नेहाम्लों (फैटी एसिड) के संयोगसे बनते हैं। रासायनिक दृष्टिसे उस प्रकारके स्नेहको तैल कहते हैं जिसमें निम्नश्रेणीके स्नेहाम्ल (लोअरफैटी एसिड्स) होते हैं। इनके कारण वह स्नेह पतला होता है। जिसमें उच्चश्रेणीके स्नेहाम्ल (हायर फैटी एसिड्स) होते हैं, वह स्नेह वसा कहलाता है। इसके कारण वसा गाढ़ी होती है—शुद्ध मांसस्य य स्नेहः सा वसा (एनिमल फैट) परिकीर्तिता (सु० शा०)। मेद (रेड मैरो) और मज्जा (यलो मैरो) स्नेहभूयिष्ठ द्रव्य हैं। पूर्णतया स्नेह नहीं हैं। (सु० सू० अ० ४५ श्लो० १३१ की घाणेकरी टीकाके वक्तव्यसे लिया गया है)।

वक्तव्य—शरीरमें त्वचाके नीचे मेद होता है। मांससूत्रोंके मध्यगत मेदको वसा कहते हैं। च० सू० अ० १३ और सु० चि० अ० ३१ में वसाके गुण-कर्म तथा उपयोग का उल्लेख हुआ है।

प्रकृति—उष्ण एवं तर। गुण-कर्म–चर्बी कठिन शोथ और पीड़ाको कम करती (विलयन, मृदुकरण और वेदनास्थापन) विशेषतः श्वयथुविलयन है। उपयोग–यह अधिकतया ऐसे मरहमों और कीरूतियोंमें पड़ती है

जो कठिन व्रणशोथको कोमल एवं विलीन करने, नाड़ियों (पट्ठों या आसाब) में स्निग्धता उत्पन्न करने, शरीर में स्थूलता और शक्ति उत्पन्न करने तथा व्रण संरक्षण और वेदनास्थापनके लिए उपयोग किये जाते हैं। इन प्रयोजनों के लिए अधिकतया बकरी, बत्तख, मुरगाबी और कुक्कुटकी चर्बी प्रयोगमें आती है। बाघ, शेर रीछ, चीता और जंगली सूअरकी चर्बीकी पक्षाघात आदि वातरोगोंमें मालिश करते हैं, तथा वाजीकरणके लिए शिश्नपर लगाते हैं। इनके अतिरिक्त ऊँट, सूअर, सांडे और मेंढ़ककी चर्बीका[१] वाजीकरणके लिए अकेले या तिलाओं (पतले शिश्नलेपों) में योजित करके हड्डीपर लेप (तिला) करते हैं। सर्पवसा वाजीकर तिलाओंमें प्रविष्ट करनेके अतिरिक्त मोतियाबिंद (लिंगनाश) को नष्टके लिए नेत्रके भीतर लगाई जाती है। कुछलोग चरबीको साफ करके घी की जगह आहारमें प्रयुक्त करते हैं। मलहम बनानेके लिए चर्बीका प्रयोग किया जाता है। अहितकर–आमाशयको मृदु वा ढीला करनेवाला है। निवारण–शुक्तमधु, सिकंजवीन, नीबू और लवण। प्रतिनिधि—जैतून का तेल।

आयुर्वेदीय मत—मज्जा तथा वसा (चरबी) मधुर, बृंहण, बृष्य (वीर्यवर्धक) और बलकारक होते हैं। वसा या मज्जाकी शीतता या उष्णता उन-उन जंतुओंके अनुसार होती है जिनसेवे प्राप्त की जाती हैं। अर्थात् जो प्राणी शीत है, उसकी शीतल, यथा जाङ्गल पशु पक्षियोंकी; और जो उष्ण हैं उनकी उष्ण होती है, जैसे आनूप देशके पक्षियोंकी (च० सू० अ० २७/२९०)।

जो बाण आदिसे बिद्ध हुए (बेधे गए) हों, जिनकी हड्डी टूटीहो, जिनको चोट लगीहो, जिन स्त्रियोंकी योनि—गर्भाशय अपने स्थानसे भ्रष्ट हुईहो, जो अतिव्यायायसे कृश हुएहों, जिनका वीर्य और रक्त शुष्कक्षीण हुआ हो, जिनको बहुत पीड़ा हो, जिनकी जठरग्नि, वात और शक्ति प्रबल हो उनको तथा कान और सिरके रोगोंमें, वाजीकरणके लिए तथा शरीरकी पुष्टिके लिए वसा देनी चाहिए (च० सू० अ० १३; सु० चि० अ० ३१)। (घोड़ा, गौ आदि) ग्राम्य, (महिषादि) आनूप, (मत्स्यादि) औदक प्राणियोंकी वसा, मेद और मज्जा भारी, उष्ण, मधुर और वातनाशक होती हैं। जांगल, एकशफ और हिरन प्राणियोंकी वसा, भेद और मज्जा हलकी, शीतल कषाय और रक्तपित्तनाशक होती हैं। प्रतुद (कपोतपारावतादि), विष्किर (लावत्तितिरादि) प्राणियोंकी वसा, मेद और मज्जा कफनाशक होती हैं। घी, तैल, वसा, मेद और मज्जा ये स्नेह द्रव्य पाचनके लिए उत्तरोत्तर अधिक भारी तथा वातनाशनके लिए अधिक बलवत्तर होते हैं। (सु० सू० अ० ४५ श्लो० १३१)।

वसा मेद तथा मज्जा—वात एवं पित्तके लिए हितकर होते हैं। ये रस तथा पाकमें मधुर तथा स्नेहयुक्त होते हैं तथा श्लेष्माको प्रकुपित करते हैं (काश्यप० मांसगुण विशेषीयाध्याय २४)।

वक्तव्य—आधुनिक कालमें प्राचीन कालकी भाँति कई प्रकारके जाङ्गम स्नेह खानेके लिए तथा चिकित्साके लिए प्रयुक्त होते हैं। इनमें मछलीका तेल निर्देश करने योग्य है। दे० "मछली"।

चित्तल

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata); **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia); **आर्टियोडैक्टिला-गण** (Order : Artiodactyla); **पागुर करनेवाला-उपगण** (Sub-order : Ruminantia); **फैमिली : सर्विडी** (Family : Cervidae)

नाम—(हिं०) चीतर, चीतल; (अ०) सीतल; (सं०) चित्तलमृग, पृषत्; (ले०) ऐक्सिस ऐक्सिस (*Axis axis*); (अं०) स्पांटेड डियर (Spotted Deer)।

---

[१] रसरत्नसमुच्चयके अनुसार सियार, मेढक, कछुआ, ऊसरसाँडा, बैल, सूअर, मनुष्य सातव), बकरा, ऊँट, गदहा, मेढ़ा, भैंसा इनकी चर्बीका रसकर्ममें भावना देनेके निमित्त उपयोग होता है। (रसरत्नसमुच्चय, पूर्वखण्ड, दशमोऽध्यायः)।

वर्णन—एक प्रकार का सफेद बुंदकी या चित्तीवाला हिरन ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस रूक्षताजनक, मूत्रजनन और शीतप्रकृतियोंमें वाजीकर है। जिसके अन्त्रसे रक्तस्राव होता है उसे इसकी सींग जलाकर सेवन करनेसे लाभ होता है। जिस स्थानसे रक्तस्राव होता है उस स्थानपर इसे बुरकनेसे भी उपकार होता है। कपड़े की वर्तिमें इसे आप्लुत करके योनिमें धारण करनेसे उससे स्रवित होनेवाले द्रव एवं रक्त बंद हो जाते हैं। इसके खुरको जला, बारीक चूर्ण बनाकर घावोंपर छिड़कनेसे वे सूख जाते हैं। अहितकर—आध्मानकारक है। निवारण—गरम मसाला।

चीचडी

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **ऐरेक्निडा-वर्ग** (Class : Arachnida): **ऐसेरिना-गण** (Order : Acerina)

नाम—(हिं०) किलनो, चीचडी; (अ०) क़ुर्द, क़िर्दान, (बहुव० = क़ुराद); (फा०) कुन्नः; (अं०) टिक (Tik) या टिकेट (Ticket)

वर्णन—एक क्षुद्र पराश्रयी जंतु, जो अन्य जीवोंके शरीरमें विशेषकर कुत्तेमें बहुत होता है ।

प्रकृति—खटमलके समीप अर्थात् तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पहले पड़वालके बाल उखाड़े, फिर उस स्थानमें कुत्तेकी किलनीको पीसकर या अंजीरका दूध और कुत्तेकी किलनीका रक्त या ऊँटकी किलनीका रक्त लगा देवें, इससे पडवालकी उत्पत्ति नहीं होती ।

चीता

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **क्रव्यभुज्-गण** (Order : Carnivora) : **फिस्सिपेडिया-उपगण** (Sub-order : Fissipedia) : **सुपर-फैमिली : फेलोइडिया** (Super-family : Feloidea); **फैमिली : फेलिडी** (Family : Felidae)

नाम—(हिं०) चीता; (अ०) फ़हद; (फा०) योज़; (सं०) द्वीपि (पी), चित्रव्याघ्र; (लें०) (१) पैन्थेरा पार्डस (*Panthera pardus*); (२) फेलिस जुबेटा (*Felis jubata.*); (अं०) पैन्थर (Panther), हंटिंग लेपर्ड (Hunting Leopord) या चीता (Cheetah)

वर्णन—बिल्लीकी जातिका एक प्रकारका बहुत बड़ा हिंसक पशु, जो एशिया और अफ्रिकाके जंगलोंमें पाया जाता है। चीतेके ललाईलिए पीले शरीरके ऊपर सुंदर कली रंगकी चित्ती (दाग) होती है। इसलिए इसको चीता (चित्तदार शरीरवाला) कहते हैं। इसका शरीर बड़ा लचकदार होता है।

प्रकृति—तेंनुआ से कम गर्म एवं सर्द । गिलानी के मतसे मांस सर्द एवं रूक्ष । खजाइनुल् अदविया के लेखक के अनुसार गरम एवं रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गिलानीके मतसे सप्ताह पर्यंत निरंतर इसका पित्त पीनेसे मृगीरोग नष्ट हो जाता है। यदि इसके पित्तके साथ इसकी चर्बीभी मिला लेवेंतो अधिक लाभहो और पुनः उसका आक्रमण न हो। मांस गुण-कर्ममें तेंनुआ के समान है ।

चील

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथोज-उपवर्ग** (Sub-class : Neornithes); **फैल्कोनीफार्मीज-गण** (Order : Falconiformes); **फैमिली : फैल्कोनिडी** (Family : Falconidae)

नाम—(हिं०) चील, चील्ह; (अ०) हिदात; (फा०) गलीबाज; (सं०) चिल्ल (ल्लि); (ले०) मिल्वस मिग्रान्स (*Milvus migrans*); (अं०) काइट (Pariah, Kite)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी। दरियाई और सफेद आदि इसके अन्य भेद हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस शहद और गंदनाके साथ पकाकर दीर्घकाल पर्यंत खाते रहनेसे प्रवाहिका और अर्श दूर होते हैं। इसे तेलमें पकाकर सिर पर मलने से लाभ होता है। यथासंभव इसका मांस नहीं खाना चाहिए क्योंकि यह दोषों और शरीरगत मांसमें विकार उत्पन्न कर उन्माद पैदा कर देता है। इसके परोंको जलाकर बनाई हुई राख ३॥-७ रत्ती तककी मात्रामें पानीके साथ सेवन करनेसे वातरक्त और श्लैष्मिक ग्रन्थियों और रसौलीमें अनुपम लाभ होता है। चीलकी पित्त छाँहमें सुखाकर शीशाके वर्तनमें सुरक्षित रखें। विषैला कीड़ा काटे हुए व्यक्तिके दष्ट स्थानपर इसे पानीमें मिलाकर टपकाएँ और विपरीत जानिबकी आँखमें तीन (सायबान) लगा देवें। इससे तुरन्त आरामहो जायगा। इसका पित्त नेत्रोंमें लगानेसे दृष्टि तीव्र होती है तथा धुंध जाती रहती है। इसका पित्त जलाकर और थोड़ीसी कस्तूरी एवं अर्क गुलाब मिलाकर खानेसे रबू, कृच्छ्रश्वास और पुरानी खाँसीमें लाभ होता है। इसके बच्चेकी ताजी बीट लगानेसे वृषणशोथ मिटता है। किंतु एक घड़ीसे अधिक नहीं रखें। यदि ताजी न मिलेतो सूखीको सौंफके अर्क या पानीमें घोलकर लगावें; किंतु सूखी ताजीसे निर्बल होती है।

चूहा

पृष्ठवंशी-संध (Phylun : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **कृन्तक-गण** (Order : Rodentia) : **माइयोमार्फा-उपगण** (Sub-order : Myomorpha)

नाम—चूहा, मूसा; (अ०) फ़ार; (फा०) मूश, हूशा; (सं०) मूष(षि)क, आखु; (वं०) इन्दुर; (म०) उंदीर; (गु०) उंदर; (ले०) मुस रैटस (*Mus rattus*); (अं०) माउस (Mouse), रैट (Rat)।

वर्णन—चूहा बिलमें रहने वाला एक प्रसिद्ध प्राणी है। जंगली चूहा (घूंस) और छछूंदर आदि इसके भेद हैं। जंगली चूहा–(हिं०) घूंस, जंगली चूहा; (अ०) यरबूअ, क़र्नब; (फा०) मूशदश्ती, ख़रमूश; (सं०) वन्य मूषकः।

उपयुक्त अंग—मांस, वसा, शुष्क मल (लेड़ी)। वर्णन—एक प्रकारका चूहा। यह चूहेसे बहुत बड़ा कालाई लिए धूसर वर्णका होता है। इसके शरीर पर बाल खड़े होते हैं। पूँछ लम्बी और मोटी होती है। दन्त और नख तीक्ष्ण होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जे में गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म-उपयोग—इसका मांस कज खलकी और विस्मृति उत्पन्न करता तथा आमाशयको विकृत करता है। इसके पकाए हुए पानीसे अवगाहन (आबजन) करनेसे रुद्धमूत्रका प्रवर्तन होता है। इसे खानेसे सांद्र दोष विलीन होते हैं। कुंदुर और सिरकाके साथ इसकी मींगनी अश्मरीको निस्सारित करती है। पलकों पर इसकी भींगनी (लेडी) लगानेसे पलक जम जाते हैं, और आँखोंमें लगानेसे जाला कट जाता है। मस्सोंपर इसका रक्त लगानेसे उपकार होता है। बालखोरे पर इसके सिर और मींगनीको जलाकर सिरका और शहदमें मिलाकर लगानेसे

लाभ होता है। सर्प और बिच्छूके दष्ट स्थान पर जीवित चूहेको चीरकर गरम-गरम बांधनेसे विषको चूस लेता है। इसी प्रकार जिस स्थान पर कांटा या बाण लगकर रह गया हो वहां पर बांधनेसे वे निकल जाते हैं। इसे कण्ठमाला पर लेप करनेसे वह लोप हो जाती है। इसका जूठा खाना विस्मृति कारक है। इसका बृषण जब तक स्त्री अपने पास रखेगी, गर्भवती न होगी।

आयुर्वेदीय मत—गुदभ्रंश (कांच निकलने) में चूहेकी चर्बीका लेप करने तथा चूहे के मांसको गरम करके बाँधनेसे काम होता है। चूहेके मांस और दशमूलका काढ़ा २५६ तोले, तिलका तेल ६४ तोले तथा आठ तोले चूहेका मांस और ८ तोले दशमूलके कल्कको तैल पाक विधिसे एकत्र पकाकर सिद्ध किए हुए तेलके लगानेसे गुदभ्रंश (तथा योनिभ्रंश) आराम होता हैं। चूहेकी सूखी लेड़ी (मल) ६२५ मि० ग्रा० से १·२५ ग्राम (५-१० रत्ती) दूधमें मिलाकर पिलानेसे रक्तप्रदर आराम होता है। (यो० र०)।

जंगली चूहा (घूंस)

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके रक्त लगानेसे शरीरपरके दाग और मस्से दूर होते हैं। बालखोरे पर इसकी बीट जलाकर शहदमें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है। प्रारम्भिक मोतियाबिंदमें इसका सिर जलाकर आंखमें लगानेसे उपकार होता है। वैद्य कहते हैं कि इसका मांस मधुर है तथा पीनस और अर्शरोगमें लाभकारी और परीक्षित है। चौथिया ज्वरके रोगीके गलेमें इसकी कुचलियां (दन्तभेद) बांधनेसे लाभ होता है। एक अनुभवीका कहना है कि इसके हृदयके सात टुकड़े करके एक-एक टुकड़ा हर रविवारके दिन अपस्मारीको खिलानेसे रोगका नाश होता है। किसी बर्तनमें घूंसका चमड़ा ले जलाकर उसका धुंआ बवासीरके मस्सोंको देनेसे वे लुप्त हो जाते हैं। परन्तु उचित यह है कि धूनीके समय गले तक चादर ओढ़ लेवें जिससे सिरमें धुँआ न लगे।

च्यूँटा-च्यूँटी

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) : **टेरीगोटा-उपवर्ग** (Sub-class : Pterygota) : **हीमेनोप्टेरा-गण** (Order : Hymenoptera)

नाम—(हिं०) चिउँटा, चींटा, चींटवा, च्यूटा; (अ०) नम्ल; (फा०) मोरचा; (सं०) पिपीलक; (ले०) (१) मोनोमोरियम् मिनिमम् *Monomorium minimum*; (अं०) लार्ज ब्लैक ऐन्ट (Large black ant); (२) ईकोफिल्ला स्मरैग्डिना *Oecophylla smaragdina*; (अं०) दि इण्डियन रेड-ट्री ऐन्ट (The Indian red tree-ant).

च्यूंटी

(हिं०) चिउँटी, चींटी, कोड़ी; (सं०) पिपीलिका; (अं०) स्माल ऐन्ट (Small ant).

वर्णन—एक प्रसिद्ध बहुत छोटा कीड़ा (हशरातुल् अर्ज) जो मीठेके पास बहुत ज्यादा जाता है और नुकीले मुँहसे काटता और चिमटता है। इसके यह दो भेद है—(१) क्षुद्र (खुर्द) तथा (२) बृहत् (कलाँ)। क्षुद्रको चिउँटी और बृहत्को चिउँटा और मकोड़ा कहते हैं। यह भी लाल (सुर्ख) और काला (स्याह) दो प्रकारका होता है।

रासायनिक संगठन—च्यूंटाके दंशमें एक प्रकारका अम्ल पाया जाता है, जिसे पिपीलिकाम्ल (Formic acid) कहते हैं। उनके काटने पर वेदना उसी अम्लके कारण होती है। चिउँटोंको उबाल कर या जल सहित स्रवण करनेसे या कई अन्य विधियोंसे इसे प्राप्त किया जाता है। यह एक वर्णरहित, आर्द्रताशोषक, उत्पत् एवं उग्रगंधि तरल है जो मद्यसार और जलमें विलेय होता है। त्वचा पर पड़नेसे यह वेदना, दाह और स्फोट उत्पन्न करता है। इसके पीनेसे बिषवत् दाह, वान्ति आदि होकर मृत्यु हो जाती है।

कल्प—रोग़न मोरचाँ कलाँ।

प्रकृति—वीर्य सहित तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म–च्यूंटेके अन्दर एक तेज और संक्षोभजनन द्रव्य होता है। इसलिए इसको शिश्न पर लगानेसे इन्द्रीकी त्वचामें रक्त आकर्षित होकर आ जाता है और उसमें उत्तेजना उत्पन्न होती है। यह विशेष रूपसे वाजीकर और किलासघ्न है। उपयोग–च्यूंटोंका बनाया हुआ तेल रोग़न मोरचाके नामसे प्रसिद्ध है। कामोत्तेजना और शिश्नकी वृद्धि एवं स्थूलताके लिए इसको इन्द्री पर मर्दन करते हैं। बाह्य त्वचाकी ओर रक्ताकर्षक होनेके कारण इसको सिरकाके साथ पीसकर श्वित्र (वर्स) पर लेप लगाते हैं। इसके अतिरिक्त च्यूंटोंको जैतूनके तेलमें पकाकर बाधिर्य, कर्णनाद और क्ष्वेडको नष्ट करनेके लिए कानमें डालते है।

पिपीलिक तैल (रोग़न मोरचा)। कल्पना-विधि–एक सौ बड़े च्यूंटे पकड़कर सवा तोले चमेलीके तेलमें डालकर तीन सप्ताह तक धूपमें रखे। इसे प्रतिदिन इन्द्रीपर लगाकर ऊपरसे पान बांध दिया करें। इससे इन्द्री पुष्ट, बलवान और दृढ़ (कड़ी) होती है। अहितकर—यह व्याकुलता, मरोड़, आनाह और आटोप उत्पन्न करता है। निवारण–जीरा, सिरका और चमेली। प्रतिनिधि–लाल च्यूंटे।

छछूंदर-छछूंदरी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia)

कीटभुज-गण (Order : Insectivora)

नाम—(हिं०) छछुंदर, छछूंदर; (अ०) खुलद, फारतुल्मिस्क; (फा०) मूश (क) कोर; (सं०) छुछुन्दर चुचुन्दरी, गंधमुखी, दीर्घतुण्ड; (ले०) सोरेक्स सेरुलेसेन्स *Sorex cerulescens*; (अं०) मस्क रैट (Musk rat)।

वर्णन—चूहेकी जातिका एक जन्तु जिसके शरीरसे एक विशेष प्रकारकी दुर्गंध आती है। इसकी थूथन लम्बी और नोकदार होती हैं। बाल घने और मखमलके समान नरम होते हैं।

प्रकृति–अत्यन्त गरम। इसमें रतूबत भी होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग–वैद्योंके कथनानुसार इसके मांसकी गणना घातक बिषोंमें होती हैं। कण्ठमाला पर इसका मांस बांधनेसे लाभ होता है। यहाँ तक कि हड्डीको नरमकर देता है। गुलरोगनमें पकाकर किलास और झाई पर लगानेसे उपकार होता हैं। इसका खून नेत्ररोगमें लगानेसे नेत्ररोग आराम होता हैं। इब्नजहर के कथनानुसार इसका मस्तिष्क तेलमें पिघलाकर किलास, व्यंग (बहक), कण्ठमाला और दाद आदि पर लगानेसे वे जाते रहते हैं। इसके अण्डे और बृषण मद्यके साथ खानेसे मूत्र रुक जाता है। परन्तु इसका भेजा गुलरोगनमें मिलाकर खाज और दाद पर लगानेसे लाभ होता है। वैद्य कहते हैं कि पागल कुत्तेके काटनेसे जो लक्षण उत्पन्न होते हैं वही लक्षण इसके काटनेसे भी उत्पन्न होते है। अपितु यह उससे भी बदतर और अचिकित्स्य है। इसके भेजेसे नकसीरका खून और दूसरे हर स्थानका रक्त बंद हो जाता हैं। इसका खून लगानेसे भी उक्त लाभ होता है। इसकी पूँछके स्थानका रक्त लेकर मलनेसे कण्ठमाला लीन हो जाती है। इसका सिर जलाकर फिटकिरीके साथ फूँकनेसे नाक और कानकी दुर्गंध दूर होती है तथा फुंसी व पीव बहना आराम हो जाता है। इसका ऊपरका होठ चौथियाके रोगीको बाँधनेसे चौथियाका ज्वर दूर हो जाता है, और मृगी भी जाती रहती है। यह होंठ बालकको बाँधनेसे सरलतासे दाँत निकल आते हैं। इसकी धूनीसे मूत्रावरोध दूर हो जाता है। इसके पित्तको इस्पिस्त (रतबा) के पत्तोंके पानीके साथ नस्य करनेसे अर्दित रोग दूर होता है। छछूंदरके बिलसे निकली हुई मिट्टी पानीमें मिलाकर लेप करनेसे वातरक्तमें बड़ा लाभ होता है।

छिपकली

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia);
स्क्वैमेटा-गण (Order : Squamata) : **लैसरटिलिया-उपगण** (Sub-order : Lacertilia)

नाम—(हिं०) छिपकली, विसतुइया; (अ०) शहरी-दज़ग़ (ग:), जंगली-साम अबइस; (फा०) चलपास:, कर्वस, कर्बाशः; (सं०) गृहगोवा (धिका); (ले०) हेमीडैक्टीलुस फ्लैविविरिडिस (*Hemidactylus flaviviridis*); (अं०) वॉल लिजर्ड (Wall Ligard)। भेद–(सं०) मुषली, पलभी; (बं०) तक्षक; (ले०) गेको वर्टिसिलेटुस (*Gecko verticillatus* Lour.)।

वर्णन—पेट जमीनपर रखकर पंजोंके वल चलने वाला गोहकी जातिका एक सरीसृप वा जंतु जो एक बित्तेके लगभग लम्बा होता है। बगीचोंमें रहने वाली छिपकली बेहतर होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष या सर्द है (तज़किरा दाऊद अंताकी)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हकीम अन्ता की और इब्नज़हर के अनुसार इसका मांस पीसकर लेप करने या इसको बाँधनेसे शरीरके भीतर रहा हुआ काँटा और बाण त्वचाकी ओर खींच आता है तथा बिच्छूका विष भी उसकें मांसमें आ जाता है। किसी-किसीके कथनानुसार बाण, कण्टक और वृश्चिक विषके आकर्षणका उक्त प्रभाव केवल उसके सिरमें हैं। माला यसअ में लिखा है कि इसका मांस लगानेसे हर प्रकारके मस्से मिट जाते हैं।

दाँतमें दर्द हो तो इसकी कलेजी उसपर रखनेसे आराम हो जाता है। बिच्छूके दष्ट स्थानपर इसको चीरकर बाँध देनेसे लाभ होता है। यदि बालकको अन्त्रवृद्धि (फत्क़) का रोग हो तो इसका मूत्र-रक्त और बिष्ठा थोड़ीसी कस्तूरीके साथ पीसकर शिश्नके छिद्रमें टपकानेसे अथवा केवल इसकी विष्ठाको नमकके साथ लगानेसे उपकार होता है और इसका वैशिष्ट्य केवल बालकोंके साथ हो सो बात नहीं है। इसका रक्त मिला हुआ नमक श्वित्रोत्पादक है (अन्ताकी)। मस्सोंको रगड़कर उनपर इसका सिर पीसकर लगानेसे मस्से जाते रहते हैं। तीन छिपकलियों को लेकर सेर भर नीमके तेलमें इतना पकायें कि वे गल जाँय। तदुपंरात गायके सींगकी राख १ तोला १॥ माशा मिलाकर खूब जलायें और चन्द जोशदेकर आग परसे उतारकर रख लेवें। इस तेलको असाध्यसे असाध्य कण्ठमाला पर निरंतर लगाते रहने और केवल मुंडीका अर्क पीते रखनेसे लाभ होता है। (इब्नजहर)। गिलानीके कथनानुसार इसको जलाकर समप्रमाण लादनके साथ भौवों पर लेप करनेसे उनके बाल निकल आते हैं और काले हो जाते हैं। इसे आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है। बगीचेकी छिपकली पकड़कर खच्चरकी खालमें लपेटकर ऐसी स्त्रीके बाँध देवें जिसके बच्चा गिर जाता है, तो फिर नहीं गिरे। इसका सिर कपड़ेमें लपेटकर बाँधनेसे कफज्वर नष्ट होता है। छिपकलीको मारकर सुखा और पीसकर जैतूनके तेलमें मिलाकर गंजेके सिर पर लगानेसे बाल निकल आते है। कहते है अत्यन्त विषैली होनेसे छिपकलीका मांस खानेसे मनुष्य मर जाता है। किसी भी प्रकार इसके बिषसे वेही विष लक्षण उत्पन्न होते है जो तेलनीमक्खीके खानेसे होते हैं। सुतरां इसकी चिकित्सा भी तेलनीमक्खीके समान ही है।

कहते हैं कि जहां यह काटती है वहाँ इसके काटनेसे ज्वर विशेष (तपे मोतबिका) आता है। उसके बीच कम्प होता है। और सांपके काटने पर जैसी व्याकुलता होती है वैसी ही व्यग्रता होती है। प्राय: ऐसा अवसर होता है कि वेदनाकी तीव्रताके कारण मृत्युकी नौबत आ पहुँचती है। काटा हुआ स्थल हरा हो जाता है और पीला पानी व दूषित द्रव स्रवित होता है। छिपकली काटे पर एमोनिया (नौसादर चूने की घोल) लगाना चाहिए ऐसा किसी-किसी का मत है।

अहितकर—इसका मांस खानेसे उरःक्षत और दुष्ट रोग उत्पन्न होते हैं। निवारण–रेबास खाना। प्रतिनिधि–सीप का कृमि।

नव्यमत–इसका मांस बल्य, रसायन, उत्तेजक तथा फिरंगमें प्रयुक्त होता है। इसका तेल वाजीकर है। (इ० मे० मे० भाग २ पृ० १७१)।

जबाद

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia)
क्रव्यभुज-गण (Order : Carnivora) : **फ़ैमिली-विवेर्रिडी** (Family : Viverridae)

नाम—(हिं०) जबाद, मेद, गौरा, साख; (अ०) ज़(ज़ु)बाद, ज़(ज़ु)व्वाद; (सं०) जवादि, मृगचर्मज (रा० नि०), मार्जारिका, पूति (कै० नि०), गंधमार्जारवीर्य (भा० प्र०); (द०) जवाद; (द० भारत) जबादी; (ता०) पुनुगु; (बं०) खाटासि; (अं०) जिबेथ (Zibeth)। जन्तु (हिं०) मुष्क बिलाई (व); मुष्कबिल्ली; (फा०) गुर्बए ज़बाद, गुर्बए मुष्की; (ता०) पूल्लूगू पूवेय; (ते०) पूनुगू पिली; (ले०) (१) विवेर्रा जिबेथा (*Viverra zibetha* Linn.) और (२) जाति की मुष्कबिल्ली विवेर्रा मलक्केन्सिस (*Viverra malaccensis*); (अं०) जिबेथ (Zibeth), जिबेथ कैट (Zibeth cat)।

वक्तव्य—इसकी अनेक अन्य जातियोंसे भी जबाद नामक द्रव्य प्राप्त होता है। उसमेंसे एक जातिके जन्तुको अंग्रेजी और लैटिनमें क्रमशः सिवेटकैट (Civet cat) और विवेर्रा सिवेटा (*Viverra civetta*) तथा उससे प्राप्त द्रव्यको अंग्रेजीमें सिवेट और बंगलामें खट्टासी कहते हैं। यह मालाबारकी सिवेट है। जुंदबेदस्तर इससे भिन्न द्रव्य (गन्धमार्जारवृषण) है। जबादको भी यादवजी महाराज ने 'गंधमार्जारवीर्य' लिखा है।

प्राप्तिस्थान—यह प्राणी अफरीका, उष्णप्रधानप्रदेशों तथा एशिया महाद्वीपमें अरबसे मालाबार तक पाया जाता है।

वर्णन—यह मुश्क बिलाई नामक जानवरकी पूँछके नोचेकी थैलीसे प्राप्त होनेवाला एक सुगन्धित द्रव्य (वीर्य) है। उत्तम होनेकी दशामें यह स्वच्छ, पिलाई लिए सफेद, नरम, चिकना और प्रायः मधुके समान गाढ़ा होता है। पुराना होनेपर रंगमें कुछ श्यामता आ जाती है। कस्तूरीकी भांति जबतक इसे हल्का नहीं कर लिया जाता तबतक इसकी गंध अप्रिय होती है। यह श्वेतवर्णका निकृष्ट समझा जाता है।

असली-नकलीकी पहचान—यदि यह हथेली पर मलनेसे चिपकजाय और धो डालनेके उपरांत भी महक शेष रहे तो इसे शुद्ध समझे वरन् कृत्रिम। किसी-किसीके मतसे लाल रंगका और जो धूपमें रखनेसे शीघ्र पिघल जाय वह उत्तम है। गंजबादावर्दमें जबादकी परीक्षणविधि इस प्रकार लिखी है—इसे सुतलीके सिरे पर लगाकर अग्निके समीप रखनेसे पिघल कर तेल हो जाय तो कृत्रिम और यदि एकत्रीभूत होकर सिरे पर लग रहे तो असली समझें। इसे अग्निसे गरम करें या दोनों हाथोंसे इतना मलें कि गरमी पैदा हो जाय। उस समय सूँघनेसे जो चीज उसमें मिली होगी वह व्यक्त हो जायेगी।

रासायनिक संगठन—इसमें स्वतंत्र अमोनिया, राल, बसा, एक्सट्रैक्टिव्ह मैटर और उत्पत् तेल प्रभृति सुगन्धिजनक उपादान पाये जाते हैं।

प्रकृति–पहले, दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण और तरी एवं खुश्कीमें मोतदिल (समस्निग्ध रूक्ष) है।

गुण-कर्म–रूक्षण, अत्यन्त सौमनस्यजनन, आवीजनन (सुखप्रवसकर), पीड़ाशामक और हृदय तथा ज्ञानेन्द्रियोंको बल देने वाला है। उपयोग–इसे दो रत्ती मात्रामें उपयुक्त भेषज या मद्यके साथ पीनेसे चित्त उल्लसित होता है और मूर्च्छा हृत्स्पंदन, विराग (तवह्हुश), उन्माद और आमाशयिकद्वार शूल एवं गुदशूल आदि रोग आराम होते हैं। १॥। माशे जबादको थोड़ा केसर और परिपुष्ट मुर्गेके मांसरसके साथ गर्भवती स्त्रीको प्रसवकालमें पिलानेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है। प्रसव होनेमें विलम्ब होनेपर तथा वातज मूत्रावरोधमें नाभि और पेड़ू पर जबादका लेप करनेसे प्रसव शीघ्र होता है और मूत्रोत्सर्ग होता है। इसे सूँघनेसे प्रतिश्याय, शीतजन्य शिरः-

शूल और अर्धावभेदक आराम होता है। इसे बादामके तेलमें घोटकर कानमें टपकानेसे श्रवणशक्ति बलवान होती है। शिश्न पर इसका लेपलगाकर संभोग करनेसे अधिक आनन्द आता है और गर्भधारण नहीं होता। अपने प्रभावसे यह द्रवोंका शोषण करता है। इसके मर्दनसे दर्द दूर होता है। व्रणशोथपर इसका लेप करनेसे वह पक जाता है। इसे फूटे हुए फोड़े पर लगानेसे वह भर जाता है। हृत्स्पंदन और श्वासमें इसका नस्य लाभकारी है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण—चंदन और कपूर सूँघना तथा शीतल और स्निग्ध आहार-विहारका सेवन करना। प्रतिनिधि—गालिया। मात्रा—१॥ ग्राम से २ ग्राम (१॥ माशा से २ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—मार्जारी (गंधमार्जारवीर्य), कफवातनाशक, चक्षुष्य, कोठशामक, सुगन्धित और वामक है तथा पशुओंके स्वेदरोग, कण्डू और किटिभ आदि त्वग्रोगोंको हरती है। यह शरीरके कान्ति को बढ़ाती, मनोरम और बशमें करने वाली तथा शुक्र, श्री (शोभा), कीर्ति तेज (ओज) और प्रीति (प्रिय) को भी अधिक करने वाली और आशुबिषहर है (कैं० नि०); वाजीकर (वीर्यकृत्) और स्वेदकी दुर्गंधको दूर करने वाला, गन्धमार्जारवीर्यके इतने गुण भावप्रकाश में अधिक लिखें हैं।

जिगर

नाम—(हिं०) जिगर, कलेजा (जी); (अ०) कबिद्; (फा०) जिगर; (सं०) यकृत्; (ले०) हिपेटिस (*Hepatis*); (अं०) लिवर (Liver)।

वर्णन—यह प्राणिशरीरका एक प्रसिद्ध एवं प्रधान अवयव है। उपयोगके लिए जवान मोटे मुर्गे, बत्तख और बकरीके बच्चेका जिगर लेना चाहिए।

प्रकृति—गरम एवं तर। प्रत्येक प्राणीके जिगरकी प्रकृति उस प्राणीकी प्रकृतिके अनुकूल होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह गुरु (सकील) एवं दीर्घपाकी है तथा सान्द्ररक्त उत्पन्न करती है। यदि इसके टुकड़े करके गोंद और नमक छिड़क करके भूनें और ऐसे रोगीको सेवन कराएँ जिसका पाचन ठीक हो तो अन्त्रव्रण एवं दस्तोंको लाभ पहुँचाता है। बकरीकी कलेजी अपस्मारीका आवेग (दौरा) बढ़ाती है। परंतु गदहीकी कलेजी अपस्मारके लिए गुणकारी है और चकोरकी सूखी कलेजी भी यही प्रभाव रखती है। चूहेकी कलेजी बिलेशयी विषधर जन्तुओं (हवाम्म) के काटेको लाभकारी है और भेड़ियेकी यकृच्छूल, और कुत्ते विशेकर पागल कुत्तेकी उसके काटे हुए विषके लिए लाभकारी है। बकरीकी कलेजीका पानीजो उसको भूननेमें निकलता है रतौंधीको दूर करता है। छिपकलीकी कलेजी दांतके नीचे दबानेसे कृमिभक्षणज दंतशूल आराम होता है। अगर किसीने हीरा खा लिया हो तो इसको तागेमें बाँधकर निगलजाय और थोड़ीदेर बाद उसे धीरे-धीरे निकालेतो हीरेके टुकड़े उसमें लिपटकर निकल आते हैं। अहितकर—गलीज, दीर्घपाकी, आशुकोथशील तथा सान्द्ररक्त उत्पादक है। निवारण—सिरका, दालचीनी, जीरा, धनिया, नमक और जुवारिशें। प्रतिनिधि—एक दूसरेका। मात्रा—(बकरीको) आवश्यकतानुसार।

आयुर्वेदीय मत—सब प्राणियोंमें यकृत प्रदेशका मांस श्रेष्ठ होता है (सु० सू० अ० ४६)। जहां मांसका बिधानहो वहाँ मांसलेना चाहिए। गोह अथवा बकरीके यकृतके दो टुकड़ेकर बीचमें पीपलरख, पुटपाकविधिसे पकाकर यकृत खाने तथा पीपलका अंजन करनेसें रतौंधी दूर होती है (सु० उ० अ० १७)। रक्तक्षयमें रक्त तथा यकृत दोनोंका सेवन करनेको लिखा है (सु० उ० अ० ४५)।

नव्यमत—यकृतका मांसरस पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) में उत्तम आहारऔषध है।

जीभ

नाम—(हिं०) जीभ; (अ०) लिसान; (फा०) जुबान; (सं०) जिह्वा; (ले०) लिंगुअम् (*Linguum*); (अं०) टंग (Tongue)।

वर्णन—प्रसिद्ध प्राणि-अवयव। यह नरम, तंतुरहित उत्तम मांस है। **प्रकृति**—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लघु एवं शीघ्र आमाशयसे नीचे उतरनेवाली होनेसे शरीरमें तरी उत्पन्न करती है और सुगंधित उष्ण द्रवोंके साथ शुक्र उत्पन्न करती (वृष्य) है। इसका अतिसेवन जिह्वाको शक्ति देता है। **अहितकर**—आशुप्रकोथजनक है। **निवारण**—उष्ण प्रकृतिके लिए सिरका और धनिया। शीत प्रकृतिके लिए जीरा और कुलंजन।

जुंदबेदस्तर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **कृन्तक-गण** (Order : Rodentia) : **सियुरोमार्फा-उपगण** (Sub-order : Sciuromorpha) : **सुपर फैमिली-सियुरोडिया** (Super-family : Sciuroidea)

नाम—जंतुजद्रव्य (हिं०) जुन्द; (अ०) जुंदबे(बा)दस्तर, खुस्यतुल्‌बहर फाहेशा (इ० बै०); जुंद (फा०) गुंदबेदस्तर, आशबचगाँ; (सं०) गन्धमार्जारवृषण, गन्धमार्जाराण्ड; (ले०) कैस्टोरिउम् (*Castoreum*); (अं०) कैस्टर (Castor)।

जंतु—(हिं०) गंधबिलाव; (फा०) बेदस्तर; (सं०) गंधमार्जार; (बं०) खाटासी; (ले०) कैस्टर फाइबर (*Castor fiber* Linn.); (अं०) बीवर (Beaver), कैस्टर बीवर (Castor Beaver)। फारसी 'गुंदबेदस्तर' (गुंद = वृषण, बेदस्तर = उक्त वृषणधारक जंतु) से 'जुंदबेदस्तर' अरबी बनाया गया है।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्षके उत्तरीभाग, उत्तरी अमेरिका, उत्तरी एशिया, और यूरोपके कतिपय स्थान।

वर्णन—यह ऊदबिलाव या कैस्टर जातीय बीवर या कैस्टर फाइबर नामक एक कुतरनेवाले (Rodent) जल-स्थल चारी चतुष्पद प्राणीसे प्राप्त होने वाला द्रव्य है। यह कोश तीन इंचके लगभग लम्बे अंजीरके आकृतिके, सुदृढ़, भारी, खाकी-श्याम वर्णके होते हैं। उनके भीतर तिक्त, उत्क्लेशकारक, कुछ चरपरास्वाद युक्त, किंचित् चिकना कस्तूरीकी विशेष तीक्ष्ण गंधवाला, कुछ पीला या हल्के भूरे रंगका कुछ श्यामता और पिलाई लिए, गहरा लाल और राल जैसा एक पदार्थ (स्राव) द्रव होता है। ईथर और मद्यमें इसका अधिक भाग विलीन हो जाता है। भेद-रंगके विचारसे जुंदबेदस्तर तीन प्रकारका है।—पीला, लाल और काला। इनमें सर्वोत्तम वह है जो पीला हो। इसके बाद लाल, जल्द टूट जाने वाला तीक्ष्णगंधी और भारी है। श्याम वर्णका जुंदबेदस्तर मारक है। अतएव त्याज्य है। जो तीन वर्षसे अधिक पुराना न हो वह जुंदबेदस्तर प्रशस्त है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल जिसमें १ से लेकर २ प्रतिशत तक कार्बोलिक अम्ल होता है, तिक्त चरपरा राल १५ से ५८ प्रतिशत और जुंदबेदस्तरिन (कैष्टोरिन् Castorin), कोलेष्टरीन तथा सेलिसीन जैसे स्फटकीय द्रव्य (सत्व) वर्तमान होते हैं।

कल्प तथा योग—हब्ब जुंद अजीब।

प्रकृति–तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरे (मतांतरसे तीसरे) दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म–श्वथुविलयन, उपशोषण, उष्णताजनन, दोषोंको पतला करने वाला, नाड़ीवलदायक, वेदनास्थापन, वातानुलोमन, आर्तवजनन, मूत्रल, वातकफनाशक, आक्षेपहर और शीतल विषोंका अगद है। **उपयोग**–पतला लेप तिलाकी भांति उपयोग करनेसे यह सूजन उतारता है। यह खाने और लेप करनेसे शरीरको गर्मी पहुँचाता है।

तिला (पतले लेपकी भाँति) उपयोग करनेसे यह नाड़ियोंमें उत्तेजना उत्पन्न करके ध्वजोच्छाय (इन्तिसार) पैदा करता है। इससे ध्वजभंग वा नपुंसकतामें लाभ होता है। इन गुणकर्मों एवं नाड़ीबलदायक होनेके कारण बहुतसे वातज और कफज रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। सुतरां अपतन्त्रक, अपस्मार, काली खाँसी, श्वास-कास नाड़ीदौर्बल्य, कम्पवात, स्वाप, अर्दित, अंगघात, पक्षवध, आमवात, नपुंसकता और मस्तिष्कके शीतजन्य रोग आदिमें यह बाह्यांतर रूपसे प्रयुक्त होता है, तथा इससे लाभ होता है। शिशुओंके बालापस्मार रोगमें भी यह साधारणतः उपयोग किया जाता है। उष्णताजनन हेतु यह प्रायः शीतल मस्तिष्क (शिरः) रोगोंमें लाभ पहुँचाता है। शीतल विषोंका अगद होनेके कारण यह अहिफेन बिष और वृश्चिकदष्टमें लाभकारी है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण—रोगन काहू और कतीरा। प्रतिनिधि—कस्तूरी और बच (वज तुर्की)। मात्रा–२५० मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० (२-४ रत्ती) से १ ग्राम (१ माशा) तक।

जुंदबेदस्तरके विषलक्षण और उनकी चिकित्सा--इसे घातक मात्रामें खा लेनेसे तबीयत अत्यंत चिंताकुल और उदासीन हो जाती है, मुख सूख जाता है और जिह्वा पर दाने निकल आते हैं। वक्ष और तत्समीपवर्ती अंगोंमें पीड़ा होने लगती है। श्वास और कण्ठशोथ हो जाता है। कभी स्रोतोंसे रक्तस्राव होने लगता और पित्तज सरेसामके समस्त लक्षण (उपद्रव) प्रगट होते हैं। व्याकुलता होती और बुद्धिभ्रंश होता है। शीघ्र उपाय न करनेसे सन्निपात (सरेसाम) हो जाता है। उक्त लक्षणोंके प्रकट होते ही सोया, पुदीना, लिसोढ़ा और मघुका काढ़ा पिलाकर वमन करायें। तदुपरांत बिजौरै निंबूका रस पिलायें अथवा खट्टे फल खिलायें या सिरका वा गदहीका दूध पिलायें। (मख्जन, मुहीत)।

जुगनू

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :
कोलियोप्टेरा-गण (Order : Coleoptera) : **फैमिली : लैम्पिरिडी** (Family : Lampyridae)

नाम—(हिं०) जुगनू, स(सो)नकिरवा, पटबीजना, जोगन; (अ०) हबाह(हि)ब, बनात; वरदान; (फा०) किर्म शबताब, शब अफ़रोज; (सं०) खद्योत, ज्योतिरिंग (ण); (बं०) सोनकिरवा; (ले०) लैम्पिरिसजाति (*Lampyris Spp.*); (अं०) फायर फ्लाइ (Fire-fly), ग्लो-वर्म (Glow-worm)।

वर्णन—गुबरैलेकी जातिका एक प्रसिद्ध कीड़ा जो रातको चमकता है।

प्रकृति—गरम, रूक्ष और तीक्ष्ण। **गुण-कर्म तथा उपयोग**–तीन नग घातक हैं। मुहीत आजममें लिखा है कि इसको ताँबेके बर्तनमें रखकर सुखा लेवें। पुनः सिर दूर किये हुए एक जुगनूको ४॥ तोले हींगके फाण्टके साथ आठ दिन पिलाये। वस्तिवृक्काश्मरिनिर्हरणके लिए परीक्षित है। एक नग जुगनूको सुखा पीसक्षर गुलरोगनमें और मिस्बाहुल् अद्वियाकार के कथनानुसार रोगन बादाममें मिलाकर कानमें डालनेसे कानकी मैल निकल जाती है तथा पीव सूख जाती और बहरापन दूर होता है। एलुआके साथ अर्शाङ्कुरोंको गिरानेके लिए लाभकारी है। रविवारके दिन इसे पानमें रखकर खानेसे रतौंधी जाती रहती है।

जूँ

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :
ऐनोप्ल्यूरा-गण (Order : Anopleura)

नाम—(हिं०) जूँ, जुँआँ, ढील; (अ०) क़म्ल; (फा०) सिपश; (सं०) यूका; (ले०) मानव शिरोयूका–पेडिक्यूलस ह्यूमनुस कैपिटिस (*Pediculus humanus capitis*); (२) मानव शरीरयूका–पेडिक्यूलस

ह्यूमनुस कार्पोरिस (*P. humanus corporis*); (अं०) हेड लाउस (Head louse (बहुव०–लाइस Lice); बॉडी या क्लोद्ज लाउस (Body or clothes louse)। कर्कटयूका (Crab louse)—(हिं०) जमजूं; (अ०) क़(क़ु)मकाम। जूँ का अण्डा = (हिं०) लीख, ल्हीक; (सं०) यूकाण्ड, लिक्षा, लिख्या; (अं०) निट (Nit), एग ऑफ ए लाउस (Egg of a louse)।

वर्णन—एक छोटा स्वेदज कीड़ा, जो दूसरे जीवोंके शरीरके आश्रयसे रहता है। जमजूं जूंसे छोटी होती है और बालोंकी जड़ोंमें त्वचासे खूब चिमटी होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छः जीवित जूंओंको बाकलाके बीजमें रखकर निगलनेसे चौथिया अवश्य जाता रहता है, यह परीक्षित है। यदि जन्मके समय जूँओंको पानीमें पीसकर शिशुके शरीरपर मल देवेंतो सारीउम्र उसके शरीरमें जूँ नहीं उत्पन्न होगी। कपड़ेको पारामें लत करके पारेको शरीरपर मलने या पारेको मेंहदीमें मिलाकर मलनेसे अथवा शरीफाके बीजों (या पत्तों) के पानीमें सिरको धोनेसे जूँए मरजाती हैं, परन्तु धोते समय उस पानीसे नेत्रोंको बचाना चाहिए क्योंकि उसे आँखमें जानेसे वहाँ सूजन और दाह उत्पन्नहो जाता है। जूँओंका यह स्वभाव है कि वे उसके आसन्नमरज होनेपर स्वयं चली जाती है। 'हकीम अबुल्अला इब्न ज़हर' ने रिसाले खवास अशियाऽमें लिखा है कि जिस समय किसी मनुष्यका मूत्र रुक जाय वह अपने शरीरसे एक जूँ पकड़कर शिश्नके छिद्रमें रख देवे, इससे तुरन्त पेशाब खुल जायगा। चुकंदरके काढ़ेसे बालोंको धोनेसे जूंएँ मर जाती हैं। जूं और खुजली दोनोंका उत्पादक दोष एकही जातिका होनेसे जो दवा खुजलीको लाभ करती हैं वही जूंओंको भी दूर करती है।

जोंक

ऐन्नेलिडा-संघ (Phylum : Annelida) : **हिरुडिनी-वर्ग** (Class : Hirudinee) : **आर्हिन्कोलेडेल्लिडा-गण** (Order : Arhyncholedellida) : **फैमिली : हिरुडिडी** (Family : Hirudidae)
उपकुल-हिरुडिनी (Sub-family : Hirudinae)

नाम—(हिं०, बं०, द०, पं०) जोंक; (अ०) अलक़; (फा०) जलो, देवचा; (सं०) जलौ(लू)का, जलायुका; (गु०) जलो; (म०, कों०) जलु; (ले०) हिरुडिनेरिया ग्रेनुलोजा *Hirudinaria granulosa* तथा इसकी अन्य जातियां (*Hirudinaria spp.*), हिरुडो *Hirudo*; (अं०) लीच (Leech)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह दो-तीन इंच लंबा एक प्रसिद्ध जलज (या जलस्थलचर) कृमि है जो बँधे पानी (उदाहरणतः तालाब और झीलके पानी) में उत्पन्न होता है। यह अनेक प्रकारका होता है। इनमेंसे एक प्रकार वह है जो मझोले कदका और कालाईलिए हरेरंगका होता है। उसका नीचेका भाग (पेट) लाल होता है। पीठपर लंबाईके रुख छः धारियाँ पड़ी होती हैं। लंबा होनेपर यह २ या ३ इंच लंबी होती है इसको रायजोंक कहते हैं। लेटिन और अंग्रेजीमें इसे क्रमशः हिरुडो मेडिसिनेलिस (*Hirudo medicinalis* Savigny) तथा मेडिसिनल लीच (Medicinal Leech) कहते हैं। सैंगुईसूगा मेडिसिनेलिस *Sanguisuga medicinalis* इसका बिदेशी भेद है। अंग्रेजीमें इसे दी स्पेकल्ड लीच (The Speckled leech) कहते हैं।

देशी जोंकका एक भेद बहुत बड़ा और बहुत काला होता है। इसको भैंसा जोंक कहते हैं। यह सबसे निकृष्ट होती है। जोंकें सविष भी होती हैं। इनसे बचना चाहिए।

जोंकके विदेशी भेदोंका संग्रह स्पेन, फ्रांस, इटली और हंगरी आदि विदेशोंमें होता है। किंतु भारतमें जिन जोंकोंसे रक्तप्रचूषणका काम लिया जाता है, संभवतः डेल्ला निलोटिका *Bdella nilotica* Savi., हिरुडो (हिरुडिनेरिया) ग्रेनुलोसा *Hirudo* (*Hirudinaria*) *granulosa* Savi) और हिरुडीनेरिया मैनीलेन्सिस (*Hirudinaria manillensis*) हैं। खून चूसनेवाली इन जोंकोंका उपयोग स्थानीय रक्ताधिक्यको कम करनेके

लिए किया जाता है। इनकी लाला ग्रन्थियों द्वारा बनाए हुए पचनयूषमें एक विकार होता है जिसे हिरुडिन (Hirudin) कहते हैं। यह विकार रक्तस्कंदन (Clotting) को रोकता है।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन तथा रक्तस्कंदनहर, प्रधानतः वाजीकर है। **उपयोग**—जोंकोंको अन्तर्बाह्य सूजनपर खून चूसनेके लिए लगाते हैं। जब यह खून चूसकर उदरपूर्ण हो जाती है, तब स्वयं पृथक् हो जाती है। इस प्रकार स्थानीय रक्तके कम हो जानेसे सूजन और दर्द कमहो जाते हैं। दद्रु, गंज और जख्मोंपर भी लगानेसे यह वहाँका दूषित रक्त चूसती है जिससे उनमें अच्छा होनेकी सलाहियत पैदा होती है। इसको तिलाओंमें मिलाकर इन्द्रीपर लगाते हैं। इसको जलाकर उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ तेलमें खरल करके पड़वाल (पक्ष्मकोप) और वाह्मनी (पक्ष्मशात) में पलकोंपर लेप करते हैं। पड़वालमें बालोंको उखाड़कर लगाते हैं। अर्शाङ्कुरोंको शुष्क करने तथा त्वचाके चिह्न नष्ट करनेके लिए अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ इनका लेप करते हैं। **प्रतिनिधि**—**केंचुआ**।

नव्यमत—हठीले वमनमें जब साधारण उपाय असफल हो चुके होते हैं तब नाभिके ऊपर कुछ जोंक लगानेसे कभी-कभी उपकार हो जाता है। तीव्र शिरःशूलमें कनपटियोंमें जोंकोंका सफल प्रयोग होता है। (इं० मे० मे० २ भा०)।

झिंगवा

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **क्रस्टेसिया-वर्ग** (Class : Crustacea); **मैलेकोस्ट्रेका-उपवर्ग** (Sub-class : Malacostraca) : **डेकापोडा-गण** (Order : Decapoda) : **फैमिली : पैलिमोनिडी** (Family : Palaemonidae); **उपकुल-पैलिमोनिनी** (Sub-Family : Palaemoninae)।

नाम—(हिं०) झिंगवा, झिंगा, झींगा, चिंगडा; (अ०) रोबियाँ; (फा०) रोबियाँ, माही रोबियाँ, माहीमेग; (सं०) चिङ्गट, चलदङ्ग (क) नडालामीन; (बं०) चिंगडी; (ले०) पैलिमान माल्कोम्सोनाइ *Palaemon malcolmsonii*; (अं०) प्रान (Prawn), ग्रे-फिश (Gray fish)।

वक्तव्य—किसी-किसीने 'झींगा'को 'माहीरोबिया'से भिन्न लिखा है।

वर्णन—एक प्रकारकी मछली जिसके पैर लम्बे होते हैं। यह लाल रंगका होता है। इसका मांस भी लाल रंगका और कड़ा होता है तथा देरमें गलता है। छोटा झींगा टिड्डीके बराबर और बड़ा झींगा आध गज तक लम्बा होता है। इसे नमक लगाकर और बिना नमकके सुखाते हैं।

प्रकृति—ताजा दूसरे दर्जेमें गरम एवं तर और नमकीन गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ताजा वाजीकर है। उत्तम रक्त और शुक्र उत्पन्न करता, वृक्क और जरायुको उष्णता प्रदान करता तथा गर्भधारणमें सहायता करता है। इसके सेवन करते रहनेसे अधिक सन्तान उत्पन्न होती है। यह शेरके बालको गला देता है। सिंकजबीनके साथ विरेचक है। पेटसे कद्दूदानेको निकालता है। इसे घी और प्याजके साथ भूनकर अधभुने अण्डेके साथ खानेसे खूब कामोद्दीपन होता है और गर्भाशयमें उष्णता उत्पन्न हो जाती है। सूखे झींगेको काली मिर्चके साथ पीसकर आँखमें लगानेसे रतौंधी जाती रहती है। इसको पीसकर लेप-करनेसे सूजन उतरती है। इसे जैतूनके तेलमें पकाकर लेप करनेसे वातरक्त और आमवात आराम होता है। इसके लेपसे शरीरगत शल्य-वाण और कांटा निकल जाता है। नमक लगाये हुए झींगा खानेसे शीतल प्रकृतिवालोंको मैथुन शक्ति प्राप्ति होती है (वाजीकर) है। **अहितकर**—इसके अति सेवनसे सौदा, खुजली और अन्य सौदावी रोग उत्पन्न होते हैं तथा रक्त और पित्तमें उद्वेग उत्पन्न हो जाता है। कॉजी, खट्टा अनार और सफरजली मुसहिलसे उक्त दोषोंका **निवारण** हो जाता है।

झींगुर

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta)

नाम—(हिं०) झींगुर; (अ०) सुरसुर; (फा०) चरवाशक; (सं०) उच्चिटिङ्ग, झिल्लिका, झिल्ली (क), चीरिक (री); (अं०) क्रिकेट (Cricket)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जिसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा आदि कई रंगका होता है। छोटा झींगुर जो सामान्यतः घरोंमें पाया जाता है, आर्थोप्टेरा-गण (Order : Orthoptera) एवं ग्रीलस-प्रजाति (Genus : Gryllus) का होता है। इसी गणका एक झींगुर आकारमें अपेक्षाकृत बड़ा (बड़ा झींगुर) परनालों आदिमें पाया जाता है। यह ग्रिल्लोटैल्पा प्रजाति (Genus : Gryllotalpa) का होता है। अंग्रेजीमें इसे मोल-क्रिकेट (Mole-cricket) कहते हैं। झींगुरकी ही तरह एक कीट पेड़ोंमें रहता तथा बड़ी तेज आवाज करता है। यह हेमिप्टेरा-गण (Order : Hemiptera) तथा सिकेडा प्रजाति (Genus : Cicada) का होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वस्तिशूलके लिए इसको भूनकर खाना सिद्ध भेषज है। पाँचसे दस सूखे झींगुरोंको कालीमिर्चके साथ पिसकर समप्रमाण शदह मिलाकर रोगके बलाबलके अनुसार गरम पानी या मधुके जुलाब या खाँड़के जुलाबके साथ असाध्य शूल रोगीको सेवन करानेसे तुरंत लाभ होता है। दो तीन झींगुर जैतूनके तेलमें पका-छानकर, तेल कानमें डालनेसे कर्णशूल एवं कानकी टीस जाती रहती है।

टटेरी, टिटिहरी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपवर्ग** (Sub-class : Neornithes) : **एक्सिपिट्रीज-गण** (Order : Accipitres) : **फैमिली : पैन्डियोनिडी** (Family : Pandionidae)

नाम—(हिं०) टिटिहरी, टिटिहा, टटेरी; (सं०) टिट्टिभ (भी), कुरर (कुररी), शरारीमुख, शरारी (री); (लें०) पैन्डियोन हैलीईटस (*Pandion haliaetus*); (अं०) आॅस्प्रे (Osprey)।

वर्णन—एक छोटा पक्षी जो साधारणतः नदी और झीलके किनारे रहता है और टें-टेंका जोरदार शब्द उच्चारण करता है। किसी-किसीके मतसे फारसवासी इसे 'तीतरी' कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अत्यंत गरम एवं रूक्ष होनेसे इसका मांसरस अर्दित, पक्षपध, अंगघात, और (कुजाज़) में लाभकारी है। वैद्योंके कथनानुसार इसके अंडे भूनकर खानेसे अतिनिद्राका निवारण होता है। निवारण इसका उड़दका आटा है। इसका मांस पित्तनाशक है, तथा हड्डियोंमें दर्द एवं वायु उत्पन्न करता है।

टिड्डी

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) : **टेरिगोटा-उपवर्ग** (Sub-class : Pterygota) : **आर्थोप्टेरा-गण** (Order : Orthoptera) : **फैमिली : लोकस्टिडी** (Family : Locustidae)

नाम—(हिं०) टिड्डी, टीडी (ड़ी); (अ०) जराद; (फा०) मलख़; (सं०) टिट्टिभ; (लें०) लोकस्टा माइग्रेटोरिया (*Locusta migratoria*)। टिड्डियोंकी अन्य प्रजातिआँ—Desert Locust : *Schistocerca* *gregaria* (यह उत्तरी अफरीकासे उत्तर भारत तक पायी जाती है)। Bombay Locust : *Cyrtacanthacris succinta* (यह केवत भारत वर्षमें पायी जाती है); (अं०), लोकस्ट (Locust), लोब्स्टर (Lobster)।

वर्णन—एक जातिका टिड्डा (परदार कीड़ा) जो भारी दल या समूह बांधकर चलता है। जंगली (जरादुल्बर्र) और समुद्री (जरादुल्बहर–(अ०); मलखे दरियाई–फा०) भेदसे टिड्डी दो प्रकार की होती है।

प्रकृति–दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। नमक लगाये हुये में गरमी और खुश्की और भी बढ़ जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग–यह वाजीकर है तथा सान्द्रदोषोंको साफकर देती और उनको सुखा देती है। फेफड़ेके समीपवर्ती कलाओंके रोगों और बिन्दुमूत्रता रोगमें लाभकारी है। सिर, पैर और पूँछ काटकर दूरकी हुई बारह टिड्डियोंको ३॥ माशे सूखे हब्बुल्आसके साथ-खानेसे जलोदर रोगका नाश होता है। विशेषकर जिन टिड्डियोंने माजरयूनको, जो स्वयं जलोदरनाशक है, चाटा हो, वह जलोदरके लिए अत्यन्त गुणकारक हैं, क्योंकि वे पीतद्रवका बलपूर्वक निर्हरण मलमार्गसे करती हैं। प्रतिदिन सात टिड्डियां खानेसे प्रभावतः कुष्ठ रोगमें लाभ होता है। अर्श और मूत्रावरोधमें लाभकारी है। मोटी टिड्डीके पर दूर करके खिलानेसे विच्छूका विष दूर होता है। इसको पैर सहित कूट कर लेप करनेसे मस्से, झाइं और खाज दूर होती है। इसे अंगूरी सिरकामें जला लिया जाय तो शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। इसके अंडे और अन्त्र मलनेसे झांई प्रभावतः जाती रहती है। जो उड़ती नहीं ऐसी टिड्डियोंको तेलमें पका छानकर तेल कानमें डालने कानका दर्द जाता रता है। समग्र टिड्डीको जलाकर सात माशेकी मात्रामें काले चनोंके पानीके साथ सात दिन तक खाते रहनेसे वृक्क और वस्तिगत अश्मरी टूट, खंड-खंड होकर निकल जाती है। आँख फुड्डा नामक लम्बे पैरों वाली हरी टिड्डी बाँधनेसे उसके प्रभावसे चौथिया ज्वर चला जाता है। मदारके पेड़पर उत्पन्न होनेवाली टिड्डीको तिलके तेलमें जला और पीसकर लगानेसे दाउस्सालब और दाउल्हय्यः आराम हो जाता है। **अहितकर**—उड़ने और न उड़ने वाली दोनों प्रकारकी टिड्डियाँ हर प्रकारकी तर और शुष्क खुजली उत्पन्न करती है। नमक लगाई हुई प्यास लगाती, खूनको जलाती, दूषित दोष उत्पन्न करती और रूक्षता लाती है। इससे शरीरकी त्वचा परसे छिलके उतरने लगते हैं। **निवारण**–कद्दू, खीरा, सिकंजबीन, मीठा और खट्टा, खट्टा-मीठा अनार, खुर्फा और खीरेके बीजोंका शीरा।

तिल्ली (प्लीहा)

नाम—(हिं०) तिल्ली; (अ०) तेहाल; (फा०) सपुर्ज; (सं०) प्लीहा; (अं०) स्प्लीन (Spleen)।

वर्णन—जिह्वाकी आकृतिका लम्बोतरा, कालाई लिए लाल रंगका एक प्रसिद्ध शरीरावयव जो उदरदरीमें बाइं ओरकी पसलियों और आमाशयके मध्य तथा हृदयके नीचे स्थित होता है। उपयोगके लिए युवा, पालतू और परिपुष्ट (मोटे) प्राणिकी प्लीहा उत्तम होती है। जंगली एवं वृद्ध प्राणि विशेषकर पक्षियोंकी प्लीहा अनुपयोगी एवं अग्राह्य होती है।

प्रकृति–पहले या दूसरे दर्जेमें सर्द और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दीर्घपाकी है। इससे सौदामय रक्त उत्पन्न होता है तथा विकृत कैमूस बनता है। इसके सेवनसे दस्त बन्द होते हैं। इसको सुखा पीसकर सद्यःक्षतोंपर छिड़कनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है और घाव भर आते हैं। बकरी या भेड़की तिल्ली लेकर थोड़ा सा नमक और पीपल पीस बुरककर आग्नि पर सेकें और जो द्रव उससे टपके उसे लेकर आंखमें लगानेसे रतौंधी जाती रहती है। **अहितकर**–आमाशयको। **निवारण**–तेल और सिरका। श्रेष्ट यह है कि रगों को साफ करके तेल या चर्बीके साथ पकायें और खाकर मदिरा पी लेवें। इससे इसके अवगुणोंका निवारण हो जायेगा।

तीतर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपवर्ग** (Sub-class : Neornithes) : **गैलिनी-गण** (Order : Gallinae) : **ऐलेक्टोरोपोडीज-उपगण** (Sub-order : Alectoropodes) : **फैमिली : फैसिआनिडी** (Family : Phasianidae) : **पर्डिसिनी-उपकुल** (Sub-family : Perdicinae)

नाम—(हिं०) तीतर, तीतुल; (अं०) दुर्राज, दुर्रज; (फा०) कबकेकू, बूरद; (सं०) तित्तिर (रि); (बं०) तितिर; (ता०) तोलुक-पेट्ट; (लें०)—(१) फ्रैन्कोलिनुस् पांडीसेरिआनुस *(Francolinus pondicerianus* Gmel.); (हिं०) चितकबरा तीतर; (सं०) गौरतित्तिर; (अं०) ग्रे पार्ट्रिज (The Northern grey partridge); (२) फ्रैन्कोलिनुस् फ्रैन्कोलिनुस् *(Francolinus francolinus* Linn.); (हिं०) कालातीतर; (अं०) दि ब्लैक पार्ट्रिज (The Black partridge)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी जो चितकबरा और काला भेदसे दो प्रकारका होता है।

प्रकृति–गरमी लिए हुए पहले दर्जेमें रूक्ष, मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। वस्तुतः यह रूक्षता लिए हुए गरम है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके मांससे मल कम बनता है, तथा यह गरमी भी पैदा करता (उष्णता जनक) है। इसे समस्त प्राणियोंके मांससे अधिक मोतदिल (अनुष्णाशीत) बतलाते है। शैखके अनुसार इसका मांस चकोर और फाख्ताकी अपेक्षया श्रेष्ठतर और लवाके मांससे अधिक (लतीफ) है। परन्तु इसमें लवाके मांसकी अपेक्षया रूक्षता अधिक और गर्मी कम है। तीतरका मांस मेध्य हैं तथा विवेक, स्मरणशक्ति और शुक्र इनका बढ़ानेवाला हैं। दीर्घकाल तक निरन्तर इसका मांस सेवन करते रहनेसे विस्मृति दोष दूर हो जाता है। दुर्बल व्यक्तियोंके लिए उपादेयतर हैं। आमाशय पर इससे भार नहीं पड़ता। शीतल एवं तर प्रकृतिवालोंके आमाशयको यह शक्ति देता है। इससे स्त्रीका दूध बढ़ जाता है। तीतरके बच्चेका मांस तो बहुत उपयोगी एवं सेवनीय है। उचित यह है कि जाड़ेकी ऋतुमें इसको पकाकर इसका मांसरस पिया करें। इससे उष्णता एवं उत्तम रक्तकी उत्पत्ति होगी है। इसके मांसको भूनकर नहीं खाना चाहिए। यदि खाना ही हो तो जब आमाशयमें द्रवाधिक्य हो उस समय इसे भूनकर खा सकते हैं। इसके खानेसे शरीरमें बल आता है, खाँसी और जलोदर आराम होते हैं, दस्त रुक जाते हैं। अपितु मलनिर्हरण कब्जसे होता है। इसकी बीट और रक्त लेखनीय होनेसे नेत्रका जाला काट देते हैं तथा शरीरकी त्वचा परसे दागोंको दूर करते हैं। मादनुश्शिफामें लिखा है कि काले तीतरका मांस मधुर, किंचित् भारी, उष्णवीर्य, संग्राही (काबिज) है तथा वीर्य, बुद्धि और क्षुधा, इनको बढ़ाता, तीनों दोषोंके प्रकोपका शमन करता और रक्तका प्रसादन करता है। सफेद तीतरका मांस शीतवीर्य एवं शीघ्रपाकी है, तथा हिक्का, श्वास, वायु और वातज सन्निपातमें लाभ पहुँचाता है और कफज रोगोंको मिटाता है। किताबुल् इख्तेसास में लिखा है कि पुराने जैतूनके तेलमें तीतरके पाँच अण्डे बर्तनमें रखकर अग्नि पर पका छानकर तेल अलग कर लेवें। यह बालखोरेके लिए विलक्षण गुणकारी है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–अम्लता।

आयुर्वेदीय मत–तीतर (तित्तिरः) मधुर, उष्णवीर्य, भारी तथा अत्यधिक जांगल और अत्यधिक अनूप (जल प्रधान) देशका सेवन न करनेसे वातप्रधान सन्निपानको शीघ्र ही जीतता है। (च० सू० अ० २७/६६)। (काला) तीतर (तितिरिः) मधुर, उष्णवीर्य किंचित भारी, ग्राही, बल्य, वृष्य, मेधावर्धक, अग्निवर्धक सर्वदोषनाशक और वर्ण प्रसादन, श्वास, कास हिचकी और ज्वरको दूर करने वाला होता है। सफेद तीतर (गौर तित्तिरिः) विशेष करके हिचकी, श्वास और वातरोगका हरण करने वाला है। (सु० सू० अ० ४६/६२)। कपिञ्जल मधुर, शीतवीर्य,

लघु होनेसे रक्तयुक्त पित्तकफके (रक्तपित्त) विकारोंमें एवं जहाँ वायु अल्प हो प्रशस्त माना गया है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

तेंदुआ

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata); **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **क्रव्यभुज्-गण**
(Order : Carnivora); **फिस्सिपेडिआ-उपगण** (Sub-order : Fissipedia);
फैमिली : फेलिडी (Family : Felidae)

नाम—(हिं०) तेंदुआ, बघेरा, तेंदुआबाघ; (अ०) नमिर; (फा०) पलंग; (सं०) तरक्षु; (ले०) फेलिस लेपार्डस (*Felis leopardus*); (अं०) लेपर्ड (Leopard)।

काला तेंदुआ—

वर्णन—बिल्ली या चीतेकी जातिका आकारका बड़े कुत्तेका एक बड़ा हिंसक पशु (मृगशत्रुव्याघ्र विशेषः) जिसकी खालपर काले रंगके चौड़े-चौड़े चिह्न होते हैं।

प्रकृति—मांस, चर्बी और पित्त आदि गरम और रूक्ष हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके मांसको पानी या जैतूनके तेलमें पकाकर घावोंपर लेप करनेसे तथा पित्ती उछलने अर्थात् शीतपित्तमें भी इससे लाभ होता है। पक्षवध, सुन्नता, संधिशूल, वातरक्त आदि शीतलव्याधियों और शीतजन्य पट्ठोंके रोगोंमें इसकी चर्बीकी मालिश लाभकारी है। इसकी चर्बी पिघलाकर व्रणोंपर लगानेसे वे भर जाते हैं। अरस्तूके कथनानुसार इसका रक्त झाँईपर लगाकर और इसे सूखनेतक ठहरकर फिर पानीसे धो डालनेसे झाँई दूर हो जाती है। उक्त प्रयोगसे अन्य दागभी जाते रहते हैं। इसका रक्त आँखमें लगानेसे सभी प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं। इसका भेजा जिरजीरके रसमें मिलाकर शिश्नके छिद्रमें टपकानेसे वाजीकरण और कामोद्दीपन होता है। वस्तिशूल और विदुमूत्र रोगमें इसके फुप्फुसका मांसरस पीनेसे लाभ होता है। कृष्णसर्प (अफई) या अन्य सर्प या कोई विषैला कीड़ा काट खाये तो १७॥ माशे इसकी विष्ठा खिलानेसे उपकार होता है। इसकी खाल पर बैठनेसे बवासीर आराम होता है। बिजौरे नीबूके रसके साथ इसका पित्त व्यङ्ग (बहक) पर मलनेसे दूर हो जाते हैं। इसका पित्त मारक विष है। बारह रत्तीकी मात्रामें तीन घड़ीमें मार डालता है। इसका **विष-लक्षण**—मुखका स्वाद तिक्तहो जाता है। नेत्र पीले पड़ जाते हैं। अन्नप्रणालीमें शोथ, दाह एवं वेदना होने लगती है। आक्षेप होने लगता है। उसकी चिकित्सा यह है—ताजा दूध पिलाकर वमन कराएँ। इसके पश्चात् गिल मख्तूम, रुब्ब बिह, रुब्ब सेब, शीरए तुख्मखुर्फा और आशजौ (यवमंड) बादामके तेलके साथ और मुर्गीके बच्चेका मांसरस (शूरवा) सेवन कराएँ। यदि दौर्बल्य एवं मूर्छाहो तो थोड़ीसी शराब मिलाएँ और शेरके पित्त खालेनेपर जो उपाय काममें लायेजाते हैं उन्हें इसमें भी काममें लेवें। तेंदुएके काट लेनेपर अत्यन्त दाह एवं सूजनहो जाती है। उक्त अवस्थामें बजरिया मछलियां रखे हुए पानीको घावपर डालनेसे बड़ा लाभ होता है। सोजिश उसी समय मिट जाती है।

तेंदुएकी मादाके उदरमेंसे एक पथरी निकलती है। उसको दूधमें डालनेसे दूध फटजाता है। इसको पास रखनेवाली स्त्री बन्ध्या होजाती है। तेंदुएकी किसी-किसी मादाके गर्भाशयको काटकर पानीमें डाल देवेंतो वह पनीर मायाकी भाँति जम जाता है। मात्रा—४ चावलसे ४ जौके बराबर। इससे अधिक खानेसे अत्यन्त दुबला (कृश) कर देता है। इसे उक्त मात्रामें यदि स्त्री सेवन करे या पास गर्भाशयमें रखे तो पुनः गर्भवती न हो। यदि पुरुष पास रखे तो किसी स्त्रीसे सहवास करनेमें असमर्थ होता है और यदि करनेमें समर्थभी हो तो उस स्त्रीको गर्भ न रहेगा। इसका लेप नासूरमें लाभकारी है।

तेलनी मक्खी

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta)

नाम—(हिं०) तेलनी, तेलिन, तेलनी मक्खी; (अ०) जरारीह, ज़रारीहे हिंदी, ज़रारीहुल्‌हिंद; (फा०) शकरन हिंदी; (सं०) तैलमक्षिका, स्नेहमक्षिका; (बं०) तेलिनीपोका; (म०) तेलिनी माशी; (ले०) माइलेब्रिस शिकोरिआई *(Mylabris cickorii* Fabr.), मा० पस्च्युलेटा (M. pustulata); (अं०) टेलिनी फ्लाई (Telini fly), ब्लिस्टरिंग फ्लाई (Blistering fly), चाइनीज बीट्‌ल्स (Chinecse betles), स्पैनिश फ्लाई (Spanish fly)।

वक्तव्य—लेटिन पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयुक्त तेलनी मक्खीको कैन्थरिस वेसिकेटोरिया *(Cantharis vesicatoria)* कहते हैं। यह दोनों गुण-कर्ममें समान है।

प्राप्तिस्थान—यह उत्तर भारतवर्ष और कश्मीरके कतिपय भागोंमें वर्षाऋतुमें पाई जाती है।

वर्णन—यह भौंरेकी जातिकी एक मक्खी है जो १ इंच लंबी और ३/८ या १/४ इंच चौड़ी होती है। इसके काले रंगके दो लंबे पर होते हैं, जिनपर नारंगी रंगकी दो आड़ी रेखाएँ अंकित होती है। इन परोंकी जड़की और एक बड़ा नारंगी रंगका बिंदु (नुक़्ता) होता है। इन बड़े परोंके नीचे झिल्लीके समान दो भूरे पर और होते हैं। रंगके विचारसे तेलनीमक्खीके बहुतसे भेद हैं।

रासायनिक संगठन—इसमेंभो ज़रारीहिन (कैन्थेरिडिन-Cantharidin) नामक वीर्य १% वा २% तथा उत्पत् तेल, कषाय द्रव्य और चर्बी होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमेंउष्ण एवं रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म—शोणितोत्क्लेशक, विस्फोटजनन, मूत्रल और वाजीकर। वाजीकरणके लिए बहुतही सावधानीपूर्वक इसका आन्तरिक उपयोग करते हैं। साधारणतया इसको तिलके तेलमें जलाकर तिलाकी भाँति उपयोग करते हैं। **उपयोग**—नपुंसकताको दूर करनेके लिए तेलनीमक्खीके चूर्णको तिल या बलसाँके तेलमें खूब मर्दन (हल) करके वाजीकरणार्थ शिश्नके ऊपर तिला करते हैं। इससे वहाँपर फोला उत्पन्नहो जाता है और शिश्नमें रक्त परिभ्रमण तीव्र होकर उसकी पोषणकारिणी शक्ति बढ़ जाती है और यह वाजीकरणका कारण बनती है। किलास, छिप वा झाईं (बहक), खालित्य और गंजपर इसे लगाते हैं तथा गृध्रसी, आमवात और पार्श्वशूलमें पतलालेप करते हैं करते हैं। स्थानीय रक्तपरिभ्रमणको तीव्र करनेके कारण इसको केशवर्धक तेलोंमें डालते हैं। **उपयोग**—विष होनेसे इसके आंतरिक उपयोग से मुख और कंठमें छाले उत्पन्नहो जाते हैं, तथा अन्त्रामाशय छिल जाते हैं। इसलिए बहुत कम और सावधानीपूर्वक इसका आंतरिक उपयोग किया जाता है। वाजीकरण तथा मूत्र और आर्तव की प्रवृत्तिके लिए इसका चूर्ण ६० मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० (१/२ से २ रत्ती) की मात्रामें खिलाते हैं कहते हैं कि इसके उपयोगसे पागल कुत्तेका विष मूत्रोत्सर्गके द्वारा निकल जाता है। **अहितकर**—आग्नेथ (अक्काल) है। **निवारण**—गोघृत। **मात्रा**—१/२ से १/४ रत्ती (६० मि० ग्रा० से ३० मि० ग्रा०) गोलीके रूपमें देना चाहिए। १ रत्तीसे ४ रत्ती (१२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा०) घातक माना जाता है।

नव्यमत—बाह्य प्रयोगसे यह प्रदाहकारक, प्रत्युग्रतासाधक और त्वचापर फोला डालनेवाली है। आभ्यन्तर प्रयोगसे उत्तेजक, मूत्रकारक और कामोद्दीपक है। इसका वीर्य चर्म द्वारा शरीरमें शोणित होता है। अन्नवह स्रोतस्, मूत्रयन्त्र और जननेन्द्रियपर इसकी क्रिया विशेषरूवसे प्रकाशित होती है। बारंबार पेशाब करनेकी चेष्टा, पौरुषग्रन्थि (Prostate gland) और मूत्रनलिकामें अत्यन्त वेदना तथा शिश्नोच्छ्रायमें इसके टिंक्चरकी एक बूंद एक औंस (२॥ तोला) जलमें मिलाकर देनेसे उपकार होता है।

तोता

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) **: पक्षीवर्ग** (Class : Aves) **: नियोर्निथीज-उपवर्ग** (Sub Class : Neornithes) : **सिट्टेसिफार्मीज-गण** (Order : Psittaciformes) : **फैमिली : सिट्टेसिडी** (Family : Psittacidae)

नाम—(हिं०) सुग्गा, कीर, सुगना, सूआ; (अ०) वबग़ा; (फा०) तोता; (सं०) शुक; (बं०) तिआ; (ले०) सिट्टाक्युला क्रामेरी (*Psittacula krameri* Scop.); (अं०) पैरट (Parrot)।

वक्तव्य—बुर्हानकातेअ और मुफ़रदात क़ानूनकी शरह (भाष्य)में हकीम अलीने इसका अरबी बीग़ा लिखा है। यह खजाइनुल् अदवियाके लेखकके अनुसार ठीक नहीं है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी जो विविध रंग, आकार और आकृतिका विशेषकर हरे रंगका होता है, हीरामन, नूरी, लहबरी, काकातूआ (Cockatoo) आदि इसकी अनेक जातियाँ होती हैं।

प्रकृति—मांस दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस दीर्घपाकी, हृद्य (हृदयोल्लासकारक) है तथा पेटको गुंग करता है। चोट और खांसीके लिए लाभकारी है। इसको खाने और लगानेसे झांई मिटती है। इसकी जीभ बालकोंको खिलानेसे उनकी चिह्वाका हकलापन मिट जाता है और भाषणप्रियता (खुशकलामी) भी उत्पन्न होती है। इसके खानेसे हृदयका बल और गर्मी बढ़ती है। चिरकारी व्रणभेदोंमें भी लाभकारी है। इसकी जीभ जिस प्रकार स्वरका परिष्कार करती है उसी प्रकार इसके हृदयका मांस खानेसे भी स्वरपरिष्कार एवं कठोर हृदयता आती है। इसकी बीट लगानेसे झाँई जाती रहती है। शरीरकी त्वचा परके दाग भी दूर हो जाते हैं। इसका रक्त लगानेसे बालकोंकी आँखका जाला कट जाता है और कच्चे अंगूरके रस (माऽहस्रम) के साथ लगानेसे भी आँखका जाला मिटता है। खानेसे क्षुधा, पाचन और शरीरका बल बढ़ाता है। अहितकर–दीर्घपाकी। निवारण–गरम मसाला, वैद्योंके अनुसार हड़।

आयुर्वेदीय मत—तोते (शुक) का मांस कषाय, अम्ल, विपाकमें रूक्ष, शीतवीर्य, लघु, संग्राही, दीपन तथा शोष, कास और क्षयके रोगियोंके लिए हितकर है। (च० सू० अ० २७/७१)।

थन

नाम—(हिं०)थन, चूची; (अ०) ज़र्अ, सदी; (फा०) पिस्तान; (सं०) स्तन; (ले०)मैमी (Mammae); (अं०) अडर (Udder)।

वर्णन—स्त्रियोंमें स्तन्योत्पत्तिका प्रधान अवयव। पुरुषोंके स्तनमें दूध उत्पन्न नहीं होता। इसके मांसका स्वाद मधुर होता है। उपयोगके लिए उत्तम स्तन वह है जो पुष्ट एवं दूधसे परिपूर्ण हो और मोतदिल एवं पुष्ट प्राणि से प्राप्त किया गया है।

प्रकृति—सर्दी लिए हुए तर; शैखके अनुसार सर्द एवं रूक्ष।

गुण-कर्ण तथा उपयोग –दूधसे परिपूर्ण स्तन यदि भली भाँति पच जाय तो उत्कृष्ट वा प्रकृत रक्त उत्पन्न करता (सालेहुल्गिजाऽ) है। अर्थात् मांसकी अपेक्षया इससे कम रक्त नहीं बनेगा और यदि पचे नहीं तो श्लैष्मिक आम (अपक्व) खिल्त (दोष) उत्पन्न करता है। जिनकी प्रकृति शीतल है या जिनमें कफ अभिभूत है या आमाशय और अन्त्र दुर्बल हैं उनके लिए यह उपयुक्त सेवनीय नहीं है। इसमें गरम मसाला मिलाकर पकानेसे शीघ्र पच जाता है। उष्ण प्रकृति वालोंके लिए पथ्याहार है। इसके सेवनसे स्त्रियोंका दूध और बढ़ जाता है और (खुमार) दूर होता है। जिनके आमाशयमें मद्य या पैत्तिक उष्ण दोष या कोई अन्य तीक्ष्ण दोष विद्यमान हो उसे

इसके सेवनसे लाभ होगा। अहितकर–शीत प्रकृतिको और सान्द्रत्वयुक्त होता है। निवारण–गरम मसाला, मस्तगी, नमक, सातर और भूनना।

दिल

नाम—(हिं०) दिल; (अ०) क़ल्ब; (फा०) दिल; (सं०) हृदय, हृत्; (ले०) कार्डियम (*Cardium*); (अं०) हर्ट (Heart)।

वक्तव्य—अरबी क़ल्ब शब्दका धात्वर्थ 'उलटा' है। हृदय भी छातीके भीतर उलटा लटका हुआ है अर्थात् इसका आधार या मूल ऊपरको और इसका शीर्ष या चोटी या नोक नीचे स्थित है, इसलिए इसका नाम क़ल्ब रखा गया।

वर्णन—यह प्राणि शरीरका एक उत्तमांग है जो गोपुच्छाकार एवं वक्षमें बाईं ओर स्थित है। यह प्रकृत देहोष्मा और प्राण एवं ओजका मूल उद्गम और भण्डार है। इसी कारण अन्य सब अंगोंकी अपेक्षया अधिक उष्ण है तथा सब अंग-प्रत्यंगोंसे अन्त तक गतिशील रहता है और सबसे पीछे शीतल होता है। उपयोगके लिए उत्तम हृदय वह है जो अल्पवय एवं प्रकृतिस्थ और पुष्ट प्राणिका हो। चौपायोंमें बकरी और पक्षियोंमें पुष्ट मुरगेका हृदय श्रेष्ठ और जलपक्षियोंका निकृष्ट होता है।

प्रकृति—गरम एवं रूक्ष परन्तु रियाजुल् अदविया आदिके अनुसार पहले दर्जेमें गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यदि इसका मांस भली-भाँति पच जाय तो शरीरको पुष्कल आहार प्राप्त होता है (शरीर खूब पुष्ट होता है)। इसके खानेसे हृदयको बल मिलता है, और धडकन दूर होता है। जो लोग खूब परिश्रम करते हैं उनको इसका सेवन उपयुक्त है, क्योंकि यह बहुत कठोर, दीर्घपाकी और (रदीउल्गिजा) है। सिरका, तेल, गरम मसाला और कांजीसे इसके उक्त दोषोंका कुछ निवारण हो जाता है। इसको अधिक गलाना चाहिए। परन्तु इसका न सेवन करना ही श्रेयस्कर है। इसको आगपर सेकें और जो रक्त टपके उसको आँखमें लगानेसे रतौंधी जाती रहती है। प्रत्येक प्राणिके हृदयका गुण-कर्म तथा उपयोग आदि उस-उस प्राणीके वर्णन प्रसंगमें दिया जायगा।

दीमक

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) : **टेरीगोटा-उपवर्ग** (Sub-class : Pterygota) : **आइसोप्टेरा-गण** (Order : Isoptera)

नाम—(हिं०) दीमक, देवँका, दीवँक; (अ०) उ(अ)र्ज़ः; (फा०) दीमक; (सं०) वल्मीक, वल्मी; (ले०) माइक्रोटर्मीज ओबेसी (*Microtermes obesi*), टर्मीज ओबेसुस (*Termes obesus*); (अं०) ह्वाइट ऐंट (White ant)।

वर्णन—एक प्रकारका बहुत छोटा प्रसिद्ध कीड़ा जिसका सिर सफेद, मुँह कुछ कड़ा और शरीर नरम जो चिपचिपे द्रवसे भरा होता है। ये लकड़ी, कागज और कपड़ा आदि को खा जाते है और थोड़े समयमें नष्ट कर देते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इनको बैलके कोहानकी चर्बीमें घोंटकर अर्शके अंकुरोंपर लगानेसे लाभ होता है। कनेरका पकाया हुआ पानी छिड़कनेसे दीमक भर जाती है। हुदहुद और गिद्धके परों, धनियेके बीजों तथा पुदीना इनका धूआँ दीपकको भगा देता है। भारतीयोंने लिखा है कि दीमकके राजाको जो सबमें बड़ा होता है और भूमि खोदनेमें कभी खजूरके पेड़के पास मिल जाता है, पकड़कर, उसका सिर काटकर गायके घीमें लपेटकर निगल जानेसे अत्यंत रक्ति शक्ति उत्पन्न होती है।

दुग्ध (क्षीर) वर्ग

दूध—

नाम—दूध (हिं०, द०, वं०, म०, गु०) दूध; (अ०) हलीब, लव्न; (फा०) शीर; (सं०) दुग्ध, क्षीर, पयस्, स्तन्य; (म०) दूद; (ता०) पाल; (ते०) पालु; (मल०) पाल, क्षीरम्; (कना०) हालु; (सिं०) खीर; (ले०) लॅक् (Lac), लैक्टुस (Lactus); (अं०) मिल्क (Milk)। **दूध भेद**—**स्त्री का दूध**—(अ०) लवनुन्निसा; (फा०) शीरेज़नान; (सं०) स्त्री (नारी) स्तन्य; (अं०) ह्युमन मिल्क (Human milk)। **गदहीका दूध**—(अ०) लबनुल् अतान; (फा०) शीरे उलाग़, शीर मादए खर; (सं०) गर्दभी दुग्ध; (अं०) ऐस मिल्क (She Ass's milk) **गायका दूध**–(अ०) लब्नुल्बक़र; (फा०) शीरे गाव; (सं०) गोदुग्ध; (अं०) काऊज़ मिल्क (Cow's milk)। **बकरीका दूध**–(अ०) लब्नुल् माज़; (फा०) शीरे बुज़; (सं०) छागी दुग्ध; (अं०) गोट्स (शीप्स) मिल्क (She goat's milk)। **भैंसका दूध**–(अ०) लबनुल् जामूस; (फा०) शीरे गावमेश; (सं०) महिषी क्षीर; (अं०) बफ्लोज़ मिल्क (Buffalo's milk)। **ऊँटनीका दूध**–(अ०) लब्नुल्लक़ाह, (फा०) शीरे शुतुर, (सं०) उष्ट्री क्षीर, (अं०) केमल्स मिल्क (Camel's milk)। **घोड़ीका दूध**–(अ०) लब्नुर्रिमाक, लब्नुल्खैल; (फा०) शीर मादियाँ, शीरे मादये अस्प; (सं०) अश्वी दुग्ध; (अं०) मेयर्स मिल्क (Mare's milk)। **भेड़ीका दूध**–(अ०) लब्नुन्निआज, लब्नुज़्ज़ान; (फा०) शीरे मेश; (सं०) मेषी दुग्ध; (अं०) शीप्स या यूज़ मिल्क (Sheep's or Ewe's milk)। **हथिनीका दूध**—(अ०) लब्नुल् फ़ील; (फा०) शीरे पील; (सं०) हस्तिनी क्षीर; (अं०) एलीफैन्ट्स मिल्क (Elephamt's milk)।

रासायनिक संगठन—शरीरके संवर्धनके लिए खाद्यद्रव्योंके जिन-जिन उपादानोंकी आवश्यकता होती है, वे सब उपादान दूधमें विद्यमान होते हैं जिससे आवश्यकताके अनुसार न्यूनाधिक मात्रामें केवल दूधका ही सेवन करनेसे मनुष्य स्वस्थ तथा व्याधित अवस्थाओंमें स्वस्थ और व्याधिक्षम बन सकता है। इसलिए दूध पूर्णाहार कहलाता है। आधुनिक वैज्ञानिक कसौटीका प्रयोग होने पर भी दूधकी यह सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हुई है। दूधमें रस-रक्त (अस्थि, नाड़ीतंतु, मांस) आदि धातुओंकी वृद्धि और क्षतिपूर्तिके लिए आवश्यक प्रोभूजिन (प्रोटीन) होते हैं। तथा चरबी भी होती है जो पचनेमें हलकी होती है। दूधमें दुग्ध शर्करा (सुक्करुल्लब्न Lactose, milk sugar) नामक शर्करा होती है। चूना, सोडियम, पोटैसियम, मैग्नीसियम, लोह, गंधक, भास्वर (फॉस्फरस), आयोडीन (जम्बुकी) आदि शरीरके लिए अत्यावश्यक खनिजभी दूधमें होते हैं। इन प्रधान खनिजोंके अतिरिक्त दूधमें अति सूक्ष्म मात्रामें ताँबा, लोहक (मैंगेनीज), सीस, ऐल्युमिनियम्, जसद, वर्णातु (क्रोमियम), रोचातु (वनेडियम), वंग, टिटेयिम् (Titanium) इत्यादि विरल खनिज भी रहते हैं। खनिजोंकी विविधता दूधकी अद्वितीयता बढ़ानेका एक कारण है।

इनके अतिरिक्त जीवनरक्षाके लिए आवश्यक सब जीवतिक्तियाँ (Vitamins) विशेषकर ए०, डी०, ई० भी दूधमें उपस्थित रहती हैं। जो जानवर ताजी हरियाली तथा घास अधिक खाता है और सूर्य प्रकाशमें घूमता फिरता है उसके दूधमें इन जीवद्रव्योंकी मात्रा अधिक होती है। भिन्न-भिन्न प्राणियोंके दूधमें प्रोटीनादि उपादानोंकी मात्रा भिन्न-भिन्न हुआ करती है। प्रत्येक वर्गके प्राणिके दूधका संगठन भी विशेष जाति, नसल (Breed), जलवायु, ऋतु, आहार- विहार ,आयु, प्रसूतिके पश्चात्का काल, प्रदेश इत्यादिकी भिन्नताके अनुसार बदलता रहता है। दूध पचनेमें हलका तथा पौष्टिक होता है। उसका सारभूत भाग पचन करनेमें तथा फलरूप भाग शरीरके बाहर निकाल देनेमें शरीरके वृक्कादि इंद्रियोंको बहुत कम कार्य करना पड़ता है। तथा शरीरकी कोशाओंका ह्रास भी कम होता है। दूध जब अन्त्रमें पहुँचता है तब आन्त्रस्थ जीवाणुओं तथा उनके विषका नाश (Antitoxic) किया करता है। यह कार्य विशेष करके दुग्धशर्करासे होता है। यह शर्करा अन्त्र में लैक्टिक या सक्सिनिक अम्ल (Lactic or Succinic acids) में परिवर्तित होकर उनकी सहायतासे जीवाणुनाशक कार्य करती है। दे० 'दही'। भैंसके

दूधमें गायके दूधकी अपेक्षया अधिक मक्खन होता है। गधीके दूधमें लवण और वसा कम, किंतु शर्करा अधिक होती है। स्त्रीस्तन्यमें वसा अधिक किंतु लवण कम होता है। (सु० सू० अ० श्लो० ४९ की घाणेकरी टीकान्तर्गत वक्तव्यसे सारांशरूपमें उद्‌धृत)।

प्रकृति—उष्णता लिये संमिश्रवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह एक हलका और शीघ्रपाकी पथ्यकर आहार है। समस्त दूध बल्य, बृंहण और वाजीकर हैं। आहारकी भाँति इसका उपयोग करते हैं या बल्य औषधियोंके साथ अनुपानकी भाँति इसे पिलाते हैं। दूधोंमें स्त्रीका दूध, वह भी माताका दूध सर्वश्रेष्ठ है। इसमें जलांशकी अधिकता और किलाट (जुब्न या पनीर) की अल्पताके कारण यह प्रसूतिसे ४० दिन बादका दूध उरःक्षत और यक्ष्मा रोगमें पिलाया जाता है। नेत्राभिष्यंद में इसका आश्च्योतन करते हैं। स्त्रीके बाद दूसरे दर्जे पर गधीका दूध है। स्त्री और गधीका दूध सामान्यतया उपलब्ध न होनेके कारण यह शेष दूधोंसे प्रशस्ततर है और आहार तथा औषधमें प्रयुक्त होता है। यह शरीरको बल देता और पुष्टि देता है। बकरीका भी श्रेष्ठतर है। इसके दूधसे माउज्जुब्न (पनीरका पानी) तैयार करके प्रायः मालीखोलिया (मद), उन्माद और कुष्ठ इत्यादि जैसे सौदावी रोगोंमें पिलाते हैं। भैंसका दूध गाढ़ा, गुरु और आनाहकारक होता है। यद्यपि यह अन्य दूधोंकी अपेक्षया अधिक बलवर्धक है, तथापि गाढ़ा, गरिष्ठ और आनाहकारक होनेके कारण अग्निमांद्य के रोगीके लिए अहितकर है। ऊँटनीका दूध जलांशकी अधिकताके कारण मूत्रल है, अतः जलोदरीको पिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्लीहाकाठिन्यके लिए भी गुणकारण है। घोड़ीका दूध पिलानेसे शिशु चेचकसे सुरक्षित रहते हैं। अहितकर—कभी-कभी ज्वर उत्पन्न करता है। मन्दाग्निके लिए अहितकर है। निवारण—सौंफ, सोंठ, चीनी और मधु। प्रतिनिधि—एक जानवरका दूध कतिपय अन्य जानवरके दूधका प्रतिनिधि हो सकता है। मात्रा—आहारकी भाँति जितन पच सके। औषधकी भाँति आध पावसे पावभर तक।

आयुर्वेदीय मत—सर्व प्रकारका दूध प्रायः मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, प्रीणन (तर्पण), बृंहण, वृष्य, मेध्य, बल्य (सद्यः बलकारक), मनोबलको बढ़ानेवाला (या मनको प्रसन्न करनेवाला, इन्द्रियोंको दृढ़ करनेवाला, जीवनीय, श्रमहर, सर्वप्राणियोंको जन्मसे ही सात्म्य, शमन, शोधन, तृषाहर, दीपन, संधानीय वयःस्थापन, आयुष्य, ओजोवर्धक, रसायन, आरोग्य एवं सुखको करनेवाला तथा बालक, वृद्धि, क्षतसे क्षीण तथा प्रभूत-स्त्रीसंग और व्यायामसे कृश हुए—इनके लिए अतिपथ्य है। दूध श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, शोष, राजयक्ष्मा, धातुक्षय, उदर, अतिसार, प्रवाहिका (पेचिश), जीर्णज्वर, दाह, शोथ, योनि (गर्भाशय)के रोग, शुक्रदोष, मूत्ररोग, प्रदर, मलका ग्रथित होना (मलके सुद्दे पड़ना), श्वासरोग, पित्तरोग, रक्तविकार, मानसरोग, गुल्म, उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, मद, तृष्णारोग, हृद्रोग, मूत्राशयके रोग, ग्रहणीरोग, अर्श, शूल, उदावर्त, गर्भस्राव, श्रम और क्लमको दूर करनेवाला है। नस्य, आलेपन, अवगाहस्वेद, वमन, आस्थापन बस्ति, विरेचन और स्नेहक्रियामें दूधका उपयोग होता है। इससे गर्भ पुष्ट एवं दृढ़ होता है और बन्ध्या, नपुंसक एवं वृद्ध स्त्रीके भी सन्तान हो जाती है। यह गुदाका शोधन करता, वायुको अनुलोम करता है तथा मनुष्योंके शरीरमें लघुता उत्पन्न करता है। इसलिए सम्पूर्ण रसायनों तथा रोगके अन्तमें इसको श्रेष्ठ माना गया है। (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५; काश्य० सं० कल्पस्थान)।

आयुर्वेदमें गायके दूधको सब दूधोंमें श्रेष्ठ बताया गया है। वेदों और पुराणोंमें इसे अमृत कहा है। बकरीका दूध गुणमें इसके समान होता है, विशेषकर राजयक्ष्माके रोगीके लिए हितकर, दीपन, हलका, संग्राही (अतिसारमें उपयोगी) होता है। नारी (स्त्री)का दूध (मानुषपय) मधुर, कषायानुरस, शीत, जीवनीय, लघु, दीपन, सात्म्य तथा रक्तपित्तमें नस्य और नेत्ररोगोंमें तर्पण और आश्च्योतनमें पथ्य है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५)। आयुर्वेदोक्त दुग्धगुण वर्णनका निचोड काश्यपसंहितामें इस प्रकार दिया है—दूध शरीरके लिये सात्म्य, पवित्र करनेवाला, मङ्गलकारक, आयुष्यकारक, वर्ण्य, केश्य, सन्धानकारक तथा वयः स्थापक है। यह सर्व प्राणियोंके

लिए अनुकूल होता है। दूध पीनेवाले व्यक्तिको रोग नहीं होते हैं, दूधसे बढ़कर कोई भी वृष्य द्रव्य नहीं है तथा जीवनीय द्रव्योंमें भी दूधसे बढ़कर कोई द्रव्य नहीं है। (कल्पस्थान)। दूध दिनकी अपेक्षया रात्रिमें शीत होता है और उस समय पशु व्यायाम नहीं करते इसलिए प्रातः कालका दूध गुरु, विष्टम्भि और शीतल होता है। दिनमें पशु सूर्यके तापमें और खुली वायुमें फिरते हैं तथा चलने-फिरनेका परिश्रम करते हैं इसलिए सायंकालका दूध श्रमहर, वातघ्न और चक्षुष्य होता है। धारोष्ण दूध गुणकारक है। कच्चा-ठंढा दूध अवगुण करता है। गरम किया हुआ, दूध लघु और अभिष्यन्द न करनेवाला होता है। नारीका दूध ठंढा ही हितकर होता है। पकाकर गाढ़ा किया हुआ (अतिशृत) दूध, शीत, गुरु और बृंहण होता है। जिस दूधमें अप्रिय गंध आती हो, जिसका वर्ण, रस और स्वाद बदल गया हो तथा जो अम्ल और किंचित् लवण रसवाला तथा फट गया हो ऐसे दूधका उपयोग नहीं करना चाहिये। (सु० सू० अ० ४५)।

दुग्ध विकार

खीस—(हिं०) पेउस (सी), पेवस, प्यूसी; (अ०) लिबाऽ; (फा०) शीरे दफ़्लः; (सं०) पीयूष।

वर्णन—वह गाढ़ा दूध जो गाय, भैंस आदि पशुओंकी प्रसूतिके तीन-चार दिन बाद तक दुहा जाता है। २। तोले खीस २८ तोले दूधमें डालनेसे दूध गाढ़ा हो जाता है। आयुर्वेदके मतसे सद्यः प्रसूताका क्षीर पीयूष और सात रात्रिके बादका दूध मोरट कहा जाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और स्निग्ध।

गुण-कर्म—वाजीकर, बृंहण और श्वासरोगीको लाभकारी है। उपयोग–गाय, भैंस सरीखे प्राणी जब बच्चा देते हैं तब उनका दूध तीन-चार दिन तक पकाकर चीनी मिलाकर पीते हैं। यह पकानेसे जम जाता है और दीर्घपाकी एवं आनाहकारक होता है। परन्तु जिनकी पाचन शक्ति और आमाशय बलवान् होता है, उनमें यह सम्यक् पचकर शरीरको स्थूल बनाता और कामोद्दीपन करता है। इसको श्वासमें प्रभावतः गुणकारक बतलाते हैं। अस्तु कतिपय अर्वाचीन हकीमोंने बहुत विश्वासपूर्वक अपना यह अनुभव वर्णन किया है कि प्रथम प्रसूता गायका पहले-पहल दुहा हुआ दूध (प्यूसी) ताजा-ताजा श्वासरोगीको पिलानेसे श्वासरोग जाता रहता है। यदि फिर दौरा हो तो एक दो बार इसी प्रकार पिलायें। अहितकर–सुद्दे उत्पन्न करती है। निवारण–मधु। प्रतिनिधि–पनीर।

आयुर्वेदीय मत–किलाट (छाना) भारी, वायुनाशक, पुंसत्व और निद्रा देने वाला और पीयूष तथा मोरट मधुर, पुष्टिकर और वृष्य होते हैं। (सु० सू० अ० ४५)।

दही

नाम—(हिं०) दही; (अ०) लब्नुल् हामिज़, लबनमुन्जमिद, सुग़रात; (फा०) जुग़रात, मास्त, शीरे खुफ़्ता; (सं०) दधि; (गु०) दही; (बं०) दई; (म०, कों०) दही; (कना०) मोस्तु; (अं०) कर्डल्ड मिल्क (Curdled milk), कर्ड (Curd)।

वर्णन—वह प्रसिद्ध वस्तु जो दूधमें छाछ, दही या किसी अन्य अम्ल वस्तुका जामन देकर जमा लेनेसे बनता है।

रासायनिक संगठन—पौष्टिकताकी दृष्टिसे दूधके सर्व उपादान दहीमें भी मिलते हैं। केवल दुग्धशर्कराके स्थानमें दुग्धाम्ल तथा दुग्धाम्लजनक जीवाणु होते हैं। इनके कारण दूधकी अपेक्षया दहीमें कई अन्य गुण विशेष रूपसे दिखाई देते हैं इसलिए दैनिक आहारमें दही सेवन अत्यावश्यक है।

प्रकृति—शीत और रूक्ष।

गुण-कर्ण तथा उपयोग—यह संतापहर, स्नेहन और बृंहण है। अतिसार और प्रवाहिका तथा उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए परमोत्कृष्ट पदार्थ है। मीठा दही प्रशस्ततर होता है। ग्रीष्म ऋतुमें इसकी लस्सी या शर्बत

बनाकर पीनेसे तृष्णाका जोर घट जाता है। यदि मूत्रनलिकामें उष्णता एवं दाह हो तो मूत्रका उत्सर्ग होकर वह दूर हो जाता है। अम्ल होने पर भी उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए दही कामावसादजनक नहीं है। यह रक्तज और पित्तज अतिसारको रोकता है। प्रवाहिकाके लिए यह उत्तम पदार्थ है, वशर्तेकि अन्त्रमें विबंध (सुद्दे) न हों। दहीकी बालाई स्नेहन एवं स्वप्नजनन है और कद्दूके बीजोंसे निकाले हुए तेलका प्रतिनिधि है। अहितकर–द्रव (रतूबत) बढ़ा देता (अभिष्यंदि) है। निवारण–सोंठका मुरब्बा। मात्रा–जितना पच सके। औषधकी भांति ५ से १० तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—दही मधुर, अम्ल और अत्यम्ल तीन प्रकारका होता है। सब प्रकारके दही सामान्यतः कषायानुरस, विपाकमें अम्ल, उष्णवीर्य, स्निग्ध, रुचिकर, दीपन, वृष्य, बृंहण, बलकर, मङ्गल्य तथा (पक्व) पीनस, अतिसार, शीतपूर्व विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशताको दूर करने वाले हैं। मीठा दही अभिष्यन्दि तथा कफ और मेदको बढ़ाने वाला है। खट्टा दही कफ और पित्त करता है। अति खट्टा दही रक्तको दूषित करनेवाला, विदाही और मल-मूत्रको साफ करनेवाला है। कच्चा (बराबर न जमा हुआ) दही तीनों दोषोंको उत्पन्न करता है। कपड़ेमें बांधकर पानी निकाला हुआ दही वातघ्न, कफकर, स्निग्ध, किंचित् पित्तकर तथा अन्नपर रुचि उत्पन्न करनेवाला है। शृत (कढाये हुए) दूधसे जमाया हुआ दही गुणकर, वातपित्तहर, रुचिकर तथा रसादि धातु—जठराग्नि और बलको बढ़ानेवाला है। मक्खन निकाले हुए दूधको जमाकर बनाया हुआ दही रूक्ष, ग्राही, विष्टम्भि, वातकर, दीपन, अतिलघु, कुछ कषाय और रुचिकर होता है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५)। स्त्रीका दही स्निग्ध, विपाकमें मधुर, बलकारक, तृप्तिकर, भारी, नेत्रके लिए अत्यंत हितकर, दोषनाशक और गणश्रेष्ठ है। (सु० सू० अ० ४५)।

छाछ

नाम—(हिं) छाछ, मठा (ट्ठा), माठा, मही; (अ०) मखीस; (फा०) दोग़; (सं०) तक्र, मथित, घोल, उदश्वित्; (बं०) घोल; (म०) ताक; (गु०) छाश, मठो। (मलाई (Cream) निकाला हुआ दूध) निःसन्तानिक दूध; (अं०) स्किम्ड मिल्क (Skimmed milk) बटर मिल्क (Butter milk)।

वर्णन—यह दूध जमाकर मक्खन निकाल लेनेके उपरांत अवशेष रहा हुआ अम्ल प्रवाही है। वैद्यकमें गायके दूधकी छाछ औषधकी भांति प्रयुक्त होती है। दहीमें जल मिला, मथकर तैयार किये द्रव पदार्थको आयुर्वेदमें तक्र और दहीमें बिना जल मिलाए मथकर तैयार किये हुए पदार्थको घोल या मथित कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म—दाह प्रशमन, पित्तनाशक, दीपन, संग्राही और मूत्रल है। उपयोग—यह तृष्णा एवं रक्तोद्वेग-को शमन करती है तथा उष्ण यकृदामाशयशोथको नष्ट करती है। यह राजयक्ष्मा (तपेदिक), मद्य और उष्ण विषजन्य दाहको शांत करता है। दीपन और संग्राही होनेके कारण यह पित्तज अतिसारको वन्द करता है तथा अन्त्र, आमाशय और यकृत्की उष्ण व्याधियोंमें गुणदायक है। अन्त्र, आमाशय और यकृत्के बलवर्धनके लिए इसको अतरीफल खब्सुल्हदीद या केवल मण्डूरके साथ पिलाते हैं। रक्तज और पित्तज अतिसार बन्द करनेके लिए लोहे या पत्थरको अग्निमें तपाकर और उसको छाछमें बुझाकर अकेला या संग्राही औषधियोंके साथ पिलाते हैं। अधिक जल मिलाकर पीनेसे यह खूब पेशाब लाती है और मूत्रदाह एवं प्रारंभिक सूजाकमें गुणकारक है। अहितकर–सदोष प्रकोथजनित ज्वरोंके लिये। निवारण–सिकंजबीन और गरम जुवारिशें। प्रतिनिधि–मीठा दही। मात्रा–औषधकी भांति १० तोलेसे २० तोले तक।

अयुर्वेदीय मत—तक्र मधुर, अम्ल, कषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, हृद्य, अवृष्य तथा गर (कृत्रिम विष), शोथ, अतिसार, ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अर्श, प्लीहा, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर,

तृषा, वमन, प्रसेक, शूल, मूत्रकृच्छ्र, स्नेहव्यापत्, मेदोरोग, कफ और वातको दूर करनेवाला है। ये तक्रके गुण जिसमें दहीसे आधा पानी डाल, मथकर स्नेहांश निकाल लिया हो, जो न बहुत पतला और न बहुत गाढ़ा हो तथा रसमें मधुर, अम्ल और कषाय हो, ऐसे तक्रके समझने चाहिए। मीठा (मधुररसाधिक) तक्र कफ प्रकोपक और पित्तप्रशमन तथा खट्टा (अम्लरसाधिक) तक्र वातहर और पित्तकर है। वातप्रकोपमें अम्ल और सैन्धवयुक्त, पित्तप्रकोपमें मधुर और शर्करा युक्त तथा कफप्रकोपमें त्रिकटु और यवक्षारका चूर्ण मिलाया हुआ तक्र देना चाहिए। दोष और जठराग्निका बल देखकर सर्व स्नेहांश (मक्खम) निकाले हुए, आधा स्नेहांश निकाले हुए या बिल्कुल स्नेहांश न निकाले हुए तक्रका प्रयोग वैद्य करें। तक्रसे स्रोतस् मार्ग शुद्ध होने पर जो रस सम्यक्तया शरीरमें पहुँचता है उससे पुष्टि, बल, वर्ण और हर्ष उत्पन्न होता है (सु० सू० अ० ४५; च० चि० अ० १४)। तक्रादि प्रकार गौके ही श्रेष्ठ होते हैं। (सु० सू० अ० ४५)। सुश्रुतके मतसे अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा अन्य प्रकारके पाचनदोष सब रोगोंके मूल कारण हैं। इन पाचनदोषोंको दूर करनेकी दृष्टिसे तक्र सर्वोत्तम खाद्यौषध है। चरकने अग्निको उद्दीपित करनेवाले तथा स्रोतके एवं उससे सम्बन्धित अंगोंके विकारोंको ठीक करनेवाले खाद्यद्रव्योंमें तक्रको सर्वश्रेष्ठ माना है (चि० १३ अ०)। अग्निमांद्यमें उसका सेवन भोजनके उपरांत किया जाता है।

घी और मक्खन

नाम—घी (हिं०) घी, घीउ; (अ०) सम्न; (फा०) रोग़न, रोग़नज़र्द, रोग़नसतूर; (सं०) घृत, सर्पिस्; (गु०) घी; (बं०) घि घृत (म०) तूप; (ले०) ब्युटिरम् डिप्युरेटम् (*Butyrum Depuratum*); (अं०) घी (Ghee), क्लेरिफायड बटर (Clarified butter)।

रु़बतुल्लबन, रग़ीफ़तुल्लब्न।

मक्खन—(हिं०) मसका, मस्का, मक्खन, माखन, नवनी; (अ०) ज़बद; (फा०) मस्कः, रोग़ज ताजा; (सं०) नवनीत, दुग्धसार, हैयङ्गवीन; (बं०) नोनी; (म०) लोणी; (गु०) माखण; (अं०) बटर (Butter)।

मलाई—(हिं०, बं०, म०, गु०) मलाई (बालाई); (अ०) क़ीमाक़; (फा०) सरशीर; (सं०) सन्तानिका; (अं०) क्रीम (Cream)।

वर्णन—दूध वैसे ही कुछ काल रखनेपर या मन्दाग्नि पर गरम करनेपर ऊपर जो गाढ़ा भाग बनता है उसको मलाई कहते हैं। इसमें १५% से ३०% स्नेहांश रहता है। इसके अतिरिक्त उसमें कुछ प्रोभूजिन, लवण शर्करा आदि द्रव्य भी रहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मलाई वातनाशक, तृप्ति करनेवाली, बल्य, वृष्य, स्निग्ध, रुचिकर, मधुर, विपाकमें मधुर, रक्तपित्तका प्रसादन करनेवाली और भारी होती है। (सु० सू० अ० ४५)। मलाई निकाला हुआ दूध अग्निमान्द्यवालों और बच्चोंको हितकर होता है।

वर्णन—घी प्रसिद्ध स्नेह द्रव्य है जो प्राणियोंके दूधसे निकाला जाता है। गायका घी श्रेष्ठ समझा जाता है और यही अधिकतया औषधमें प्रयुक्त होता है। ताजा निकाला हुआ घी जिसको अभी अग्नि पर रखकर साफ न किया गया हो मक्खन (ज़बद) कहलाता है। यह ताजा उत्तम होता है। मक्खन गरम करके घी बनाया जाता है। यह दूध और दही दोनोंसे निकाला जाता है।

रासायनिक संगठन—घीमें केवल मेद (१००%) होता है। मक्खनमें ७८ से ९४ प्रतिशत स्नेह, १२ से १५ प्रतिशत पानी, १ से ३ प्रतिशत प्रोभूजिन (प्रोटीन) और ० से ७ प्रतिशत खनिज (फॉस्फेट इत्यादि) होते हैं। इसके अतिरिक्त दूधके विटामिन भी इसमें उपस्थित रहते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं स्निग्ध।

गुण-कर्म—खाद्य द्रव्योंमें मक्खन सबसे अधिक हलका पदार्थ है और उसका संपूर्ण पचन और शोषण आँतमें होता है। घी कोथप्रतिबंधक, सर, स्नेहन, श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन है। आंतरिक उपयोगसे यह शरीरको शक्ति देता, उसमें गरमी और तरी पहुँचाता और चर्बीको बढ़ाता है। परिबृंहण है और शरीरके भीतर कतिपय विषोंके प्रभावके प्रवेशमें बाधा उत्पन्न करता है। घीका प्रचुर प्रयोग आमाशय और पाचनको निर्बल बनाता है। **उपयोग**—खरत्व, रूक्षता और कण्डूको दूर करनेके लिए घीको शरीर पर मर्दन करते हैं। उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका मलहम बनाकर व्रणकोथको दूर करने और उनको शीघ्र सुखानेके लिए उपयोग करते हैं। मलहरोंमें साधारणतः धोया हुआ विशेषकर सौ बार धोया[1] हुआ घी उपयोग किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि ऐसा घी आंतरिक उपयोगके योग्य नहीं रहता। कतिपय शोथों पर लगानेसे यह उनको विलीन करता और उनका दाह मिटाता है। घी आंतरिक रूपसे आहारमें पुष्कल खाया जाता है। घी विशेषतः मक्खनमें मिश्री मिलाकर शुष्क कास और उरःकंठकी कर्कशता नष्ट करनेके लिए चटाते हैं। घीका आधिक्य उदर मृदुकर है। इसे बल्य, बृंहण और वाजीकर हलुओंमें डालकर खिलाते हैं। इसे सर्पदष्ट रोगीको पिलाते और संखिया तथा अफीम खाये हुए आदिको गोदुग्धके साथ बार-बार पिलाकर वमन कराते हैं। **अहितकर**—आमाशयको। **निवारण**—जुवारिश। **प्रतिनिधि**—दूध, मलाई, मक्खन।

आयुर्वेदीय मत—ताजा मक्खन (नवनीत) मधुर, कषाय, कुछ अम्ल, शीतल, लघु, देहको सुकुमार करनेवाला, मेध्य, दीपन, हृद्य, संग्राही, वृष्य, अविदग्धि तथा पित्त, वात, धातुक्षय, खाँसी, व्रण, राजयक्ष्मा, अर्श और अर्दितको दूर करनेवाला है। दूधसे निकाला हुआ मक्खन (क्षीरोत्थनवनीत) उत्कृष्ट स्नेह और मधुरतावाला, अतिशीत, सुकुमारता लानेवाला, नेत्रके लिए हितकर, प्रसादन तथा रक्तपित्त और नेत्ररोगको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)। पुराण (चिरोत्थित) मक्खन भारी, कफ और मेद बढ़ानेवाला, बलकर, शरीरपुष्टिकर और कृशता दूर करनेवाला होता है। मक्खन विशेष करके बालकोंके लिए बहुत प्रशस्त होता है। (सु० सू० अ० ४५) योगरत्नाकरके मतसे बालकोंके समान वृद्धोंके लिए भी नवनीत हितकर होता है।

वक्तव्य—खाद्य द्रव्योंमें मक्खन बहुत अधिक हलका पदार्थ है और उसका संपूर्ण पचन और शोषण आँतमें होता है। इसलिए ताजा मक्खन क्षय, शरीरकृशता, अग्निमांद्य आदि रोगोंमें बहुत उपकारी सिद्ध हुआ है। मक्खन यदि कुछ दिन रखना हो उसको पानीमें रखें और प्रति दिन उसका पानी बदलते जाय। नमकसे भी उसका परिरक्षण होता है। (घाणेकर)।

स्त्रीका घी नेत्रके लिए सर्वोत्तम, अमृतके समान, देह और जठराग्निकी वृद्धि करनेवाला, पचनमें हलका और विषहर होता है। (सु० सू० अ० ४५)।

घी—रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य सर्व स्नेहोंमें उत्तम, दाहशामक, उत्तम वयः स्थापन, मार्दवकर स्वर और शरीरके वर्णको उत्तम करने वाला, बुद्धि, स्मरण शक्ति, मेधा, जठराग्नि, बल, आयुष्य, शुक्र, दर्शनशक्ति, ओजकफ और मेद—इनको बढ़ानेवाला, बालक-वृद्ध तथा सन्तान और सौकुमार्यकी इच्छा रखनेवालोंके लिए हितकर तथा वात-पित्त-विष-उन्माद-शोष-अलक्ष्मी और जीर्णज्वरको दूर करने वाला है। घृत (सर्पि) मण्ड (घीके ऊपरका द्रवांश) मधुर, सारक तथा योनि, कर्ण और सिरके शूलको दूर करने वाला है। बस्तिकर्म, नस्य और नेत्रपूरणमें घृतमण्डका उपयोग किया जाता है। (अ० हृ० सू० अ० ५; च० सू० अ० १३, २७; सु० सू० अ० ४५)।

पनीर

नाम—(हिं०) छे (छा) ना; (अ०) जुब्न, जुबुन, उर्नी; (फा०) पनीर; (सं०) कूर्चिचका; (अं०) चीज (Cheese), केजीन (Casein)।

---

[1] घी धोनेकी विधि इस ग्रंथके पूर्वार्ध पृ० २६५ पर देखें।

आब पनीर—(हिं०) पनीर या छेनेका पानी; दहीका तोड़; (अ०) माउल्‌जुब्न, मस्ल; (फा०) आब पनीर; (सं०) मस्तु, दधिमस्तु, मण्ड; (उर्दू) दूध या दहीकी माइय्यत; (अं०) ह्वे (Whey), सीरम (Serum)।

वक्तव्य—दही, छाछ या कूचिकाके ऊपरके द्रवांशको 'आब पनीर' कहते हैं। 'मस्ल' का धात्वर्थ वह पानी है जो दूधके जमनेके बाद उससे पृथक् हो जाता है। (माउल्‌जुब्न) जैसा कि हम प्रतिदिन दही (लबन मुन्जमिद)में देखा करते हैं। अंग्रेजीमें इसीको सीरम कहते हैं। यह स्मरण रहे कि अरबीमें दहीको लबन भी कहते हैं। इतना ही नहीं, अपितु सम्प्रति अरबमें लबन संज्ञाका दहीके अर्थमें ही प्रयोग होता है और दूधके लिए हलीब संज्ञाका व्यवहार होता है।

वर्णन—गरम दूधको खमीर, नीबूके रस, पनीरमाया या किसी अन्य अम्ल द्रव्यसे जमाकर उसके द्रवांश (Whey = मस्तु) को पृथक् कर देनेसे जो घन भाग शेष रह जाता है, उसे पनीर (सं०-कूर्चिका) कहते हैं। दही या तक्रके साथ गरम करके फटे हुए दूधके ठोस भागको संस्कृतमें दधिकूर्चिका या तक्रकूर्चिका कहते हैं। दूध पकाते समय बिगड़ कर जो ठोस भाग (पिंड) रहता है उसे संस्कृतमें किलाट कहते हैं। यदि पनीरके ऊपर नमक छिड़ककर उससे द्रवांशको सम्यक् पृथक् कर दिया जाय, तो यह पनीर नमकसूद (लवणाक्त किलाट) कहलाता है। यदि छाछको पकाकर जमालें और उससे द्रवांश दूर करके छेनेमें नमक लगाकर उसकी टिकियाँ और बड़ी गोलियाँ बनाकर सुखालें तो इसे कश्क पनीर कहते हैं। गिलानीके मतसे ऐसा पनीर दहीसे प्रस्तुत किया जाता है। इसको अरबीमें इक़्त (अक़ित) और मतांतरसे मसल भी कहते हैं।

कल्प तथा योग—माउल्‌जुब्न, अर्क माउल्‌जुब्न खास।

प्रकृति—ताजा पनीर दूसरे दर्जेमें शीत और तर। पुराना लवणाक्त पनीर तीसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ताजा पनीर पुष्टिकर है। इसलिए आहारकी भाँति प्रयुक्त किया जाता है और पोषणांशकी प्रचुरताके कारण शरीरका बृंहण करता है। यह दीपन वर्णन किया जाता है। भृष्ट पनीरमाया संग्राही है, इसलिए पित्तज अतिसार बंद करनेके लिए उपयोग किया जाता है। मात्रा-आवश्यकतानुसार।

आयुर्वेदीय मत—छेनेका पानी (मस्तु) तक्रके समान गुणवाला, सारक, स्रोतोंका शोधन करनेवाला, विष्टम्भको दूर करनेवाला और पाचनमें लघु (हलका) है (अ० हृ० सू० अ० ५)। दधि और तक्रकूर्चिकासे उत्पन्न हुआ मण्ड (फटे हुए दूधका तरल भाग) तक्रसे भी अति हलका होता है। छेना (तक्रकूर्चिका) ग्राही, वातल, रूक्ष और पचनेमें कठिन होता है। (सु० सू० अ० ४५)। दहीका पानी (मस्तु) तृष्णा और थकावट दूर करता है और हलका, स्रोतोविशोधक, (किंचित्) अम्ल तथा कषाय और मधुर है। यह वृष्य नहीं है। कफ और वातका हरण करता, आह्लाद देता, तृप्ति करता, मलको शीघ्र भेदन करता तथा बल बढ़ाता है और भोजनमें रुचि करता है।

पनीर माया। नाम—(हिं०) चुस्ता, चाक; (अ०) इन्फ़ैहा; (फा०) पनीरमाया; (ले०) सेरिपेरियम् (*Seriparium*); (अं०) रेनेट (Rennet) या रेनिन (Rennin)।

वर्णन—किसी चौपाया जानवरके बच्चाको प्रसवके बाद वध करके उसका आमाशय दूधके सहित निकाल लेते हैं, यही पनीरमाया कहलाता है। इसको सुखाकर औषधकी भाँति उपयोग करते हैं। ऊँट और घोड़ेके पनीरमायाको यूनानी वैद्यकमें क्रमशः पनीरमाये शुतुर ऐराबी और पनीरमाये अस्प कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रत्येक जानवरके पनीरमायाके गुण-कर्म भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी पनीरमायाके सामान्य गुण-कर्म इस प्रकार वर्णन किया जाता है—यह पिण्डीभूत दोषोंको पिघलाता और पिघले हुएको पिण्डी (घनी) भूत करता है अर्थात् दोषोंके किवामको प्रकृतिस्थ करता है। यह आमाशयमें जमे हुए रक्त बल्कि हर अंगके

जमे हुए रक्तको पिघलाता तथा हृदयबलोल्लासदायक और संग्राही है। इसलिए अतिसार बंद करनेके लिए उपयोग किया जाता है। ऋतुस्नानोपरांत इसकी फलवर्ति गर्भसंस्थापक वर्णनकी जाती है। इसके अतिरिक्त यह वाजीकर है। विशेषकर अरबी ऊँटका पनीरमाया इस विषयमें अधिक वीर्यवान् और अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ वाजीकरणके लिए पुष्कल प्रयुक्त होता है। मात्रा–०.५ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

कुमिस या कौमिस—(Koumiss or Kumyss or Kumiss (Fermented milk) Cerevesia Lactis.)

यह गाय, घोड़ी या ऊँटनीके दूधसे संधानकी विधिसे बनाया हुआ एक प्रकारका द्रव (सुरासार घटित मद्य) है।

धनेश

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **कोरेसिईफार्मीज-गण** (Order : Coraciiformes) : **फैमिली : बुसेरोटिडी** (Family : Bucerotidae)।

नाम—(हिं०) धनेश(स), धनसू; (सं०) धनेच्छू, करेट(ठ) व्या; (लें०) डिकोसेरोस बाइकार्निस *(Dichoceros bichornis)*।

वर्णन—बगलेके आकारकी धूमिल रंगकी एक चिड़िया जिसकी गर्दन, पूँछ और चोंच लम्बी तथा नीचेको झुकी होती है। यह बेर, बरगद आदिके पेड़ों पर रहती है और उनके गूदे खाती है। चोंचसे पूँछ तकका भाग लगभग एक हाथ लंबा होता है।

नख

नाम—(हिं०) नख; (अ०) अज्फारुत्तीब; (फा०) नाखून परियां; (सं०) नख, व्याघ्रनख; (बं०) नखी; (बम्ब०, म०, गु०) नखला; (लें०) **एकेन्टिना फुलिका** *(Achatina fulica)*, **हेलिक्स ऐस्पेरा** *(Helix aspera)*; (अं०) लैंड स्नेल (Land snail)।

वर्णन—एक प्रकारका नखके समान सीपकी जातिके दरियाई जानवरका मुखके ऊपरका आवरण, जो समुद्रके किनारे पर पाया जाता है। यह गहरे भूरे रंगका तथा अनेक पटलोंसे बना हुआ होता है। ये पटल एक दूसरे पर इस प्रकार रखे होते हैं जैसे द्विकपाटीय सीप आदि कोशस्थ जन्तुओंमें रखे होते हैं। यह कड़ा अस्थिमय तथा अपारदर्शक, भीतरकी ओर जहां नखकीट (Mollusk) रहता है नतोदर और दूसरी ओर उन्नतोदर होता है। इस सतहपर पटलके चिह्न स्पष्टतया देखे जा सकते हैं। इसको जलानेसे दुर्गंध आती है, परन्तु तेलके साथ पकानेसे तेल सुगन्धित होता है। इसलिए यह अनेक औषधीय तेलोंमें पड़ता है। इसके दो भेद होते हैं।—छोटा और बड़ा। छोटेको नख और बड़ेको व्याघ्रनख (वाघनख) कहते हैं।

प्रकृति—यह दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नख शीतजन्य यकृत, आमाशय और गर्भाशयके दर्दको दूर करनेवाला, यकृत्को शक्ति देनेवाला, अर्शोघ्न, अपस्मार और मूर्च्छाको दूर करनेवाल तथा दोषोंको पेशाबके रास्तेसे निकालनेवाला है। इसकी धूनी लेनेसे अपस्मार (मृगी) और अपतन्त्रक (हिस्टिरिया)में लाभ होता है। रोमसौंदर्यके वर्धनके लिए इसकी बड़ी प्रशंसाकी जाती है। मात्रा–३ ग्राम (३ माशा)। बाघनख वृष्य है। यह शेरके नख और सर्पके बिषको दूर करता है। शिश्नपर इसका पर्तलालेप शिश्नोच्छ्रायकारक है।

आयुर्वेदीय मत—नख मधुर, कटु, उष्णवीर्य, लघु, शुक्रल, वर्ण्य तथा ग्रह, कफ, वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, व्रण, विष और कण्डूको दूर करनेवाला है (रा० नि०; भा० प्र०)। चरकने प्रायोगिक धूमपानकी वर्तिके योगमें

(सू० अ० ५, श्लो २०), श्वयथुचिकित्सा (चि० अ० २३), अमृतादि तैल (चि० अ० २८)में तथा वातरक्त चिकित्सा (चि० अ० २९)में शतपुष्पादि तैलके योगमें अन्य द्रव्योंके साथ नखका प्रयोग करनेको लिखा है। सुश्रुत (सू० अ० ३८)के एलादिगणमें व्याघ्रनखका पाठ आया है।

नीलकण्ठ

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **कोरेसिईफार्मीज-गण** (Order : Coraciiformes)।

नाम—(हिं० नी (ली)लकण्ठ, (अ०) शक़्क़राक; शक़्र; (फा०) सब्जक; (सं०) चाष। (ते०) पालाटपाना; (ले०) कोरैसियास बेंगालेसिस (*Coracias bengalensis*)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी जो फाल्ताके बराबर और हरे एवं जंगारी रंगका होता है। इसकी पूँछ और डैनोंके कतिपय परों पर नेत्र जैसी आकृति होती है। इसके गलेके नीचे नीला रंग होता है। इसीलिए नीलकण्ठ कहाता है।

प्रकृति—वैद्योंके मतसे इसका मांस गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस रस और विपाकमें मधुर, ग्राही तथा वात, कफ और रक्तविकारनाशक है। इसकी बीटका लेप झाईंका दाग मिटाता है।

नीलगाय

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **थीरिया-उपवर्ग** (Sub-class Theria) : **आर्टिओडैक्टिला-गण** (Order : Artiodactyla) : **फैमिली : बोविडी** (Family : Bovidae)।

नाम—(हिं० नी (ली)लगाय(गऊ), रोज (-झ-ह), बनगाय; (अ०) बक़्रुल् वहश, बक़्र वह्शी; (फा०) नील(ला)गाव, गाववहशी; (सं०) गवय, रोहिण (ध० नि०), नीलाङ्ग(ण्ड)क, रोझ ? ऋष्य; (ले०) बोसीलेफुस ट्रैगोकैमीलुस (*Boselaphus tragocamelus*); (अं०) (The white-footed antelope of Pennant and *antilope pieta* of Pallas)।

वर्णन—नीलापन लिए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन जो गायके बराबर होता है। इसके गलेमें बालोंकी चुनरी लटकती होती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस हिरनके मांससे अधिक गलीज, हृदय-मस्तिष्कबलदायक, कफपित्तजनक तथा प्लीहा, वृक्क और शोथमें लाभकारी है। सुमाक और अनारदानाके साथ पकानेसे बहुत गुणकारक होता है। इसका सींग जलाकर बनाई हुई राख खिलानेसे चौथिया ज्वर छूट जाता है। यह मद्यके साथ वाज़ीकर है; कतीराके साथ रक्तस्राव बन्द करता है तथा योनि-गर्भाशयसे होनेवाले स्राव और रक्तस्रावको भी यह बन्द करता है।

आयुर्वेदीय मत—नीलगाय (गवय) का मांस रस और विपाकमें मधुर, स्निग्ध, उष्णवीर्य कफ एवं पित्तजनक तथा मैथुनशक्तिका बढ़ानेवाला और कासहर है। (सु० सू० अ० ४६/९७; भा० प्र०)।

नेवला

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **क्रव्यभुज-गण** (Order : Carnivora) : **फैमिली : विर्वेरिडी** (Family : Viverridae)।

नाम—(हिं०) नेवला, नेउर (ला); (अ०) इब्न अर्स; (फा०) रासो, मूशे, खुर्मा; (सं०) नकुल, बभ्रु; (लै०) हर्पेस्टिस स्मिथियाई *Herpestes smithii*, हर्पेस्टिस जर्डोनी *H. jerdoni*, हर्पेस्टिस मान्टिकोलुस् *H. monticolus*; (अं०) दी बेंगाल मांगूज (The Bengal mongoose & Ichneumon)।

वर्णन—चार पैरोंसे जमीन पर रेंगने वाला हाथ-सवाहाथ लम्बा और चार-पांच अंगुल चौड़ा मांसाहारी पिंडज जंतु जो देखनेमें गिलहरीके आकारका पर उससे बड़ा और भूरे रंगका होता है।

प्रकृति—इसका मांस तीसरे (मतांतरसे दूसरे) दर्जेमें गरम और रूक्ष, अन्य मतसे मोतदिल (समप्रकृति) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस वाजीकर, यकृद्बलदायक और वायुनाशक है तथा अपस्मार एवं शीतल विषोंमें लाभकारी और जलोदर, वातरक्त, कण्ठमाला, वृक्कशूल एवं आमवात—इनको नष्ट करता है। लेप करनेसे शरीरमें रहे हुए कांटा और वाणको खींचकर निकाल देता है। कहते हैं कि यदि इसको वध करके नमककी जगह धनिया पीसकर उसपर बुरके तथा सुखाकर खावें तो अपस्मार और विषैले जन्तुओंके काटेके लिए अन्य सब औषधियोंसे श्रेष्ठतर है। इसका मांस गरम-गरम बांधनेसे कटिशूल एवं संधिशूल आराम होता है। **तोहफतुल्मोमिनीनमें** उसके रचयिता **श्रीमान् हकीम मोहम्मद मोमिन** महाशय लिखते हैं कि जीवित नेवलेके टखनेकी हड्डी निकालकर प्रसव करनेवाली स्त्रीकी जांघ (रान) पर बांधनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है। **इख्तियारातके** प्रणेता लिखते हैं कि यदि यह हड्डी स्त्रीके बांध देवें तो गर्भवती न हो। **तजकिरा दाऊद अन्ताकी, मालायसअ और जामा इब्नवेतारके** अवलोकनसे भी इसी दूसरे कथनकी पुष्टि होती है। नेवलाका वध करके उसका उदर विदारण करके अन्त्र आदिसे शुद्ध कर जैतूनके तेलमें इतना पकायें कि बिल्कुल घुल जाय। पुनः उस तेलको छानकर साफकर लेवें। आमवात, वातरक्त, अर्शाङ्कुरों और समस्त अंग-प्रत्यगोंमें होनेवाली पीड़ामें इसकी मालिश करनेसे बड़ा लाभ होता है। यह सर्पको मार डालता है। अतएव इसका मांस विषोंका अगद है तथा उनको आकर्षित वा शोषित कर लेता है। इसके रक्तके लेपसे मृगी ओर कण्ठमाला आराम होते हैं। इसकी आँख सुखाकर खानेसे भी मृगी जाती रहती है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति एवं आशयों (अह्शा) को। **निवारण**—उष्ण प्रकृतिके लिए सिरका, कासनी और खट्टा अनार तथा आशयोंके लिये जैतूनके तेलमें पकाना। **प्रतिनिधि**—गोह (सूसमार)।

आयुर्वेदीय मत—भैषज्यरत्नावलीके वातव्याधि अधिकारमें लिखित नकुलाद्यघृतमें नेवलेका मांस पड़ता है।

पंडुक (फाख्ता)

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **कोलम्बी-गण** (Order : Columbae) : **फैमिली : कोलम्बिडी** (Family : Columbidae)।

नाम—(हिं०) पेंडकी, पेड़ुकी, पंडुखी, पडुखी, परेवा, पांडुक; (अ०) यमामः, उर्फ़िया; (फा०) फ़ाख़ता, फ़ाख़िता; (सं०) पंडुक, पाण्डु, पण्डाक्ता, चित्रपक्ष, कलध्वनि; (लै०) स्ट्रेप्टोपीलिया चाइनेंसिस (*Streptopelia chinensis*); (अं०); डव (Dove)।

वर्णन—कपोत या कबूतरकी जातिका एक पक्षी जो ललाई लिए भूरे या भूरे रंगका होता है। कुमरी या टुटरू इसका एक भेद है जो इसके जैसा किंतु इससे किंचित् बड़ी तथा सुन्दर और खुशआवाज होती है। वि० दे० 'कुमरी'।

प्रकृति—मांस पहले दर्जेमें, मतांतरसे दूसरे दर्जेके अन्तमें अन्य मतसे तीसरे दर्जेके आदिमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस दूषित दोष (ख़िल्त) उत्पन्न करता (रदीउल्कैमूस) है। इसका गाढ़ा मांसरस जिसमें मांस खूब गलाया जाय, कम्पवात, पक्षवध, सुन्नता (स्वाप) और शीतल वातव्याधियोंमें उपकारक है, सांद्र वायुको विलीन करता और अवरोधोद्घाटन करता है। इससे रक्त कम बनता है तथा यह दीर्घपाकी एवं उदरावष्टम्भ-कारक है। इसलिए उत्तम यह है कि इसे वधकर एक दिन रहने देवें जिसमें नरम हो जाय। कोई-कोई कहते हैं कि इसके मांसको मसालेके साथ पकानेसे स्वादिष्ट हो जाता है। यह वाजीकरण करता तथा वाक् शक्तिकी वृद्धि करता है और पित्त एवं पैत्तिक रोगोंको दूर करता है। इसका भेजा शर्करामें मिलाकर चाटनेसे वहशत व ग़म दूर होता है। इसका ताजा रक्त विशेषकर वाजूका रक्त आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है। इसका रक्त कबूतरके रक्तके साथ बार-बार किलासपर लगानेसे उसका रंग बहुत बदल जाता है। इसकी बीट बहुत गरम है। इसको सिरकेमें मिलाकर लगानेसे झांई दूर होती है तथा शोथों एवं विद्रधियों (फोड़ों) पर लेप करनेसे वे या तो विलीन हो जाते हैं या पककर फूट जाते हैं। इसको मूलीके पानीमें पोसकर निरन्तर लेप करनेसे दाद और सिरका गंज मिट जाता है। इसकी बीटका यह प्रभाव है कि उसे बालकके गलेमें बाँध देनेसे वह नींदमें नहीं डरता। इसके परकी धूनीसे चौथिया जाता रहता है। इसका पित्त शहदमें मिलाकर आँखमें लगानेसे नेत्र स्वच्छ एवं निर्मल होते हैं। दृष्टि तीव्र हो जाती है और जाला कट जाता है। इसकी आवाजमें यह प्रभाव है कि उसे सुनकर सांप भाग जाता है। इसके परकी धूनीसे भी सांप भाग जाता है। दुर्बल मस्तिष्क वालोंको इसकी आवाज सुननेसे लाभ होता है। अहितकर–मांस मस्तिष्कको अहितकर एवं दीर्घपाकी है विशेषकर इसका कवाब तो बहुत ही भारी (सक़ील) है और अनिद्रा उत्पन्न करता है। निवारण–सिरका, खांड और धनिया। अनिद्राके लिए स्नेहद्रव्य।

आयुर्वेदीय मत—इसका मांस कफहर, वातहर और ग्रहणीरोगनाशक है। (भा० प्र०)।

पपीहा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **कोरेसिईफार्मिज-गण** (Order : Coraciiformes) : **कुकूली-उपगण** (Sub-order : Cuculi) : **फैमिली : कुकुलिडी** (Family : Cuculidae)

नाम—(हिं०) पपीहा, पपि(पी)हरा, पपिहा, पपहिया; (बं०) चातक; (सं०) चातक, स्तोकक, मेघजीवन, शा(सा)रंग; (लै०) क्लेमेटर जैकोबिनुस् *(Clamator jacobinus* Bedd.); (अं०) कॉमन आइवोरा (Common Ivora)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी जो वर्षाकालमें अत्यंत सुरीली एवं बारीक आवाजसे बहुत बोलता है। इसकी बोलीसे कामोन्माद उत्पन्न होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस कफनाशक है तथा अपने प्रभावसे पित्तका नाश करता है।

पर

नाम—(हिं०) पर, पंख, डैना; (अ०) रीश; (फ़ा०) पर; (सं०) पक्ष, पतत्र; (अं०) फेदर (Feather), विंग (Wing)।

वर्णन—परयुक्त प्राणियोंके चिकने नरम पर विशेषतः मोरके पर जो औषधके काम आते हैं। इन्हें जलाकर इनकी राख औषधके काममें लेते हैं।

घोड़े और गदहोंके खुरोंसे ऊपर रहनेवाला पर—(अ०) अरन, अज़्मुस्सबक।

वक्तव्य—यह घोड़े, गदहे और ऊँटके सुम और जाँघके मध्य या खुरोंसे ऊपर स्थिति एक वस्तु है जिसे घोड़े आदिका पर कहते हैं।

पक्षियोंके पर—

प्रकृति—जलाया हुआ सर्द एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पक्षियों विशेषकर मोरके पर जलाकर छिड़कनेसे व्रण सूख जाता है। इसका कोषमय कठिन भाग दूर करके जलाकर और धो-सुखाकर नाकमें फूँकनेसे असाध्य नकसीर भी अतिशीघ्र आराम हो जाता है। यह हर प्रकारके रक्तस्रावको रुद्धकरता है (तोहफा)।

घोड़े आदिका पर—

प्रकृति—खुरके समान किंतु खुरसे अधिक रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीसकूरीदूसके कथनानुसार १॥। माशे परको सिरकामें पीसकर खानेसे आर्द्रताजन्य मृगी जाती रहती है। पानी या अर्क गुलाबके साथ खानेसे विष नष्ट होता है। इसकी धूनीसे अपतन्त्रकमें तथा चौथियामें भी लाभ होता है। घोड़ेका पर एक चना भर, अफीम १ रत्ती, नीमकी पत्ती या आड़ूकी पत्ती १॥ माशा–सबको गुड़में पीसकर तीन गोलियाँ बना लेवें। ज्वर आनेसे तीन घड़ी पूर्व एक गोली रोगीको निगलवा देवें। जब ज्वर आरम्भ हो जाय तब दूसरी गोली खिला देवें। आशा है तीसरी गोली खाने तक नौबत न पहुँचेगी। यदि रोगी बलवान हो तो सबकी दो गोलियाँ बना लेवें और अफीमचीके लिए अफीम अधिक मिलावें और नीम तथा आड़ूकी आधी-आधी पत्ती लम्बाईके रूखमें लेवें चौड़ाईमें नहीं।

पसीना

नाम—(हिं०) पसीना; (अ०) अरक़; (फा०) पसीनः, खूय; (सं०) स्वेद (रा० नि०); (अं०) स्वेट (Sweat)।

वर्णन—प्राणिशरीरसे निकलने वाला प्रसिद्ध पसेव (स्राव या द्रव)।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पसीना विलयन एवं लेखन है। हर प्राणिके आहार एवं प्रकृति आदि भिन्न-भिन्न होनेसे प्रत्येक प्राणिका पसीना भी भिन्न-भिन्न होता है। जिसकी प्रकृति उष्ण एवं पित्तल है उसका पसीना अवश्यमेव अधिक तीक्ष्ण एवं विलयन होगा तथा शीत प्रकृतिवालेका उसके विपरीत होगा। पसीनाकी विविधतामें आहार, गति एवं विश्राम आदिका भी बड़ा हाथ होता है। कहते है कि मल्लयुद्ध करनेवालोंका पसीना रोग़न हिनामें मिलाकर लगानेसे वंक्षणकी दुर्गंध और स्तनशोथ मिटता है। स्त्रीके स्तनोंमें दूध जानेपर पसीनेको गुलरोगनमें मिलाकर लगानेसे वह लीन हो जाता है। फ्रेंच चिकित्सकोंके मतसे मानवस्वेद विषवत् है। चौपायेका पसीना पीनेसे पीत एवं हरित वर्णता, कष्ठशोथ (खुनाक) और शरीरमें दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। इसका उपचार यह है कि प्रथम गुलरोगन, गिलमख्तूम, जरावंद और लाहौरी नमक आवश्यकतानुसार सेवन करानेके बाद शहदका पानी (माउल् अस्ल) पिलाकर संशोधन करें।

पहिना

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **मत्स्य-वर्ग** (Class : Pisces) : **साइप्रिनीफार्मीज-गण** (Order : Cypriniformes) : **फैमिली : गोबिटिडी** (Family : Gobitidae)

नाम—(हिं०) पहिना, पटिना, पढना, बोआ (या) री, बुआरी; (सं०) पाठीन, चित्रबदल, सहस्रदंष्ट्र, बो (ब) दालक; (बं०) बोयाल माछ; (ले०) बैलागो आट्टू (*Wallago attu*)।

वर्णन—एक प्रकारकी बिना सेहरेकी चिकनी और सफेद मछली जिसके पेटपर कानसे पूँछ तक सफेदसा

सूत होता है। इसका यह सूत रोगजनक होता है। इसलिए इसको निकालकर खाते हैं। वजनमें यह ५-६ सेर से अधिक नहीं होती।

गुण-कर्म—इसका मांस कफकारक, बलदायक तथा निद्राकर होता है।

आयुर्वेदीय मत—पहिना (पाठीन) मछली कफकर, वृष्य, निद्राजनक और मांसाहारी होकर रक्त और पित्तको दूषित करके कुष्ठरोग भी करता है। (सु० सू० अ० ४६/११५)। मांस खानेवाली होनेसे इसका मांस रुधिरको दूषित करनेवाला तथा पित्त एवं कुष्ठरोगोत्पादक होता है। (भा० प्रा०)।

पाचा (हाथ-पैर)

नाम—(हिं०) चौपायोंका हाथ-पैर, कल्लापाया, पाये; (अ०) मक़ादिम कुराअ (बहुव०—अकारेअ, अक्रोअ); (फा०) पाचा; (सं०) हस्त-पाद; (अं०) हैण्ड एण्ड फूट ऑफ एनिमल्स (Hand and foot of animals)।

वर्णन—चौपायोंके हाथ-पैरको कहते हैं। उपयोगके लिए जवान बकरी और भेड़ विशेषकर एक वर्षीया बकरीके पाये अत्युत्तम होते हैं। हमारे यहांके लोग भैंसके पाये पसन्द करते हैं, क्योंकि वे मोटे और चिकने होते हैं।

प्रकृति—गरम और तर तथा समप्रकृतिके समीप है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीर्घपाकी हैं। परन्तु पचनेके उपरांत शुद्ध रक्त उत्पन्न करते हैं, तथा राजयक्ष्मा, उरःक्षत, गरम एवं सूखी खाँसी, मूत्रकृच्छ्र, कण्ठ एवं वक्षकी खरखराहट (खुशूनत), आवाज बैठ जाना और जिह्वा एवं होंठके विदार (फट जाने) इन रोगोंमें लाभकारी हैं तथा उदरके भीतरके व्रणोंका पूरण करते (भरते) हैं। इनके मांसरससे सिरके ऊपर परिषेक करने (धारने)से मस्तिष्ककी रूक्षता दूर होती है। इसी प्रकार इनके धारनेसे कण्ठमाला और कठिन सूजन उतरती है। किसी-किसी ग्रन्थमें यह लिखा है कि बकरीके पायोंसे असान्द्र पिच्छिल किन्तु अल्पमल (उत्तम) कैमूस बनता है। गिलानीने कानूनके अपने भाष्यमें लिखा है कि यद्यपि पायोंका मांस स्वयमेव (लतीफ) है, कारण असान्द्र रक्त उत्पन्न करता है; किंतु वह यकृत्के प्रति सान्द्र (गलीज) है, कारण उसकी पिच्छिलतासे यकृत्में अवरोध प्रकट हो जाते हैं। अस्तु सान्द्र द्रव्यों जैसा कार्य करता है तथा अपनी पिच्छिलताके कारण फिसलानेवाला भी है। पर सत्य तो यह है कि गुणावगुणमें पाये जिस प्राणिके हैं उसके अधीन हैं। जो प्राणि जंगलमें चरता है, मोटा-ताजा एवं युवा हो उसके पाये श्रेष्ठ होते हैं। उनके भक्षणोपरांत मद्यपान करना श्रेयस्कर है तथा जो गरम औषधि सेवन करता हो उसे भी सात्म्य है। उनका मांसरस श्वयथु विलयन है। जो गरम रोगोंके कारण दुर्बल हो रहें हों उनके लिए भी यह उत्तम सालन है। जब उनमें बलका संचार होने लगे तब उन्हें पाये खाना चाहिए, दुर्बलताकी दशामें नहीं; क्योंकि उस दशामें लाभके बदले हानि पहुँचाएँगे। मन्दाग्निवालेको भी इसका सेवन उचित नहीं हैं। पायोंके खानेसे टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है। पिच्छिलताके कारण कब्ज दूर करते हैं। इनसे रक्त कम बनता है। किन्तु आमाशयसे शीघ्र नीचे उतर जाते हैं। जौके साथ पकाकर खानेसे उरःक्षतमें लाभ पहुँचता है। उष्ण दोषों (मवाद)को सिरसे फेफड़ेकी ओर नहीं गिरने देते और पेचिश एवं रक्तार्शमें लाभ पहुँचाते हैं। रूक्ष प्रकृतिवालोंको इनके खानेसे कब्ज नहीं होने पाता। किसी-किसीके मतसे इनसे प्रकृत प्रमाणमें रक्त बनता है। इनके खानेसे बहुत दुर्बल मनुष्य कुछ मोटा हो जाता है और बहता हुआ रक्त बंद हो जाता है। इनको बबूलके गोंदके साथ सेवन करनेसे पेचिश, पैत्तिक अतिसार और उष्णव्याधिगत दाह मिटता है एवं उष्ण औषध सेवनजनित दाह मिटता है। इनके मांसरसकी बस्ति देनेसे मरोड़ एवं अवरोध जन्य प्रवाहिका दूर होती है। पायेकी हड्डी जलाकर सेवन करनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। एलुआके साथ इसकी राख अर्शाङ्कुरोंको गिरा देती है। अहितर—शूलजनक है। निवारण—शहद, सिरका, पुराना मद्य, अजमोदा, दालचीनी

और केसर इनमेंसे किसी एकके साथ या गरम मसालेके साथ पकाना सिरका और अंजुदानके साथ सेवन करनेसे भी शूल होनेका भय नहीं रहता।

पित्त

नाम—(हिं०) पित; (अ०) सफ़रा; (फा०) जह्‌रः; (सं०) पित्त, मायु; (लें०) फेल (*Fel*); (अं०) बाइल (Bile), गॉल (Gall)।

वर्णन—पित्तकोषमें संचित कुछ पीले, लाल, भूरे या हरे रंगका द्रव। इसका रस तिक्त कुछ मधुर और प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। गोरोचन एक प्रकारका जमा हुआ पित्त ही है।

पित्ता

नाम—(हिं०) पित्ता; (अ०) म(मि)रारः, ज़ह्‌रज, रिग़्वः; (फा०) जह्‌रः; (सं०) पित्ताशय, पित्तकोष; (ले०) पाइथॉन रेटिक्युलेटस (*Python reticulatus*); (अं०) गॉल ब्लैडर (Gall bladder)।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बकरीका पित्ता वृक्कशूलको नष्ट करता है। इसे कपूरके साथ गायके घीमें पीसकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। इसको नाभिके नीचे (पेडूपर) और चूतड़ों पर लगानेसे दस्त होते हैं। गायके पित्तसे वात-कफज कर्णशूल मिटता है। खजाइनुल् अदविया के लेखकके अनुसार यह कथन वैद्योंका है। यूनानीमतानुसार प्रत्येक प्राणीके वर्णन प्रसंगमें उनके पित्तेका विशद विवरण किया गया है।

आयुर्वेदीय मत—चरकमें उलूक (चि० अ० ९), गाय (सू० अ० ३, चि० अ० ७,१४,२३ आदिमें), शृगाल (चि० अ० ९), मयूर (चि० अ० २३), मत्स्य (चि० अ० ३०), रोहित (चि० अ० २३) और वराह (सू० अ० १४, चि० अ० ३०)में पित्तका उपयोग पाया जाता है। रसेन्द्रचूणामणिमें पित्तगणमें भैंसा, वराह (जंगली सूअर), छाग, मयूर, कृष्णसर्प, रोहू मछली और बिल्लीके पित्तका और रसार्णवमें मछली, गाय, घोड़ा, मनुष्य और मयूरके पित्तका उल्लेख मिलता है। गोह, नेवला, हाथी, हरिण, रीछ (भालू) और गाय इनमेंसे किसी एकके समभाग पित्तसे सिद्ध किया हुआ तेल पान और अभ्यङ्गसे अपस्मार (मृगी)को दूर करता है (सु० उ० अ० ६१)। पुष्य नक्षत्रमें लिया हुआ कुत्तेके पित्तका अञ्जन करनेसे अपस्मार नष्ट होता है (च० चिकित्सास्थान)। कई रसयोगोंको मत्स्य आदिके पित्तकी भावना देते हैं।

नव्य मत—नेपाल, कुमाऊँ, गढ़वाल आदि पहाड़ियोंके लोग न्युमोनिया (श्वसनकज्वर)में भालू (रीछ) के पित्तका प्रयोग करते हैं। पाश्चात्य चिकित्सामें शोधित वृषपित्त (Purified Oxbile)का औषधार्थ उपयोग किया जाता है। पित्त मृदुरेचक, पित्तनिःसारक, जीवाणुनाशक, और मूत्रल है। पुरातन मलावरोध विशेषतः पित्तनिःसारणकी अल्पतासे उत्पन्न मलकाठिन्य, पाण्डुरोग और अन्त्रस्थ विषोंको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग किया जाता है। एक औंस (२॥ तोले) मत्स्यपित्त जलमें मिलाकर बस्ति देनेसे मलावरोध दूर होता है।

सूचना—भिन्न-भिन्न प्राणियोंसे प्राप्त होनेवाले पित्तोंका वर्णन उन-उन प्राणियोंके वर्णन-प्रसंगमें किया गया है। अस्तु यहाँ पर पित्तका विशेष विवरण नहीं किया गया है।

पूँछ

नाम—(हिं०) पूँछ; (अ०) ज़नब (बहुव०—अज़नाब); (फा०) दुम; (सं०) पुच्छ; (अं०) टेल (Tail)।

पेशाब वा मूत्र

नाम—(हिं०) मूत, पेशाब; (अ०) बो(बौ)ल; (फा०) पेशाब; (सं०) मूत्र, प्रस्राव, मेह; (बं०) प्रस्राव; (म०) मूत, लघ्वी; (गु०) पेशाब, मूतर; (अं०) यूरिन (Urine)।

वर्णन—जो कुछ प्राणी खाता और पीता है, उसमेंसे द्रवभागका उत्सर्ग प्रकृति वृक्क, बस्ति और उपस्थ या योनिके मार्गसे कर देती है। इस द्रवांशको पेशाव कहते हैं। आयुर्वेद मतसे बस्तिका पूरण करना और शरीरके त्याज्य जलांशको बाहर निकाल देना मूत्रके कार्य हैं (सु० सू० अ० १५ श्लो० ७)। निम्न प्राणियोंका पेशाब औषधके काममें लिया जाता है—आदमी, गाय, बकरी, भेड़, भैंस, गदहा, घोड़ा, हाथी, ऊँट और मनुष्य (आदमी)। इनके मूत्रका वर्णन उस-उस प्राणिके वर्णन प्रसंगमें किया जायगा। अस्तु यहाँ पर इनका संक्षिप्त एवं सामान्य विवरण मात्र किया गया है। आयुर्वेदीय चिकित्सामें यद्यपि मनुष्यके मूत्रके साथ मूत्रोंकी संख्या नौ हो जाती है; परन्तु कहनेके लिए आयुर्वेदमें मूत्रोंकी संख्या मनुष्यको छोड़कर आठ ही बतायी जाती है फिर मूत्र विवरणमें मनुष्य मूत्रका विवरण हो या न हो। इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्यमूत्र सर्वशास्त्र सम्मत नहीं है। भावप्रकाश के मतसे इनमेंसे प्रथम चार प्राणियोंका मूत्र स्त्रियोंका और अंतिम पाँचोंका पुरुषोंका प्रयोगमें लिया जाता है।

रासायनिक संगठन—सभी मूत्रोंमें विशेषकर गायके मूत्रमें घनीमूत रूपमें पुष्कल प्रमाणमें अमोनिया (Ammonia) होता है।

प्रकृति—गरम और रूक्ष। वस्तुतः प्रत्येक प्राणीका मूत्र उसकी प्रकृति एवं भोजनके अनुकूल होता है। सभी मूत्रोंमें मानवमूत्र अपेक्षाकृत अधिक मोतदिल, इसके बाद गाय और ऊँटका मूत्र होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्र तारल्यजनन, लेखन और छेदन एवं प्रक्षालनकर्ता है। कोई-कोई मानव मूत्रमें लेखनकी शक्ति अधिक बतलाते हैं। नये मूत्रकी अपेक्षया पुराना मूत्र अधिक वीर्यवान् एवं लेखनीय है। पुराने मूत्रके लगानेसे दुष्टव्रण फैलने नहीं पाते। मूत्रको पका गाढ़ाकर दुष्टव्रण या नासूरपर लगानेसे बड़ा लाभ होता है। मनुष्य और ऊँटका मूत्र जलोदर एवं प्लीहा-शोथ नाशक है। यकृच्छोथ नष्ट करनेके लिए ऊँटका मूत्र रामवाणका काम करता है।

आयुर्वेदीय मत—अष्टविध मूत्र सामान्यतः कटु, लवणानुरस, अरूक्ष, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, शोधन, विरेचन, भेदन, हृद्य, दीपन, पाचन, विवन्ध तथा कफ, वात उदररोग, अर्श, गुल्म, कुष्ठ, किलास, पाण्डुरोग, क्रमिरोग, मेदोजरोग, शोथ, आनाह और अरुचिका नाश करनेवाला है। मूत्र पीनेसे कफका शमन करता है, वायुका अनुलोमन करता है और पित्तको अधोमार्गसे निकाल देता है। उत्पादन, आलेपन, आस्थापन बस्ति, स्वेदन क्रिया, अगद (विषहर रोग), उपनाह और परिषेकमें मूत्रका प्रयोग किया जाता है। (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५) जंगलमें चरने वाली बकरीके २॥ तोले मूत्रमें ३ माशा कालीजीरी पीस, कपड़ेसे छानकर पिलानेसे राजयक्ष्मामें लाभ होता है। (द्र० गु० वि०)।

फादजहर हैवानी

नाम—(अ०) फ़ादज़ह्र हैवानी (प्राणिज या जान्तव प्रतिविष); (फा०) पा(वा)दजहर हैवानी; (सं०) जान्तवाश्मरी (नवीन); (बम्ब०) पेद्रुवझार; (ले०) बेजोर (*Bezoar*); (अं०) गॉलस्टोन (Gall stone)।

वर्णन—यह एक प्रकारकी पथरी (रोचना) है जो पहाड़ी बकरे, हिरन, बन्दर, बारहसिंहा, नीलगाय (गवय) एवं ऊँट आदि पशुओं (चतुष्पाद प्राणियों)के दुग्धोत्पादक अंग, पित्ताशय, आमाशय या आतोंमें उत्पन्न होती है। यह आकृतिमें प्रायः गोल या लम्बगोल होती है, परन्तु कभी चौड़ी भी होती है। इसका रंग हरा-भूरा होता है। वजन ३ माशे या १ तोलासे १५ तोले तक पायी गयी है। यह किसी अपच बाह्य द्रव्यके पशु शरीरमें प्रवेश होने पर बनती है। अतः इनमेंसे प्याजके छिलकोंकी तरह परत होते हैं। पशुके भेदसे इसकी आकृति और वजनमें भी अन्तर पाया जाता है। किसी-किसीके भीतर लकड़ीका टुकड़ा, ऊन या बेर-छुहारे आदिकी गुठली भी होती है। किंतु औषधिमें अधिकतर जंगली बकरेके अंगमें प्राप्त होनेवाली अश्मरीही व्यवहारकी जाती है। इसे अरबीमें

हज़रुत्तीस कहते हैं और यूनानी अत्तारोंके यहाँ फादेजहर हैवानीके नामसे मिलती है। इसे गोट बेजोर (Goat bezoar)के नामसे अरब व्यापारियोंसे प्राप्त कर सकते हैं। यह नकली भी आती है। फादजहर मादनी इससे भिन्न खनिज द्रव्य है जिसे जहरमोहरा शीर्षकमें देखें।

प्रतिस्थान—भारतवर्षमें यह आन्ध्र (तैलंग) और मैसूरमें तथा अरबस्तान और ईरानमें ऊपर लिखे हुए चार पायोंसे मिलती है।

परीक्षा—लोहकी पतली शलाका उत्तप्तकर इसमें प्रवेशकी जावे तो शलाकाका अग्र भाग पीला हो जावेगा और धूम्र भी पीला ही निकलेगा तब असली समझना चाहिए अन्यथा नकली। इसे कुन्दरू, एलुआ आदि द्रव्योंसे कृत्रिम निर्माण कर बाजारोंमें बेचते हैं। इसलिए माल खरीदते समय सावधानीकी आवश्यकता है।

फादेजहर हैवानीको दूधके साथ पत्थरके खरलमें पीसा जावे तो दूध गाढ़ा हो जावेगा और रंग लाल बन जावेगा। इसके विपरीत यदि पीला रंग या अत्यंत कालाई लिए लालिमा दिखाई दे तो निकृष्ट समझें। क्षारीय द्रव्यों विशेषकर चूना या लकड़ीकी श्वेत भस्मके साथ घिसनेसे हरा या पिस्तई रंग दिखाई दे तो उत्तम समझें।

अनेक हकीमोंका यह भी विश्वास है कि सर्पदंशपर इसे घिसकर लगा दिया जावे तो यह विषको चूस लेगा और रोगी निर्विष हो जावेगा। हकीम इब्नजहर का यह मत है कि खुरासानके पशुओंसे प्राप्त फादेजहर उत्तम है। इसका रंग पिलाई लिए या मटियाले (धूंसर) रंगका होता है। उनका यह भी कथन है कि फादेजहरको तौलकर उष्ण जलमें छोड़ते हैं और फिर कुछ समयके बाद तौलते हैं इस क्रियासे यदि वजन कम न हो और न जलका रंग बदले तो समझें कि फादेजहर असली है।

प्रकृति—यह दूसरे दर्जेके अन्तमें गरम और तीसरे दर्जेके आदिमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—सर्व प्रकारके विषोंका निवारण (अगद), वाजीकर, बल्य, प्राकृत देहोष्माका अभिवर्धक, ओजवर्धक तथा हृदय—मस्तिष्क और यकृत् आदि उत्तमाङ्गोंको बल देनेवाला, चित्तका प्रसादक तथा शोकका निवारणकर, चित्तको प्रफुल्लितकर तथा हर्षोत्पादन करता है। उपयोग—प्लेग और हैजेमें इससे लाभ होता है। प्लेगकी ग्रन्थि और विषैले जानवरोंके दश स्थान पर इसे जल या मद्यमें घिसकर लगाते हैं। केवल चूर्णके रूपमें अवधूलन करनेसे विषका शोषण करता है। पैत्तिक शोथपर हरे धनियेके पत्रस्वरस या अर्क गुलाबसे लेप करनेसे सूजत उतरती है। यह क्षीण एवं दुर्बल पुरुषोंको भी दिया जा सकता है। किसी प्रकारके विष खाये हुए प्राणीको ५ रत्तीकी मात्रामें जलमें घोटकर पिला देनेसे विष-प्रभाव नष्ट हो जाता है। विष भवण किया हुआ पुरुष इसको मुखमें रखकर चूसता है तो उसे शीघ्र लाभ अनुभव होता है। सर्पके मुखमें $\frac{१}{२}$ रत्ती पीसकर डाला जाय तो सर्पका गला बन्द हो जाता है।

अहितकर—रक्तविकारजनक। अधिक मात्रामें खानेसे शरीरमें जलन होती है और कभी-कभी दस्तमें खून आने लगता है। निवारण—शीतल द्रव्य या शीतोपचार, गुलाबका अर्क, दूध और तर वस्तुओंका सेवन। प्रतिनिधि—जहरमोहरा खताई, पन्ना या ज़बरजद्द। मात्रा—१२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० (१ रत्ती से २ रत्ती)।

फेफड़ा

नाम—(हिं०) फेफड़ा; (अ०) रियः; (फा०) शुश; (सं०) फुफ्फुस; (अं०) लंग (Lung)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध सुषिरपूर्ण (पोला) तथा लाल रंगका शरीरावयव जिसके द्वारा प्राणवायु हृदयको प्राप्त होती है। यह सदैव हिलता रहता है जिससे वायु हृदयमें पहुँचता है। इससे हृदयको उल्लास प्राप्त होता है। उपयोग के लिए उत्कृष्ट फेफड़ा छः माससे एक वर्ष तककी आयुके भेड़ एवं बकरीके बच्चाका होता है।

प्रकृति—यद्यपि प्राणिकी अपनी प्रकृतिके अनुकूल उसके फेफड़ेकी प्रकृति होगी, तथापि हकीमोंके कथनानुसार साधारणतया फेफड़ा गरम एवं तर होता है। बुकरात के मतसे सर्द एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बुकरात कहते हैं कि इससे श्लेष्मा उत्पन्न होती हैं। इस पर शैखको आपत्ति है जिसका विशदीकरण शारहगाजरूनीने इस प्रकार किया है—जबकि यह बात स्वीकार की गयी है कि फेफड़ेकी प्रकृति पित्तल यानी गरम एवं रूक्ष है तथा आहार भी उसको धमनियोंके द्वारा जिनमें थोड़ा पित्त भी सम्मिलित होता है, पहुँचता है और यह अत्यंत उष्ण है, तब किस प्रकार उससे श्लेष्माकी उत्पत्ति होगी। सुतरां फेफड़ेको पाककर खानेसे देरमें पचता है और इससे रक्त कम बनता है, तथा सौदा उत्पन्न होता है। यह संग्राही भी है। गरम-गरम फेफड़ा लेकर आँख पर बाँधनेसे अर्जुन (तरफा)में जो रक्त बिन्दु होता है वह कम हो जाता है। अहितकर–आमाशय, मूत्रावयव और मूत्रपथको। इसके अतिसेवनसे फेफड़ेमें घाव हो जाता है। निवारण–आमाशय और मूत्रावयवका निवारण हब्बुल्आस और चीनी है। फेफड़ेके लिए इसका निवारण इसे सिरकेमें भिगोने और मसालेके साथ पकानेसे होता है।

बन्दर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **प्रिमेटीज-गण** (Order : Primates) : **एन्थ्रोपोइडिया-उपगण** (Sub-order : Anthropoidea) : **फैमिली : सेरियोपिथेसिडी** : (Family : Cereopithecidae)।

नाम—(हिं०) वंदर (रा), बानर, बनरा (मादी = बंदरिया); (अ०) क़िर्द (मादी = क़रिद; बहुव० = क़िरद); (फा०) बूज़ीनः, मैमून; (सं०) बानर, मर्कट, कपि; (बं०) बानर; (ले०) (१) मैकासुस् रहीसुस (*Macasus rhesus*), (२) हनुमान या लंगूर-प्रेस्बीटीज एन्टेल्लुस (*Presbytes entellus*) या सेम्नोपिथेसुस् एन्टेल्लुस् (Semnopithecus entellus)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध स्तनपायी चौपाया जो अनेक बातोंमें मनुष्यसे बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। इसकी प्रायः पैंतीस जातियाँ होती हैं। चिंपैंजी, गिबन, लंगूर आदि सब इसी जातिके हैं।

प्रकृति—गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शरीरके बाल उखाड़कर उस स्थानपर बंदरका रक्त लगा देनेसे बालोंका निकलना बंद हो जाता है। इसका गरम-गरम ताजा रक्त इब्नजहरके मतसे पित्त पीनेसे पीनेवाला मनुष्य गूँगा हो जाता है। इसका माँस कुष्ठमें लाभकारी है।

आयुर्वेदीय मत—पर्णमृगवर्गीय बानर आदि जीवोंके मांस मधुर, भारी, वृष्य, नेत्रोंको हितकर, राजयक्ष्माके लिए (शोष या क्षय रोगियोंके लिए) हितकर, मल और मूत्रको खुलकर निकालनेवाले तथा श्वास, खांसी और अर्शको दूर करने वाले हैं। (सु० सू० अ० ४६/७७; भा० प्र०)।

बकरा व बकरी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **थीरिया-उपवर्ग** (Sub-class : Theria) : **आर्टियोडैक्टिला-गण** (Order : Artiodactyla) : **फैमिली : बोविडी** (Family : Bovidae)।

नाम—(हिं० बं०, म० गु०, द०) बकरा, छेड़ (मादा = बकरी, छेड़ी; (अ०) माज, मईज (बकरा व बकरी), शात, ग़नम (भेड़ व बकरी उभय), तीस (बकरा), अनज़, माएज़ः (बकरी); (फा०) गोस्फ़ंद (भेड़ व बकरी), बुज़ (बुज़े नर = बकरा और बुज़े मादा = बकरी); (सं०) बर्कर, छाग, छगल, अजा, छागल, छेलक, अज, बस्त, (मादा = छागी, छेलिका (छेड़ी, गलस्तनी); (ले०) कैप्रा हीर्कुस (*Capra hircus* Gmelin.)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध चौपाया है। उत्तम एक वर्षका होता है। पहाड़ी (कोही, पर्वती) और पालतू (अहली या खानगी-ग्राम्य) भेद से यह दो प्रकारका होता है। पर्वतीको ही आयुर्वेदमें सम्भवतः वनच्छाग अर्थात् जंगली लिखा है। बुज़े कोही (पर्वती बकरा) शब्दका प्रयोग बारहसिंगे के लिए भी होता है।

नौ मास तकका या अधिक से अधिक एक वर्षीय छाग शिशुको अरबीमें हल्वान्. हुल्लान (म), हमल (९ महीने या साल भरका भेड़का बच्चा) तथा फारसीमें बुज़ेगाल: एवं बर्र: कहते हैं।

उपयुक्त अंग—दूध (दही, तक्र, घी, नवनीत), मांस, मूत्र, विष्ठा (लेडी), अण्ड (बत्साण्ड), खुर, सींग (क़र्नुल्अज़्ज़, क़र्नुल्माज़), गलस्तन।

कल्प तथा योग—जिमाद सपर (शीर) बुज़, अतरीफल गुददी।

प्रकृति—बकरीका मांस गरम और तर है। इसकी गर्मी दुंबेके मांससे कम है। पहाड़ीका मांस पालतूसे अधिक गरम है। गिलानीके मतसे बकरीका मांस अन्य सभी मांसोंसे मोतदिल है। बुड्ढी और दुबली बकरीका मांस दीर्घपाकी मलभूतद्रवोत्पादक एवं अल्पपोषक होनेसे अनुत्तम है। छः मासके शिशुमें तरी बढ़ी हुई होती है।

गुण-कर्म तया उपयोग—दुंबेके मांससे जो अरबकी भेड़ है, बकरीका मांस गुणमें हीन है। किन्तु भारतीय भेड़के मांससे हर प्रकार श्रेष्ठतर है जैसा कि मुकर्रेहुल्क़ुलूबके संकलयिताने लिखा है। यह अत्यंत पोषणकर्ता (कसीरुल्ग़िजाऽ), उत्तमकैमूस उत्पादक और (लतीफसुबुक) रक्तोत्पादक एवं उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए अनुकूल आहार है। रोगियों विशेषकर उष्ण प्रकृति और उरःक्षतके रोगियोंके लिए इससे वरिष्ठतर कोई अन्य मांस नहीं। उष्ण देशोंमें इसका सेवन उपयुक्त है। राजीने एक स्थानपर लिखा है कि जिनके शरीरमें शोथ हो और जो परिश्रम कम करते हो, उनको बकरीका मांस खाते रहना चाहिये। इससे रक्त संचय बहुत ही कम होता है। जिसके शरीरमें फोड़े निकला करते हो तथा ज्वर एवं गरम रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनको यह मांस परमोपयोगी होता है। गर्मीकी ऋतुके लिए इससे बढ़कर दूसरा मांस नहीं है। यथासंभव पुष्ट बकरीका मांस खावें, दुबलीका नहीं। बकरीका मांस खानेसे तेलनी मक्खीका विष नष्ट होता है। आँखमें दर्द हो तो बकरेकी सुषुम्ना (हराम मग्ज) लगानेसे वह जाता रहता है। इसका पित्त नेत्रमें लगानेसे जाला कट जाता है और रतौंधी जाती रहती है। पहाड़ी बकरीका पित्त लगानेसे कीड़ोंका विष उतर जाता है। बकरेके पित्तमें हरे सौंफका रस मिलाकर नेत्रमें लगानेसे दृष्टि बलवान् होती है। प्रारम्भमें इसके उपयोगसे मोतियाबिंदमें भी लाभ होता है। इसका पित्ता जलाकर जैतूनके तेलमें मिलाकर भौंवों पर लगानेसे वहाँ प्रचुरतासे बाल उत्पन्न हो जाते हैं। इसके पित्तको गंदनेके पत्तोंके रसमें मिलाकर कानमें टपकानेसे कर्णशूल आराम होता है और कर्णनाद एवं प्रणाद रोगका नाश होता है। इसके पीनेसे वृक्कशूल आराम होता है। इसे नतरूनमें पीसकर शिशुकी नाभिपर लगानेसे दस्त आने लगते हैं। इसे कानमें टपकानेसे ताजी फ़ोड़िया दूर होती है। नाकमें टपकानेसे मृगी जाती रहती है। शहदमें मिलाकर योनिमें लगानेसे तथा उससे जो पानी टपकता है उसे लगानेसे भी योनिशूल आराम होता है और इसे सिराकुटिलता एवं श्लीपद पर लगानेसे बड़ा लाभ होता है। बकरीके यकृत्को आगपर भूनने और सिरको उसके धूएँपर रखनेसे रतौंधी जाती रहती है। इसकी कलेजी भूनकर खानेसे दस्त बंद हो जाते हैं। बकरीकी चर्बी अन्य समस्त चर्बियोंकी अपेक्षया अधिक संग्राही है। बकरेकी चर्बी अत्यंत विलयन है। चावलों और बाजरेके आटेके साथ इसकी चर्बीका हरीरा पकाकर खानेसे पेचिश आराम हो जाती है। तीक्ष्ण आहार सेवनसे जो दस्त होने लगते हैं, वह इस हरीराके पीनेसे बंद हो जाते हैं। इस हरीराके पीनेसे विरेचन औषधियोंकी अधिक क्रिया करना भी रुक जाता है। जौके आटेके साथ इसकी चर्बीकी बस्ति देनेसे अन्त्रव्रण मिटते हैं। इसकी चर्बीके लेपसे वेदना शमन होती है। इसके लेपसे नख नरम हो जाते हैं, व्रणपर लगानेसे व्रणपूरण होता है, खानेसे तेलनी मक्खीका विष दूर होता है। इसके वृक्कको चीरकर उसपर गंधकका चूर्ण छिड़ककर अग्निपर भूने और जो पानी इससे टपके उसे व्यंग (बहक) पर मले, इससे व्यंगका नाश होता है। बकरेके वृषणोंको पकाकर निरंतर खाना विलक्षण वाजीकर है। बकरेके वृषण चीरकर उनपर जराबंद मुदहरज, नतरून और जीरेका पिसा हुआ महीन चूर्ण

बुरककर शुष्क कर लेनेके उपरान्त, उन्हें कूटकर ४।। माशेकी मात्रामें गरम पानीके साथ फांकनेसे दमा (रबू), यकृच्छूल और वस्तिशूलमें बड़ा लाभ होता है। बूरए अरमनी और सातरके साथ इसके वृषण सुखा पीसकर ४।। माशेकी मात्रामें वनपलाण्डुकृत शुक्त (सिरकए उन्सुल)के साथ फांकते रहनेसे प्लीहा शोथ आराम हो जाता है। पहाड़ी बकरेके वृषण सुखा पीसकर मद्यके साथ पीनेसे कृष्णसर्पका विष दूर होता है। बकरीकी हड्डी जला-पीसकर बकरीके दूधमें मिलाकर ऊनी कपड़ेपर लगाकर दुष्ट व्रणों एवं आकिलः पर लगानेसे बड़ा उपकार होता है। इसकी भींगनी (लेंडी) उष्णता एवं रूक्षताकारक, लेखनीय तथा श्वयथुविलयन है। जलानेसे इसकी उष्णता तो बढ़ती नहीं, पर लेखनीय एवं तारल्यकारिणी शक्ति बढ़ जाती है। हर प्रकारके रक्तस्रावके लिये इसका उपयोग करते हैं। इसको अधजला कर सिरकेमें मिलाकर बालखोरे पर लगानेसे बाल जम जाते हैं। इसके लेपसे कण्ठमाला विलीन हो जाती है। शीतजन्य संधिशूल एवं संधिशोथ पर इसको शहदमें मिलाकर और गर्मीसे होनेवाले संधिशूल एवं संधिशोथ पर इसे सिरकामें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है। कृष्णसर्प और अन्यान्य कीड़ोंके दष्ट स्थानपर इसे मद्यमें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है। इसे शिशुके मूत्रमें पीसकर लगानेसे प्लीहा शोथ एवं जलोदरकी सूजन मिटती है। इन समस्त कार्योंके लिए जंगली एवं पहाड़ीकी मींगनी बलवती होती है। इसकी राख शहदमें मिलाकर लगानेसे सिरका गंज दूर होता है। अजवायन खुरासानीके साथ इसकी मींगनी लगानेसे स्तन एवं वृषणका आकार छोटा हो जाता है। इसकी धूनीसे बिलमें रहने वाले जन्तुओं तथा अन्य भौम जन्तु भाग जाते हैं। बकरेका रक्त अश्मरीनिःसारक है। पहाड़ी बकरीकी सींग और खुर पीसकर तेलमें मिलाकर शरीर और पिंडलियोंपर मलनेसे थकावट दूर हो जाती है। अहितकर– मांस अवरोधोत्पादक, कतिपय प्रकृतियोंमें दुष्पच और शीतल एवं सौदा प्रकृति वालोंको भी हानिकर है। निवारण–बादाम, खोपरा, छुहारा और गरम मसाला। उत्तम मदिरापान भी इसका निवारण है। वक्तव्य–बकरीके मांसके साथ तरव ताजा मेवे, अम्ल पदार्थ और यवमंड (माउश्शईर) तथा दही या छाछका सेवन अत्यंत हानिप्रद है।

हलवान् (एक वर्षीय छाग शिशु)

प्रकृति—गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बकरीके बच्चेका मांस भेड़के बच्चेके मांससे उत्तम होता है। भेड़के मांसकी अपेक्षया बकरीके बच्चेके मांससे मल कम बनता है। इसमें ऊँटके बच्चेके मांससे गरमी और तरी कम है। यह प्रशस्त रक्त उत्पन्न करता है। न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा बच्चा श्रेष्टतर होता है। क्योंकि बहुत छोटेकी प्रकृति स्निग्धताबहुल और बहुत बडेकी सान्द्रत्व एवं रूक्षता बहुल होती है। छः माससे कुछ अधिक वयके बच्चेका मांस समस्त मांसोंसे उत्तम हैं। किंतु इसमें स्निधताकी बहुलता होती है तथा यह रक्तोद्वेगको शांत करता एवं तारल्य उत्पन्न करता है और रोगियों एवं निर्बलोंके लिए उपादेय है। मतान्तरसे इसके चालीस दिनके शिशु (हलवान्)का मांस उष्णता कम होनेके कारण क्षीणकाय एवं दुर्बलोंके लिए उपयुक्त एवं परम गुणकारक है। किसी अंगमें अभिघातज पीड़ा होनेपर बकरीका ताजा गरम-गरम मांस बांधनेसे उपकार होता है तथा उसकी गरम-गरम खाल लपेटनेसे वेदना शमन होती है। शोथ उत्पन्न नहीं होता है। यदि किसीको कोड़े लगे हो तो पीडित अवयवपर इसकी ताजी खाल लपेटनेसे बड़ा लाभ होता है। कोड़ेका प्रभाव जाता रहता है। बकरीके बच्चे (हलवान्)के सिरका चमड़ा गरम-गरम बुद्धिभ्रंश एवं सरेसाम रोगोके सिरपर बांधनेसे बहुत लाभ होता है। इससे रूक्षता दूर होकर मस्तिष्कमें तरी आती है। इसके भेजेके लेपसे भी मस्तिष्कमें अत्यंत तरावट, स्निग्धता एवं मृदुता आती है तथा अवयवगत कठोरता जाती रहती है। वैद्योंके मतसे बकरीके बच्चेका मांस अत्यंत लघु, हृद्य, मनः प्रसादकर, अत्यंत बल्य एवं ज्वरघ्न है।

आयुर्वेदीय मत—विपाकमें मधुररसयुक्त, बकरेका मांस स्वादिष्ट, अतिशीतल, अतिगुरु तथा अतिस्निग्ध नहीं होता, दोषोंको नहीं (वा थोड़ासा) बढ़ाता, अल्पपित्तकफोत्पादक, पुरुषके शरीरके धातु (मांस)के समान गुण होनेसे अनभिष्यन्दी, दाह नहीं पैदा करनेवाला, बृहंण, बल्य, वृष्य, रोचक और अत्यन्त पीनसनाशक है। (च० सू०

अ० २८; सु० सू० अ० ४६)। बकरेका मांस आनूपवर्गमें श्रेष्ठ बतलाया है (काश्यय संहिता)। भावप्रकाशमें इसे त्रिदोषनाशक भी लिखा है। बिना ब्याई हुई बकरीका मांस अग्निदीपक सूखी खाँसी, अरुचि तथा शोषरोगमें हितकारक और पीनसरोगनाशक है। बकरीके छोटे बच्चे (बाल अजासुत)का मांस, लघुतर, हृद्य, अत्यंत सुख एवं बलको देनेवाला तथा ज्वरनाशक अतएव श्रेष्ठ होता है। अण्डकोष निकाले हुए (बधिया) बकरेका मांस गुरु, कफकारक, स्रोतोंकी शुद्धि करनेवाला, बल्य, मांसवर्धक तथा वात एवं पित्त नाशक होता है। वृद्ध और रोगोंसे पीड़ित होकर मरे हुए बकरेका मांस रूक्ष एवं वातकारक होता है। बकरेका मुण्ड (शिर) जत्रु (पंखुरा अर्थात् कांख तथा कंधेके संधि स्थान)के ऊपर भागमें होनेवाले रोगोंको दूर करने वाला तथा रुचिकारक होता है। (भा० प्र०)। बकरेके पेटमें प्याज भर-पका उस प्याजको मधुर या अम्लरसके साथ सेवन करनेसे मलक्षय और और शोणितक्षय दूर होता है (च० चि० अ० १९)। रक्तजार्शमें अधिक रक्त निकलने पर घृतयुक्त बकरीका मांस पिलाना लाभकारक है। बकरेके अण्डोंको दूधमें पका उस दूधकी भावना तिलोंमें देकर खानेमें सौ स्त्रियोंके साथ बड़ी फुर्तीसे मैथुन कर सकता है अर्थात् यह वाजीकरण करता है।

बकरीका दूध

(अ०) लब्नुल्माज; (फा०) शीरे बुज़;

वर्णन—किसीके मतसे इसमें जलांश (छेनेका पानी) और किसीके मतसे छेनेका अंश (जुब्नियत) अधिक है। नीरोग लाल रंगकी बकरीका दूध अन्य रंगकी बकरीके दूधसे श्रेष्ठतर हैं।

प्रकृति—किंचित् उष्ण है। किसी-किसीके मतसे शीतल है। उनका कहना है कि इसमें तरी का प्राबल्य है। यहाँ तक कि दूसरे दर्जे तक तर मानते हैं। किसीके मतसे अन्य समस्त प्राणियोंमें इसका दूध सबसे मोतदिल है। किसी-किसीके मतसे गाय और गदहीके दूधके मध्य समताका स्थान रखता है। समस्त गुण-कर्ममें यह गायके दूधके समान ही नहीं, अपितु उससे अधिक लतीफ है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बकरीका धारोष्ण दूध मलावरोधनिवारक, मृदुसारक, वाजीकर, तारल्यजनन, लेखन, मस्तिष्ककी रूक्षता एवं अनिद्राको दूर करनेवाला अतिस्त्रीसंगसे हानिको दूर करनेवाला तथा मूत्रजनन है। बकरीके दूधमें कपड़ा तर करने सिरपर रखनेसे मस्तिष्ककी रूक्षता एवं अनिद्रा दूर होती है इसके पीनेसे मुख या थूकमें या आंतरिक अवयवसे खून आना, खाँसी, उरःक्षत एवं उरःक्षतजन्य कास, फुफ्फुसव्रण, कण्ठ एवं वस्तिगत व्रण और कण्ठशोथ (खुनाक) रोग दूर होते हैं। रक्तष्ठीवन, उरःक्षतजनित कास या आन्तरिक अवयनसे रक्त आना—

इन रोगोंमें दूध पिलानेकी विधि यह है—

९ तोले ४॥ माशे दूधमें कतीरा और बबूलका गोंद या धोई हुई लाख प्रत्येक १॥। माशा पीस मिलाकर पिलावें। यदि उचित समझें तो दूधका प्रमाण बढ़ा देवें। इसकी पूर्ण मात्रा १८॥। तोले तक है। जब इसे बढ़ा देवें तो औषध द्रव्योंकी मात्रा ३।-३॥ माशे कर देवें। दूसरी विधिमें ११। तोले बकरीका दूध लेकर उसमें ४॥ माशे कतीरा, २। माशा सतमुलेठी और २। माशा ब्बूलका गोंद पीस बुरककर मिला देवें। इस दशामें भी दूध आदिका प्रमाण बढ़ सकता है। अस्तु, २८॥। तोला दूधमें कतीराका चूर्ण ९ माशा और बबूलका गोंद एवं सतमुलेठी प्रत्येक २। माशा मिलाकर उपयोग कराते हैं। या ऐसा करें कि चूर्ण प्रथम फाँककर ऊपरसे दूध पी लिया करें। इससे हृदयके रोग, दिलकी धड़कन, शोक एवं चिंता, वातिक अन्यथाज्ञान और वहशत मिज़ाजमें भी लाभ होता है। (अमराज मशीमा) मिटते हैं। उचित यह है कि जवान स्वस्थ बकरीका (रोगी एवं बुड्ढीका नहीं) धारोष्ण दूध पियें। इसका गण्डूष कण्ठरोगोंमें अपने प्रभावसे लाभ पहुँचाता है। गलशुण्ड, कण्ठ, मूर्द्धा और जिह्वा इनमें शोथ उत्पन्न हो जानेपर इसका गण्डूष (गरारा) करना चाहिये। इसमें अमलतासकी फलीका गूदा मिला लेनेसे यह और गुणकारक हो जाता है। कण्ठक्षतमें इससे लाभ पहुँचता है। नाकमें इसका नस्य करनेसे मस्तिष्ककी रूक्षता और अनिद्रा जाती रहती है। उष्णताजन्य कर्णशूलमें इसे कानमें टपकानेसे लाभ होता है। उष्णता एवं रूक्षतासे होनेवाले गृध्रसीशूल

में बकरीका दूध पीनेसे लाभ होता है। रूफलके कथनानुसार गायके दूधकी अपेक्षया इससे कम दस्त होते हैं। तबरीके अनुसार यह दस्तों और गर्मीके ज्वरोंको निवृत्त करता है। दीसकूरीदूससे कथनानुसार उदरके लिये बकरीके दूधसे होनेवाली हानियाँ अन्य दूधोंसे कम हैं। अतएव यह आमाशयके लिए सात्म्य है। तथा भेड़के दूधकी अपेक्षया आमाशयको अधिक सात्म्य है। अन्य दूधोंसे इससे होनेवाली हानियाँ कम होनेका हेतु दीसकूरीदूस बलूत, खर्नूब और मस्तगीकावृक्ष तथा यह बताते हैं कि बकरी प्रायः जैतूनके पत्र जैसे कषाय आहार खाती है। परन्तु शैखने इस प्रमाणमें विपरीत निष्कर्ष निकाला है। वे कहते हैं कि बकरी कषाय आहारोंका सेवन करती है। अतएव अन्य दूधोंकी अपेक्षया अन्त्र आदिके लिए इसका दूध अधिक अहितकर है। क्योंकि संग्राही होनेके कारण इसके मलका भली-भांति निर्हरण नहीं हो सकेगा। इसमें संदेह नहीं किशीत प्रकृति वालोंको असात्म्य है, आध्मान उत्पन्न करता है। इसके अतियोगसे जभाइयाँ और डकारें आने लगती हैं। जेठ-वैसाखमें ज्वर हो तो इस दूधके सेवनसे लाभ होता है। राजयक्ष्मा और गर्मीके जीर्ण ज्वरको लाभकारी है। उष्ण प्रकृति वाले इसके सेवनसे स्थूल होते हैं। सहनशक्ति और पाचन शक्तिके अनुसार इसे देना चाहिए। ३॥। तोला से ५॥ तोला तक दूधमें तोला डेढ़ तोला पानी मिलाकर ३॥ माश शुद्ध खाकसीके साथ पिलाना प्रारम्भ करें। कोष्ठमार्दवकी आवश्यकता होनेपर तोला डेढ़ तोला शर्बत बनफशा भी मिलाते रहें और प्रतिदिन तोला डेढ़ तोला दूध और थोड़ा-थोड़ा पानी और शर्बत बढ़ाते रहें जहाँ तक आमाशयको सात्म्य हो जाय। अहितकर–अन्त्र और आमाशय आदि आभ्यन्तरिक अवयवोंको। **निवारण**–कतीरा। **प्रतिनिधि**–गायका दूध।

आयुर्वेदीय मत—बकरीका दूध गायके समान गुणवाला, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, दीपन, लघु, संग्राहि तथा श्वास, खाँसी, अतिसार, ज्वर और रक्तपित्तके रोगियोंको विशेष करके क्षय वालोंको (राजयक्ष्माके रोगी) हितकर है। बकरियोंका शरीर छोटा-हलका होनेसे तथा बकरियाँ कटु और तिक्तरसवाली वनस्पतियाँ खाती हैं, पानी कम पीती और अधिक परिश्रम करती हैं इसलिए उनका दूध सर्वव्याधिहर होता है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५)। ५-५ तोले काला तिल और शर्कराके कल्कको बकरीके दूधसे पीनेसे रक्तातिसार आराम होता है (च० चि० अ० १९)। बकरीको दही स्निग्ध, विपाकमें लघु अग्निदीपन, तथा कफ-पित्त बातको हरनेवाला और क्षय, अर्श, श्वास तथा खाँसीमें हितकर हैं (सु० सू० अ० ४५)। बकरीका घी अग्निदीपक, नेत्रके लिए हितकर बलवर्धक, कास, श्वास और राजयक्ष्माके लिए हितकर और पचनेमें हलका होता है। **वक्तव्य**–बकरीके दूधमें गंधक (Sulphur) और आयोडोनकी (Iodine) ये दो उग्रगंध और उपसर्ग-नाशक तत्व विद्यमान होनेके कारण वह क्षयमें लाभदायक होता है, ऐसा कुछ लोगोंका मत है। भेड़ और बकरी स्वयं राजयक्ष्मासे पीड़ित नहीं होती है।

बकरी का खुर

नाम—(अ०) ज़िल्फ़ माअज; (फा०) सुमे बुज़।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें सर्द एवं रूक्ष।

गुण-कर्ण तथा उपयोग—इसको जलाकर सिरकेमें मिलाकर इन्द्रलुप्त एवं खालित्य (दाउस्सालब और दाउलह्य्य:) पर लगानेसे बाल जम जाते हैं। इसकी राख सिरकेमें मिलाकर लगानेसे मस्से कट जाते हैं। इसकी राखको लाहौरी नमकके साथ दाँतों पर मलनेसे दाँतोंका हरापन और पीलापन दूर हो जाता है। बकरीका जला हुआ खुर, कतीरा और बालछड़ प्रत्येक १ भाग, अनीसून ½ भाग—इनको हरी सौंफके पत्तोंके स्वरसमें घोंटकर खानेसे यकृद्गत अवरोध दूर हो जाते हैं। जला हुआ खुर सम प्रमाण सौंफ और अनीसूनके साथ पीसकर शहदमें मिलाकर गृध्रसी एवं वातरक्त रोगीको प्रतिदिन १ तोला इस प्रकार तीन दिन तक देनेसे उपकार होता है। जला हुआ खुर ७ माशेकी मात्रामें लेकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे शय्यामूत्र-रोग दूर होता है। जले हुए खुरको मद्यमें मिलाकर कीड़ोंके दष्टस्थानपर लगानेसे लाभ होता है। जले हुए खुरको शिशुके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे वात कफज-

शूल (कुलंज) आराम हो जाता है। पेशाब (मूत्र)–बकरीका मूत्र देदनास्थापन, विषविकारहर, क्षुधावर्धक और कृमिघ्न है तथा कास, श्वास, कुष्ठ, कामला एवं श्वित्र इन रोगोंको नष्ट करता है। यदि शरीरकी त्वचा विदीर्ण होकर उसमेंसे पतला द्रव रिसता हो तो इसके प्रयोगसे वह दूर हो जाता है।

आयुर्वेदीय मत—बकरीका मूत्र कषाय, मधुर, कटु, तिक्त, पथ्य, कुछ वात प्रकोप करनेवाला, दोषहर तथा कास, प्लीहोदर, श्वास, राजयक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डुरोग और मलावरोध में हितकर है। (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५)।

जंगलमें चरनेवाली बकरीके २॥ तोले मूत्रमें कालीजीरी (बनजीरक) ३ माशा पीसकर, कपड़ेसे छानकर पिलानेसे राजयक्ष्मामें लाभ होता। द्र० गु० वि० उत्तरार्ध भाग २ पृ० ४१७)।

बगला

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपगण**
(Sub-order : Neornithes) : **हिरोडिओनीज-गण** (Order : Herodiones)
आर्डिडी-उपगण (Sub-order : Ardeidae)

नाम—(हिं०) बग (गु) ला, बकुला (मादा-बगुली); (अ०) मालकी, मालिकुल्हज़ीन; (फा०) बूतीमार; (सं०) ब (व) क (मादा = बलाका); (ले०) (१) आर्डिआ टोर्रा (*Ardea torra*); (२) आर्डिया पूटिआ (*Ardea putea*) (३) आर्डिया सिनेरिया *Ardea cinerea* (एग्रेट्टा एल्बा *Egretta alba*); (अं०) इग्रेट या हेरन (Egret or heron), कामन ग्रे हेरन (Common Grey Heron)।

वर्णन—सफेद रंगका एक पक्षी जिसकी टाँगें चोंच और गला लंबा और पूँछ नाम मात्रकी बहुत छोटी होती है। यह तालाब और झीलके किनारे खड़ा रहता है और मछलियाँ पकड़कर खाता है, इसलिए माहीगीर कहलाता है। रंग और आकार भेदसे इसकी कई जातियाँ हैं—(१) अजन, नारी वा सेन—इसका रंग नीलापन लिए होता है। (२) बगली, खोचबगला, गड़हबगलिया—जो छोटी और मटमैले रंगकी होती है। (३) गैबगला वा सुरखिया बगला और (४) राजबगला।

प्रकृति—मांस दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम दूसरेमें रूक्ष। वैद्य सर्द एवं रूक्ष बतलाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस दुर्गंधयुक्त, गुरु, विष्टम्भी और कामोद्दीपक है तथा यह शरीरको परिबृंहित करता, ज्ञानेन्द्रियोंको शक्ति देता, स्मरण शक्ति बढ़ाता और वृक्क एवं कुब्बत मासिकाको बलप्रदान करता है। अस्तु दुबले मनुष्यों एवं पक्षवधके रोगियोंके लिए गुणकारक है। इसको बध कर एक दिन रहने देनेके उपरांत दूसरे दिन पकाकर खाना चाहिए। इसकी चर्बीकी मालिश बवासीरको बंद करती है। स्नानागारमें इसका रक्त मलनेसे प्रसेक (नजलात) जाता रहता है। इब्नजहरके कथनानुसार इसका अंडा वाजीकर है। इसकी विष्ठा (गूह) पीसकर गुलरोगनमें मिलाकर उसमें तूल या रूई लत करके योनिमें धारण (हुमूल) करनेसे योनिशूल मिटता है। अहितकर–उष्ण या पित्तल प्रकृतिको तथा अनिद्राकारक और वायुकारक है। निवारण–उष्ण प्रकृति एवं अनिद्राके लिए सिरका और धनिया तथा वायुके लिए गरम मसाला। उत्तम यह है कि घीमें भूनकर और गरम मसाला डालकर सेवन करें।

आयुर्वेदीय मत—हंस, सारस आदि प्लववर्गीय पक्षीवत्। दे० 'सारस'।

बगेरी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षि-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपवर्ग** (Sub-class : Neornithes) : **पास्सेरिफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes) : **फैमिली : फ्रिंजिलिडी** (Family : Fringillidae) ।

नाम—(हिं०) बगे (घे) री, भरुही, बगोधा, बघे(गे)रा (नर); (सं०) भरद्वाज, वालीक, व (वा) र्तीक, वर्त्तिचटक; (ले०) एम्बेरिज़ा हॉर्टुलाना (*Emberiza hortuılana*); (अं०) आर्टोलन (Ortolon) ।

वर्णन—सारे भारतमें पाई जानेवाली खाकी रंगकी एक छोटी चिड़िया जो डील-डौलमें गौरैयासे किंचित् बड़ी होती है। चोंच भी इसकी लम्बी और बारीक होती है, और रंगमें भी कुछ परिवर्तन होता है। यह मैदानोंमें जलाशयोंके पास पाई जाती है। यह जमीनसे इस प्रकार चिपट जाती है कि सहजमें नहीं दिखाई देती है। यह झुंडोंमें रहतीं है। प्रयोगके लिए उत्तम मोटी और शरद ऋतुकी होती हैं। पालतू या घरेलू (खानगी)से इसका मांस श्रेष्ठतर होता है। यह मुर्गीके मांससे अधिक कठोर होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें, मतांतरसे तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है। तिब मुस्तफवीके अनुसार इसका मांस मधुर तथा सर्द एवं रूक्ष है। वैद्योंका भी यही मत है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस कफ और पित्त, मतांतरसे कफवातनाशक, दीपन, वाजीकर एवं शुक्रल है तथा शीघ्र आमाशयसे नीचे उतर जाता है। यह उत्तम रक्त उत्पन्न करता है। वृद्ध एवं शीत प्रकृतियोंको सात्म्य है। इसलिए अनुभवी लोगोंने इसे उष्ण कहा है। किसी-किसी यूनानीविद का यह कथन है कि इसका मांस शरीर और आमाशयमें भी उष्णता उत्पन्न करता है तथा जलोदरमें लाभकारी है। मांसरस मृदुसारक और मांसकी बोटी संग्राही है। इसके सेवनसे पक्षवध, अर्दित, अंगघात और स्वाप तथा यकृत् और वातनाड़ियोंके दौर्बल्यमें लाभ होता है। यह वृक्कदौर्बल्यको दूर करता है। सर्द एवं तर प्रकृति वालोंके लिए तथा जिनके उदरमें वायुकी प्रबलता हो उनके लिए इसका मांस लाभकारी है। किसी-किसीके मतसे इससे शरीरमें रूक्षता बढ़ती है और रक्त कम बनता है। इसके बच्चेका मांस परम कामोद्दीपक है। खवास अलाइयामें लिखा है कि जंगली चिड़ियाके बच्चेका पर उखाड़कर भिड़ोंके छत्तेपर लटकावें जिसमें वे उसे खूब डंक मारें। पुनः उसे पुष्कल घृतमें इतना पकावें कि वह खूब घुल जाय। इसे तलवोंके नीचे मलकर स्त्रीसंग करनेसे परम आनन्द प्राप्त होता है। इसकी बीट अत्यंत गरम एवं रूक्ष है। इसे आँखमें लगानेसे जाला और मुखमें मलनेसे झाईं दूर होती है।

आयुर्वेदीय मत—बगेराका मांस मधुर रसयुक्त, शीतवीर्य, रूक्ष तथा कफ और पित्तनाशक है। (भा० प्र०)।

बटेर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपवर्ग** (Sub-class : Neornithes) : **गैलिनो-गण** (Order : Gallinae) : **फैमिली : फैसियानिडी** (Family : Phasianidae) ।

नाम—(हिं०) बटई, बटेर; (अ०) समाना, समानी; (फा०) पूदनः, वतंज; (सं०) वर्तक; (ले०) टेट्राओ कोटुर्निक्स (*Tetrao cotuvnix*); (अं०) क्वैल (Quail), बटन क्वेल (Button quail)।

वर्णन—तीतर या लवा (*Turnix dussumieri* Zemm. Button quails)की तरहकी एक छोटी चिड़िया जिसका रंग तीतरका सा होता है, पर यह उससे छोटी होती है। लवा (सं०—लव) तीतरसे बहुत छोटा होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बटेरका मांस पुष्टिकर, जीवन, बृंहण एवं उन आहारोंमेंसे है जिनसे उत्तम रस उत्पन्न होता है। बीमारीसे उठे हुए दुर्बल रोगियोंके लिए यह गुणदायक आहार है। शीतल रोगों विशेषतः आमवात, पक्षवध और अर्दितमें उपयोग किया जाता है। बटेरका मांस मूत्रजनन और अश्मरीघ्न भी है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण-तेल और सुगंधित मसाले। प्रतिनिधि–लवेका मांस।

आयुर्वेदीय मत—बटेर (वर्त्तक, वर्तीरक)का मांस जठराग्निकारक, शीतवीर्य, सुरुचिकारक, शुक्र उत्पन्न करनेवाला, बलकारक तथा ज्वर और त्रिदोषको नष्ट करनेवाला होता है। दूसरे प्रकारके बटेरका मांस इसकी अपेक्षया स्वल्पगुणवाला होता है। (भा० प्र०)।

बत्तख

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज-उपवर्ग** (Sub-class : Neornithes) : **फैमिली : ऐनाटिडी** (Family : Anatidae) : **सब-फैमिली : ऐनाटिनी** (Sub-family : Anatinae)

नाम—(हिं०) बत्तक(ख), कलहंस, करवा; (अ०) बत, बत्तख; (फा०) उर्दक; (सं०) कादम्ब; (अं०) डक (Duck); (लै०) ऐनास डोमेस्टिका (*Anas domestica*)।

वर्णन—हंसकी जातिकी पानीकी (प्लव वर्गीय) एक चिड़िया जिसका रंग सफेद, पंजे झिल्लीदार और चोंच आगेकी ओर चपटी होती है। पालतू (अहली) और जंगली (सहराई) भेदसे यह दो प्रकारका होता है। बत्तख इसका पालतू भेद है। फारसीमें इसे बत अहली कहते हैं। छोटा और बड़ा भेदमें यह उसका छोटा भेद है जिसको बत या चिनिया बत्तक कहते हैं। इसके बड़े भेदको इव्वज कहते हैं। वक्तव्य—इसका मांस बड़ा दुर्गंधित होता है। उक्त दुर्गंध दूर करनेके लिए वध करनेके उपरांत इसे दो-तीन घड़ी जमीन में गाड़ रखें। उसके बाद इसे निकाल, पर आदि साफ करके प्रथम केवल पानीमें पकाकर उस पानीको फेंक देवें। इसी प्रकार कई पानी बदल देवें तो उत्तम हो। पुनः मसाला डालकर पकावें और खूब गलावें। जंगली बत्तख इससेभी दुर्गंधित होता है। अस्तु, उसे नहीं खाना चाहिए।

प्रकृति—मलभूत द्रवयुक्त दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें तर है। इसका अंडा अनुष्णशीत है। बिष्ठा अत्यंत उष्ण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस अधिक रक्त उत्पन्न करता है, किंतु मुर्गीके मांस जैसा उत्तम नहीं होता। इसका यकृत् भी सुस्वादु एवं पुष्टिकर आहार (जय्यद) है। परन्तु इसका मांस सान्द्र (गलीज) अवश्य है। आमाशयमें देरतक ठहरता है, देरमें पचता है, प्रकोथाभिमुखी गुरुता एवं आध्मान उत्पन्न करता है। इसके बाजुओंका मांस शरीर एवं वृक्कको पुष्ट करता, उत्तम रक्त उत्पन्न करता, तथा अन्य हर स्थानके मांससे लघु एवं श्रेष्ठतर है। जब यह भलीभांति पच जाता है तब हर प्रकारके पक्षीके मांससे अधिक शरीरको बल एवं पुष्टि प्रदान करता है। यह वाजीकरण करता, शुक्र उत्पन्न करता, वायुको नष्ट करता, प्रवर्तन (इदरार) को साफ करता और धड़कनको लाभ पहुँचाता है। उसके अतिरिक्त इसका यकृत्भी दिलकी धड़कनको दूर करता है। इसका मांस पीसकर नमक मिलाकर लगानेसे मस्से जाते रहते हैं। इसकी चर्बीमें सूक्ष्म गर्मी एवं प्रवेशकारिणी शक्ति है। यह कठोरता एवं सूजनको उतारती है। झांईं और कण्ठमालेपर इसके लेपसे उपकार होता है। इसे मुखपर मलनेसे कांति प्राप्त होती है। यह वेदनाको शमन करती है। शरीरके भीतरी भागमें क्षोभ हो तो भी इससे दूर होता है। समस्त पक्षियोंकी चर्बीसे बत्तखकी चर्बी श्रेष्ठ होती है। इसके पंजेमें सान्द्रत्वके साथ गर्मी होती है। यह गुदशोथको मिटाता है। बाकलाके आटेमें इसको मिलाकर लेप करनेसे दिलकी धड़कन, स्तनशोथ और शीतजन्य वेदना, शमन

होती है। इसे खानेसे भी इन रोगोंमें लाभ होता है। यह खाँसी, उरः रौक्ष्य, स्वरकी खरखराहट और आन्त्रदाह एवं पीड़ाको दूर करता है। इसे अन्य उपयुक्त तेलोंमें घोलकर बस्ति देनेसे भी अन्त्र एवं अन्य दूरवर्ती अंगोंके दाह एवं कष्टमें लाभ पहुँचाता है। इसका अंडा यद्यपि (अनुष्णाशीत) है, तथापि अत्यंत (गलीज) एवं चिरपाकी है तथा मुर्गी, चकोर और तीतरके अंडोंसे निर्बल है। इसके खानेसे कभी विरेक भी होने लगते हैं। यह कृशता, कास और उरोवेदनाको मिटाता है। कहरुवाके साथ खानेसे रक्तस्राव एवं पेचिशको दूर करता है। इसको सुदाब और जैतूनके तेलके साथ भूनकर बालकको खिलानेसे वह शीघ्र बात करने लगता है। अंडेका छिलका, मोती, मिश्री और नौसादरके साथ सुरमासा महीन पीसकर आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है। इसका संगदाना देरमें पचता है और बहुत कम सड़ता-गलता है। यदि यह अच्छी तरह पचजाय तो इससे खूब पुष्टि प्राप्त होती है। यह अन्त्रामाशयकी दुर्बलताको दूर करता है। बत्तख तेल संधिशूलनाशक है। इसके परोंकी राख एवं बीटके लेपसे अंजीरनी और कण्ठमाला दूर होती है। इसके लगानेसे कलफ़ व नमश जाते रहते हैं। अहितकर—इसका मांस उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए अनुपयुक्त एवं शिरःशूलजनक है। इससे गाढ़ा रक्त उत्पन्न होता है जो शीघ्र सड़जाता है। **निवारण**—सिरका, सोंठ, दालचीनी, कुलंजन, गरम मसाला आदि।

आयुर्वेदीय-मत—हंस, सारस आदि प्लववर्गीय पक्षीवत्। दे० 'सारस'।

बया

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **नियोर्निथीज उपवर्ग**
(Sub-class : Neornithes) : **पास्सेरिफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes) :
फैमिली : प्लोसीईडी (Family : Ploceidae)

नाम—(हिं०) बया; (अ०) तुनव्वित; (फा०) बाफ़क, केतू, गोरब; (सं०) वयः; (ले०) प्लोसीउस फिलिपिनुस (*Ploceus philippinus*); (अं०) ऐस्साइजर (Assiger)।

वर्णन—गौरैयाके आकार और रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी जिसका माथा बहुत चमकदार पीला होता है। इसकी मादा चिड़ियाकी तरह और नर चिड़ेके समान होता है। परन्तु जिस प्रकार चिड़ेका पोटा काला होता है, इसका पोटा और सिर पीला होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चिड़िया (गौरैया) के समान है। तज़किरए हिंदके लेखकके अनुसार इसका पित्त चीनीमें मिलाकर बालकोंको खिलानेसे उनके स्वभावका परिष्कार होकर अन्य लोगोंमें उनका सम्मान होता है।

बर्रे, भौंरा

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) : **टेरीगोजीनिया-उपवर्ग** (Sub-class : Pterygogenea) : **हीमेनोप्टेरा-गण** (Order : Hymenoptera) :
फैमिली : वेस्पिडी (Family : Vespidae)

नाम—(हिं०) बर्रे, बरैया, भिड़, भौंरा, ततैया; (अ०) ज़ुंबूर (बहुव० जनाबीर), ज़ंबूरः, जंबूरुल्अस्वद, अबुआसिम; (सं०) भ्रमर, वरट (टी); (बं०) बरला; (अं०) वास्प (Wasp; A large black bee)। बर्रेका छत्ता = (फा०) कलीज़दान।

वर्णन—काले रंगका उड़नेवाला एक पतंगा, जो गोबरैलेके बराबर होता है और देखनेमें बहुत दृढांग प्रतीत होता है। रंगके विचारसे यह कई प्रकारका होता है। (१) लाल और बड़ा जिसको भिड़ और (२) पीला जिसको ततैया कहते हैं।

प्रकृति—बहुत गरम एवं रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कुछ भिडोंको मीठे तेलमें जलाकर वह तेल शिश्न पर मलनेसे बहुत शक्ति देता है । शहद और नमकके साथ इसको पीसकर श्वित्र एवं शीतल शोथोंपर लेप करनेसे लाभ होता है । नीलापन लिए काली भिड़को जैतूनके तेलमें पकाकर किलास, व्यंग और शरीरके दागोंपर मलनेसे लाभ होता है । इसको पकड़कर लाल कपड़ेमें बाँधकर वातरक्त रोगीके गलेमें बाँध देनेसे प्रभावतः लाभ होता है । इसके बच्चोंको सुखा-पीसकर उसमेंसे ३॥ माशे लेकर फालूदाके साथ खानेसे शरीर परिबृंहित होता है । पक्षवध आदि जैसे शीत-जन्य वातव्याधियोंसे पीड़ित रोगीको भिड़के काटनेसे बड़ा लाभ होता है । बिषलक्षण और चिकित्सा—इसके काटनेसे कण्डू दाह और शोथ हो जाता है । इसका उपचार यह है, उस जगह सूई या और किसी चीजसे चीरा देकर चूसें । इसके बाद मिट्टीमें सिरका और कपूर मिलाकर घावपर मलें । उसपर काई और गिलअरमनीभी सिरकाके साथ मलनेसे उपकार होता है । सूखा धनिया ठंढा पानी और चीनीके साथ पीनेसे भी लाभ होता है । रक्त मोक्षण करने तथा मक्खी पीसकर लेप करनेसे भी लाभ होता है । दियासलाईको नम करके उस स्थानपर मलनेसे भी लाभ होता है तथा सूजन एवं दाह बिल्कुल नहीं होता । बर्फमें कपड़ा तरकरके भिड़के काटे हुए स्थानपर रखने या भिडको मारकर उस स्थानपर मलदेनेसे दर्द बिल्कुल जाता रहता है ।

बहरी

पृष्ठवंशी (Vertebrata) : **पक्षीवर्ग** (Class : Aves) ।

नाम—(हिं०) बहरी, मैरी, कमक; (अ०) शाहीन, बहरी; (सं०) चास (सु०); (लें०) फैल्को कैलिड्स (*Falco calidus*); (अं०) फैलकन (Falcon) ।

वर्णन—एक शिकारी चिड़िया जिसका रंग-रूप और स्वभाव बाजकासा होता है, पर आकार छोटा होता है । यह कबूतरका शिकार करता है । इसके द्वारा अन्य पक्षियोंका शिकार किया जाता है ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस रूक्षताजनक है तथा तर एवं कफ प्रकृतियोंको सात्म्य है । यह सौदा एवं क्रोध उत्पन्न करता तथा शरीरको कृश करता है और उष्ण प्रकृतियोंको असात्म्य है ।

बाघ या शेर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनिन्-वर्ग** (Class : Mammalia) : **जरायुधारी-उपवर्ग** (Sub-class : Eutheria) : **क्रव्यभुज-गण** (Order : Carnivora) : **फैमिली : फेलिडी** (Family : Felidae)

नाम—(हिं०) (१) बाघ (स्त्री-बाघिन), (२) शेर (स्त्री-शेरनी), सिंघ; (अ०) असद; (फा०) शेर; (सं०) व्याघ्र, नाहर; (लें०) (१) बाघ–फेलिस टिग्रिस *Felis tigris*, (२) शेरबबर–पैन्थेरा लियो *Panthera leo*; (अं०) बाघ–टाइगर (Tiger); (२) शेर–लायन (Lion) ।

वर्णन—बाघ एक प्रसिद्ध जंगली हिंसक जंतु है, जिसे फारसीमें शेर कहते हैं । यह लम्बाईमें बबरसे अधिक होता है । परन्तु इसका सिर उससे छोटा और अधिक गोल होता है । बाल महीन प्रायः खूब पीले और चमकीले रंगका होता है, जिसपर तिर्छी काली धारियां पड़ी होती है और बहुत सुन्दर मालूम होती हैं । यह भारतवर्षमें होता है । शेरबबर इसकी वह जाति है जिसके नरवर्गकी गर्दनपर कालाई लिए या काले रंगके बड़े-बड़े बाल या केसर होते हैं । इसलिए संस्कृतमें इसे केसरी (और सिंह) कहते हैं । यह बाघ या शेरसे किंचित् छोटा होता है । इसका पिछला भाग–कमर पतली और अगला भाग–गर्दन भारी होता है । इसका रंग शोखी

मायल पीला होता है। इसकी मादाकी गर्दनपर बाल नहीं होते। यह पशुओंमें सबसे बलवान्, पराक्रमी और भव्य जंगली जंतु है। वि० दे० "सिंह"।

उपयुक्त अंग – जिह्वा, दन्त, नख, इन्द्री, दूध (शेरनी या सिंहनीका), मांस चर्बी और पित्त।

बाघ या शेर

प्रकृति—मांस तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस दीर्घपाकी है। इसके खानेसे शौर्य-वीरता आती है। मांसको मस्तगी और बूरए अरमनीके साथ पका और सुखाकर चूर्ण बना लेवें। फिर इस चूर्णको रोगनजंबक से चिकना करके निहार गरम पानीसे सेवन करें। यह वातज शूल (रियाही कुलंज), मरोड़, वातार्श जनित शूल, यकृच्छूल और जरायुशूलके लिए अत्यंत प्रभावकारी एवं लाभकारी औषधि है। इसके वृषणोंका कबाव अत्यंत वाजीकर एवं हृद्य (हृदय बलदायक) है। कटि–कूल्हा या कोख (तेंहीगाह)–शिश्न–और गुदा पर इसकी चर्बीका लेप अत्यंत वाजीकर है। इसकी चर्बी लगानेसे झांई दूर होती है। कंठमाले पर भी इसका लेप गुणकारक है। कैसे ही कठिन बद और दुष्ट शोथ हो इसके लेपसे विलीन हो जाते हैं, परन्तु एक वर्षके पुराने न हों। इसमें तुख्म अंजुराका तेल मिलाकर शिश्न शीर्षमें टपकानेसे परम शिश्नोच्छ्राय उत्पन्न होता है। इसका पित्त आँखमें लगानेसे दृष्टि बलवान होती है। इसकी खाल पर बैठनेसे अर्शो वेदना और वातरक्तज वेदना शमन होती है। सामानके भीतर इसकी खाल रखनेसे उसमें कीड़े नहीं लगते। इसके बालोंकी धूनीसे दर्दका दौरा बंद हो जाता है। सर्दी और तरीके कारण उत्पन्न हुआ श्वासका रोग सुखाकर चूर्ण बनाये हुए इसकी जिह्वाके चूर्णको मिश्री मिलाकर खिलानेसे आराम होता है। यदि गर्भवती स्त्री शेरनीकी सुखाई हुई नाक शिशुका दूध पिलाना छुड़ानेके समय तक अपने पास रखे तो सूतिका रोगसे सुरक्षित रहे। इसकी ३।। माशे विष्ठा मद्यमें घोलकर मदिरापान करनेवालेको पिलानेसे उसे मद्यसे बिल्कुल घृणा हो जाती है। इसकी मूंछका बाल खानेसे मनुष्य मर जाता है। शेरके नाखून या दांतसे घायल होनेपर जराबंद और ईरसा शहदमें पीसकर उस जगह लेप करने उसके पश्चात् सिरकासे धोने और तांबेकी मैल और जंगार या तांबेकी मैल, मोम एवं जैतून तैलसे बना मलहम लगानेसे लाभ होता है।

शेरनी का दूध

गुण-कर्ण तथा उपयोग—अत्यंत तीक्ष्ण एवं उष्ण, प्रवर्तनीय (मुदिर्र), लेखन और आशुकारी (आशुप्रवेशनीय) है। इसके उपयोगसे ग़ज़बकी वृद्धि होती है। वनमें किसी-किसी स्थान और अवसर पर सूखा हुआ मिल जाता है। इसे नेत्ररोगमें प्रयुक्त सुरमोंमें डालते हैं। वैद्य कहते हैं कि शेरनीका दूध सुरमोंमें डालकर लगानेसे मोतियाबिंद आराम होता है।

आयुर्वेदीय मत—सिंह आदि गुहाशय प्राणियोंके समान। दे० 'सिंह'।

बाज

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **ऐक्सीपेट्रीज-गण** (Order : Accipetres) : **फैमिली : फाल्कोनिडी** (Family : Falconidae) : **सब-फैमिली : फाल्कोनिनी** (Sub-family : Falconinae)

नाम—(हिं०) बाज, शिकरा, सेन; (अ०) बाज़ी; (फा०) बाज, जुर्रः (नर बाज); (सं०) श्येन, शशघातक, शशघाती; (लै०) ऐस्तुर बैडिडस (*Astur badius*); (अं०) हॉक (Hawk);

वर्णन—एक प्रसिद्ध शिकारी (हिंसाजीवी) पक्षी जो प्रायः सारे संसारमें पाया जाता है। रंगके विचारसे इसके यह चार भेद हैं—(१) सफेदा, (२) सुर्खा, (३) जर्दा और (४) स्याह (काला)। इनमें सर्वोत्तम सफेदा होता है और काला सर्वाधिक दुष्ट स्वभावका होता है। उत्पत्ति स्थानके भेदसे यह अनेक प्रकारका होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस दीर्घपाकी, दुर्गंधयुक्त, रदीउल्गिजा, श्वयथुविलयन और विषघ्न है । इसका पर जलाकर व्रणोंपर छिड़कनेसे व्रणपूरण होता है । इसका रक्त आँखमें डालनेसे जाला कट जाता है और इसकी बीटके लेपसे त्वचाके दाग मिटते तथा गर्भाशयमें धारण (हुमूल) करनेसे गर्भ रह जाता है । गर्भावस्थामें योनिमें इसकी वर्ति (फिर्ज़जा) धारण करने या धूनी देनेसे गर्भपात हो जाता है । इसकी बीट ७ माशाकी मात्रामें बांझ स्त्रीको खिलानेसे बन्ध्यात्व दोष (बांझपन) जाता रहता है । इसे शहदमें मिलाकर नेत्रके भीतर लगानेसे धुंधमें लाभ होता है । किसी-किसीने इसे नेत्रके ऊपर लगानेको लिखा है । बीटको मद्यमें घोलकर बंध्या स्त्रीको पिला देनेसे उसमें गर्भधारणकी योग्यता आ जाती है । इसका मांस उबालकर और रोगन सौसन के साथ प्रारंभिक मोतियाबिंदमें नेत्रके ऊपर लेप करनेसे लाभ होता है तथा बार-बार लगानेसे उसकी जड़ जाती रहती है । परन्तु यह लाभ रोगके आरम्भमें इसके उपयोगसे होता है तथा रोगके बद्धमूल हो जाने पर इसका उपयोग निरर्थक है । इसका पित्त आँखमें लगानेसे जाला, फूली और टेंट कट जाते हैं । नेत्रमें पानी उतरनेके प्रारंभिक कालमें यह पित्त आँखमें लगानेसे रोगारंभ रुक जाता है । इसका और बाशा (बाशः = बाज विशेष) इन दोनोंका पित्त मद्यमें घोलकर विषैले जन्तुओंके दष्टस्थानपर लगानेसे लाभ होता है । अहितकर–मांस शूलजनक है । निवारक–गरम मसाला ।

बाम

पृष्ठवंशी-संघ : (Phyium : Chordata) : **मत्स्य-वर्ग** (Class : Pisces) :
सिम्ब्रैन्किफार्मीज-गण (Order : Symbrarchiformes) :
फैमिली : ऐम्फीप्नोइडी (Family : Amphipnoidae)

नाम—(हिं०) बाम मछली, बॉब(बी) मछली, बर्मि, गुंगबहरी, कचिया मछली; (अ) हिर्रीस, सोअबानुल् बहर, मारमाहीज; (फा०) मारमाही; (सं०) वर्मिमत्स्य (सु० सू० ४६ अ०/११३) भेटुलि; (बं०) बाम माछ; (ले०) ऐम्फिप्नस कूचिया (*Amphipnous cuchia*); (अं०) ईल (An eel) ।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसका अरवी नाम जिर्री लिखा है, परन्तु जिर्री बाम नहीं है, अपितु बामसे कुछ मिलती-जुलती एक और मछली है जो नील नदीमें बहुतायतसे पाई जाती है ।

वर्णन—एक प्रकारकी मछली जो देखनेमें साँपसी (सर्पाकार), पतली, गोल और लंबी होती है । इसके यह दो भेद होते हैं—(१) इसका मुँह सांप सा होता है । यह पतली गोल और लंबी होती है । इसकी कमरपर कांटे नहीं होते—पीठ चिकनी होती है । इसे ही बाम कहते हैं । (२) इसका मुँह चोंचदार होता है और कटिपर अरीके दंतुओंके समान कण्टक होते हैं । यदि इसे जीवितावस्थामें अज्ञानवश कोई हाथसे पकड़ ले तो हाथ कट जाय । इसे गेंड कहते हैं । इन दोनोंका रंग एक समान होता है । बामके ऊपर लुआबदार पदार्थ चिपका रहता है, इसलिए यह पिच्छिल होती है । बान इसका एक भारतीय भेद है जिसको अंग्रेजीमें बानफिश (Ban-fish) या इंडियल ईल (Indian eel) कहते हैं । आयुर्वेदका भक्कुर या भाकुट अर्थात् भाकुर (Opheo cephalus or Serpent head (Mourda) fish बामका ही एक अन्यतम भेद मालूम होता है । यूनानियोंका जिर्री सम्भवतः यही है ।

प्रकृति—गरम और रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह लेखन और (जाज़िब) है । ताजी अत्यंत पुष्टिदायक (कसीरुल्गिजा) है और कफनिष्ट रक्त उत्पन्न करती है तथा फुप्फुसप्रणालीका शोधन एवं निर्मलीकरण करती और स्वरको भी शुद्ध करती हैं । इसका मांस उरःक्षत और रक्तष्ठीवन (मुखसे खून आना)में लाभकारी है । नमक लगाकर सुखाई हुई रक्तष्ठीवन एवं उरःक्षतके सिवाय इन सब रोगोंमें अधिक गुणकारक है तथा वाजीकरण करती और वायुको नष्ट करती है । इसके उपयोगसे रक्तस्राव बन्द होता है । वृद्धोंके लिए यह उत्तम पौष्टिक आहार है तथा उनकी सर्दीको दूर करती है ।

नकम लगाकर सुखाई हुई वाम मछलीके काढ़ेमें अवगाहन करने (बैठने)से प्रारंभिक अन्त्रव्रण आराम होता है और दोषको शरीरके बहिः भागकी ओर खींचता है। इसे खानेसे पृष्ठशूल आराम होता है। इसके लेपसे शरीरमें लगा हुआ काँटा और वाण वाहर खिंच आता है। इसके सेवनकी उत्तम विधि यह है कि वाजीकरणके लिए इसको दालचीनी और मस्तगीके साथ पकाकर उसका शूखा (मांसरस) पियें और अन्य कार्यो एवं वृद्धोंके लिए इसे तलकर खांये। अहितकर–वृक्कको, तथा दीर्घपाकी है, एवं पिच्छिल कफ तथा श्वित्र उत्पन्न करती है। **निवारण**–नमक लगाना और सिरका, सातर, नाना और सिकंजवीन।

आयुर्वेदीय मत—इसका मांस रुचिकारक, लघु तथा वात एवं पित्तको दूर करनेवाला है। (भा० प्र०)।

बामनी, बभनी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप वर्ग** (Class : Reptilia) : **स्क्वैमेटा-गण** (Order : Squamata) : **फैमिली : लैसर्टिडी** (Family : Lacertidae)

नाम—(हिं०) बाम(म्ह)नी, व (बा) भनी, बम्हनी; (अ०) हिर्दोन, उज़्कूह; (फा०) मारमलूक; (सं०) ब्राह्मणी, रक्तांजनी; (ले०) मोबुया कैरिनेटा (*Mobuya carinata*)।

वर्णन—एक प्रकारका सरीसृप कीड़ाजो बनावटमें छिपकलीके समान पर जोंकसा पतला और केसरिया रंगका होता है। इसकी पीठपर लाल और हरी रेखाएँ होती हैं। मकानकी दीवालों, खंडहरों, बगीचों और पहाड़ोंमें यह रहती है। इसकी वह वीट औषधके लिए उत्तम है जो सफेद, हलकी, क्षणभंगुर (शीघ्र टूटनेवाली) और पीसनेपर खमीरवत् गंध देनेवाली हो।

प्रकृति—यह और इसकी वीट दोनोंही तीसरे दर्ज़ेमें गरम और रूक्ष हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको काले कपड़ेमें बांधकर गलेमें लटकानेसे चौथिया ज्वर दूर होता है। इसकी खालको जलाकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे वह अवयव इतना सुन्न हो जाता है कि आघात एवं काटनेसे भी कष्टका अनुभव नहीं होता। इसकी जली हुई खालकी राख आँखमें लगानेसे प्रभावतः दृष्टि तीव्र होती हैं। इसका रक्त नेत्रके भीतर लगानेसे भी दृष्टिको शक्ति प्राप्त होती है। इसकी बीट नेत्रमें लगानेसे जाला कट जाता हैं और नेत्रकण्डू मिट जाता है। इसे मुखपर लगानेसे झाइयां ही नहीं मिट जाती हैं, अपितु चेहरेके समस्त काले दाग मिट जाते हैं तथा चेहरेका रंग निखर जाता है। श्रेष्ठ बीट इसकी मादाकी है जो सफेद और हलकी होती है। वाल उड़ गये हुए स्थानपर इसकी चर्बी मलनेसे बाल जम जाते हैं। इसकी चर्बी सीधे वाजू (बाहु)पर और कमरके मोहरेको जो मूत्रपिंड (गुर्दे)के पासहो कटिपर बाँधनेसे सहवासेच्छा बलवती होती है। इसकी सीधी तरफकी आंख सुखाकर चार जौ प्रमाणमें लेकर सुदाबके पानीके साथ खानेसे सर्वथा वीर्यका उन्मूलन हो जाता है। इतनीही उलटी तरफकी सूखी हुई आंख काले चनोंके पानी और १॥। तोला गायके घीके साथ खानेसे प्रबल कामेच्छा उत्पन्न होती है और वृक्कमें गरमी आती है। इसका मांस और मांसरस खानेसे कुष्ठ उत्पन्न होता है। इतनाही नहीं अपितु यहांतक कहते हैं कि इसका मांस खानेवालेको शिरदर्द, गर्मी, खुजली, नेत्रजालक और जिह्वाशोथ हो जाता तथा गायका घी और दूध मिलाकर वमन कराने और शरीरपर तेलकी मालिश करनेसे उनका निवारण होता है। वैद्य कहते हैं कि इसके काटनेसे नेत्रलाल हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा काटे स्थानपर पछने लगाकर रक्त निकालनेके उपरांव उस स्थानपर इमलीकी छाल और कैथकी राख छिड़कना है।

आयुर्वेदोयमत—बम्हनीकी पूँछ ले चूर्णकर कड़वे तेलमें डाल सात दिन रखनेके बाद यह तेल लगानेसे बाल गिर जाते हैं। (भैं० र०)।

बारहसिंगा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनिन-वर्ग** (Class : Mammalia) : **थीरिया-उपवर्ग** (Sub-class : Theria) **अंगुलेटा-गण** (Order : Ungulata) : **फैमिली : सर्विडी** (Family Cervidae)

नाम—(हिं०) बारहसिंगा, बरहसिंघा (गा), साँभर, साम्हर; (अ०) इय्यल, ऐल; (फा०) गौज़न, गावकोही; (सं०) शम्बर, सावर, न्यङ्कु; (म०) सोबर; (ग०) सांबर; (ले०) सेर्वुस डुवेन्सेली *Cervus duvanceli* (रुसेर्वुस डुवेन्सेल्ली Rucervus duvancelli); सेर्वुस काश्मीरियानुस (*Cervus cashmirianus*)।

वर्णन, उपयुक्त अंग और संयोगी तत्व—यह हिरनकी जातिका एक पशु है जो ३-४ फुट ऊँचा और ७ फुट लंबा होता है। नरके सींगोंमें कई शाखाएँ निकलती हैं, इसीसे बारहसिंगा (सं०-बहुश्रृङ्ग) नाम पड़ा। मृगश्रृङ्गके नामसे इसके अथवा मृग वा हरिणके सींग लिये जाते हैं। आयुर्वेदके ग्रंथोंमें न्यङ्कु और साबरको पृथक्-पृथक् लिखा है। यह सींग जो मोटी अत्यंत कड़ी वजनदार, छिद्ररहित और ठोस होती हैं, औषधके काममें ली जाती है। साँभरसींगको जलसे घिसकर उसका लेप किया जाता है और कुश्ता वा भस्म बनाकर खानेको दिया जाता है। इसमें कैल्सियम फास्फेट (फॉसफेट आफ लाइम्) होता है।

प्रकृति—दूसरे व तीसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, संशमन, पीड़ाशामक और लेखन है तथा वात एवं कफज कास और श्वासके लिए विशेष गुणदायक है।

उपयोग—बारहसिंघेको जलके साथ पत्थरपर घिसकर और कालीमिर्चके कुछ दानें मिलाकर फुप्फुसशोथ (न्यूमोनिया), फुप्फुसावरण कलाशोथ (प्लूरसी) और पार्श्वशूलमें (जातुज्जनब)में लेप करते हैं। इसको भस्म (कुश्ता) बनाकर उक्त रोगोंमें खिलाएँ। यह वायुको विलीन करता, रक्तको बंद करता और उरःशूलको दूर करता है। भस्म बनाये हुए बरसिंघेको लेखन होनेके कारण प्रायशः नेत्ररोगों, जैसे—नेत्रव्रण, जाला, नेत्रजालक (जाला), नेत्रगत कच्छू एवं कण्डूमें सुरमाकी भांति लगाते हैं और अकेले या अन्य औषधियोंके साथ मंजनकी भांति दाँतोंपर मलते हैं। इससे दांत मलादिसे शुद्ध होकर चमकीले बन जाते हैं। इसकी भस्मको बारीक पीसकर वयस्क एवं बालकोंके मुखपाकमें अवचूर्णन करनाभी गुणदायक है। अर्शाङ्कुरोंके लिएइसकी धूनी लाभकारी है। **अहितकर**—सौदाजनक है। **निवारण**—स्नेहद्रव्य। **प्रतिनिधि**—इसकी एक किस्मका सींग दूसरी किस्मका अथवा कच्छपपृष्ठ बदल है। **मात्रा**—भस्म १२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे ४ रत्ती मतांतरसे २-८ रत्ती) तक। **अनुपान**—गोघृत या शहद।

आयुर्वेदीय मत—न्यङ्कु (बारहसिंगा)का मांस स्वादिष्ट, लघु, बल्य, बृष्य तथा त्रिदोषनाशक और साबरका मांस रस और विपाकमें मधुरर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, कफजनक एवं रक्तपित्तको दूर करनेवाला होता है। (भा० प्र०)। हृदयशूल, पार्श्वमूल, ग्रंथिशोथ, कटिशूल, गृध्रसी, संधिवात, खाँसी, श्वास, क्षय, हृद्रोग, मूत्रके साथ फॉस्फेटका अधिक आना इन रोगोंमें साँभरसींगकी भस्मका आभ्यन्तरिक उपयोग करते हैं—"पुटदग्धं हरिणस्यश्रृङ्गं घृतेन गव्येन निपीयमानम्। हृत्पार्श्वशूलार्तिमपोहति द्राङ्नृणां हिताहारविहारभाजाम्॥" (गदनिग्रह—शूलाधिकार)।

बाल

नाम—(हिं०) बाल (र); (अ०) शार (बहुव० अश्आर); (फा०) मू, मूय; (सं०) रोम, लोम, केश; (अं०) हेयर (Hair)।

वर्णन—बाल प्रसिद्ध वस्तु है। बालसे प्रायः आदमीके बाल अभिप्रेत होते हैं। रंगके विचारसे इसके निम्न भेद होते हैं—(१) साफ और हलके रंगके बालजो अत्युत्तम होते हैं; (२) भूरे रंगके बाल जो दूसरी

श्रेणोपर है तथा (३) काले और (४) लाल रंगके बालजो बड़े मोटे और भद्दे होते हैं। ऊन और बालमें परस्पर अन्तर होता है।

प्रकृति—सर्द एवं रूक्ष, मतांतरसे तीसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष है; और जले हुए प्राणीकी सर्दी एवं रूक्षता तीसरे दर्जेतक पहुँच जाती है परन्तु किसी प्रकार कष्टदायक नहीं है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बालोंको ज़लाकर व्रणोंपर छिड़कनेसे वे सूखते हैं। जिफ्तरूमीके साथ शिरोव्रणको और मुरदासंख एवं शहदके साथ नेत्रके शुष्क एवं आर्द्र कण्डूको और जैतूनके तेलके साथ आगसे जलेहुएको गुणकारक हैं। इसे सिरकेमें पीसकर लेपकरनेसे मस्से दूर होते हैं। इसको पीसकर बुरकनेसे गुदभ्रंश (कांच निकलने) को लाभकारी है। इसको योनिमें धारण (हुमूल) करनेसे योनिस्राव दूर होता है—योनिगत द्रव या स्राव सूख जाता है। टपकानेसे प्राप्त इसका पानी और तेल दाउस्सालब और बाल जमानेके लिए सिद्ध भेषज है। मनुष्यके बालोंकी धूनीसे गर्भपात हो जाता है। शरीफीमें लिखा है कि मनुष्यके सिरके बाल जलाकर गुलरोगनमें मिलाकर नस्य देनेसे उन्माद रोगका नाश होता है। अहितकर—खानेसे वमन लाता है। समस्त आंतरिक अवयवोंको हानिकर है।

बिच्छू

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda); **ऐरेक्निडा-वर्ग** (Class : Arachnida) : **स्कार्पिओनिडा-गण** (Order : Scorpionida)

नाम—(हिं०) बिच्छू; (अ०) अक़्रब; (फा०) कज़्दुम्; (सं०) वृश्चिक; (ले०) ब्यूथस प्रजाति (*Genus Buthus*) एवं पैलेम्नीयस प्रजाति (*Genus : Palamnaeus*); (अं०) स्कॉर्पिअन (Scorpion)।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध छोटा, डंकवाला जानवर है जो प्रायः गरम देशोंमें अँधेरे स्थानोंमें रहता है। इसके दंश (डंकमारने)से तीव्र (असह्य) वेदना होती है। आध इंचसे लेकर आठ इंच तक लम्बे होते हैं।

कल्प तथा योग—माजून अक़्रब, रोग़न अक़्रब। प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बिच्छूको अश्मरीघ्न वर्णन किया जाता है। इसको जलाकर उपयुक्त औषधियोंके साथ बस्तिवृक्काश्मरीको तोड़नेके लिए उपयोग किया जाता है। माजून अक़्रब इसका प्रसिद्ध योग है। बिच्छूका तेल बनाकर पक्षवध, अर्दित और संधिवातमें मालिश करते हैं और अर्शाङ्कुरोंको गिरानेके लिए लगाते हैं। कहते हैं कि यदि बिच्छूके काटे हुए स्थानपर बिच्छूको कुचलकर या उसका उदर विदारण करके बाँधे तो यह विषको शोषण कर लेता है। अहितकर—फुप्फुसको। निवारण—गेरू, तुख़्म करफ्स और प्याजका रस। प्रतिनिधि—वाजीकरणके लिए सांडेका तेल। मात्रा—बिच्छूकी राख १२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक।

बिल्ली

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **क्रव्यभुज-गण** (Order : Carnivora) : **फैमिली : फेलिडी** (Family : Felidae)

नाम—(हिं०) बिलार, बिल्ली; (अ०) स(सि)न्नौर; (फा०) गुर्बः; (सं०) बिडाल, बिडारक, मार्जार; (ले०) फेलिस डोमेस्टिका (*Felis domestica*); (अं०) कैट (Cat)।

वर्णन—केवल पंजोंके बल चलनेवाले पूरा तलवा जमीनपर न रखनेवाले मांसाहारी पशुओंमें से यह एक पशु है। जंगली और पालतू (अहली) भेदसे बिल्ली दो प्रकारकी होती है। जंगलीको बन बिलाव कहते हैं।

प्रकृति—पालतूका मांस दूसरे दर्जेमें गरम है। इसमें तरी (स्निग्धता) अभिभूत होती है। जंगलीका मांस दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष (पालतूकी अपेक्षया अधिक) है। बिल्लीका पोस्तीन भी गरम एवं रूक्ष है। इसकी विष्ठा बहुत गरम है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बिल्लीका मांस वृद्धों और स्निग्ध प्रकृतियों तथा संधिवात, वातरक्त एवं अन्त्रवृद्धि रोग (फत्क) में सात्म्य तथा पृष्ठशूल एवं अर्शमें लाभकारी है, और वृक्क एवं वस्तिको उष्ण करता है। सत्यान्वेषियोंके अनुसार पालतू बिल्लीका मांस जंगलीकी अपेक्षया खराब होता है, देरमें पचता है और शरीरको विकृत करता है। इसका ताजा मांस लगानेसे वातरक्तमें होनेवाली वेदना दूर होती है। इसका मांस बाँधनेसे शरीरमें रहा हुआ कांटा और वाण निकल जाता है तथा टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है। बिल्लीका मांस एक बर्तनमें भरकर कपड़मिट्टीकर जलाकर राख करें। इस राखको सिरकामें मिलाकर उँगलियोंके मध्यमें हुए घावपर लगानेसे घाव शीघ्र भर जाता है। जंगली बिल्लीका मांस सभी गुण-कर्मोंमें पालतूके मांससे बलवत्तर है। जंगली-बिल्लीके मांसको बहुत सा पानीमें उबालकर उसमें अवगाहन करने (बैठने) से कटिशूल और वातरक्त आराम होता है और यह लकड़बग्घा (कफतार) के काढ़ेके तुल्य है। मांस अन्त्रवृद्धिके रोगीको लाभकारी है। पालतू बिल्लीका भेजा खानेसे वृक्कको उष्णता प्राप्त होती है, वृक्कशूल मिटता और बूँद-बूँद मूत्र आना आराम होता है। जंगली बिल्लीके भेजेकी धूनी गर्भाशयमें देनेसे गर्भपात हो जाता है और इसे अर्शके अंकुरोंपर लगानेसे उनमें होनेवाली वेदना शमन होती है। ऋतुमती स्त्रीके पालतू बिल्लीका यकृत् बाँधनेसे होता हुआ आर्तवस्राव बन्द हो जाता है। पालतू बिल्लीका श्वास मनुष्यके कण्ठके भीतर पहुँचनेसे उसे कभी-कभी उरःक्षत रोग हो जाता है और उसका शरीर कृश होने लगता है। इसकी विष्ठा गुलरोगनमें मिलाकर ज्वरकी बारीके दिन लेप करनेसे बारी रुक जाती है। योनिमें इसके धारण करने और सुलगाकर धूआँ पहुँचानेसे अपरा (खेड़ी) निकल जाती है। इसकी हड्डीकी मज्जा विदुमूत्र और वृक्कशूलमें लाभकारी है। साहब खुलासाके कथनानुसार जंगली बिल्लीके सीनेकी हड्डीके लेपसे नासूरकी अधिकता रुक जाती है। पालतू बिल्लीका पित्ता विशेषकर काली बिल्लीका चमेलीके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अर्दित आराम होता है। प्रसवकालमें शिशुकी आँखमें बिल्लीका पित्त लगानेसे दृष्टि इतनी तीव्र हो जाती है कि उसे रात्रिमें भी दिखाई देने लगता है। पौने दो माशे बिल्लीका पित्त खानेसे अर्दित आराम होता है। अरस्तूके कथनानुसार बिल्लीके वृषण सुखा-पीसकर सूंघनेसे कुष्ठ आराम हो जाता है। जंगली बिल्लीकी खालका पोस्तीन पहिननेसे शरीरमें गर्मी आती है। यह लोमड़ीके पोस्तीनका स्थानापन्न है। मुजर्रबात अकबरीमें लिखा है कि बिल्लीकी पसली रगड़कर लेप करनेसे भगंदर दूर होता है। बिल्लीकी मस्ती (मद) सौदा एवं कफनाशक है तथा चक्षुष्य और उत्क्लेशकारक है। बिल्लीके काटे स्थानपर प्याज और पुदीनेका लेप लगानेसे उपकार होता है।

आयुर्वेदीय मत—बिल्लीकी बिष्ठा (ओतोर्विष्ठा), नीला मोथा सम भाग, सुहागा चौथाई भाग, मधुसे घोंट, तीन पुट देनेसे वान्ति, भ्रान्ति रहित तुत्थ शुद्ध होता है। (र० सा०)। त्रिफलाके रसमें बिल्लीकी हड्डी घिसकर लगानेसे भगंदर और नाडीव्रण दूर होता है। (च० द०—भगं० चि०)। काली बिल्लीके दाहिने पाँवकी हड्डी बाँहमें बाँध रति करनेसे वीर्यस्तंभ होता है (भै० र०)।

बिषखपरा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia) : **स्क्वामेटा-गण** (Order : Squamata) : **फैमिली : वैरेनिडी :** (Family : Varanidae)

नाम—(हिं०) बिषख(खो)परा(ड़ा, ड़ी), गु(गो)हेरा, गोहर; (सं०) गौधेर(य), गौधारः; (द०, माल०, राज०) गुहेरा; (ले०) वैरानुस् नेबुलोसुस् (*Varanus nebulosus*) वैरानुस् बेंगालेंसिस (*Varanus bengalensis* Dand.) (Lacerta Iguane Shaw.); (अं०) मोनिटर लिजर्ड (Monitor Lizard), इग्वाना (Iguana)।

वर्णन—हाथसवा हाथ लंबा गोहकी जातिका एक विषैला सरीसृप जंतु जो गोहके समान किंतु उससे पतला और छोटा होता है तथा पेंड़ों पर खूब चढ़ता है। इसके यह दो भेद हैं—(१) गुहेरा और (२) चन्दन

गुहेरा। चन्दन गुहेरा गुहेरासे छोटा और पतला होता है और इसकी पीठ पर लंबाई और चौड़ाईके रुख काले रंगकी धारियाँ होती हैं। गुहेरा बड़ा होता है और उस पर सफेद और काली दो प्रकारकी धारियाँ होती हैं। गोह और बिषखपराकी जीभ फटी हुई (द्विशाखिक, द्विजिह्व) होती है, परंतु बिषखपराके दंशसे दर्वीकर सर्पवत् विष चढ़ता है। यह बड़ा जहरीला जानवर है। यह इतना जहरीला होता है कि साँपका काटा तो बच जाता है किन्तु इसका काटा हुआ जीव तुरंत मर जाता है। परन्तु इसका उल्लेख यूनानी वैद्यकके ग्रंथोंमें नहीं मिलता। कहते हैं जिस प्रकार साँप तमाकूसे विवश हो जाता है उसी प्रकार बिषखपड़ा 'अंधाहुली' से। इसके विषमें सरफोंका (शरपुंखा) और गुड़ भी हितकारक हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुहेरेको पकड़कर उसका सिर, पूँछ, गुदा और हाथ-पैर काटकर शेष शरीरकी खाल उतारकर माँस पकाकर तीन दिन खानेसे परम वाजीकरण होता है, तथा नपुंसकत्व जाता रहता है। नमक मिर्च कम डालना चाहिये।

बीरबहूटी

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :
हीमेनोप्टेरा-गण (Order : Hymenoptera) : **फैमिली : म्युटिल्लिडी** (Family : Mutillidae)

नाम—(हिं०) बीरबहूटी, बूढ़, दऊका हाथी; (अ०) अरूसक, दूदुल्मितर; (फा०) किर्मे मख्मल, काग़नः; (सं०) इन्द्रवधू, इन्द्रगोप; (गु०) मखमली कीडा; (ले०) म्युटिला ऑक्सिडेन्टॉलिस (*Mutilla occidentalis*)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह किलनीकी जातिका रेंगनेवाला एक छोटा कीड़ा है जो सुर्ख किरमिजी रंगका, मखमलके समान नरम तथा मुलायम और सुन्दर होता है। यह वर्षारंभमें जमीनसे निकलता है। बाजारमें मिलनेवाला सूखा कीड़ा केसरिया रंगका हो जाता है। आकृतिमें यह लगभग आयताकार आध इंचसे कम लंबी होती है।

प्रकृति—तीसरे, मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क।

गुण-कर्म—वाजीकर, वातनाड़ीबलदायक तथा वात और कफके रोगोंको दूर करनेवाली है।

उपयोग—अधिकतया उपस्थ वा सहवासेच्छाको शक्तिदेने के लिए बीरबहूटीका पतला लेप करते हैं। संधिवात, पक्षाघात और उपस्थेन्द्रियके शैथिल्यमें वाजीकरणके लिये कोई-कोई इसका आंतरिक उपयोग भी करते हैं; और इसके तेलकी मालिश करते हैं। कोई-कोई हकीम मसूरिकाकी उस अवस्थामें जबकि वह प्रगट होकर अंदर चली गई हो, उसको बाहर निकालनेके लिए इसको खिलाते हैं।

अतिकर—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—रोगन और शहद। **प्रतिनिधि**—मालकँगनी।

मात्रा—½ से १ नग।

आयुर्वेदीय मत—आयुर्वेदमें इसका औषधीय उपयोग देखनेमें नहीं आता। उसमें रक्त और आर्तवके वर्णको इन्द्रगोपके वर्णकी उपमा दी गई है। बीरबहूटी (सुरगोप) को घीमें पीस योनिमें लगानेसे वह संकुचित या दृढ़ (गाढ़) हो जाती है (चक्रदत्त)।

बुलबुल

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **पास्सेरीफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes) : **फैमिली : पिक्नोनोटिडी** (Family : Pycnonotidae)

नाम—(हिं०) बुलबुल; (अ०) अन्दलीब, कुऐन, जमील; (फा०) बुलबुल, हज़ार, हजार आवा (ज़), हज़ारदास्तान, हज़ारआवाज़, मुर्गबुस्तान; (सं०) अङ्गारचूड़क (च०); (ले०) मोल्पैस्टीज काफेर (*Molpastes cafer*); (अं०) नाइटिंगेल (Nightingale); रेड-वेन्टेड बुलबुल (Red-vented Bulbul)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध गानेवाली छोटी चिड़िया जो कई प्रकारकी होती है और एशिया, यूरूप तथा अमेरिकामें पाई जाती है।

प्रकृति—दूसरे बल्कि तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस विशेषकर इसका भेजा और अंडा वाजीकर एवं कामोद्दीपक है। इसकी बीट अत्यंत लेखनीय एवं ग्राही भी है। इसकी बीटका लेप कपोलोंका रंग निखारता और झाईं दूर करता है। इसे लगानेसे पलकोंके अधिक बाल जिन्हें परवाल कहते हैं, नष्ट होते हैं। इसे योनिमें धारण (हुमूल) करनेसे गर्भ गिर जाता है। इसका ताजा गरम-गरम रक्त पीनेसे कस्बारियः और स्वर शुद्ध होता है। इसका मांस शीत प्रकृतियोंको लाभकारी और उष्ण या पित्तल प्रकृतियोंको हानिकर है।

भेड़ और भेड़ा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
अंगुलेटा-गण (Order : Ungulata) : **फैमिली : बोविडी** (Family : Bovidae)

नाम—(हिं०) भेड़ा, मेढ़ा (मादा = भेड़, भेड़ी); (अ०) भेड़ा = कब्श, ज़ाइन (बहुव० ज़ान, मादा = जाइन:); भेड़-नअ्ज:, साग़िय; (फा०) मेश (नर व मादा) : गोस्पं(स्फं)द; (सं०) मेढ, मेठ (ढः), मेष(क), भेड़(क), आविक, उरभ्र; (बं०) मेष, भेड़; (ले०) ओविस विग्नी (*Ovis vignei* Bath.); (अं०) शीप (Sheep), रैम (Ram) (मादा = यू Ewe)।

भेद—(१) ओविस एरीज (*Ovis aries* Linn.); (२) ओविस पोली (Ovis poli)।

वर्णन—एक श्रृङ्ग तथा स्तनधारी प्रसिद्ध चतुष्पाद प्राणी जो अन्य प्राणियोंकी अपेक्षया इतना मंद या कुण्ठितबुद्धि होता है कि अपने वध करनेवालेसे भी भय (वहशत) नहीं खाता और पास खड़ा रहता है। दुंबा इसकी एक दूसरी जातिका मेढ़ा ही है जिसका वर्णन यथास्थान किया गया है। भेड़ भूगोलके सभी भागोंमें पायी जाती है। यह एक ऐसा चौपाया है जिसका मांस खाया जाता (माकूलुल्लहम) है। एक या दो वर्ष या अधिकसे अधिक चार वर्ष तकके भेड़के बच्चे (मेमने-मेषशावक) का मांस सेवनीय होता है। इससे अधिक—वर्षीय भेड़का मांस असेवनीय है, क्योंकि वह गलीज व कसीफ होता है और दुष्ट दोष उत्पन्न करता है।

उपयुक्त अग—मांस, दूध (नवनीत, दधि, घी), मूत्र, गलग्रन्थि (गुदूद), वृषण वा अण्ड, ऊन (वि० दे० 'ऊन'), ऊनकी चर्बी और चर्बी (Sevum–Suet)।

प्रकृति—इसका मांस अन्य मांसोंकी अपेक्षया अनुष्णाशीत (मोतदिल) है। मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस शीघ्रपाकी; बल्य और बृंहण है तथा इससे प्रभूत राशिमें उत्तम रक्त बनता है और मानव शरीरको सात्म्य है। कहते हैं कि इसमें बकरीके मांससे पौष्टिकता अधिक है तथा गर्मी एवं तरावट भी इससे अधिक उत्पन्न होता है। शैखने इसके मांसको उत्तम बतलाया है। उनके कथनानुसार इसमें हलकी हरारत है। परन्तु गीलानीके कथनानुसार इसका मांस अनुत्तम, अल्पपौष्टिक एवं तर है। इसको खूब गलाकर और गरम मसालेके साथ खाना चहिये। यह अधिक राशिमें रक्त उत्पन्न करता है; इसलिये प्लेग एवं महामारीके प्रकोपकालमें इसका मांस सेवन वर्जित होना चाहिये। यह बकरीके मांससे अधिक गाढ़ा,

अधिकराशिमें मल उत्पन्न करनेवाला और चिरपाकी है। सुतरां जिस किसीकी यह इच्छा हो कि भेड़के मांसमें तरलता एवं लघुता आ जाय तो उसको इसे सिरकाके साथ पकाना चाहिये। इसे शीघ्रपाकी बनानेके लिये इसके साथ काँजी सम्मिलित कर लेना चाहिये और इसमें सर्दी लानेके लिये इसे (कशक-जौ) और सुमाकके साथ पकाना चाहिये। किसी अंगमें अभिघातज पीड़ा होनेपर भेड़को बधकर उसका गरम-गरम मांस उस स्थान पर बाँधते हैं और उसे ठंढा होनेपर दूसरा ताजा मांस बदल देते हैं। इससे पीड़ा शीघ्र शमन हो जाती है और वहाँ सूजन एवं घाव पैदा नहीं होता। उक्त लाभके लिये इसकी गरम-गरम खालमें उक्त अंगको लपेटना भी उपकारक है। सर्प और बिच्छूके दष्ट स्थान पर इसके मांसको जलाकर बनाई हुई राख लगानेसे उपकार होता है। पागल कुत्तेके काटने पर मांसकी राखको मद्यके साथ फाँकनेसे लाभ होता है। यह राख आँखमें लगानेसे जाला कट जाता। सिरकाके साथ इसे लेप करनेसे व्यंग (बहक) आराम होता है। नेत्रशूलके लिये यह उपाय परम गुणकारी है कि भेंड़का कीमा दोनों हाथोंकी मुट्ठियोंमें दृढ़तापूर्वक बंद कर लेवें यहाँ तक कि गरम हो जाय तो नेत्र और मस्तकपर लेप करें। सत्य यह है कि भेड़का मांस कम खाते हैं। इसके बदले बकरीका मांस अधिक पसंद करते हैं। भेड़का हृदय, यकृत् और वृक्क मनुष्यके उन-उन अंगोंको बल देता है। इसका भेजा निरंतर सेवन करनेसे बुद्धि कुण्ठित होती और विस्मृतिकी प्रबलता हो जाती है। इसका पित्ता गरम एवं रूक्ष है। इसके लगानेसे शरीरके दाग मिट जाते हैं। इसे अकेला या शहदके साथ नेत्रमें लगानेसे जाला कट जाता है। इसके लेपसे हर प्रकारका दाद मिटता है। तर एवं सूखी खुजलीपर इसका ताजा गरम-गरम रक्त लगानेसे लाभ होता है। इसे जले हुए अंगपर डालनेसे छाला नहीं उठता। इसकी मींगनी (लेंड़ी) अत्यंत गरम एवं रूक्ष है। इसके लेपसे सूजन उतरती है। जलोदरपर भी इसका लेप लाभकारी है तथा यह व्रणपूरक है। मोम और गुलरोगनको पिघलाकर उसमें मिलाकर लगानेसे अग्निदग्ध आराम होता है। भेड़की जली हुई हड्डी फाँकनेसे अतिसार एवं रक्तस्राव बंद होता है। दाउस्सालब पर इसकी जली हुई खुर लगानेसे लाभ होता है। **अहितकर**—मांस आध्मानकारक है। **निवारण**—गरम मसाला।

मेंढा—भेड़से मेढ़ाका मांस उत्तम होता है। इसका पित्ता नेत्रमें लगानेसे मोतियाबिंद आराम होता है। इसका मांस खूब गलाकर सदा मांसरस पीने से शरीर मोटा होता है और दिलकी धड़कन दूर होती है। प्लेग और महामारी कालमें इसका मांस अधिक नहीं खाना चाहिये, क्योंकि अधिक रक्त उत्पन्न करता है। बकरीके मांसकी अपेक्षया इसका मांस आध्मानकारक है। गरम मसाला उसका निवारण है।

आयुर्वेदीय मत—भेड़ (मेंढ़े)का मांस मधुर एवं शीतल होनेसे भारी, पित्तकफोत्पादक और शरीर पुष्टिकर (बृंहण) है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। भावप्रकाशके अनुसार बधिया किये हुए (अंडकोष निकाले हुए) मेढ़के मांस किंचित् लघु होता है।

चर्बी—(हिं०, बं०, म०, गु०, द०, को०) भेड़की चर्बी; (अ०) शह्मुल्ज़ान; (फा०) पियः मेश; (सं०) मेषवसा; (ले०) सेवुम् (Sevum); (अं०) सुएट (Suet—Mutton of goat or Sheep)।

वर्णन—यह भेड़के उदरस्थ वृक्कोंके आस-पासकी चर्बी है जो विशेष विधिसे प्राप्तकी जाती है। यह सफेद, चिकनी, ठोस, चिपचिपी, सूअरकी चर्बीसे कठोर, फीकी और गंधरहित होती है तथा कुछ दिन रखे रहनेसे बिगड़ जाती है। जलमें और ठंढे सुरासारमें अविलेय किंतु पेट्रोलियम् स्पिरिटमें सुविलेय होती है। इसमें स्टियरिन्, पाल्मिटिन्, और ओलीन आदि कतिपय अम्ल, रंजक द्रव्य तथा गंधमय तत्व होते हैं। यह मलहम, प्लास्टर, अभ्यंगीय तेलोंका एक उपादान है। भेड़के ऊनकी चर्बीका पाश्चात्य वैद्यकमें व्यवहार होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बध करनेके तुरंत बाद प्राप्तकी हुई गरम-गरम चर्बी निगलनेसे खाँसी, उरःशूल, श्वास और मूत्रदाह जाता रहता है। इन गुणोंके लिये इसकी चर्बीको पकाकर भी पी सकते हैं।

भेड़के गलेकी ग्रंथि (गुद्दद)

यह कण्ठमाला और गलगण्ड आदि नाशक है। मोहम्मद इब्न ज़करिया राजीने एक अतरीफलके योगका आविष्कार किया है जिसमें भेंड़के गलेकी ग्रन्थियां (गलग्रन्थियाँ—गुद्दद) पड़ती हैं और वह कण्ठमाला और गलगंड (अंजीरियों) रोगमें लाभकारी है। कण्ठमालामें निम्न गलग्रन्थिघटित योग भी लाभकारक है। योग—भेड़की गर्दनकी २० ग्रन्थियां लेकर सुखाकर लौंग १ तोला, जायफल ४ नग और जावित्री ५ माशा तथा सोंठ १ सेर के साथ कूट-पीसकर चूर्ण बनाकर सुरक्षित रखें। कण्ठमालाके रोगीको इसमेंसे १ तोला शरत्कालमें प्रातः खिला दिया करें। मीठे और बादी पदार्थोंसे परहेज करावें। यदि प्रकृति उष्ण (पित्तल) न हो तो २ तोला तक सेवन करावें। परंतु तीन-तीन दिनका नागा दे-देकर तीन-तीन दिन खिलाकर कुल चालीस दिनकी अवधि पूरी करें। इससे कण्ठमाला रोग जाता रहता है। (ख० अ०)।

भेड़का दूध—

(अ०) लबनुल्ज़ान; (फा०) शीर मेश, शीरगोस्फंद; (सं०) आविक क्षीर।

वर्णन—इसमें कूर्चिकांश (छेनेका भाग–जुब्नियत) अधिक है और यह गायके दूधकी अपेक्षया गाढा भी है तथा इसमें वसागंध भी होती है। श्रेष्ठतर दूध काली भेड़का है। गीलानीके मतसे भेड़का दूध हर एक जानवरके दूधसे खराब है। प्रकृति—गरम एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शरीरमें स्निग्धता (तरी) करता, मस्तिष्क-सुषुम्नाको शक्ति देता, वाजीकरण करता, चेहराका रंग प्रकृतिस्थ करता, मैथुनसे होनेवाली हानिका परिहार करता तथा फुफ्फुसान्त्र-व्रण, तथा विषौषधियोंसे होनेवाले रक्तष्ठीवन, पेचिश और दमा (रबू) इनको लाभ पहुँचाता है। रोगन बादाम और बबूलके गोंदके साथ खाँसीके लिये सिद्ध भेषज है। तर एवं सूखी खुजली और कुष्ठके लिये लाभकारी है।

आयुर्वेदीय मत—भेड़का दूध मधुर, स्निग्ध, वात-कफहर(-यो० र०), गुरु, केश्य, पित्त-कफवर्धक तथा केवल वातसे उत्पन्न रोगों और वातिककासमें हितकर है (सु० सू० अ० ४५; यो० र०)। भेड़का दही कफ, वात और अर्श इनका प्रकोप करता है तथा रस और विपाकमें मधुर होता और अत्यन्त अभिष्यन्दि तथा अपथ्यकर है। (सु० सू० अ० ४५)।

भेंड़ीका घी पचनमें हल्का, उष्णवीर्य तथा हिक्काश्वासकर है (च० सू० अ० २७)। (यह) पित्तका प्रकोप नहीं करता तथा कफ, वायु, योनि रोग, शोफ और कम्पमें हितकर होता है। (सु० सू० अ० ४५)

भेड़का मूत्र—तिक्त, कटु, कुछ क्षारधर्मी, उष्णवीर्य, स्निग्ध, पित्तमें अविरोधि तथा वातहर है (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५), रूक्षतानाशक, शोथघ्न तथा मलावरोध-निवारक है और कुष्ठ, अर्श एवं शुक्रप्रमेहमें लाभ पहुँचाता है।

दुंबा

नाम—(हिं०) दुंबा मेढ़ा, दुंबा; (अ०) इल्यः; (फा०) दुम्बः; (सं०) एड़क, दुम्बक, पृथुशृङ्ग, मेदःपुच्छ (क); (ले०) ओविस साइक्लोसेरोस (*Ovis cycloceros*); (अं०) (Kohi-dumba in Afghanistan)।

वर्णन—एक प्रकारका मेड़ा (ढ़ा) जिसकी पूँछ चक्की के पाटकी तरह गोल और भारी (चौड़ी पूँछ) होती है। फारसीमें दुँबः वस्तुतः 'चकती' को कहते हैं जिसको अरबीमें 'इल्यः' कहते हैं और वह एक प्रकारकी भेड़की—दुम है न कि चूतड़ जो चौड़ी होती है। परंतु अंशका प्रयोग अंशीके अर्थमें करके स्वयं उस प्राणीको भी दुंबः कहते हैं जो अरब देशकी भेड़ है। दुंबाकी यह दुम (पूँछ) जिसे 'दुंबाकी चकती' और अरबीमें 'इल्यः' कहते हैं, यूनानी वैद्यकमें औषधार्थ प्रयुक्त होती है। मेढ़ेकी इस जातिकी पूँछमें चर्बीका इतना अधिक संचय होता है कि वह चक्कीके पाटकी तरह फैलकर चौड़ी हो जाती है। ऐसा मेढ़ा दुँबा कहलाता है। इसीका वर्णन यहाँ हो रहा है।

प्रकृति—चकती गरम एवं तर (स्निग्ध) है। जो संघटनकारी तत्व माद्द समीनका है वही लगभग इसकी चकतीका है। किंतु दोनोंमें यह भेद है कि चकती समीनकी अपेक्षया अधिक गाढ़ी और खराब है। हाँ शहमसे अधिक पतली (लतीफ़) है और उससे अधिक उष्ण है। शहम और समीनमें यह अन्तर है कि जो चर्बी मांससे मिली हुई हो और अधिक सफेद न हो उसे समीन कहते हैं और जो मांससे पृथक् और अधिक सफेद हो उसे शहम कहते हैं। परंतु स्वभावतः तीनोंकी प्रकृति ग्रन्थोंसे सर्द सिद्ध होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चकती कठिन सूजनको उतारती और वातनाडियों एवं शरीरका मल (नरम) करती है। इसे निशास्ता (गोधूम सत्व) के साथ खानेसे वृक्कका परिष्कार होता है तथा अकरकरा, निसोथ और सोंठके साथ खानेसे गृध्रसीशूल जाता रहता है। चकतीको बारीक काटकर अवयवके ऊपर यहाँ तक बाँधे रखना कि शीतल हो जाय, शुष्क आक्षेप, अपतानक और कठिन शोथोंके पाक एवं विलयनके लिये परीक्षित है। कभी शीत प्रकृतियोंमें मृत्युका कारण होनेसे इसका अतिसेवन वर्जित है। वैद्योंके विधानानुसार दुंबेके मांससे बकरीका मांस, किंतु यूनानियोंके अनुसार दुंबेका मांस बकरीके मांस से श्रेष्ठतर है। मुफर्रेहुल् कुलूबमें लिखा है कि हकीमोंके कथनमें यह उल्लेख मिलता है कि बकरीका मांस भेड़ (गोस्फंद) के मांससे द्वितीय श्रेणीपर है तो यहाँ गोस्फंदसे अभिप्रेत दुंबा है जो विलायती गोस्फंद है, बकरीके मांससे दूसरी श्रेणीपर है। **अहितकर**—दीर्घपाकी है, व्यग्रता एवं मिचली उत्पन्न करता और पाचनको घटाता है। **निवारण**—गरम मसाला और पाचक एवं बल्य पदार्थ तथा सिरका एवं काँजी।

आयुर्वेदीय मत—एड़कका मांस वृष्य और मेढ़के समान गुणवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। भावप्रकाशमें हृदयको हितकर, श्रमको दूर करनेवाला, पित्त तथा कफकारक और किंचित वातरोगको नष्ट करनेवाला भी लिखा है।

भेड़िया

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Glass : Mammalia) :
क्रव्यभुज-गण (Order : Carnivora) : **फैमिली : कैनिडी** : (Family : Canidae)

नाम—(हिं०) भेड़िया, हुँडार, बीग; (अ०) ज़ेइब, ज़ीब, खातिफ़, अम्‌लस, सम्‌साम्, आसिल; (फ़ा०) गुर्ग; (सं) वृक (क्क), ईहामृग; (ले०) कैनिस ल्यूपुस (*Canis lupus*); (अं०) वूल्फ (Wolf)।

वर्णन—एक साहसी एवं भूरे रंगका प्रसिद्ध जंगली मांसाहारी जन्तु, जिसके दाँत ऐसे होते हैं, मानो खुछ एक कुछ एक के भीतर घुस जाते हैं। जब तक पागल न हो यह मनुष्यका मांस नहीं खाता। किंतु रक्तकी गंध पाकर उसे हर प्रकार मार और फाड़ डालना चाहता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। इसकी चर्बीमें उष्णतांश एवं लेखनीय गुण अधिक है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका कलेजा (यकृत्) मानव यकृत्के रोगोंमें परम गुणकारक है। यदि रोगीके ज्वर हो या यकृत्‌में गर्मी हो, तो ठंढे पानीके साथ वरन् मद्यके साथ इसका सेवन करायें। यही कारण है कि यह आसानासिया नामक माजून (हकीम जालीनूस द्वारा आविष्कृत) योगमें डाला जाता है; और प्रत्येक ऐसे योगको जिसमें भेड़ियेका यकृत् पड़ता है, आसानासिया कहते हैं। सिकंजबीनके साथ कामला रोगमें, पानी या सिरकाके साथ सज्वर जलोदरमें, शीतलज्वरों एवं ज्वर रहित जलोदरमें मद्यके साथ और अजमोदाके पानीके साथ प्लीहामें यह गुणदायक है। पुराने चौथियामें शहदके साथ इसका पित्ता देनेसे लाभ होता है। इसका पित्त शिश्नके ऊपर लगाकर मनुष्य यथेच्छ स्त्रीसंग कर सकता है। इसे योनिमें धारण (हुमूल) करनेसे गर्भ नहीं रहता। इसके पित्तेको चनोंके साथ पीसकर उसमेंसे चना प्रमाण खानेसे वाजीकरण होता है। आक्षेप, मृगी और शीतजन्य नाड्योद्वेष्टनमें इसके लेपसे लाभ होता है। भेड़ियेका पित्त एक जौके बराबर लेकर थोड़ेसे बिना पकाये शहदमें मिलाकर नेत्रमें

लगानेसे दृष्टिकी निर्बलता दूर होकर दृष्टिशक्ति बढ़ती है। (इब्नजहर)। किसी-किसीने तो यहाँ तक लिखा है कि केवल पित्ता नेत्रमें लगानेसे एक दिनमें धुंध, मोतियाबिंद और रतौंधी जाती रहती है। मसूरके साथ इसका पित्ता लगानेसे कलफ़, वनमश साफ होते हैं। अपतानक एवं वातनाड़ीमें क्षत होनेसे आक्षेप होनेमें भी इसके पित्तेके नस्यसे मस्तिष्क शोथ मिटता है और कठिन प्रसेक (नजलात) आराम होता है। चुकंदरके पानीके साथ इसे नेत्रमें डालनेसे नेत्रकी लाली जाती रहती है। सिकंजबीनके साथ यह अपस्मारनाशक है। इसकी चर्बी दाउस्सालब, दाउल्हय्यः और जीर्ण शोथमें लाभकारक है। इसका भेजा चार जौके बराबर ताजा दूधमें मिलाकर खानेसे मृगी जाती रहती है। उतना इसका पित्त और एक जौके बराबर कस्तूरी दोनोंको मिलाकर सूँघनेसे भी मृगी जाती रहती है। इसका रक्त बादामके तेल या अखरोटकी भींगीके साथ पकाकर कानमें टपकानेसे बहरापन और कर्णशूल दूर होता है। इसका वृषण सुखा-पीसकर गरम मधुजल (माउल्अस्ल)के साथ फांकनेसे यकृच्छूल आराम होता है, तथा इसे भूनकर खानेसे रतिशक्ति (कुव्वत बाह) बढ़ती है। इसके वृषणको चीरकर नमक और सातर मिला-पीसकर उसमेंसे ४।। माशा लेकर जिरजीरके पानीके साथ फांकनेके चूतड़ोंका दर्द जाता रहता है। मात्रा—वृषण ४.५ ग्राम (४।। माशा); पित्ता ०·५ ग्राम (४ रत्ती) और यकृत् ९ ग्राम (९ माशा) तक। इसकी पिंडलीकी हड्डी और शिश्न जलाकर लेप करनेसे अर्श नष्ट होता है। इसकी विष्ठा अत्यंत उष्ण एवं श्वयथुविलयन है। ४.५ ग्राम (४।। माशा) इसकी विष्ठा लेकर गरम पानी या मद्य या मधुजलके साथ और यथाविधि नमक एवं कालीमिर्चके साथ खानेसे शूल (कुलन्ज) तुरंत आराम होता है। इसकी खालपर सोने, बैठनेसे भी उक्त लाभ होता है। इसकी हड्डीका बुरादा प्रभावतः शूलमें लाभकारक है। भेड़ियेकी सफेद विष्ठा जो हड्डी चाबनेसे बना हो और विशेषकर वह हड्डी जो उसकी विष्ठामें निकले शूलरोगमें प्रभावतः लाभकारी है। अपितु इस हड्डीका बाँधना भी शूलहर है। जिस ओर दर्द हो उस ओर भी जांधमें बाँध देवें। इसके अन्त्रको सुखा-पीसकर फाँकनेसे भी उक्त लाभ होता है। इसकी विष्ठाकी धूनीसे चूहे भाग जाते हैं। इसकी आँख या दाँत या खालका टुकड़ा बांधनेसे शिशु नींदमें नहीं डरता। इसका रक्त और मूत्र आदि स्त्री पी लेवे या योनिमें रख लेवें तो फिर कभी गर्भ न रहे। (ख० अ०)।

आयुर्वेदीय मत—सिंह आदि गुहाशय वर्गीय प्राणियोंके मांसवत्। दे० "सिंह"।

भैंस व भैंसा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
अणुलेटा-गण (Order : Uugulata) : **फ़ैमिली : बोविडी** (Family : Bovidae)

नाम—(हिं०) भैंस (पुं० = भैंसा); (अ०) जामूश (स), (मादा = जामूसः); (फा०) गावमेश (भैंस), गावमेश नर (भैंसा), गामूस; (सं०) महिष (मादा = महिषी); (बं०) महिष; (लै०) बोस बुबेलुस (*Bos bubalus* Linn.); (अं०) बफ़ॅलो (Buffalo)। वक्तव्य–'जामूस' फारसी 'गामेश'से जो 'गावमेश' का संक्षिप्त रूप है अरबी बनाया गया है। जामूसका बहुवचन जवामीस है।

वर्णन—एक स्तनधारी प्रसिद्ध चौपाया जो दो प्रकारका होता है—(१) पालतू (अहली—The tame race) और (२) जंगली। जंगली बड़ा बलवान् होता। उसकी सींग भी बहुत मजबूत होती है। इसके नरको अरना भैंसा (जंगली भैंसा) तथा जंगली भैंसको अरनी भैंस कहते हैं।

उपयुक्त अंग—दूध (दधि, तक्र, घृत, नवनीत), मांस, मूत्र, बाल, सींग और खुर।

प्रकृति—मांस सर्द एवं रूक्ष, मतांतरसे गरम और रूक्ष; जंगलीका मांस अधिक गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस सान्द्र एवं चिरपाकी है, सौदावी दूषित दोष उत्पन्न करता और आमाशयके ऊपर गुरुत्व पैदा करता है। जो लोग परिश्रम एवं आयास करते हैं तथा जिनका वृक्क दुर्बल हो, उनके लिए लाभकारी है। भैंसके स्तनपायी शिशुका मांस जो दो-तीन माससे अधिक वयका न हो, सान्द्रत्व एवं

अवगुणमें कम है। इसके बालों और सींगका धूआँ सर्पको भगाता है। इसके खुरकी राख व्रण एवं तर खुजलीको सुखाती है। भैंसका मूत्र किंचिद् उष्ण, गुरु, पित्तकारक और शोफहर है; तथा बावगोला, अर्श, शरीरका पीलापन और शुक्रमेह इन रोगोंको नष्ट करता है और बढ़े हुए उदरको छोटा करता है। अहितकर–जिनका आमाशय दुर्बल हो अर्थात् मंदाग्निवालेको तथा जिनको परिश्रम करनेकी आदत न हो उन्हें हानिकर है और आमवात, वातरक्त एवं गृध्रसी इन रोगोंका जनक, आध्मानकारक और सान्द्रवायुकारक हैं। निवारण–पकते समय खरबूजेका छिलका और अंजीर डालना, खूब गलाकर पकाना, गरम मसाला मिलाना, सिरका और कांजीके साथ खाना।

आयुर्वेदीय मत—भैंस (महिष)का मांस मधुर (स्वादिष्ट), उष्णवीर्य, स्निग्ध, भारी, वृष्य, बृंहण, तृप्तिकारक, उत्साह, निद्रा, पुंस्त्व, बल और स्तन्य बढ़ानेवाला तथा मांस (शरीर)को दृढ़ करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। भावप्रकाशमें मूत्र तथा मलको निकालनेवाला और वातपित्त एवं रक्त विकारको दूर करनेवाला भी लिखा हैं। भैंसका मूत्र केवल दूध पीकर पीनेसे उदररोग नष्ट होते हैं (च० चि० अ० १३)।

भैंस का दूध

नाम—(अ०) लब्नुल्जामूस; (फा०) शीर गावमेश; (सं०) महिषी (माहिष) दुग्ध।

वर्णन—गायके दूधकी अपेक्षया अधिक गाढ़ा एवं चिकना है। इसमें गायके दूधसे अधिक स्नेहांश (दुह्नियत) और कूर्चिकांश (जुब्नियत) है।

प्रकृति एवं गुण-कर्म तथा उपयोग—मोतदिल किंतु सान्द्रत्व एवं द्रवत्व (तरावट) रखता है। यह कामोद्दीपक, बृंहण, विशेषतः चीनीके साथ प्रायः अंगोंको बलप्रद, मनः प्रसादकर और पुष्कल रक्त उत्पन्न करता है तथा इसकी परिणति प्रबल दोष एवं पित्तमें हो जाती है। इसमें कंघीकी लकड़ी पकाकर दही जमाकर मिश्रीके साथ खानेसे अर्शमें लाभ होता है। भैंसका ताजा धारोष्ण दूध एक सेरकी मात्रामें मिश्री मिलाकर तीन दिन तक या अधिकसे अधिक सात दिन तक पिलानेसे सूजाक आराम हो जाता है। किसीको इससे शीघ्र लाभ होता है। अहितकर–चिरपाकी एवं गरिष्ठ हैं। निवारण–चीनी। प्रतिनिधि–गायका दूध।

आयुर्वेदीय मत—भैंसका दूध विशेष अभिष्यन्दि, मधुर, जठराग्निको मन्द करनेवाला गायके दूधसे अधिक शीत और स्निग्ध तथा निद्रा लानेवाला है। जिसकी जठराग्नि प्रबल हो उसके लिए भैंसका दूध हितकर हैं (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५)। भैंसका दही विपाकमें मधुर, वृष्य; बलवर्धक, स्निग्ध तथा वात और पित्तका शमन करने वाला है (सु० सू० अ०४५)। भैंसका घी मधुर, रक्तपित्तनाशक, पचनेमें भारी, कफकारक, वात और पित्तशामक तथा शीतल है। (सु० सू० अ० ४५)। भैंसका मूत्र किंचित् क्षार, सर तथा अर्श, शोथ, उदर, शूल, कुष्ठ, आनाह, गुल्म, पाण्डुरोग और प्रमेहको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५)।

मकड़ी व मकड़ा

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **ऐरेक्निडा-वर्ग** (Class : Arachnida) :
ऐरेनीडा-गण (Order : Araneida)

नाम—(हिं०) मकड़ी, लूत; (अ०) अंकबूत (बहुव०-अंकबूतात, अनाकिब), क़दस; (फा०) कार्तन, कार्तनः, कार्तनक करहतन, शेरमगस; (सं०) मर्कटक, लूता, ऊर्णनाभ; (ले०) पैक्लोमेरुस टेनिजा (*Pachlomerus cteniza*), पैक्लोमेरुस लाइकोजा (*Pachlomerus lycosa*); (अं०) ट्रैप-डोर स्पाइडर (Trap-door spider), वूल्फ-स्पाइडर (Wolf-spider);

मकड़ीका जाला—(झाला) = (अ०) नस्जुल् अंकबूत; (अं०) स्पाइडर्स वेब (Spider's web)।

वर्णन—एक प्रकारका प्रसिद्ध कीड़ा जिसकी सैंकड़ों, हजारों जातियाँ होती है और जो प्रायः सारे संसारमें पाया जाता है। प्रत्येक मकड़ीके आठ टाँगें होती है। पंख नहीं होते। घरेलू मकड़ियाँ घातक नहीं हैं।

यह एक प्रकारका जाला बनाती है जिसे "मकड़ी का जाला या झाला" कहते हैं। मात्र मकड़ी शब्दसे वही अभिप्रेत होती है जो खाली जगहों और घरोंके कोनामें जाला बनाती है। मकड़ियोंकी कुछ जातियां विषैली और कुछ अत्यंत विषैली होती हैं। मकड़ीका वह जाला जो औषधमें काम आता है, निर्जन घरोंके कोनोंमें एक प्रकारकी सफेद या खाकी रंगकी अत्यंत लम्बे एवं छः पैर वाली मकड़ीके द्वारा बनाया हुआ मिलता है। यह जाला अत्यंत बारीक सफेद झिल्लीकी तरह होता है। खींचनेसे फैल जाता और शीघ्र नहीं टूटता है।

प्रकृति—सब प्रकारकी मकड़ियां सर्द एवं रूक्ष, मतांतर से गरम हैं।

मकड़ीका जाला—यह गरम और रूक्ष है। इसको क्षतके ऊपर चिपका देनेसे रक्तस्राव बन्द होता है (मेअत मसीही) और फोड़ेपर चिपका देनेसे उसको सुखाता है। मकड़ीका जाला किसी तेल या जैतूनके तेलमें हल करके कानमें टपकानेसे कर्णशूल मिटता है। जाला कनपुटीपर चिपकाने या बकरीकी खालमें लपेटकर गर्दनमें अथवा बाँहपर बाँधनेसे पर्याय-ज्वर अर्थात् तिजारी और चौथिया प्रभावतः दूर होता है। एक या आधा जाला गुड़में लपेटकर बिना सूचित किये ज्वर रोगीको खिला देवें, किंतु शीत या कँपकँपीके बाद देवें। इस प्रकार तीन दिन तक खिलानेसे कफज्वर एवं चौथिया जरूर छूट जाता है। अत्यंत उष्ण होनेके कारण इसे पित्त ज्वर वालेको नहीं देना चाहिये। इसके चूर्ण बनानेकी विधि यह है कि जालेको सावधानी पूर्वक उतारकर झाड़ कर धूलि-कण आदिसे शुद्धकर लेनेके उपरान्त धोकर धूपमें सुखाकर चूर्ण बनावें। इस प्रकार बनाया हुआ चूर्ण स्याह खाकस्तरी रंगका होता है। यह बेस्वाद एवं निर्गंध होता है। सुरासारमें किंचित् विलेय होता है। युवाको १ रत्ती और शिशुओंको आधी रत्ती देनेसे प्रायः मलेरियाकी दूसरी बारी नहीं आती। स्वाद रहित होनेसे इसके उपयोगमें विशेषकर शिशुओंमें बहुत सुविधा होती है। (ख० अ०)।

विषलक्षण और चिकित्सा—मकड़ीके काटनेसे यह लक्षण प्रगट होते हैं:—हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं। रोंगटे खड़े हो जाते, शिश्नमें उच्छ्राय होता और उदर आध्मानयुक्त (स्फीत) हो जाता है। एक प्रकारकी काली मकड़ी होती है जिसके काटनेसे ज्वर हो जाता है। एक अन्य प्रकारकी मकड़ी है जो मक्खीका आखेट करती है। इसके काटनेसे केवल खुजली होती है। मकड़ीके काट लेनेपर तिरियाक फ़ारूक़ खिलाये और शराबके साथ कलौंजी पिलायें; रसवत और गुलरोगन लगाये, अमचुर या मँडुआ या दारुहलदी पानीमें पीसकर लगायें तथा लाल चन्दन सिरकामें पीसकर पतला लेप करें। एक प्रकारकी मकड़ी जिसके होता है, पैर छोटे-छोटे और रंग काला होता है। इसके काटनेसे तप मोतबिका आने लगता है, खुजलीउत्पन्न हो जाती और वह स्थान काला पड़ जाता है। इसका विष गरम है। अन्य समस्त मकड़ियोंके विपरीत इसके काटे हुएका उपाय यह है—कई बार रक्तमोक्षण करें, काटे हुए स्थानका दूषित मांस खुरचकर पृथक कर देवें और व्रणकी चिकित्सा करें। बड़े-बड़े हाथ पैरकी कूदने वाली मकड़ीके काटनेसे उदरशूल एवं वमन होता तथा मल-मूत्र कठिनतासे होता है। यह घातक है। मकड़ी मल जानेसे फुंसियाँ उत्पन्न हो जायँ तो खट्टा आम, मुरदासंग और नीमके पेड़की छाल गुलाबके अर्कमें पीसकर लगायें। खजाइनुल् अदवियाके लेखकके अनुभवके अनुसार खोपरा और चिरौंजी बराबर-बराबर लेकर पानीमें बारीक पीसकर फुंसियों पर लेप कर देवें।

मक्खी

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :

डिप्टेरा-गण (Order : Diptera) : **फ़ैमिली : ऐन्थोमिडी** (Family : Anthomyidae (Muscidae)

नाम—(हिं०) मक्खी, माखी (छी); (अ०) ज़ुबाव; (फ़ा०) मगस; (सं०) मक्षिका; (ले०) मुस्का डोमेस्टिका (*Musca domestica*); (अं०) फ्लाई (Fly)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जो छोटा और बड़ा भेदसे दो प्रकारका होता है। बड़ेको फारसीमें ख़रमगस कहते हैं। मक्खियोंमें श्रेष्ठतर काली, फिर नीली और सबसे बुरी पीली होती है। शहदकी मक्खी इससे भिन्न, परन्तु इसीकी एक जाति है। दे० "शहद"।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और तर (स्निग्ध)। इसकी राख सर्द एवं रूक्ष होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वमन लाती और नेत्रके सूजनको दूर करती है। इसको मद्यके साथ पीना कष्टप्रसूतिके लिए परीक्षित है। भिड़के दष्ट स्थान पर मक्खीका सिर दूर करके जोरसे मलनेसे दर्द शमन होता है और विषको खींच लेता है। इसे मुर्गीके अंडेकी ज़र्दीमें खूब मिलाकर नेत्रके ऊपर लगानेसे वेदना शांत होती है तथा नेत्रगत अधिमांस जो अभी कड़ा न हुआ हो दूर हो जाता है। इसको दीर्घकाल तक मलनेसे दाउस्सालबका नाश होता है। सौ मक्खियोंको तिलके तेलमें डालकर चालीस दिन तक धूपमें रखें और बार-बार ताजा बदलते रहें। इसके बाद उस तेलको छानकर प्रयोगमें लेवें। यह तेल बाल जमानेके लिये सिद्ध औषधि है। इससे बाल काले भी होते हैं। मक्खीकी विष्ठा और कालीमिर्च पीसकर लगानेसे (बालखोरा) आराम होता है। मक्खीको गुड़में लपेटकर रोगीको बिना बतलाये ग्यारह दिन तक निरंतर खिलानेसे कामला रोग आराम होता है। मक्खीकी विष्ठा जो रस्सी अदिपर जमा होती है, पानीमें घोलकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। मक्खीको पीसकर किलासके स्थानपर लेपकर धूपमें बैठने और बार-बार ऐसा करनेसे आतरीलालकी तरह शरीरकी त्वचा उतर-उतरकर निकलने लगती है। कहते हैं कि इसी प्रकार मक्खीकी विष्ठा खिलाकर धूपमें उस स्थानको खुला रखनेसे जिसमें वहाँ छाला पड़ जाय तथा अपथ्य सेवनसे बचे रहनेसे किलास रोग जाता रहता है। पलकके पड़वालके बाल उखाड़कर उस स्थानपर बड़ी मक्खीका सिर काटकर मलनेसे पुनः पड़वाल नहीं निकलते। इसके लिए कुछ दिन तक यह प्रयोग करना चाहिए।

आयुर्वेदीय मत—मक्खी वामक है और उसकी विष्ठा छर्दिघ्न है। (च० चि० अ० ३०)।

मगर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia) :
मकर-गण (Order : Crocodilia)

नाम—(हिं०) मगर, मगरमच्छ; (अ०) तिम्साह; (फा०) नि(न)हंग; (सं०) मकर, ग्राह; (लें०) क्रोकोडीलुस पोरोसुस (*Crocodilus porosus* Schneid.); (अं०) क्रोकोडाइल (Crocodile)।

वर्णन—छिपकली या गोहकी तरहका एक हिंसक अंडज जलजंतु जो उनसे बहुत बड़ा एवं बहुत बलवान् होता है तथा नदीमें हाथी और सिंहको खींच ले जाता और मार डालता है। यह लगभग १८ फुट लम्बा होता है। घड़ियाल भी इसी जातिका एक बड़ा हिंसक जलजंतु है, जो खजूरके तनेके समान लगभग २० फुट लंबा (मगरसे लंबा) होता है। और उसके सिरपर एक उभार (नाक या तुंड) होता है जो देखनेमें ऐसा प्रतीत होता है, मानो डिबिया रखी हो। इसको संस्कृतमें घण्टिकः और लेटिनमें गैविएलिआ गैंजेटिकुस् (*Gavialia gangeticus*) कहते हैं। नाक, नाका और नाकू भी मगरकी जातिका ही एक हिंसक जलजंतु है। मगरसे इसमें अंतर यह होता है कि यह उतनी लम्बी नहीं होती पर चौड़ी अधिक होता है। मुँह भी इसका अधिक चपटा होता है और उसपर घड़ियालके समान घड़ा या थूथन (Snout) नहीं होता। मगरकी तरह पूँछमें काँटे स्पष्ट नहीं होते। यह जमीनपर मगरसे अधिक दूर तक जाकर जानवरोंको खींच ला सकती है। सरयू तथा उसमें मिलनेवाली और छोटी-छोटी नदियोंमें यह बहुत पाई जाती है। संस्कृतमें इसे 'नक्र' और अंग्रेजीमें ऐलिगेटर (Alligator) कहते हैं। आयुर्वेदीय 'कुंभीर' संभवतः घड़ियालका ही छोटा भेद है।

उपयुक्त अंग—मांस, चर्बी, कलेजी, रक्त, चमड़ा, दांत, पित्त, विष्ठा, इन्द्री (शिश्न)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस वाजीकर और कामोत्तेजक, सान्द्र (रदीउल्कैमूस) है। इसका मांसरस सेवन करनेसे दुर्बल मनुष्यको विरेक होने लगते हैं। किसी-किसीके मतसे इसका मांसरस दुबले-पतले लोगोंको मोटा-ताजा करता है तथा शूलमें लाभ पहुँचाता है। इसकी करेजी सुलगाकर उसका धूआं देनेसे उन्माद रोग नाश होता है, तथा इसके खाने और सूँघनेसे मृगीमें लाभ होता है। इसके काटे हुए स्थानपर इसकी चर्बी मलनेसे वेदना शांत होती है। गुलरोगनमें इसकी चर्बी पिघलाकर लगानेसे आधाशीशीका दर्द तथा कानमें टपकानेसे कानका दर्द और बहरापन दूर होता है। वृक्कशूल एवं कटिशूलमें इसकी चर्बीकी मालिश लाभकारी होती है। बहेड़ा और आमला अकेला-अकेला या एक साथ मगरके रक्तके साथ पीसकर लगानेसे बहक सफेदका रंग बदल कर स्वाभाविक वर्णको प्राप्त होता है। इसकी चर्बी जैतूनके तेलमें पिघलाकर नाभिके नीचे तथा शिश्न एवं वृषणोंपर मालिश करने और ३॥ माशा चर्बी सुदावके पानीके साथ खा लेनेसे खूब स्तम्भन होता है। इसकी चर्बी शरीरपर मलनेसे चौथियाका दौरा बंद हो जाता है तथा कीड़े-मकोड़ेका विष मिटता है। इसकी विष्ठा या पित्त नेत्रमें लगानेसे जाला कट जाता है और दृष्टि तीव्र होती है। पागल कुत्तेके काटे हुएको मगरके दांत खिलानेसे बड़ा लाभ होता है। इस रोगमें इसका विलक्षण प्रभाव देखनेमें आया है। यदि रोगीमें पागलपन, मनुष्य एवं पानीसे घृणा और पानीसे भय खाना प्रकृति लक्षण प्रगट हो गये हों, तो भी इसके उपयोगसे लाभ हो जाता है। मगरका दाँत थोड़ासा पानीमें घिसकर इस प्रकार पिलाते हैं कि जिस दिन कुत्तेने काटा हो उस दिनसे हिसाब लगाकर ताक (अयुग्म) दिनोंमें पिलाया करें। उदाहरणतः तेईसवें, सातवें, इक्कीसवें और सत्ताइसवें दिन; और मासमें तीसरे, सातवें और तेरहवें मास; तथा वर्षोंमें पहले, तीसरे और सातवें वर्ष, क्योंकि ऐसे ही दिनोंमें इसका विषप्रभाव प्रगट होता है ऐसा अनुभवकर्त्ताओंका मत है। इसलिए इसके सेवन की उक्त विधि निश्चित की गयी है।

आयुर्वेदीय मत—मगर आदि पादी (पाँववाले) जीवोंका मांस गुणोंमें शंख आदि कोशस्थ जीवोंके मांसके समान है। दे० 'शंख'। जिस वातरोगीकी मज्जा शुष्क हो गई हो उसे नाक (नक्र), मछली, कूर्म और सूईस (चुलूक)की चर्बी खाने और लगानेको देना चाहिये (च० चि० अ० २८)।

मच्छड़

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) : **डिप्टेरा-गण** (Order : Diptera) : **फैमिली : क्युलिडी** (Family : Culidae)

नाम—(हिं०) मच्छड़ (र); (अ०) बक़, बऊज़ (बहुव०-बऊज़ः), नामूस; (फा०) पिश्शः; (सं०) मशक; (अं०) मॅस्कीटो (Mosquito)।

डाँस—नैट (Gnat)

पिसनू—फ्ली (Flea)

वर्णन—एक प्रसिद्ध छोटा पतिंगा जो वर्षा तथा ग्रीष्ममें गरम देशोंमें और केवल ग्रीष्म ऋतुमें कुछ ठंढे देशोंमें पाया जाता है। मलेरिया ज्वर इसीके द्वारा फैलता है। अंजुमन आराम नासिरीके अनुसार मच्छर दो प्रकारका होता है—(१) एक पानीका, जो आवाज करता है और (२) दूसरा मिट्टीका, जो आवाज नहीं करता।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रकृच्छ्रमें मुण्डीके साथ इसे जीवित निगलनेसे उपकार होता है। सात मच्छरोंको बाकलाके दानेमें रखकर दौरासे पूर्व निगलनेसे चौथियाका दौरा बंद हो जाता है। मच्छरके काटनेसे जो

खुजली होती है, दष्ट स्थानपर तेल और नीबूका रस मिलाकर लगानेसे वह दूर हो जाती है। मलेरिया ज्वर इन मच्छरोंके काटनेसे उत्पन्न होता है।

मछली

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Vertebrata) : **मत्स्य-वर्ग** (Class : Pisces)

नाम—(हिं)० मछली, मच्छी, मछरिया, मच्छ, माँछ; (अ०) समक; हूत; (फा०) माही; (सं०) मत्स्य, मीन; (बं०) मच्छी, माछ; (म०, कों०) मस्ली; (ता०, मल०, क०) मीनु; (ले०) पिसेस *(Pisces)*; (अं०) फिश् (Fish) : (यू०) इक्थियो (Icthyo)।

तेल—(हिं०, द०) मछली (मच्छी)का तेल; (अ०) दोह्नुस्समक; (फा०) रोग़नेमाही; (सं०) मत्स्यतैल; (बं०) माछेर तैल; (म०, बम्ब०) मोसोलीच तेल; (ले०) ओलिउम् पिसिस *(Oleum piscis)*; (अं०) फिश् ऑइल (Fish oil)।

यकृत्का तेल—(हिं०) मछलीके जिगरका तेल; (अ०) दोह्न कविदेल्हूत; (फा०) रोग़न जिगरमाही; (सं०) मत्स्य यकृत्तैल; (अं०) फिश-लिवर ऑइल (Fish-liver oil)।

सरेश—(हिं०) मछलीका सरेश; (अ०) ग़र (रा) उ स्समक, ग़िर्रिउस्समक; (फा०) सिरेशम माही; (द०) मच्छीकी सिरीश; (बम्ब०) ऐसिन्ग्लास; (ले०) इक्थिओकोला *(Icthyocolla)*; (अं०) आइसिन्ग्लास (Isinglass)। **पत्थर**—(हिं०) मछलीके सिरका पत्थर; (अ०) हजरुस्समक, हजरुल्हूत; (फा०) संग सरमाही; (सं०) मत्स्यशिर प्रस्तर; (अं०) आटोलिथ्स (Otoliths)।

इतिहास—प्राचीन यूनानी, इसलामी और भारतीय वैद्योंने विभिन्न प्रकारकी मछलियोंका वर्णन किया है। मख़्जनुल् अद्वियामें समकके वर्णनमें और मुहीत आजममें माहीके वर्णनमें फुप्फुसप्रणालीकी शुद्धि एवं मार्दवके लिए और फुप्फुसव्रण (कर्हा क़सबुर्रिया), उरःक्षत, शुष्क कास और यकृद्दौर्बल्यके लिए इसका सेवन लाभकारी बतलाया है। सुतरां उत्तरकालीन युरोपीय एवं अमरीकीय चिकित्सा-विशारदोंने भी मत्स्य यकृत्तैलको इसी प्रकारके रोगोंमें लाभकारी माना है और उपयोग करते हैं। मत्स्यतैलका उपयोग प्रथमतः सन् १७८२ ई०में आमवातरोगमें किया गमा था।

वर्णन—यह सदा जलमें रहनेवाला एक प्रसिद्ध जीव है जिसकी छोटी-बड़ी असंख्य जातियाँ होती हैं, यथा—रोहू, झींगा (रोबियाँ), बाम (मारमाही), टेंगरा, आदि। इनमें रोहू उत्कृष्टतम[1] है। भारतवर्षके पश्चिमी समुद्रतटके कई स्थानोंमें विभिन्न जातिकी मछलियों (Squalus carcharias Linn.—White shark)के यकृतसे तेल निकाला जाता है जो कॉड मछलीके यकृत्से प्राप्त तेलकी अपेक्षया सस्ता पड़ता है और उसका प्रतिनिधि है। परन्तु बाजारमें मिलनेवाले मछलीके तेलका अधिकांश मछलीके यकृत्से परिस्रावणकी विधिसे नहीं, अपितु स्थूलतया मछलीके संपूर्ण भागसे प्राप्त किया गया होता है। अस्तु वह अनुपयोगी होता है और शीघ्र बिगड़ जाता है। सरेशममाही चर्बीके समान जमा हुआ सफेद, गंधरहित और बहुत हल्का द्रव है जो एक प्रकारकी मछलीके उदरसे निकाला जाता है अथवा एक प्रकारकी मछली (Acipensar husso Linn. or A. Stellatus)के साफ फुकनों (Swimming bladder or sound)के बारीक-बारीक तंतु काटकर सुखा लेते हैं। अधुना बाजारमें इसी प्रकारका मछलीका सरेश उपलब्ध होता है। यह ठंढे पानीमें एक भाग सरेश डालकर बनाया हुआ जलीय घोल ठंढा होनेपर एक उत्तम पारदर्शक कठोर जेली रूपमें परिणत हो जाता है। इसकी रचना शुक्लि (ऐल्ब्युमेन)के समान होती है।

---

[1] आयुर्वेदके मतसे भी रोहित मत्स्य (रोहू मछली) मत्स्योंमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है—रोहितो मत्स्यानाम्। (च० सू० अ० २५)। लावरोहितगोधैणाः स्वे स्वे वर्गे वराः परम्। (अ० हृ० सू० ६)। श्रेष्ठो मत्स्येपु रोहितः। (काश्य० खिलस्थान २४)।

इसमें शुद्ध सरेश, एक अविलेय झिल्ली ५%से ३०% और राख ०·५% होती है। यह जाङ्गम धातुओं विशेषकर अस्थिका एक उपादान है।

पत्थरचटा और सुनूल नामी मछलियों (Sciaenid group of fishes)के सिरसे निकाले हुए एक सफेद स्वादमें नमकीन लिये फीके तिकोने और चपटे पत्थरको संगसरमाही कहते हैं। बेर पत्थरके समान यह सिलिकेट् ऑफ लाइम या संभवतः कैल्सियम् कार्बोनेट और कै० फॉस्फेटका यौगिक है जो रंग और रूपाकृतिमें मानव कर्तनक दंत (Incisor teeth)के समान होता है। बाहरसे यह चमकीला, चिकना, भूरापन लिये सफेद रंगका, उभयोन्नतोदर, एक ओर चौड़ा और दूसरी ओर अधिककोणीय (Obtuse) होता है। गुण-कर्म तथा उपयोगमें यह संगे इसमके, जो सिलिकेट और सल्फेट ऑफ लाइमका यौगिक है, समान है।

उपयुक्त अंग—मांस, वसा वा तेल, पित्त, अण्डा, संगसरमाही, शल्क (सेहरा, चूईं)।

रासायनिक संगठन आदि—मछलीमें प्रोटीन अधिक, चर्बी कम और कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज अत्यल्प होते हैं। साधारणतया मछलियोंका पाचन, अधिक चर्बीवाली (स्थूल)को छोड़कर, मांसकी अपेक्षया शीघ्र होता है। मछलियोंके यकृत्में 'ए' और 'डी' जीवतिक्तियों (Vitamins A. & D.)का बड़ा भारी संचय होता है और यकृत्से जो तेल निकलता है उसमें ये द्रव्य आ जाते हैं। यह तेल हलका पीले रंगका होता है जिसमेंसे मछलीकी सी हलकी किन्तु दुर्गंधरहित गंध आती है। स्वाद रोग़नी होता है। सिरेशममाहीका संगठन ऐल्ब्युमेनके समान है। लसमें शुद्ध सरेश (Gelatin), एक अविलेय कला ५% से ३०% और राख ०·५% होती है। यह जांतव धातु विशेशतया अस्थिका एक उपादान है

कल्प—सुखटी (धूपमें सुखाई मछली), भृष्ट (भुनी हुई मछली), शोरबा वा रसा (Fish soup), मछलीके जिगरका तेल, सरेस प्रभृति।

मछली—

प्रकृति—शैखके मतसे पहले दर्जेमें सर्द और दूसरेमें तर (स्निग्ध), मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मछली अधिकतया आहारकी भाँति खाई जाती है। यह शीघ्रपाकी एवं पौष्टिक है। यह शरीरको पुष्टि एवं शक्ति प्रदान करती, मस्तिष्कको शक्ति देती, वाजीकरण करती और दुर्बल एवं कृश लोगोंके लिए श्रेष्ठ खाद्य है। यह राजयक्ष्मा (दिक) और उरः क्षत रोगमें लाभ पहुँचाती है। इसके लिए एक विशेष प्रकारकी मछलीके यकृत्से निकाला हुआ तेल रोग़न जिगरमाही (रोग़न कबिदेलहूत)[1] पिलाया जाता है। यह प्रधानतया वाजीकर और फुप्फुसप्रणाल-मार्दवकर है। अहितकर—आमाशय, वातनाड़ी और शीत प्रकृतिवालोंको। निवारण—बादामका तेल, सोंठ, गुलकंद और सिकंजबीन। प्रतिनिधि—एक दूसरेका। मात्रा—मछलीका तेल ६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशेसे १ तोला) तक।

सरेशम माही—दिल्लीके हकीम पहले दर्जेमें गरम व खुश्क मानते हैं। मतांतरसे, दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है।

प्रकृति—ल्हेसकारक, उपशोषण, लेखन और रक्तष्ठीवनको बंद करनेवाला विशेषकर उरःक्षतमें उपकारक है। उपयोग—ल्हेसकारक और उपशोषण होनेके कारण उरःक्षत और रक्तष्ठीवनमें यह प्रयुक्त होता है। यह अकेला

---

[1] कॉड (Cod), हैलीबट (Halibut) आदि मत्स्यके यकृतमें विशेषकर 'ए' और 'डी' जीवतिक्तियों (Vitamin A. D)का बड़ा भारी संचय होता है। अस्तु, इनके यकृत्से जो तेल निकलता है, उसमें ये द्रव्य आ जाते हैं। इसीलिए इन तेलोंका (Cod liver oil, Halibut liver oil) उपयोग उन अवस्थाओंमें करते हैं जब इन द्रव्योंकी शरीरके लिए आवश्यकता होती है।

उपयोग किया जाता और योगोंमें भी डाला जाता है। उक्त गुण-कर्मके साथ यह लेखन भी है। इसलिए कतिपय मलहरोंमें डाला जाता है। अपने व्रणलेखन, ल्हेसजनन और लेखन कर्मके कारण यह व्रणोंमें लाभ करता है। सद्यः व्रणोंमें इसका अवचूर्णन अत्यंत गुणदायक है। यह खूनको बंद करके घावको अच्छा कर देता है। इन्हीं गुण-कर्मके कारण कपोलोंका फटना, किलास और चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसे स्वतंत्र या योगतः प्रयुक्त करते हैं। राजयक्ष्मा और उरःक्षतकी प्रधान औषधि है। इसके प्रयोगसे कैलसियम् (सुधा)की कमी-जाती रहती है और पर्याप्त शक्ति आ जाती है। अहितकर—अवरोधजनक। निवारण—निशास्ता। प्रतिनिधि—सरेश। मात्रा- १ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

संगसरमाही। प्रकृति—गरम और खुश्क। गुण-कर्म—अश्मरीनाशन और व्रणरोपण। उपयोग—बस्ति एवं वृक्कगत अश्मरी छेदनके लिए इसका अधिकतया उपयोग किया जाता है। यह बालकोंके पसलीके रोग (डब्बा) तथा उनके अधिक प्यास (उतास)के रोगोंको दूर करता है। अहितकर—उष्ण (पित्त) प्रकृतिवालोंके लिए। निवारण—ताजा दूध। मात्रा—१ ग्राम (१ माशा)। प्रतिनिधि—बेरपत्थर। कल्प यथा योग–माजून संगसरमाही।

मछलीका अंडा (Fish eggs)—अत्यंन्त ओजोवर्द्धक, शामक, धातुनिर्माणकर्त्ता, लघु, कफवर्धक, मज्जा और बलधंक और मूत्रमार्गस्थस्रावोंमें लाभकारी है। (इ० मे० मे० भा० २/पृ० २१५)।

आयुर्वेदीय मत। मछलियोंके सामान्य गुण-धर्म—चरकके मतसे मछलियां भारी, गरम (उष्णवीर्य), मधुर (रस एवं पाकमें), बलकारक, बृंहण, वायुनाशक, स्निग्ध, वृष्य तथा अत्यंत दोषकर होती हैं—कफ और पित्तको अत्यंत बढ़ाती है (च० सू० अ० २७; काश्यप मांसगुणविशेषीयाध्याय २५)। मछली निद्राकारक और रक्तगुल्महर है। नित्य मछली सेवन करनेसे रुका हुआ आर्तवका दर्शन होता है। (आ० वि०)। ताजी मछलीका मांस तथा शफरी मछली घीमें भर्जितकर खानेसे बहुत रमणकी शक्ति प्राप्त होती है।

मज्जा (भेजा)

नाम—(हिं०) भेजा, गूदा; (अ०) मग़्ज़; (सं०) मज्जा, मेद; (अं०) मैरो (Marrow)।

वर्णन—(१) हड्डियोंके मध्य भागमें स्थित स्नेह(गूदा)को संस्कृतमें 'मज्जा', फारसीमें 'मग्ज उस्तख्वां', अरबीमें 'मुख्ख' और अंगरेजीमें 'बोन मैरो—Bone marrow' कहते हैं, जो बहुत कोमल और चिकना होता है। वह दो प्रकार की होती है—(१) लाल (Red Bone Marrow) और (२) पीली (Yellow Bone Marrow)। नलकास्थियोंके भीतर पीले रंगकी (मज्जा) तथा इतर अस्थियोंमें और नलकास्थियोंके छेड़के भागमें रक्त वर्णकी मज्जा (मेद) होती है। वि० दे० 'चरबी'।

(२) सिर (खोपड़ी)के भीतरका गूदा वा मग्ज—(हिं०) भेजा; (अ०) दिमाग (फा०) मग्ज़ेसर; (सं०) मस्तिष्क, मस्तुलुंग; (अं०) ब्रेन (Brain)।

(३) रीढ़के भीतर स्थित मज्जा—(अ०) नुखाअ; (फा०) हराम मग़्ज़, मग्ज हराम; (सं०) सुषुम्णागत मज्जा;।

वर्णन—यह एक प्रकारकी सफेद चिकनी और चेपदार मज्जा है, जो पृष्ठ और ग्रीवाके कशेरुकास्थियों तथा इन अस्थियोंके मध्य वातनाड़ियों एवं अंग प्रत्यंगोंके स्नेहार्थ स्थित होती है तथा प्रायः वातनाड़ियां उससे निकलती हैं। यह मज्जा अस्थि-मस्तिष्कगत मज्जाकी स्थानापन्न होती है। इसीके द्वारा (रूह नफ़्सानी) प्रतिक्षण मस्तिष्कसे वातसूत्रोंको प्राप्त होता रहता है (मख्जन)।

हड्डियोंके मध्य भागमें स्थित स्नेह—मज्जा

प्रकृति—उष्ण एवं स्निग्ध (तर)।

गुण-कर्म—मृदुताकारक, अंग शैथिल्यकारक, पोषणकर्ता और बृंहणीय हैं। इसके लगानेसे संधिगत सूजन एवं कड़ाई नरम पड़ती है तथा, वातनाड़ी, बंधनी, कण्डरा और पेशी आदिमें मृदुता उत्पन्न होती है। सेवनके लिए युवा, परिबृंहित एवं प्रकृतिस्थ प्राणीकी मज्जा श्रेष्ठ होती है, तथा प्रत्येक प्राणीकी मज्जा का प्रभाव उस प्राणीकी प्रकृतिके अनुसार होता है। अहितकर—विशेषकर इसका नमकके बिना सेवन करना आमाशयमें विकार उत्पन्न करता और मिचली उत्पन्न करता है। निवारण—शीत प्रकृतिके लिए नमक, सातर, दालचीनी और जीरा उष्ण और प्रकृतिके लिए अम्ल पदार्थ।

आयुर्वेदीय मत—मज्जा, बल-शुक्र-वीर्य-रस-कफ-मेद और मज्जाको बढ़ानेवाली, स्नेहन और विशेष करके अस्थियोंको बल देनेवाली है (च० सू० अ० १३)।

नव्यमत—दुर्बल बच्चोंके पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) और फक्करोग (रिकेट्स)में तथा रक्तगत श्वेताणुओंकी अतिवृद्धि (Leukaemia)में मज्जाके सेवनसे लाभ होता है।

विशेष विवरणके लिए 'चर्बी' शीर्षकमें भी देखें।

सिर (खोपड़ी)के भीतरका गूदा—

प्रकृति—बुकरातके मतानुसार प्रत्येक प्राणिका भेजा उसके शरीर एवं प्रकृतिके विचारानुसार सर्द एवं तर (तमीमीके मतसे गरम एवं तर) और इतर प्राणियोंके मुकाबिले भिन्न होता हैं। इनमें सर्वोत्तम मेजा पक्षीका होता है, विशेषकर उस पक्षीका जो पर्वतपर रहता हो। चौपायोंमें सर्वश्रेष्ठतर ऊँटका, उसके बाद गायका भेजा होता है। उत्तम यह है कि युवा प्राणिका भेजा सेवनार्थ ग्रहण किया जाय।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यद्यपि प्रत्येक प्राणिका भेजा गुण-धर्मके विचारसे भिन्न है तथा उस-उस प्राणिके वर्णन प्रसंगमें उसका विशद विवरण होगा, तथापि साधारणतया यह दीर्घपाकी है। परंतु जब पच जाता है तब मस्तिष्कको बल देता है। शरीरका परिबृंहण करता है तथा कफ और लजिज एवं सर्द खून और सान्द्र दोष उत्पन्न करता है। गीलानीके कथनानुसार इसके निरंतर सेवनसे विस्मृतिका रोग उत्पन्न हो जाता है। भृष्ट भेजा आमाशयसे देरमें नीचे उतरता है। किसी-किसीके मतसे इसमें विष निवारण (अगदीय)की शक्ति है। यह मस्तिष्क एवं कामशक्तिवर्धक, शुक्रजनन (वृष्य) और उदरमार्दवकर है तथा अन्त्र एवं वृक्ककी रूक्षताको दूर करता है। इसका लेप मस्तिष्ककी रूक्षता, सरसाम और शुकाकके लिए लाभकारी है। अहितकर—यह आमाशयको हानिप्रद, उत्क्लेशकारक और क्षुधाको कम करता है। निवारण—पुदीना, सातर, राई, दालचीनी, सिरका, मद्य, गरम मसाला।

सुषुम्णागत मज्जा (हराममग्ज)—

प्रकृति—गरम एवं तर, मस्तिष्कसे इसकी तरी कम और गर्मी अधिक है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पतले लेप (तिला)से कड़ाई दूर (नरम) होती है। इसका लेप व्रणोंके लिए आग्नेय (अक्काल) और उनमें मलोत्पादन करने तथा शीत एवं उष्णताजन्य ओष्ठ एवं समस्त अंग-प्रत्यंगोंके विदारके लिए अनुपम है। समस्त कर्मोंमें यह मस्तिष्कके निकट है। यह स्वादिष्ट नहीं है, तथा आमाशयसे देरमें नीचे उतरता है। अतएव इसका सेवन अनुपयुक्त है। निवारण—नमक और इसके ऊपर मीठी वस्तुका सेवन है। इनमें सर्वोत्तम अंजीरका सेवन तथा माउल्अस्लमें भिगोना है। (मख्जन)।

मांस

नाम—मांस (हिं०) गोस, मास; (अ०) लह्म; (फ़ा०) गोश्त; (सं०) मांस, आमिष, क्रव्य; (अं०) ऐनिमल् फ्लेश (Animal flesh), मीट (Meat)।

वर्णन—मांस शरीरका एक प्रसिद्ध धातु है।

कल्प तथा योग--भृष्टमांस, शुष्कमांस (क़दीद), मांसमंड (शोरबा व यखनी–Meat soup or juice), मांसार्क (माउल्लहम), अर्क माउल्लहम, अर्क माउल्लहम अंबरी, अर्क माउल्लहम मको कासनीवाला।

रासायनिक संगठन—मांसका मुख्य द्रव्य क्षतिपूर्ति और धातुवृद्धि करनेवाले प्रोजुजिन (Protein) हैं, जिनमें मायोसिन (Myosin), मांसशुक्लि (Muscle albumin) और शोणवर्तुलि (Haemoglobin) महत्त्वके हैं। ये सब उत्कृष्ट प्रकारके हैं। इसका अर्थ यह है कि इनसे शरीरके धातु निकृष्ट प्रकारके प्रोभूजिनोंकी अपेक्षया अधिक बनते हैं। इसके अतिरिक्त इनकी दूसरी विशेषता यह है कि ये सब सुपाच्य है। इनके अतिरिक्त मांसमें स्नेह (Fat) और अयस् (Iron), भास्वर (Phosphorus) इत्यादि शरीरोपकारक खनिजभी होते हैं। यकृतादि अंगोंमें जीवतिक्तियाँ (विटामिन्स) भी होती हैं। संगठनकी दृष्टिसे मांसमें केवल एकही दोष है और वह कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates) का अभाव। परन्तु इससे मांसके बृंहण गुणमें कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि प्रांगोदीयों (कार्बोहाइड्रेट्स)से शरीरके धातु नहीं बनते।

प्रकृति—समस्त मांस उष्ण हैं, किंतु मछलीका मांस शीत है। समस्त जंगली जानवरोंका मांस घरेलूकी अपेक्षया अधिक रूक्ष है, विशेषकर जंगली पक्षियोंका मांस हर प्रकारके मांससे रूक्षतामें बढ़ा हुआ है। गोमांस छेड़ीके मांसकी अपेक्षया अधिक रूक्ष है, और छेड़ीका भेड़के मांससे अधिक रूक्ष है और उसकी अपेक्षया पचता भी देरमें है। सूखा हुआ मांस साधारणतया गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—समस्त आहारोंमें मांस सर्वश्रेष्ठ आहार है। यह शीघ्र रक्तमें परिणत हो जाता है। परन्तु मांसोंमें भी अन्तर है। जैसा जानवर, वैसाही उसका मांस है। श्रेष्ठतर मांस उस प्राणिका है जो युवा, निरोग (स्वस्थ) और हृष्ट-पुष्ट हो। चारपायोंमें से बकरी और भेड़के उस बच्चेका मांस श्रेष्ठ है, जिसका वय छः माससे कम और एक वर्षसे अधिक न हो। उसके बाद गो और भैंसके एक वर्षीय शिशुका मांस और ऊँटमें युवा ऊँटका मांस श्रेष्ठ तथा बच्चेका निकृष्ट होता है। किंतु दुंबा भेड़का मांस अन्य समस्त मांसोंसे श्रेष्ठ एवं प्रशस्त है। दुंबेके मांसमें उष्णता कुछ ऐसी अधिक नहीं है। युवा बकरी, गोवत्स और एक वर्षीय छागीशिशु (हलवान्)का मांस अतिशीघ्र पच जाता है तथा उससे शरीरको बहुतही लघु (लतीफ) आहार प्राप्त होता है। छाग शिशुका मांस भेड़के बच्चेसे श्रेष्ठतर हैं; क्योंकि उससे मल कम बनता है। निकृष्ट दूधवाली माताके बच्चेकी अपेक्षया प्रशस्त दूधवाली माताका स्तनपान करनेवाले शिशुका मांस उत्तम है। पक्षियोंमें से लवे का मांस सर्वोत्तम बतलाया है। किंतु शिकारी लोग चहे का मांस उत्तम बतलाते हैं। मुरगीका मांस लवेके मांससे भी लघु (लतीफ) है। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि चकोर, तैहू (लवेसे किंचित छोटा एक प्रसिद्ध पहाड़ी पक्षी) और तीतर के मांसोंसे मुर्गीके मांसमें अधिक पौष्टिकता नहीं है। किसी-किसीके मतसे जंगली पक्षियोंमें तैहूका मांस अत्युत्तम है। उसके बाद तीतर, उसके बाद चकोर और उसके बाद लवेका मांस उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर है। किसी-किसीके मतसे जंगली पक्षियोंमें सर्वोत्तम मांस चकोरका है; फिर बटेरके फिर चकोर और तीतर और तैहू और कबूतरके बच्चे और फाख्ता (पेडुकी)का मांस उत्तरोत्तर उत्तम है। ये समस्त मांस उत्कृष्ट आहार या बृंहण (जय्यदुल्‌गिजा) हैं, निवारणकी अपेक्षा नहीं रखते। किंतु इतना अवश्य है कि विकृत प्रकृतिवाला निरंतर इसका सेवन न करें, विशेषकर वह मनुष्य जो बहुत आयास करता हो। उत्तम पाचन शक्तिवालेके लिए यह मांस प्रशस्त है। क्षीण पाचन शक्तिवालेको तो इसका चखना भी उचित नहीं। रोगीके लिए बकरीके एक वर्षीय शिशु या मुर्गीके चूजेसे बेहतर अन्य कोई मांस

नहीं है। जो लोग अधिक आयास करते हों और जिनकी प्रकृति बलिष्ट एवं उष्ण हो, वे भारी एवं बलकारक मांस जैसे—ऊँट, घोड़े, बारहसिंगे, नीलगाय और भैंसका मांस और जंगली चौपायोंमें से जो नव विवाहित हो, उसका मांस पुरातन विवाहितवाले की अपेक्षया प्रशस्ततर है। परंतु पालतूमें इसके विपरीत है।[1] सद्यः वध किये हुए पशुका मांस प्रशस्त एवं अत्यंत बलकारक होता है और बीती हुई रातका मांस निकृष्ट है। जंगलमें चरने और स्वच्छंद फिरनेवालेका मांस पालतू और बँधे रहनेवालेकी अपेक्षया उत्तम होता है। जंगली चौपायोंमें से हिरनका, और पालतुओंमें से बकरीका मांस श्रेष्ठतर होता है। परंतु कतिपय यूनानी चिकित्सक बकरीकी अपेक्षया दुंबेका मांस प्रशस्ततर मानते हैं। मांस सेवनके लिए उत्तम ऋतु वसंत और ग्रीष्मारम्भ है।

श्लेष्मप्रकृतिवाले, जलोदरी और वातग्रस्तके लिए वन्य पशुका मांस परमोत्तम है। मांस जितना अधिक चिकना होता है, उतना ही कोष्ठमार्दवकर होता है। भुना हुआ मांस खानेसे शुष्क एवं कठोर मांस उत्पन्न होता है, तथा ग्राही है। यही दशा कबाबका है। भुना हुआ मांस पेटसे देरमें उत्सर्गित होता है और विशेषकर दुबला एवं भुना हुआ अधिक आनाहकारक है। यरवनी बनाकर खानेसे नरम और ढीला मांस उत्पन्न होता है। जंगली पक्षियोंका मांस ग्राही है। भुना हुआ या शोरबेका और उस दशामें बहुत ग्राही हो जाता है, जबकि उबलकर और शोरबा पृथक् करनेके बाद पुनः उसको खायें। जितना हृष्ट-पुष्ट प्राणिका शोरबा होगा वह उतनाही अधिक कोष्ठमृदुकर होगा। तात्पर्य यह है कि मांसकी बोटी ग्राही और शोरबा सारक (मुलय्यन) है। शोरबा शीघ्र पचभी जाता है। मस्तिष्क बलवर्धनके लिए कभी-कभी यूनानी चिकित्सक मांसको भुनवा या पकवाकर सेवन करनेका आदेश करते हैं। इन चीजोंको मांसके साथ नहीं खाना चाहिए—अंडा और दूध, क्योंकि इनका एक साथ खाना अहितकारक है। इसके बाद पानीभी नहीं पीवें क्योंकि इससे पाचन बिगता है।

बिना नमकके सुखाया हुआ मांस निकृष्ट है, क्योंकि इससे दुष्ट दोष बनता है। खून कम बनता है। नमक लगाकर सुखाया हुआ मांस अत्यंत उष्ण है और बहुत रूक्षता उत्पन्न करता है। इसे शोरबेदार पकाकर खानेसे उतनी हानि नहीं करता, जितना भूनकर खानेसे करता है। निकृष्ट एवं वर्ज्य मांस—सुखाया हुआ मांसतो निकृष्ट है ही, प्रत्येक ताजा भारी मांसभी, जैसे—गाय, ऊँट और भैंसका, आमाशयको हानि पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त वृद्ध एवं बड़े पक्षी, मृत पशु, हिंसक पशुका वध किया हुआ, विषैले जंतुका काटा घायल हुआ, डूबे हुए, गलाघोटकर मारेहुये पशु पानीके बड़ी गर्दनवाले पशु, दूबले एवं हिंसक पशुका मांस भी रोगकारक एवं त्याज्य है।

आयुर्वेदमें वर्ज्यमांस और उसके हेतु—इस (मांस वर्ग)में सूखा, सड़ा-गला (दुर्गन्धित) मांस व्याधि पीड़ित, विषदिग्ध, सर्पविद्ध, अतिविद्ध, दुर्बल, अल्पवयी और असात्म्य आहार-विहार करनेवालोंका मांस अभक्ष्य होता है, क्योंकि वीर्य निकल जानेसे, विकृत होनेसे, नष्ट होनेसे, अपरिपक्व होनेसे, अल्प होनेसे (और) पूर्ण होनेसे (मांस) दोषकर होता है। (अतः) इनसे दूसरोंका मांस ग्रहण योग्य होता है। (सु० सू० अ० ४६/१२६)। भावप्रकशमें लिखा है—

---

[1] आयुर्वेदशास्त्रोक्त सभी निषेधोंका विचार करनेपर मांससेवन विधिकी दृष्टिसे तात्पर्य यह निकलता है कि मांसके लिए प्राणि स्वस्थ और जवान हो, उसकी हत्याकी जाय, हत्या करनेपर जबतक उसके मांसका सुगंध रहे तबतक अर्थात् तुरंत उसका सेवन किया जाय। अष्टांङ्ग संग्रहमें यह विधि बहुत सुन्दरतासे वर्णित है—सद्योहतं वयस्थं च शुद्धं सुरभि शस्यते। (सूत्र ७)। भावप्रकाश में लिखा है :—

सद्योहतस्य मांसं स्याद्व्याधिघाति यथाऽमृतम्।
वयस्यं बृंहणं सात्म्यमन्यथा तद् विवर्जयेत्॥
(भा० प्र०)।

स्वयं मृतस्य चाबल्यमतीसारकरं गुरु ।
वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं लघु ॥
सर्पदष्टस्य मांसञ्च शुष्कमांसं त्रिदोषकृत् ।
त्रिदोषकृद् व्यालदष्टं शुष्कं शूलकरं परम् ॥
विषाम्बुरुङ्मृतस्यैतन्मृत्युदोषरुजाकरम् ।
क्लिन्नमुत्क्लेशजनकं कृशं वातप्रकोपणम् ॥
तोयपूर्णं शिराजालं मृतमप्सु त्रिदोषकृत् ।
(भा० प्र०) ।

अहितकर—रातमें मांस खानेसे अजीर्ण उत्पन्न होनेका भय रहता है। दिनमें दोबारा भी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिपर भार पड़ता है। निरंतर सेवन करनेसे पाषाणहृदयता उत्पन्न होती है एवं आचारभ्रष्ट होता है। दृष्टिमांद्य और विवेकहीनता होती है। किन्तु देर-देरमें खाना भी शरीरको दुर्वल, बलको क्षीण और ओजको विकृत करता है। निवारण—सर्द एवं तर मांसका निवारण नमक, प्याज, कालीमिर्च, सोंठ, जीरा, दालचीनी, लौंग और पुदीना आदि है। गरम और रूक्ष मांसका निवारण सिरका, खट्टे अंगूरका रस और घी से होती है। इसलिए ककड़ी, खीरा, तुरई, मीठा कद्दू और पालकका सागभी डालते हैं। गरम व तर मांसका निवारण धनिया और सुमाकसे होती है। गुरु (गलीज) मांसोंका निवारण उनको खूब गलाने और गरम मसाला डालनेसे होती है। खरबूजेका छिलका, अंजीर, कचरी और कच्चा पपीता (एरंड खरबूजा) पकते समय डालनेसे हर प्रकारका मांस गल जाता है।

आयुर्वेदीय मत। मांसके सामान्य गुण-धर्म—विविध प्राणियोंके मांसके गुणोंमें चरादि दशविध-कारणोंसे अवश्य अन्तर आ जाता है। तिसपरभी उसके अपने कुछ सामान्य गुण होते हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भटमें उनका संक्षिप्त उल्लेख किया है। काश्यपसंहितामें मांसके सामान्यगुण बहुत विस्तारके साथ वर्णन किये हैं :—जैसे—मांस वृष्य, बल्य तथा प्राणोंकी शक्तिको बढ़ानेवाला है। यह पुष्टिकारक है तथा वृद्ध एवं कृश व्यक्तियोंके मांसको बढ़ाता है। क्षयके रोगी तथा क्षीण देहवाले व्यक्तियोंके लिए मांस ही श्रेष्ठ द्रव्य है। उनके आरोग्य तथा वीर्यकी वृद्धिके लिए मांसके समान और कोई पदार्थ नहीं है। जिन व्यक्तियोंका शुक्र क्षीण हो गया हो उनमें मांससे वीर्यकी वृद्धि होती है तथा बन्ध्या स्त्रियोंमें एवं बालकोंमें भी यह शुक्र धातुकी वृद्धि करता है। मांस गर्भाधान (गर्भस्थिति) करानेवाला है तथा अन्तमें गर्भकी पुष्टि करता है। गर्भिणी स्त्रियोंमें मांसका सेवन करनेसे वायुकी शान्ति होती है आदि आदि। (काश्य० सं० खि० अ० २४)।

मांससे मांसकी वृद्धि होती है। इसलिए जब मांसका क्षय हुआ हो तब मांस देना चाहिए (च० शा० अ० ६)। शरीरको पुष्ट (बृंहण) करनेके लिए मांस स्वभावसे वृष्य, स्नेहन और बलवर्धन है (सु०सू० ४६)। मांससे बढ़कर अन्य आहार नहीं है। (च० सू० अ० २७; अ० हृ० सू० ६)। ज्वरवालेको मांसरस देना चाहिए, क्योंकि वह उत्तम बलकारक है और शरीरबल रोगके बलको दूर करनेमें समर्थ है (च० चि० ३)। राजयक्ष्मावाले-को मांस खानेवाले प्राणियोंका मांस खिलाना चाहिए, क्योंकि उनका मांस, मांससे पुष्ट हुआ होता है। अतः वह अधिक बृंहण होता है। (च० चि० अ० ८)। सभी प्राणियोंके शरीरमें यकृत्का मांस प्रधानतम (अति उत्तम) होता है, अतः वह देना चाहिए। यदि यकृत्का मांस पर्याप्त प्रमाणमें न मिले तो मध्यम वयके और निरोग प्राणिके अन्य अवयवोंका ताजा मांस देना चाहिए (सु० सू० अ० ४६)।

मांसयोनि प्राणियोंके वर्ग, भिन्न-भिन्न प्राणियोंके मांसके गुण, शरीरावयव और स्त्री-पुरुष जाति भेदसे मांसके गुण आदि अन्य ज्ञातव्य विषय चरक सूत्र स्थान अ० २७ तथा सुश्रुत सू० अ० ४६ तथा काश्य० सं० मांसगुण विशेषीयादध्याय २४ में देखें।

मुरगा व मुरगी

पक्षी-वर्ग (Class : Aves) : **गैलिनी-गण** (Order : Gallinae) : **(फैमिली : फैसिएनिडी)**

नाम—(हिं०) मुरगा (मुर्ग़), कुकड़ा (मादा गुरगी, कुकड़ी); (अ०) दीक (बहुव०-देवक), (मादा) दुजाज, दुजाजः; (फा०) ख़ुरोस (–च, –ह), मुर्ग़ ख़ानगी (मादा—माकियाँ); (सं०) कुक्कुटः (कः), (मादा)—कुक्कुटी; (पं०) कुकड़; (अफ०) बाँगी; (लै०) गैलुस पग्नेक्स या गै० पुसिल्लुस (*Gallus pugnex* Linn. or *G. pusillus* Linn.); (अं०) इंडियन डोमेस्टिकेटेड गेम या कॉक (Indian domesticated game or cock)। ये नाम पालतू वा घरेलू भारती मुरगा के हैं। विदेशी घरेलू मुरगेको लेटिन और अंगरेजीमें क्रमशः गैलुस डोमेस्टिकुस (*Gallus domesticus*) तथा दी डोमेस्टिक फाउल या कॉक और हेन (The domestic fowl or cock and hen) कहते हैं।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी। इसके यह दो भेद होते हैं—(१) पालतू या घरेलू या ग्राम्य (ख़ानगी) जिसके नाम ऊपर दिये गये हैं और (२) जंगली (बर्री या वन्य) जिसके नाम यह हैं—(हिं०) कुक्रुटी, बनमुर्ग़ी; (सं०) वन (अरण्य) कुक्कुटः, कुक्कुमः; (लै०) गैलुस बैनकिवा (*Gallus bankiva* Zemm.), फेसिएनुस गैलुस (*Phasianus gallus*); (अं०) ए वाइल्ड कॉक (A wild cock) बर्मीज जंगिल फोल (Burmese Jungle Fowl), या कामन रेड जंगिल फोल (Common Red jungle fowl)। मुरगीके बच्चेको फारसीमें चूज़ा कहते हैं। पालतू मुरगाके यह चार भेद हैं—(१) टेनी, (२) घागस, (३) करनाटक और (४) असील। इनमें 'करनाटक' वह है जिसका मांस, त्वचा, हड्डी, जीभ, नेत्र और रक्त सभी काला होता है। इसको 'मुर्ग हबशी' और 'कड़कनाथ' कहते हैं। असील इसके युद्धप्रिय युद्धोपयोगी भेदको कहते हैं। उपयोगके लिए वह मुरगा उत्तम है जिसका सिर पिलाई लिये लाल, मुख गुलाबके फूलके समान लाल (गुलाबी) हो, काँटे तेज हों और कटि मोटे-मोटे हों। मुरगाबी भी मुरगेका ही एक भेद है जिसे 'जल मुरगा' कहते हैं। दे० "मुरगाबी"।

उपयुक्त अंग—अंडा (दे० अंडा), मांस पित्त, हड्डी।

मुरगा और मुरगी—

प्रकृति—जवान मुर्ग़ीका मांस पहले दर्जेके अंतमें गरम है तथा तरी (रतूबत) समताके रखता है। नर (मुरगा)के मांसमें मुरगीके मांसकी अपेक्षया कम गर्मी है तथा इसमें रूक्षता बढ़ी हुयी है। मादा चूजा में तरी और मलभूत द्रव बढ़ी हुयी एवं प्रबल है। नर चूजे का मांस तरी (रतूवत) लिये हुए अनुष्णाशीत है। जंगली मुरगा और मुरगी का मांस पालतू से अधिक गरम एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खूब न गलाये हुए मांसके विपरीत इसका गला हुआ मांस (कसीरुल्‌गिजाऽ), (लतीफ), शुद्ध रक्तोत्पादक, बुद्धि-शुक्रवर्धक, मृदुसारक, सौदा विरेचनीय और हृदय-मस्तिष्कबलदायक है तथा शरीरको तैयार करता, शरीरके वर्णको कांति प्रदान करता; स्वरका परिष्कार करता एवं पक्षवध और अर्दित आदिमें लाभकारी है। चूजेका मांसरस (शूरबा) क्षीणकाय पुरुषों, रोगियों और पित्तज्वर रोगियोंके लिए गुणकारक है तथा मलोंका निर्हरण करता है। इससे खुलकर मल निर्हरण होता है। यह प्रसिद्ध है कि चूज़ेका मांस मलनिर्हरणकर्त्ता (दस्तावर) है तथा जवान मुर्गका मांस संग्राही (काबिज) है। परन्तु बूढ़े मुर्गको खूब दौड़ा और थकाकर बध करके उसके पेटमें अन्त्र और मल आदिको निकालकर नमक बसफाइज और सोया भरकर बहुतसा पानी डालकर इतना पकायें कि गलकर यथावश्यक रह जाय। उसे रात्रिभर उसी प्रकार रहने देवें और प्रातः वह बासी शूरबा पीलेवें तो गाढ़ा कैमूस मलद्वारा निःसरित हो ज़ाय, पुराना आवेगी ज्वर बंद हो जाय तथा यह कम्पवायु, श्वास, आमवात और शूल (कुलंज) के लिए भी उपकारक है। मुर्ग़का मांसरस शुष्क कासको नष्ट करता है। एक सप्ताह तक खूब घी डाला हुआ इसका मांस गेहूँकी रोटीके साथ सेवन करनेसे कपालोंकी उस पीतिमा

के लिए लाभकारी है जिसका कारण अज्ञात हो। इसके कबाबोंसे मिट्टी खानेकी इच्छा जाती रहती है। यह कबाव तर आमाशयकके भी अनुकूल है। इसका पित्त शिश्न पर लगाकर (तिला) स्त्रीसंग करनेसे खूब आनन्द आता है। इब्न जहरके कथनानुसार अत्यंत काले मुर्गेका पित्त शहदमें मिलाकर राँगेके बर्तनमें रखकर आँखके बाहर लगानेसे नेत्रगत वेदना शांत होती है। वह सफेद बूढ़ा मुर्गा जिसका ताज अनेक शाखाओंसे युक्त हो, उसका पित्त लेकर अपस्मारीको नस्य करानेसे पुरानीसे पुरानी मृगी जाती रहती है। इसकी चर्बी शोथ एवं सौदावी दोषोंको विलीन करती है। १४ माशे मात्रामें मुरगेकी चर्बी खानेसे वाजीकरण होता है। मुर्गेका पेट विदारित करके और अन्त्र आदिसे शुद्ध करके सर्पदष्ट स्थानपर बांधनेसे वह विषको शोषित करता है। इसी प्रकार सन्निपात भेद (सरसाम) और कफोल्वण सन्निपात (लीसुर्गुस) रोगीके सिरपर रखनेसें भी उपकार होता है। काले मुर्गेकी हड्डी और अंगूरकी लकड़ी जलाकर दोनोंके समभाग कोयले लेकर और मोम मिलाकर स्त्रीकी योनिमें स्थापन (हुमूल) करनेसे पुनः कौमार्य लौट आता है।

आकिलः पर इसका काँटा ओर रक्त लगानेसे लाभ होता है। इसकी पथरी निकली हुई संगदानेकी खाल सुखा पीसकर मद्यके साथ सेवन करनेसे सहवासेच्छा बढ़ती है। इसके संगदानामें सफेद पथरी निकलतो है। यदि स्त्री आर्तवस्रावकाल ऋतुस्नानसे पूर्व तीन दिन तक मुर्गेके (खुसिये) लेकर खाय और फिर पतिसमागम करे तो गर्भ धारण हो जाय। मुर्गेके खुसिये कागजमें राखकर अपनी उलट बाँह भर बांधनेसे स्त्रीसंगकी प्रबल इच्छा होती है और उसे खोल डालनेसे वह जाती रहती है। मुर्गीकी तुख्मदान पनीरमायाकी भांति दूधको जमा देती है। इसके लिए दूधको गरम करके उसमेंसे जरा-सा रगड़ देवें। अहितकर—दूध, पनीर, दही और समस्त दूध की वस्तुओं (दुग्धविकारों)के साथ खानेसे शूल (कुलंजन) उत्पन्न करता है। निरन्तर सेवनसे वातरक्त और अर्श उत्पन्न करता है। नरका मांस अपने प्रभावसे कामावसादकारक है। वैद्योंके मतसे मादाका मांस उदर कृमिकारक है। निवारण—गरम मसाला और मद्य तथा उष्ण प्रकृतियोंके लिए सिकंजबीन। वैद्योंके मतसे वंशलोचन, गुरुच या दही।

आयुर्वेदीय मत—मुर्गे (चरणायुध) का मांस स्निग्ध, उष्णवीर्य, वृष्य (वीर्यवर्धक तथा वीर्य को च्युत करनेवाला), वृंहण (रसरक्तादिवर्धक)। स्वरको ऊँचा करनेवाला, अत्यन्त बलकारक, वातनाशक तथा स्वेदन (पसीना लानेवाला है)। (च० सू० अ० २७/६५)। सुश्रुतने यह गुण जंगली मुरगाके लिखे हैं। उनके मतसे गाँवका मुरगा वन-कुक्कुटकी भाँति ही होता है; परन्तु यह भारी और वातरोग, क्षय, वमन तथा विषमज्वरका नाश करता है। (सु० सू० अ० ४६/६६)। मुरगाका मांस कबायरसयुक्त, उष्णवीर्य, स्निग्ध, गुरु, बृंहण, बल्य, वृष्य, चक्षुष्य, शुक्र एवं कफकारक, और वायुनाशक है। वनमुरगाका मांस—गुरु स्निग्ध, बृंहण कफजनक तथा वात, पित्त, क्षय, वमन और विषमज्वरको दूर करनेवाला है। (भा० प्र०)। हलदी, गुड़, मुर्गेकी बीटका लेप अर्शहर है (च० चि० अ०१४)। अधिक रक्त निकलने पर मुर्गीका अंडा यूष या जलसे देवें (च० चि० अ० ११)। वातजकासमें मछली, मुर्गा या सूअरका मांस घृतके साथ खाना चाहिये (च० चि० अ० १८)।

मुरगाबी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **ऐन्सेरोज-गण** : (Order : Anseres) : **फैमिली : ऐनेटिडी** (Family : Anatidae)

नाम—(हिं०) मुरगाबी, जलमुरगा, पनडुब्बा (बी), पनबुड़वा; (अ०) तैरुल्(तयूरुल्) माऽ (तैर = पक्षी, (बहुव० तयूर), माऽ = पानी), इब्बज़; (सं०) जलकुक्कुट, मीनरंक; (फा०) माहीख्वार; (ले०) ऐनास क्रेका (*Anas crecca* Linn.); (अं०) ग्रे-टील (Grey Teal)।

वर्णन—यह मुरगेकी जातिका एक पक्षी है जो जलमें तैरता या डूबता और मछलियां पकड़कर खाता है। बड़ी जातिकी मुरग़ाबीको अरबीमें क़ाज़ और फारसीमें ग़ाज़ कहते हैं। इसकी एक जाति और है जिसको

हिन्दी में जल (पन-) कौआ, पनकुकडी, जलकौआ और संस्कृतमें जलकाक तथा (बं०)में पानकौडी और लेटिन तथा अंग्रेजीमें क्रमशः फैलेक्रोकोरैक्स नीजेर (*Phalacrocorax niger*) और डाइवर (Diver) कहते हैं।

मुरगाबी:—

प्रकृति—मांस दूसरे दर्जें में गरम और स्निग्ध, वैद्योंके मतसे गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस गलीज आहार है, देरमें पचता है, किंतु पच जानेके बाद शरीर का परिबृंहण करता, कामोद्दीपन करता तथा यकृतकी सर्दीके लिए उत्तम वस्तु है और शीत व्याधियोंको लाभ पहुँचाता है। इसमें वसागंध अधिक होती है। अतएव उचित यह है कि बध करने के पश्चात् दो-तीन घड़ी तक जमीन में गाड़ देवें, जिसमें बसागंध कम हो जाय। पुनः उखाड़ कर और पर एवं अन्त्र आदि दूर करके पकावें। मुरगोसे इसमें पौष्टिकता कम है। इसे पका–गलाकर खाने से गुर्दे की चर्बी बढ़ती है। वस्ति और वृक्कगत अश्मरी निकल जाती है। यह वृद्धि (फत्क़) रोग को दूर करता तथा शीत प्रकृतियोंमें उष्णता उत्पन्न करता है। इसे खानेसे शीत प्रकृतियोंमें शीघ्र ज्वर प्रगट हो जाता है। इसका संगदाना स्वादिष्ट, दीर्घपाकी एवं गुरु (गलीज) भी है। परंतु पच जाने पर पुष्कल रक्त उत्पन्न होता है। इसकी कलेजी (यकृत्) समस्त पक्षियोंकी कलेजीसे उत्तम है और शीघ्र गल जाती है। इसके वाजू लघु होनेसे शीघ्र पच जाते हैं और अन्य पक्षियोंकी अपेक्षया उनसे शरीरको खूब पुष्टि प्राप्त होती है। इसकी चर्बी अपतानक और रक्तसंचयज आक्षेपमें लाभकारी, शीतल शोथों एवं गुद-काठिन्यका विलीनकर्ता और गुदचीर या गुदविदारमें लाभकारी है तथा त्वचाके चिह्लोंको दूर करती है। सर्व पक्षियों की चर्बियोंसे उत्तम है। इसके लगानेसे इन्द्रलुप्त और खालित्य दूर होते हैं। इसको पिघलाकर कोष्ण कानमें टपकानेसे कानकी टीस और दर्द शान्त होता है। कानमें पानी चला जानेसे जो कष्ट होता है, वह इससे दूर हो जाता है। बाकलाके आटाके साथ लगानेसे अपने प्रभावसे स्तनशोथ मिटाता है। इसके अंडेकी अधभुनी ज़र्दी खानेसे बुद्धि बढ़ती है, स्मरणशक्ति पुष्ट होती है, तथा विस्मृति रोगका नाश होता है और शुष्क कास आराम होता है। इसको जैतूनके तेलके साथ योनिमें धारण करनेसे रुद्धार्तवमें लाभ होता है। इसका रक्त पानीके साथ पीनेसे वस्ति-शूल मिटता है तथा पथरी खंड-खंड होकर निकल जाती है। इसके अंडेका छिलका पीसकर खानेसे रक्तातिसार आराम होता है। इसका भेजा गुदशोथमें लाभकारी है। इसकी बीट शुष्क कासको बंद करती है। अहितकर—मांस आध्मानकारक एवं दीर्घपाकी है। निवारण—अनारका रस, कांजो और गरम मसाला।

मूँगा (मर्जाँ)

क्निडेरिया-संघ (Phylum : Cnidaria) : **ऐन्थोज़ोआ-वर्ग** (Class : Anthozoa) :
आक्टोकोरेल्लिया-गण (Order : Octocorallia)

नाम—शाख़ा (हिं०) मूँगा, प्रवाल; (अ०) मर्जाँ; (फा०) कामः, शाख़ मर्जाँ, मर्गां; (सं०) प्रवाल, विद्रुम; (बं०) पला, प्रवाल; (पं०) मर्जान, गुल्लि; (म०) प्रवाल, पोंवलें; (गु०) परवाला; (ले०) कोरेल्लिउम् रुब्रम् (*Corallium rubrum*); (अं०) कोरल (Coral)। वक्तव्य—अरबी में मर्जाँ छोटे मोती को भी कहते हैं। मूल-(हिं०) मूंगाकी जड़; (अ०) बुस्द (स्सु), (स-द), बुसुद अह्मर, नाशिफ़; (फा०) बेख़ मर्जाँ; (सं०) प्रवालमूल।

उत्पत्ति स्थान—लालसागर, फारस और अरबकी खाड़ी, भूमध्यसागर, और अटलांटिक महासागर।

वर्णन—मूंगा एक प्रकारके कीड़े (Palypi)का गृह अर्थात् प्राणिज द्रव्य (उपरत्न) है। आकृतिमें यह एक छोटी झाड़ीके समान होता है। इसके पतले बेलनाकार और प्रायः शाखायुक्त ईंटके रंगके लाल-लाल टुकड़े होते हैं। इनको मर्जाँ या शाखा मर्जाँ कहते हैं। मूंगा असंख्य छोटे-छोटे टुकड़ोंके योगसे बना होता है और प्रत्येक टुकड़े पर लम्बाईके रुख सूक्ष्म गहरी रेखायें होती हैं। गंध लोबानवत् या निर्गंध; या चिड़चिड़ाहटके साथ

आसानीसे टूट जाता है। कच्चे मूंगेके तने और शाखाएँ एक प्रकारके छिलकामय पदार्थसे आच्छादित होती हैं जिसमें मृदु क्षुद्र कृमि (Polypi) निवास करते हैं। यूनानी वैद्यकमें इसे पाषाण द्रव्य (जिस्मे हजरी) लिखा है। वुसुदके सम्बन्धमें मतभेद है। यह सुषिरपूर्ण, सच्छिद्र पत्थरकी तरह ललाई लिए एक कठोर द्रव्य है जिसको यद्यपि साधारणतया बेख़ मर्जां (प्रवाल मूल) कहा जाता है, तथापि मतांतरसे यह इससे भिन्न द्रव्य है। लाल, सफेद और काला भेदसे यह तीन प्रकार का होता है। भस्म बनानेके लिए अधिकतर प्रवालशाखा काममें ली जाती है। इसका उत्कृष्टतर भेद वह है जो लाल और छिद्ररहित हो। इसकी गणना रत्नोंमें की गई है तथा पिष्टी सौम्य और भस्म तीक्ष्ण होती है। प्रवाल भस्मको एक दिन अर्क गुलाबमें मर्दन करनेसे वह विशेष गुणकारी होती है। इसको मंगल ग्रह का रत्न माना जाता है।

आयुर्वेदके मतसे उत्तम प्रवाल की पहचान—जो प्रवाल पके हुये बिम्बीफल (कुँदरुके फल) के समान रक्तवर्ण, गोल, अवक्र (जो टेढ़ा न हो), स्निग्ध (स्पर्शमें चिकना), व्रण (छेद) रहित तथा स्थूल (मोटा) हो और कसौटीके पत्थर पर घिसने पर अपना रंग न छोड़े वह उत्तम (औषधके काममें लेने योग्य) है। जो प्रवाल सफेद या भूरे रंग का, रूक्षस्पर्श, छेदवाला, पोलवाला (पोल) और वजनमें हलका हो वह त्याज्य है। (र० चू० अ० १२; आ० प्र०)।

रासायनिक संगठन—प्राणिज सैन्द्रियक द्रव्य ८%, कार्बोनेट ऑफ लाइम ८३%, मैग्नीसियम् कार्बोनेट ३·५% और ऑक्साइड ऑफ आयर्न (लोहभस्म) ४·५%। इसका लाल रंग लोहके कारण है। इसमें अल्प प्रमाणमें सिकता भी होती है।

कल्प तथा योग—मसी, भस्म और पिष्टी आदि कल्प तथा कुश्ता मर्जां सादा, कुश्ता मर्जां जवाहरवाला आदि योग बनते हैं।

प्रवाल (मर्जां)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही, रूक्षण, स्रावरोधक और विशेषतः मेध्य (मुक़व्वी दिमाग) है। उपयोग—इसको बहुधा जलाकर या भस्म वा पिष्टी बनाकर उपयोग करते हैं। उपर्युक्त गुणोंके कारण यह सदा बने रहनेवाले प्रसेक और प्रतिश्यायको दूर करके मस्तिष्कको बल प्रदान करता है तथा प्रसेक और प्रतिश्यायजन्य कास एवं मस्तिष्कदौर्बल्यमें खिलाया जाता है। इसमें बुस्सुदके सभी गुणकर्म होते हैं। अहितकर—मूत्रपिंडोंके लिए। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—बुस्सुद। मात्रा—(कुश्ता मर्जां—प्रवाल भस्म) ६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० ½ रत्तीसे १ रत्ती तक।

प्रवालमूल (वुस्सु (स्स)द, उसूलुल्मर्जां)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही, रक्तस्तंभन, रूक्षण, लेखन और विशेषतः हृदयोल्लासकारक है। उपयोग—शीतल, संग्राही तथा रक्तस्राव रोधक है। यह रक्तार्श, रक्तष्ठीवन, रक्तातिसार और अन्त्रस्थ व्रणमें प्रयुक्त किया जाता है तथा दिलकी धड़कन और वातिक अन्यथाज्ञानके लिए उपादेय है। लेखन और संग्राही होनेके कारण इसको पीसकर अकेले या अन्य द्रव्योंमें मिलाकर इसका मंजन करते हैं। यह दाँतोंको पिलाई आदिसे शुद्ध और दृढ़ करता है (विशेषकर जलाया हुआ बुसुद)। लेखन और रूक्षण होनेके कारण इसका अंजन दृष्टिवर्धक है तथा नेत्रशुक्ल, नेत्रस्राव, नेत्रकण्डू और पक्ष्मशात में गुणकारक है और नेत्र को शक्ति देता है। बारीक पीसकर छिड़कनेसे शरीरके बाहरी रक्तस्रावको बन्द कर देता है। व्रणस्थ दुष्ट मांसको नष्ट करने और उनको सुखानेके लिए भी इसको व्रणोंके ऊपर छिड़कते हैं। अहितकर—वृक्क को अहितकर है और मिचली उत्पन्न करता है। निवारण—कतीरा

और बंशलोचन। प्रतिनिधि—रक्तस्तम्भनार्थ दम्मुल् अख्वैन। मात्रा—०.५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—प्रवाल मधुर, किंचित् अम्ल शीतवीर्य, सारक, लघु, त्रिदोषहर, वीर्य और कान्तिको बढ़ानेवाला, पाचन, दीपन और क्षय, पित्तविकार, रक्तविकार, विष, कास और नेत्ररोगको दूर करनेवाला है (र० चू० १२; रा० नि०; आ० प्र० अ० १३)। प्रवाल का सूक्ष्म चूर्ण (पिष्टी) चावल भिगोये हुए जलके साथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। (च० चि० अ० २६)।

प्रवाल भस्म—क्षारधर्मी, मधुर, शीतल, दीपन, पाचन, विषहर, बल्य, जीवाणुनाशक, वीर्यवर्धक, शरीरका वर्ण निखारनेवाली तथा नेत्ररोग, क्षय, कास, रक्तपित्त, अधिक पसीना आना, रात्रिमें स्वेद आना और तीनों दोष, विशेषकर कफ और वात इनका नाश करनेवाली है (र० त० २३ तरङ्ग)।

मेढक

नाम—(हिं०) मे(में)ढ़(ड)क, मेघा, मेझुका, भेक; (अ०) ज़िफ्दअ; (फा०) ग़ोक़; (सं०) मण्डूक, भेक, दर्दुर; (लै०) रैना टिग्रीना (*Rana tigrina*); (अं०) फ्रॉग (Frog)। भेद-भेक—(बफो मेलानॉस्टिकस Bufo melanosticus); (अं०) टोड (Toad)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध जल-स्थलचारी जंतु जो तर जमीनों और पानीमें रहता हैं। यूनानी वैद्यकमें इसका खाद्यरूपमें व्यवहार होता है। यह नहरी, समुद्री (बहरी) बुस्तानी और जंगली होता है। मात्र मेढकसे नहरी अभिप्रेत होता है। जंगली विषैला होता है। मेढकके मस्तकमें भौंवोंके पास चूचीकी तरह दो उभरी हुई वस्तुयें होती है। इनको निचोड़नेसे जो द्रव प्राप्त होता है उसे मेढककी मस्ती या मद (मस्ती ग़ोक) कहते हैं। इसके प्राप्त करनेकी विधि यह है—पान या केलाका पत्ता उसके सिर पर लपेटकर खूब निचोडें और जो द्रव पत्ते पर निकले उसे पत्तेपरसे छुड़ाकर उसी समय काममें लेवें। अधिक देर रहनेसे ऐसी कड़ी हो जाती है कि काटेसे भी नहीं कट सकती। आंतरिक प्रयोगके लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम इसके नख, नासिका और मुँह पृथक्कर देवें। इससे वह आंतरिक प्रयोगके लिए उपयुक्त होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें सर्द और पहले दर्जेमें रूक्ष। जंगली प्रबल उष्णतासे रिक्त नहीं है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—असाध्य दुष्टव्रण, औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) और फिरंगका यह लाभकारी, निरापद सिद्ध भेषज है। इसके उपयोगसे पुरानेसे पुराना और असाध्यसे असाध्य उपर्युक्त रोग निर्मूल हो जाते हैं। नहरी मेंढक विषघ्न है। नहरी मेंढकके काढ़ेके गण्डूषसे दाँतका दर्द आरोग्य होता है। इसको चीरकर बाँधनेसे लगे हुए वाण या कांटे निकल जाते हैं। इसके लेपसे रक्तस्राव बंद हो जाता है और विशेषकर इसके जलाये हुए मांसके लगानेसे घाव शीघ्र भर जाता है। रक्तस्रावमें इसका भेजा जलाकर लगानेसे लाभ होता है। इसे नाकमें फूंकनेसे नकसीर बंद होता है। कहते हैं कि दरियाई और बुस्तानी मेंढकी चर्बी दाँतपर लगानेसे मनुष्यके तो क्या, चौपायोंके दाँतभी गिर जाते हैं। सूजनपर इसका मांसरस डालनेसे लाभ होता है। इसके हाथ-पैर और अन्त्र आदि भाग अलग करके बकरीके गुर्दे (वृक्क)की चर्बीके साथ खूब पकाकर गरम-गरम अर्शपर डालनेसे लाभ होता है। च्यूँटीके अंडों और थोड़ेसे नौसादरके साथ इसका रक्त बालोंपर लगानेसे बाल दूर होजाते हैं और बार-बार लगानेसे उनका निकलना बंद हो जाता है। इसको जैतूनके तेल और नमकके साथ पकाकर खाना कुष्ठरोग एवं कीट विषके लिए अगदका हुक्म रखता है। वृक्षोंकी जड़ोंमें रहनेवाले एक प्रकारके बहुत छोटे मेंढकको समप्रमाण बिनौलाके साथ जलाकर नेत्रमें लगानेसे मोतियाबिन्दमें नेत्रमें पानी उतरना बंद हो जाता है। डब्बारोगमें जीवित मेंढकी थैलीमें रखकर बच्चेके गलेमें लटकानेसे लाभ होता है।

विषलक्षण और चिकित्सा—पीले और काले मेंढकके खानेसे क्षुधा नष्ट हो जाती है, अम्लोद्गार होने लगते तथा वमन एवं उत्क्लेश होने लगता है। शरीरका वर्ण विवर्ण हो जाता है और हृच्छूल एवं उदर और पिंडलियोंमें

शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसका उपचार यह है—प्रथम इतना वमन कराएँ कि पूर्ण शुद्धि हो जाय। तदुपरांत स्नान कराके सिकंजबीन देवें और दालचीनी मिलाकर मांसरस पिलाएँ। मद्यभी लाभजनक है। दवाउल्कुर्कुम आदि खिलाना भी लाभकारक है। इस प्रकार विषसे मुक्ति पा लेनेपर ऐसा बहुत कम होता है कि उसे जलोदर न हो और दांत न गिर जायँ।

आयुर्वेदीय मत—मेंढकका मांस कफकारक अत्यन्त पित्तकारक नहीं (थोड़ा पित्तकारक) और बलकारक है। (भा० प्र०)। घरेलू मेंढकके रक्तका लेप कुरंड (अंडकोष वृद्धि) नाशक है।

मैना

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **पास्सेरीफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes) : **फैमिली : स्टुर्निडी** (Family : Sturnidae)

नाम—(हिं०) मैना, सारिका, सारो, सारी; (अ०) जुरजूर (बहुव-ज्ररारीर); (फा०) शारक; (सं०) सारिक(का), शारिका, सारल, मदना, गारू, मदनसारिका; (वं०) गंगासालिक, रामसालिक; (ले०) (१) एक्रिडोथेरीज जिन्जेनिआनुस (*Acridotheres gingenianus*), (अं०) दि बैंक मैना The Bank Myna; (२) एक्रिडो० ट्रिस्ट्रिस (*A. tristris*), (अं०) दि कामन मैना (The Common Myna)।

वर्णन—काले रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी जिसका चोंच और पलकोंके आस-पासका रंग पीला या नारंगी होता है। इसके पैर छोटे होते हैं। यह बहुत तेज उड़ता है। उड़ते समय इसके परोंसे आवाज निकलती है। शिक्षा देनेसे यह बातें करने लगता है और मनुष्यसे प्रायः प्रेम करता है। देशी मैनाको गुलगुचिया (गिलगिलिया) कहते हैं। इसके भी पलकोंके आसपास पिलाई होती हैं। यह भी शिक्षा ग्रहण कर लेती है। ढड्ढो जिसे गलगल भी कहते हैं, इसीका एक भेद है। इसके पलकोंके आस पासका रंग लाल होता है। यह मनुष्यसे कम हिलती-मिलती है और शिक्षा भी ग्रहण नहीं कर सकती है। अबलका, पेंगिया मेना (सतमइया)और सिरोही या किलहँटा मैनाकी ही जातिके पक्षी हैं।

प्रकृति—मैनाका मांस गरम और रूक्ष है। संभवतः वैद्योंके मतसे समस्निग्धरूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस वाजीकर, क्षुधावर्धक और दृष्टि-शक्तिवर्धक है। पली हुई मैनाके मांसका सेवन उत्तम है। यह सांद्र रक्त उत्पन्न करता, मस्तिष्कको बल प्रदान करता (मेध्य), शीत प्रकृतियोंमें समता लाता और वस्ति-वृक्कगत पथरीको तोड़ता है। इसको जलाकर बनाई हुई मसी (कोयला)की चुटकी बड़े घावोंपर छिड़कनेसे लाभ होता है। इसकी बीट दाद और झाईंको दूर करती है। गलगुचिया और ढड्ढोका मांस बादी, गुरु एवं मूत्रसंगकारक है। **अहितकर**—मस्तिष्क और पित्तल प्रकृतिवालोंको। **निवारण**—तेल या चुकंदरके पानीके साथ पकाना और सिरका एवं खट्टा अनार।

मैल

नाम—(हिं) मैल; (अ) वसख; (फा) चिर्क (र्ग); (सं०) शरीरमल।

वर्णन—वह मल जो मानव शरीरके स्रोतों या छिद्रोंसे बाहरकी ओर खिंच आते हैं। जिस शरीरमें मल तर, लतीफ और अधिक हों, मैल भी उनमें अधिक होता है। हरे रंगका और सुगंधित मैल श्रेष्ठ होता है। मात्र मैल शब्दसे मनुष्यके शरीरका मल अभिप्रेत होता है।

प्रकृति—कमसे कम पहले दर्जेमें गरम एवं रूक्ष। शरीरकी विशेषताके कारण अधिक गरम और रूक्षभी होता है। देश-काल, अवयव और आहार आदि भेदसे इनमें भेद होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मनुष्यके कानका मैल अन्य हर प्रकारके शरीर मलोंसे अधिक प्रभावकारी है। पहलवानों (मल्लों)का मैल स्नानागारके मैलके समान है। हर प्रकारका मैल जिसका वह मैल है उसके अधीन

है क्योंकि उसका मल है। कानका मैल उष्णताकारक, अत्यंत आकर्षण-कर्त्ता (जाज़िब), श्वयथुविलयन और समताके साथ आध्मानकारक है। शरीरमें रहा हुआ हर प्राणिका मैल काँटा और वाण शरीरके भीतरसे शरीरकी त्वचाकी ओर खींच लाता है। उँगलीमें निकली हुई अपक्व छिलौरी इसके लगानेसे आराम हो जाती है। अन्यान्य समस्त नख समीपवर्ती शोथोंमें यह लाभकारी है। फटे होंठोंपर इसके लगानेसे आरंभमें लाभ होता है, या विद्रधिशोथ एवं व्रणशोफका नाशक है तथा उनको भरता है। इससे कृष्णसर्पका विष नष्ट होता है। पहलवानोंका मैल सामान्यतया पाचन एवं विलयन है। इसके लेपसे स्तनशोथ एवं दाह मिटता है तथा स्तनकी ओर दोष नहीं गिरने देता। साधारण मनुष्योंके शरीरका मैल मोमरोगनके साथ लगानेसे शोथ नरम हो जाता है और पककर फूट जाता है। दुष्ट व्रणोंपर लगाने या सुखा-पीसकर उनपर बुरकनेसे व्रण शुद्ध होते हैं। जो मैल मल्ल युद्ध करने और शरीरपर धूलिकणादिके जमनेसे बनता है उसको करनकी गाँठपर लगानेसे बड़ा उपकार होता है। मल्लों (पहलवानों)का शरीरमल लगानेसे गृध्रसी आराम होती है। उँगलियोंमें कड़ाई आ जाय तो इसके लगानेसे लाभ होता है। हड्डीके टूट जाने, उखड़ जाने और चोट लगनेमें यह मोमियाईका काम देता है। इसकी धूनीसे पुरानी खाँसी जाती रहती है। शरीर मल और स्नानागारके भीतर जमा हुआ मैल गुद व्रण और अर्शोजात व्रणमें लाभकारी है। इसे प्रच्छनज क्षत (पछनोंके घावोंपर) लगानेसे वह भर जाते हैं। इसके खानेसे मूर्च्छा आती है और जलोदर हो जाता है। इतना ही नहीं इससे मनुष्य मर जाता है।

मोती

मोलस्का-संघ (Phylum : Mollusca) : **पीलेसीपोडा-वर्ग** (Class : Pelecypoda (Bivalvia) : **फिलिब्रेंक्टिएटा-गण** (Order : Filibranchtiata)

नाम—(हिं०, बम्ब०, म०, गु०, कों०) मोती; (अ०) लूलू; (फा०) मरवारीद, दुर्र; (सं०) मौक्तिक, मुक्ता; (बं०) मोक्ता; (क०, सिं०, ता०) मुत्तु; (ते०) मुतिआमु; (ले०) (१) पिंक्टेडा मारगेरेटिफेरा (*Pinctada margaratifera*); (अं०) पर्ल (Pearl); (२) पिंक्टेडा बुल्गेरिस (*Pinctada vulgaris*); (अं०) दि इंडियन पर्ल ओइस्टर (The Indian Pearl Oyster)। वक्तव्य—उक्त लेटिन नाम मोतीके जन्तुके हैं।

मोतीकी सीप। (हिं०) मोतीसीप; (फा०) सदफ़ मरवारीद(दी), सदफ़ सादिक़; (सं०) मुक्ताशुक्ति, मुक्ता; (कं०) मुक्ता झिनुक; (म०) मोत्याची शिंपी, मोतीनी छीप; (वं०) निभ्रू; (अं०) पर्ल ऑइस्टर (Peart Oyster)।

उत्पत्तिस्थान—हिन्द तथा अन्यान्य सागरों से मोतीकी सीप निकाली जाती है। फारसकी खाड़ी, लंका, सौराष्ट्रमें जामनगर और ब्रह्मदेशके मेर्गुइ जिलेमें मोती उत्पन्न होता है। मोती अदनके प्रसिद्ध हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध प्राणिज द्रव्य (महारत्न) है जो एक प्रकारकी सीप (सदफ़ मरवारीद)में उत्पन्न होता है। इसके कई भेद हैं। असली और नकली भेदसे यह दो प्रकारका होता है। जो मोती छोटे पोस्तेके दानेके बराबर गोल, पानीदार, वज़नदार, बड़ा स्निग्धस्पर्श, अनबिंध, छिद्ररहित और सफेद होते हैं, वह औषधोपयोगी होते हैं। इसे अमानी कहते हैं। काला निकृष्ट और पीला, सछिद्र और जो गोल न हो वह औषधके लिये अनुपयोगी होता है। सीपी लगभग अर्धचंद्राकार, बाहरसे कुछ-कुछ हरे रंगकी और भीतरसे सुंदर सफेद छिद्ररहित मसृण और चमकीली होती है। यह मोतीका उत्कृष्ट प्रतिनिधि ही नहीं, अपितु स्वयं मोती ही है। औषधमें इन उभय द्रव्योंका एक दूसरेके स्थानमें प्रयोग किया जा सकता है। मोतीकी गणना रत्नोंमें होती है तथा इसको चन्द्रग्रहका रत्न माना जाता है।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टिसे मोतीकी भस्म (Pearl ash) प्रधानतः कार्बोनेट और ऑक्साइड ऑफ लाइमका यौगिक (चून कज्जलेत) है। तथापि इसमें कुछ ऐन्द्रियक पदार्थोंका भी मिश्रण रहता है जिससे यह सीपसे गुणोंमें विशेष है। स्वाद क्षारीय तिक्त।

कल्प तथा योग—पिष्टी तथा भस्म, खमीरा मरवारीद (जदीद, बनुसखाकलाँ) कुर्सकाफ़ूर लूलुई, कुर्स-तबाशीर काफूरी लूलुई, मुफर्रेह मरवारीद सय्याल, माजून लूलुई, हब्ब मरवारीद, हब्ब काफूर मरवारीदी दवाउल्मुल्क, जुवारिश लूलू।

प्रकृति—अनुष्णाशीत मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष।

गुण-कर्म—उत्तमाङ्ग-बलदायक, चक्षुष्य, दुग्ध-बलवर्धक, दृष्टिवर्धक, संग्राही, रक्तस्तम्भन, सोनासे भी अधिक मनःप्रसादकर और विशेषतः हृदयबलवर्धक है।

उपयोग—हृदयदौर्बल्य, वातिक अन्यथाज्ञान उन्माद, दिलकी धड़कन तथा आमाशय, यकृत् और वृक्क इनके दौर्बल्यमें मोतीका उपयोग किया जाता है। संग्राही और रक्तस्तंभन होनेके कारण शुक्रप्रमेह, योनिस्राव, अति रजः स्राव, रक्तातिसार, अर्शोजात रक्त आदिको रोकनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। इसे दृष्टिवर्धक सुरमोंमें मिलाकर नेत्रके भीतर लगाते हैं। दृष्टिदौर्बल्यके अतिरिक्त रोमान्तिका, मसूरिका और मोतीझालामें दाने निकलनेसे पूर्व समूचा मोती निगलवाते हैं, जिससे दाने शीघ्र प्रगट हो जाते हैं। इससे वना खमीरा (खमीरए मरवारीद) हृदयदौर्बल्य, हृत्स्पंदन, रोमान्तिका, मसूरिका और मोतीझरामें हृदयमस्तिष्क-बलवर्धनके लिये सेवन कराते हैं। उक्त गुणकर्ममें इसकी भस्म अधिक वीर्यवान् होती है और उपर्युक्त रोगोंमें आशुफलदायनी होती है। यह श्लेष्मविकार, क्षय, काल, श्वासमें लाभदायी हैं। मोती दो दाना और मूंगा एक दाना नीले कपड़ेमें सीकर गर्भिणी स्त्रीकी कमरमें इस प्रकार बांधें कि मोतीका दाना नाभिके ऊपर रहे तो स्त्री गर्भपातसे सुरक्षित रहती है। यह परीक्षित है। (मि० ख०)। अहितकर—निरापद है। प्रतिनिधि—सच्ची सीप। मात्रा—६० मि० ग्रा० ($\frac{१}{२}$ रत्ती)। मोती भस्म (कुश्ता मरवारीद) २ चावलसे ४ चावल तक। मोतीका जीव (मुक्ताकीटमांस) कटु, स्निग्ध, दीपन, रुचिकर, यक्ष्माहर, शूल तथा हृद्रोगहर है। (नगेन्द्रनाथ सेन)।

आयुर्वेदीय मत—मोती मधुर, शीतवीर्य, आयुष्य, वाजीकर, बलवधंक, तुष्टिकारक तथा कफ, पित्त, क्षय, कास, अग्निमान्द्य, नेत्ररोग, विष और दाहका नाश करनेवाला है (रा० नि०; र० चू० अ० १२)। मोतीकी सीप—मधुर, कटु, स्निग्ध, रुचिकारक, दीपन, तथा कास, श्वास, हृदयरोग, शूल, स्नायुरोग और ज्वरका नाश करनेवाली तथा व्रणभेदक है। (रा० नि०)। प्रवाल पञ्चामृत, मुक्तापञ्चामृत (यो० र०), मुक्तादिचूर्ण (च० चि० अ० १७), महामुक्ताद्यञ्जन आदि इसके विशेष शास्त्रीय योग हैं।

मोर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **गैलिनी-गण** (Order : Gallinae)
ऐलेक्टोरोपोडीज-उपगण (Sub-order : Alectoropodes) :
फैमिली : फैसिएनिडी (Family : Phasianidae) : **उप-कुल : पैवोनिनी** (Sub-family : Pavoninae)

नाम—(हिं०, म०, गु०) मोर; (अ०) ताऊस, नम्ली; (फा०) मुर्ग़ ताऊस; (सं०) मयूर, शिखि, वर्हि; (बं०) मौर; (बम्ब०) मुर; (लै०) पेवो क्रिस्टेटुस् (*Pavo cristatus* Linn.); (अं०) पीकॉक (Peacock)। मोरपंख—(हिं०) मोरपंख, मोरपंखी; (सं०) मयूरपक्ष, शिखिपिच्छ, मयूरपिच्छ। मोरके परका चँदवा—(फा०) नक़्श परे ताऊस;

वर्णन—एक प्रसिद्ध पक्षी है। छोटा और बड़ा भेदसे यह दो प्रकारका होता है। छोटेको भुईमोर कहते हैं। सफेद और काला भेदसे भी यह दो प्रकारका होता हैं। अस्ट्रेलिया सफेद मयूरके लिए प्रसिद्ध है।

उपयुक्त अंग—मांस, मोरपंख, पादनाल पित्त और वसा (Grease)।

रासायनिक संगठन—मोरपंखमें तांबा होता है। आयुर्वेदीय रसशास्त्रमें मोर पंखको जलाकर सत्वपातन-विधि द्वारा आयुर्वेदशास्त्रमें इस तांबेके कारण ही तूतियाको मयूरकम् कहा है। अंडेमें फास्फोरस, ताम्र और सर्पकी प्रोटीनोंका सत्व होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके अंतमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—मांस अतीव सांद्र (गलीज) एवं दीर्घपाकी एवं सांद्र दोष उत्पन्न करनेवाला है। उपयोग-इसके मांसका शोरबा (मांसरस) पीनेसे पार्श्वशूल आराम होता है। इसका मांस और चर्बी आंतरिक प्रयोगसे काम शक्तिवर्द्धक (वाजीकर) हैं। इसकी चर्बी कटि, शिश्न और गुदापर मलनेसे कामोद्दीपन होता है। बीटके लेपसे झाइं, मस्सा और त्वचाका दाग दूर होता है। हड्डीकी राख श्वित्रके दागों और झाइं पर लगानेसे लाभ होता है। १॥ माशे इसका पित्त अकेला या सिकंजबीनके साथ सेवन करनेसे पुराना अतिसार एवं प्रवाहिका आराम होती हैं। पित्तको सिरकेमें मिलाकर लगानेसे कीड़े-मकोड़ेके दंश और त्वचाके दाग दूर होते हैं। मोरके परके चँदवे हुक्केमें तमाकूकी भांति पीने अथवा तीन-तीन चँदवे बारीक कतरकर गुड़में गोलियां बनाकर तीन-चार दिन खानेसे नारू रोग बिल्कुल जाता रहता है और पुनः नहीं होता है। मोरके अंडेके भीतर लालमिर्चके कुछ बीज रखकर उसका मुँह सीपके एक टुकड़े और मोमसे खूब बंद करे। पुनः नीमके एक पुराने पेड़की जड़में अंडा आ जाय इतना बड़ा छिद्र बना उसमें अंडेको रखकर उसे बंद कर देवे। छः महीने बाद उस निकालनेपर उसमें साफ अच्छी मिर्च जमी हुई मिलेगी। इसे पानीमें पीसकर सर्प दष्ट व्यक्तिके दंश स्थान और उस ओरकी आँखके पास लगानेसे तुरत सर्पविष दूर हो जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालोंको इसका निरंतर सेवन किलासजनक है। निवारण–गर्मीके लिए सिरकेमें पकाकर खाना, गुरुत्व या गरिष्ठताके लिए गरम मसाला।

आयुर्वेदीय मत—मोरपंखको जलाकर बनाई हुई भस्म अर्थात् मयूरपिच्छभस्म—मसी (मात्रा १ रत्ती) शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे उपद्रव युक्त उलटी अच्छी होती है (यो० र०—वमनाधिकार)। मोरपंखकी भस्म (मयूरपिच्छभस्म) और पीपलके चूर्णको मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे हिचकी, श्वास और वमन दूर होता है। (यो० र०—हिक्काधिकार)। मोरपंखका चँदवा गुड़के भीतर बंदकर २-३ मासके गर्भवाली स्त्रीको जिसको लड़की ही लड़की होती हो, निगलवानेके लड़का पैदा होता है। यह बालपरिवर्तन योग है। मोरके पैरका नाल जलाकर शहदके साथ चाटनेसे कास, हिचकी और श्वास निवृत्त होता है (च० चि० अ० १) मात्रा—२५० मि० ग्रा०से ६०० मि० ग्रा० (२-५ रत्ती)। ऊर्ध्व जत्रुरोगाधिकारमें मयूराद्यघृत इसका प्रसिद्ध योग है। मयूरमांससाधित इस घृतके नस्य, पान, वस्ति और अभ्यङ्गसे संपूर्ण शिरोरोग, कर्ण-नेत्र-नासा-तालुमुख और मलरोग तथा कास, श्वास, मन्याग्रह, पृष्ठग्रह, शोब, स्वरभेद, अर्दित, योनिरोग, रक्तदोष एवं शुक्रदोष एवं शुक्रदोष दूर होते हैं तथा ऋतुस्माता बन्ध्या भी पुत्र उत्पन्न करती है। यह घृत न केवल यक्ष्माग्रस्त रोगियोंके लिए ही अमृत है अपितु आयुर्वेद शास्त्रके अनुसार इसके खानेवाला विष रहित हो जाता है चाहे वह विष सर्पका हो या अन्य रोगोंसे शरीरमें एकत्र हुआ हो।

मयूरमांस—रसमें कषाय, मधुर एवं लवण है तथा त्वचा, केश और अरोचकके लिए हितकर और स्वर, बुद्धि, जठराग्नि, नेत्र और कर्ण इनको दृढ़ता देनेवाला है (सु० सू० अ० ४६)। चरकने इनके अतिरिक्त इसे वय, वर्ण, आयुके लिए सबसे हितकर तथा बल्य, मांस-वीर्यवर्धक एवं वातनाशक भी लिखा है (सू० अ० २७)।

मयूरमांस वातकफनाशक है तथा अपस्मार, संन्यास, पक्षाघात आदि वातरोगों तथा प्रतिश्याय, स्मृतिनाश, उन्माद एवं विषका नाश करता है। यह आमाशयको शक्ति देता है, न्यूमोनिया (श्वसनकज्वर) एवं छातीके दर्दमें बहुत लाभ करता है। यह स्त्रियोंके योनिशोथको दूर करता है। इसके लिए मयूरमांसको लेपवत् लगवाया भी जाता है। यह डिम्ब ग्रन्थियोंके स्रावकी कमीको दूर करता है एवं कास-श्वासमें हितकर है। शास्त्रमें इसे प्रसुप्त गर्भमें गर्भिणीके भोजनमें देनेका आदेश दिया हैं। इसके प्रयोगसे गर्भस्थ शिशु बढ़ना आरम्भ कर देता है। शास्त्र

यहभी कहता है कि मयूरमांसका प्रयोग करें। मयूरी हीनवीर्य होती है। परन्तु यूनानियोंके सिद्धान्तानुसार योनिरोगों एवं स्त्रियोंके प्रयोगके लिए मोरनीका प्रयोग अच्छा होगा। मोरके मांससे पकाया हुआ दूध-घी स्वर-भङ्गहर है (च० चि० अ० १६)। मोरके पंजा, साहीका काँटा, कुत्ता, चराव, चाष (बाज) और कुररके रोम, एक-दो खुरवाले जानवरोंके सींग, चमड़ा, हड्डी, खुरकी भस्म मधु-घृतसे देनेसे श्वास नष्ट होता है (च० चि० अ० १७)।

शास्त्रका कहना है कि चावलोंको मयूर पित्तमें सात भावनाएँ देकर कौवेके अंडेको मज्जामें मिलाकर पीवे तो यह अगद सर्वविषोंको दूर करता है।

चरकमें मयूरके अंडोंको अमृत समझकर नपुंसकोंको पुंसत्व शक्ति प्राप्त करनेके लिए इनके प्रयोगकी अभ्यर्थना की है।

नव्य मत—रक्त-व्रणोंको भरनेकी विशेष औषधि है, चाहे वह व्रण नासूरहो या भगन्दर, चाहे गण्डमालाका व्रण हो अथवा यक्ष्मीके फुप्फुसोंका व्रण हो। यह शोथको दूर करता है और कई एक नेत्ररोगोंमेंडाला जाता है। खानेके लिए इसकी मात्रा १२० मि० ग्रा०(१ रत्ती) है। यक्ष्मा और श्वसनक-ज्वर (न्यूमोनिया)के रोगियोंको शशकरक्तवत् दिया जाता है। मयूरपुच्छके गुणोंको जाननेके लिए उसके ताम्रके गुणोंका जानना आवश्यक है। इसके ताम्रके गुण-प्रयोग ताम्रके गुणोंके समान हैं। लड़कियाँ जननेवाली गर्भिणोको मासिक धर्मसे ५३-५४वें दिन १-१ मयूरपुच्छ-चन्द्रिका गुड़में लपेटकर प्रातः निगलवानेसे पुत्र उत्पन्न होता है। यह चन्द्रिका धूपोंमें भी डाली जाती है। बालकोंके ज्वर, सूखा रोगोंमें लाभ करती है। तम्बाकूमें रखकर पीनेसे विच्छूका विष दूर होता है। सुरमा बनाकर डालनेसे नेत्र-ज्योति बढ़ती है। मयूरास्थि भस्म कुक्कुटाण्डत्वग्भस्मके समान गुणोंवाली है। श्वेतप्रदर, शुक्रप्रमेह, प्रसेक (नजला) और यक्ष्मारोगमें सितोपलादि चूर्णके साथ लाभकारी है। मोरका अंडा लेकर उसमें ऐसा छेद करें जो बन्द किया जा सके और अंडा फूटे नहीं तथा सब जर्दी निकल आवे। इसके बराबर काली मिर्च मिलाकर खरलमें घोटकर शुष्क करें और इस अंडेमें ही भरकर रखें। मृगीके दौरेके समयमें इसे रोगीको सुँघावें। इससे मृगीका कीड़ा उसी कालमें निकल आवेगा। इसके बाद हर चौथे दिन एक महीने तक नेवलाके रक्तको गुड़में मिलाकर रोगीको खिलाते रहें। पुनः दौरा न होगा। इसी औषधिको सर्पकाटे रोगीको खिलानेसे भी लाभ होता है। मोरनीके अंडेको एक ओरसे काटकर उसमें काली मिर्च भर देवें और कटे भागको सावधानीसे चिपका देवें। पुनः इन अंडोंको मिट्टीके प्यालेमें रख, कपड़मिट्टीकर, गजपुटकी आँच देकर भस्म तैयार करें। इस भस्मको १-४ माशेतक की मात्रामें ५ से १० तोले तक घीमें मिलाकर दो-दो घंटे बाद देनेसे यह सर्प विषको दूर करती है और सितोपलादि चूर्णमें मिलाकर देनेसे यक्ष्माके कासको लाभ करती हैं। मोरकी बीट, सोंठ और दन्दासा (अखरोटके पेड़की छाल) मिलाकर लेप करनेसे सूजन उतरती है। मोरकी बीटमें शोथहरणका विशेष गुण है।

रीछ या भालू

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
क्रव्यभुज-गण (Order : Carnivora)) : **फैमिली ऊर्सिडी** (Family : Ursidae)

नाम—(हिं०) रीछ, भालू, भाल; (अ०) दुब्ब (मादा = कारः, दुब्बः ; बहुव०-दुबाब, दुब्बत); (फा०) ख़िरस; (सं०) ऋक्ष, भल्लु(ल्लू) क; (ले०) उर्सिनुस लेबिएटुस *(Ursinus labiatus)*; (अं०) बियर (Bear)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध स्तनपायी भीषण चौपाया जो प्रायः सारे संसारके बड़े-बड़े जंगलों और पहाड़ोंमें पाया जाता है। इसके पूरे शरीर पर बाल होते हैं। भूरे, काले, चितकबरे आदि बालके विचारसे यह कई रंगोंका होता है। यह मांसाहारी और उद्भिज्जाहारी जीवोंके बीचकी एक कड़ी है। इसके नख दृढ़ एवं कुण्ठिताग्र होते हैं।

भारतीय रीछ अन्य देशीय रीछोंसे छोटे होते हैं। इनका बाल भी छोटा, घना और चंगुल लंबे एवं वक्र होते हैं। रीछ मनुष्यसे बहुत डरता और शिक्षणीय होता है। इसका रक्त अत्यंत पिच्छिल (लजिज) होता है।

उपयुक्त अंग—डंडी (Penis), मांस, खाल, पित्त, चर्बी, दाँत, रक्त आदि।

प्रकृति—गरम एवं स्निग्धताबहुल। मतांतरसे इसकी चर्बी तथा मांस तीसरे दर्जेके आदिमें गरम एवं रूक्ष; रक्त अत्यंत उष्ण और इसका पोस्तीन भी गरम एवं रूक्ष है, और जितना वृद्धहो उतनाही अधिक रूक्ष होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रीछका मांस पिच्छिल (लजिज), दीर्घपाकी, अल्पपोषणीय (कलीलुल्गिजा) और रदीउल्कैफ़ियत है तथा आमाशयको हानि पहुँचाता है। पक्षवध रोगीको इसका पोस्तीन पहिननेसे तथा वातरक्त रोगीको उसपर बैठानेसे बड़ा लाभ होता है। शरीरके रोंगटे खड़े होना बन्द हो जाता है। इसका पनीरमाया घीमें मिलाकर खानेसे कामेच्छा बढ़ जाती हैं, तथा शुक्रकी वृद्धि होती है। छः रत्ती इसका पित्त शहदमें मिलाकर अपस्मारीको खिलानेसे उपकार होता है। इसे सिकंजबीनके साथ खानेसे यकृच्छूल, जलोदर एवं सर्वांगशोफ आराम होता है। शहद और सौंफके साथ इसे नेत्रमें लगानेसे दृष्टि बलवती होती है, नेत्रजालक कट जाता और पलकके बाल जम आते हैं। रीछका पित्त एक सींकमें लगाकर पानमें खींचकर श्वास रोगीको सप्ताह पर्यंत खिलाते रहनेसे रोग जाता रहता है। पड़वालके बाल उखाड़कर इसका पित्त या पनीरमाया लगानेसे पुनः बाल नहीं निकलते। इसका पनीरमाया लगानेसे फोड़ा शीघ्र पकजाता है और शरीरके जिस स्थानपर इसको लगाते हैं वहाँ बाल नहीं निकलते। मधु-जलके साथ इसका पित्त खानेसे अर्शका नाश होता है। २। माशा पित्त चौपायाको खिलानेसे उसका शूल (कुलंज) जाता रहता है। जीर्ण संधिशूलमें इसकी चर्बीके लेपसे उपकार होता है, वातनाड़ियोंकी कठोरता मिटती तथा किलास और दाउस्सालबमें भी इससे लाभ होता हैं। सर्दीकी खाँसीमें इसकी चर्बीकी मालिश करें। मोच आ जाय या हड्डी उखड़ जाय तो इसकी चर्बीसे लाभ होता है। इसके दाँतकी कुचलियाँ पानीमें घिसकर शिशुको चटानेसे आसानीसे दाँत निकल आते हैं। कफजन्य अपस्मार या उन्माद रोगीको इसका ४। माशा रक्त खानेसे लाभ होता है। कफज अपस्मारमें ४। माशा इसका पनीरमाया भी खानेसे लाभ होता है। अतिसार रोगीको इसका वृषण सुखा-पीसकर सेवन करानेसे दस्त बंद हो जाते हैं।

आयुर्वेदीय मत—लवणयुक्त कल्कसे सिद्ध वराह एवं रीछकी वसा, या घी-तैल वातज मूत्रकृच्छ्र दूर करता है (च० चि० अ० २६)।

रेगमाही

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia) :
स्कैमेटा-गण (Order : Squamata) : **उपगण-सौरिया** (Sub-order : Sauria) :
फ़ैमिली : ऐगेमिडी (Family : Agamidae)

नाम—(हिं०) रेगमाही, गपछैया, छिपुआ मछली, रेतकी मछली; (अ०) समकुर्रमल; (फा०) रेगमाही, रेगजाद:; (सं०) वालुकामत्स्य, मरुगोधिका; (गु०) शरडो; (वम्ब०) विलोटी; (ले०) ऐगेमा एगिलिस *(Agama agilis)*; (अं०) सैन्ड लिज़र्ड (Sand lizard)।

उत्पत्तिस्थान—बगदादके इर्द-गिर्द, सिंध और मारवाड़ आदि। यह खुश्की और रेतका प्राणी है।

वर्णन—यह एक प्रकारकी मछली है जो रेतमें रहती है और उँगलीके बराबर या उससे कुछ अधिक मोटी होती है। देखनेमें यह गिरगिटके समान होती, किंतु इसकी त्वचा बहुत चमकदार, और चिकनी कड़ी होती है। यह रेतमें इस प्रकार चलती है जैसे जलमें साधारण मछलियाँ। इसे एक सिर, धड़के बराबर लंबी और बेलनाकार पूँछ और चार पैर होते हैं। इसका पेट फाड़कर और अन्त्रादिसे शुद्ध करके नमक लगा-सुखाकर रखते हैं। सूखने पर यह अधिकतया बिना सिर-पैरकी मछलीके समान मालूम होता है। यह हलके भूरे रंगका तथा लगभग ६ इंच

लम्बा होता है और इसकी पीठपर हलका स्याही मायल-भूरा जालनुमा चिह्न और लम्बाईके रुख धब्बेदार भूरी रेखायें होती हैं। पेट सेहरोंसे आच्छादित होता है। माजूनोंमें यह सकंकूरके स्थानमें काम देता है।

रासायनिक संगठन—इसमें काफी प्रमाणमें भास्वर (फॉस्फरस) होता है।

कल्प तथा योग—माजून रेगमाही।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—नाड़ीबलदायक, उत्तेजक, वाजीकर तथा सामान्य दौर्बल्य, शुक्रमेह एवं शुक्राल्पता निवारक है। उपयोग-अंडेकी जर्दीके साथ इसका उपयोग परम वाजीकर है। अतः बाजीकरण योगोंमें इसे डालते हैं। यह शिश्नदार्ढ्यकर, शिश्नोच्छ्रायकारक, अत्यंत कामवर्धक और वाजीकरण चिकित्सामें सर्वोपरि है।[1] अहितकर-आमाशयको। निवारण-नमक लगाकर सुखाना। मात्रा-मसीकृत वा भस्म ३०० मि० ग्रा० से ६०० मि० ग्रा० (२॥ से ४ रत्ती)।

रोहू

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **मत्स्य-वर्ग** (Class : Pisces) :

काइप्रिनिफोर्मीज-गण (Order : Cypriniformes) : **फैमिली : काइप्रिनिडो** (Family : Cyprinidae)

नाम—(हिं०) रेहू, रोही, रोहू; (अ०) शुबात्, शबूत; (फा०) शबूद; (सं०) रोहि(ही)त(क), मत्स्यराज; (बं०) रुइ माछ, रोहित मच्छ (मच्छी); (ता०; ते०) एरमीनु; (ले०) लोबिया रोहू *(Lobea rohu, Labeo rohita (rohu)* Ham. & Buch. (साइप्रिनस रोहिता *Cyprinus rohita)*; (अं०) रोही या रोहितका फिश (Rohee or Rohitaka fish);

वर्णन—एक प्रसिद्ध मछली जिसका उदर, मुख, नेत्र तथा अगल-बगलके छोटे-छोटे पंख (डैने) ये सब रक्तवर्णका हो और पूँछ काली हो। इसके सेहरे बड़े, गोल और सदल होते हैं। पुरानी रोहू मछली भारी और पुरुषके बराबर बड़ी हो जाती है।

उपयुक्त अंग-मांस और पित्त।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रोहू मस्तिष्क-बलदायक (मेध्य) और वाजीकर है तथा सांद्ररक्त उत्पन्न करता एवं रदीउल्कैमूस है। अहितकर-अग्निको मन्द करता (आमाशयको दुर्बल) है। यदि भली-भांति न पचे तो कफ उत्पन्न करता है। निवारण-अदरक और उष्णवीर्य द्रव्य। प्रतिनिधि-बजरिया मछली।

आयुर्वेदीय मत—रोहू मछली सेवार तृण (शष्प) और शैव(वा)लका आहार करनेके कारण तथा न सोनेके कारण दीपनीय, लघु या पचनेमें हलकी (काश्यप) तथा अत्यधिक बलकारक (च० सू० अ० २७), अनुरसमें कषाय, तथा वायुनाशक है और पित्तको अधिक प्रकुपित नहीं करता (किंचित् पित्तकारक) है। (सु० सू० अ० ४६)। यह वीर्यवर्धक, अर्दितवात (लकवा)को दूर करनेवाला, आरंभमें स्वादिष्ट अन्तमें कषायरसयुक्त तथा मुण्ड ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको दूर करनेवाला होता है। (भा० प्र०)। आयुर्वेदके मतसे रोहू मछली मछलियोंमें सर्वश्रेष्ठ मानी गई है—रोहितो मत्स्यानाम्। (चरक सूत्र अ० २५)। लावरोहितगोधैणाः स्वे स्वे वर्गे वराः परम्। (अष्टांगहृदय सूत्र ६)। श्रेष्ठो मत्स्येषु रोहिताः। (काश्यप खिलस्थान अ० २४)।

लटोरा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) :

पास्सेरीफार्मीज-गण (Order : Passeriformes) : **फैमिली : लैनिडो** (Family : Lanidae)

---

[1] रसरत्नाकर, रसायनखण्ड अ० ६ में लिखा है—रेतकी मछली (बालुकासंभवमत्स्य)को घीमें भुनकर खानेसे नपुंसकको भी कामोत्तेजना होती है और वीर्यस्तम्भ होता है।

नाम—(हिं०, देश०) लटोरा; (अ०) सुरद; (ले०) लैनियस एक्सूबिटर (*Lanius exubitor* Linn.), (२) लैनियस विट्टेट्स(*Lanius vittatus*); (अं०) दि इंडियन ग्रे-श्राइक (The Indian Grey Shrike), दि बेकीकुल श्राइक।

वर्णन—एक पक्षी जिसका गर्दन और मुँह काला, डैने नीलापन लिए हुए भूरे और दुम काली होती है। इसके कई भेद होते हैं। जैसे—मटिया, कजला, दूदिया, खरखल आदि।

प्रकृति—मांस गरम और रूक्ष होता है,

गुण-कर्म तथा उपयोग—शरीर एवं संधिगत वेदना और गृध्रसीमें इसका मांसरस उपकारक है। इसकी चर्बी मलनेसे भी उक्त लाभ होता है। मांस उष्ण या पित्तल प्रकृतिके लिये अहितकर है।

लकड़बग्घा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
क्रव्यभुज्-गण (Order : Carnivora) : **फैमिलो : हाइनिडी** (Family : Hyaenidae)

नाम—(हिं०) लकड़बग्घा (बग्गा), लग्घड़, ज(च) रख, डाइनका घोड़ा, हुंडार; (अ०) ज़बुअ (नर = ज़वुआन, मादा = जबुआन:), ज़बुअ अर्जा; (फा०) क़फ्तार, चर्ख़; (ले०) हाइना हाइना (*Hyaena hyaena*); (अं०) दि स्ट्राइप्ड हाइना (The Striped Hyaena)।

वर्णन—एक मांसाहारी जंगली जन्तु जो भेड़ियेसे कुछ बड़ा होता है। यह कुत्तोंका मांस बहुत पसन्द करता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके अन्तमें ही नहीं अपितु तीसरे दर्जेके आदि तक गरम और दूसरे दर्जेके आदि तक रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पागल कुत्ताके काटे हुए को इसके अगले दाँत घिसकर पिलानेसे लाभ होता है। फरहंग आसफियाके संकलयिताने अपना बारंबारका अनुभव पैसा अखबारमें इस प्रकार छपवाया है कि पागल कुत्ताके काटे हुएको इसका जबड़ा, दाँत, दाढ़ और कुचली आदि घिसकर ६ माशा घिस्सा मिला देना चाहिये। पुनः मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए। जिस समय इसको कुत्ता काटे हुए मनुष्यके मुँहके सामने ले जाते हैं, तुरंत मुँह खोल देता है और गट-गट पी जाता है। इसको चाहे पानी पिला देवें, न पानीसे भय खाता है और न पानी पीना छोड़ता है तथा पुनः हड़क नहीं उठती। एक व्यक्तिने पागल कुत्ता काटे हुए (जलसंत्रासरोगी)को लकड़बग्घाका जबड़ा घिसकर तीन-तीन चार-चार माशा करके दिनमें कई बार विलाया। लाभ प्रथम बारमें दी प्रतीत हुआ। परन्तु रोगका आक्रमण पूर्ण हो चुका था अतएव एक समय प्रतिदिन प्रायः दस बारह दिन तक पिलाये गया। मांसमें सांद्रत्व एवं स्निग्धत्व (रतूबत) अधिक है। यह वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास) और वहशत, आमाशयगत शीत और कफज एवं सौदाजन्य ज्वरको दूर करता, चेहरेका रंग निखारता तथा हर प्रकारके सर्दीके दर्दोंमें मांसको जलमें पकाकर उसमें अवगाहन (आबजन) करनेसे लाभ होता है। इसका रक्त पीनेसे उन्माद दूर होता है; और कानका मैल १॥। माशा खानेसे उन्माद हो जाता है। इसका पित्त नेत्रमें लगानेसे जाला कट जाता है तथा धुंध, नेत्रस्राव, (दमआ) और मोतियाबिन्द आराम हो जाता है, तथा दृष्टि तीव्र हो जाती है। १॥। माशा पित्त खानेसे कफ, पित्त और सौदा मलद्वारा निकल जाते हैं। पड़वालके बाल उखाड़कर उस जगह इसका पित्त लगानेसे पुनः बाल निकलना बन्द हो जाता है। यदि ऐसा करें कि इसके पित्तके बराबर उर्कहवान (बावूना)का तेल लेकर दोनोंको मिलाकर ताँबेके बर्तनमें रख देवें और प्रति मासमें दो दिन नेत्रमें लगाया करें तो इससे जाला अवश्य कट जायगा और मोतियाबिन्द जाता रहेगा। यह तेल जितना पुराना हो जाता है उतना अधिक लाभ पहुँचाता है। इसका जिगर (यकृत्) जलाकर लगानेसे भी दृष्टिशक्ति बढ़ती है। शेरकी चर्बीके साथ इसका पित्त चेहरेपर मलनेसे झाइं दूर हो

जाती । बाल उखाड़कर इसका पित्त लगानेसे पुनः बाल नहीं निकलते । इसकी या कुत्तेकी विष्ठा आस (विलायतीमें हदी)के तेलमें मिलाकर बालमूंड़े हुए स्थानपर लगानेसे भी बाल नहीं निकलते । इसके चमड़ेकी डोलची बनाकर उसमें पानी भरकर जलसंत्रासके रोगीको पिलानेसे वह पानीसे नहीं डरता । इसकी मादाके चमड़े (खाल)पर बैठनेसे या इसके चूतड़ोंके चमड़ेको जलाकर जैतूनके तेलमें मिलाकर गुदामें धारण (हुमूल) करने या गुदापर मलनेसे गुदमैथुन करानेकी इच्छा रूप रोग (मर्ज उब्नः) उत्पन्न हो जाता है । इसके विपरीत नरके चमड़ेका उसी प्रकार प्रयोग करनेसे उक्त रोग नष्ट हो जाता हैं । इसकी मादाकी खाल गर्भिणीके उदरपर बांधनेसे गर्भपात नहीं होता । किसी-ग्रन्थमें लिखा है कि लकड़बग्घाकी सीधी जाँघके बाल जलाकर गुदामें धारण करनेसे और उसपर लगानेसे उसी काल गुदमैथुन करानेकी इच्छा रूप रोग (इल्लत उब्नः) मिट जाता है । इसकी पिंडलीकी हड्डीकी मज्जा जैतूनके तेलमें मिलाकर मलनेसे वातरक्तमें बड़ा लाभ होता है । जीवित लकड़बग्घेको हाथ-पैर बांधकर बड़ीसी देग़में डालकर पानी, सोआ, चना और उपयुक्त तेल भरकर मुंह बंदकर इतना पकायें कि वह गल जाय । पुनः छानकर उस पानीको किसी बर्तनमें भरकर जब वह इतना गरम रहे कि रोगी सहन कर सके रोगीको उससे ठंढा होने तक अवगाह (आबजन) करायें । इससे अपतानक (तमद्दुद व कुज़ाज़), अंगघात, आमवात, गृध्रसीवात, वातरक्त, दर्द वजउल्वरिक और सांद्र वायुमें बड़ा उपकार होता है । इसका नमक लगाया हुआ वृषण ४॥ माशाकी मात्रामें पीसकर गरम पानीके साथ फाँकनेसे यकृच्छूलमें लाभ होता है । **अहितकर**–मांस फेफड़ेको हानि पहुँचाता है । **निवारण**–शहद । **प्रतिनिधि**–चर्बीका लोमड़ीकी चर्बी; और पित्तका चकोरका पित्त ।

लवा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **हेमीपोडी-गण** (Order : Hemipodii) : **फैमिली : टूर्निसिडी** (Family : Turnicidae)

नाम—(हिं०) लवा, लावंका, लावका; (अ०) तद्‌रज; (फा०) तद्‌रव; (सं०) लव (क), लाव (क), लाव (वा); (बं०) बटेरपाखी; (ता०) लबु बामेट्टा; (ले०) टूर्निक्स मैकुलेटुस् (*Turnix maculatus*); (२) टूर्निक्स डूस्सूमिएरी (T. dussumieri); (अं०) इंडियन बटन-क्वेल (Indian Button-Quail), (२) दि लिटिल बटन-क्वेल (The Little Button-Quail) ।

वर्णन—तीतरकी जातिका एक पक्षी जो तीतरसे बहुत छोटा और बटेरके बराबर होता है । पर चित्रित होता है और दोनों ओर पैरोंमें तीतरकी तरह काँटे होते हैं ।

प्रकृति—हकीम शरीफ खाँके मतसे अनुष्णाशीत (मोतदिल) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस दीपन, अत्यंत क्षुधावर्धक, मस्तिष्क एवं यकृत्को बल देनेवाला (मेध्य एवं यकृद्वलदायक) और क्षीणकाय लोगोंके लिये सात्म्य आहार है तथा अवरोधोद्‌घाटन करता, सांद्र वायु एवं शूल (कुलंज)का नाश करता और वाजीकरण करता है । हकीम शरीफ खाँके कथनानुसार इसका मांस लघु एवं तीतर और बटेरके मांससे (लतीफ) है । मुजर्रबात अकबरीके लेखका कथन है कि एक साठ वर्षीय वृद्ध मनुष्यको बड़ी सख्त पेचिश थी और हाथ-पैर पर सूजन हो गई थी । कितनी ही दवा करते थे, आराम नहीं होता था । दो-तीन मास इसी प्रकार व्यतीत हुए । जब तक पोस्तेकी डोंडी (पोस्त खशखाश) देते कमी रहती, बंदकर देनेपर पुनः पेचिश हो जाती । अन्ततः उसे अन्नाहार देना बंद कर दिया गया, और लवाके कबाबोंपर रखा गया । प्रथम दिन एक लवा दिया गया और क्रमशः सात लवों तक नौबत पहुँच गई । तीन उँगलियोंकी चुटकीमें जितना अजवायन आती उसे कबाबोंके साथ खिलाते थे और कभी-कभी मीठे फालसाका पानी देते थे । इससे रोगीको पूर्ण लाभ हो गया । **अहितकर**—पित्तल प्रकृतियोंको शिरःशूल, मतांतरसे तृषा, खाज और फुंसियां उत्पन्न करता है । वैद्योंके मतसे किंचित् तीक्ष्ण एवं तुंद है । **निवारण**—तेल या अम्ल द्रव्य । वैद्योंके मतसे तेल और लहसुन ।

आयुर्वेदीय मत—लवा (लाव) रसमें कषाय-मधुर, विपाकमें कटु, हलका, संग्राही, अग्निदीपक, और सन्निपातको शांत करनेवाला (सन्निपातमें प्रशस्त) है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। भावप्रकाशमें स्निग्ध, विषनाशक (गरघ्न) और हितकर (पथ्य) भी लिखा है।

लाख

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :
फैमिली : लैक्कीफेर (Family : Laccifer)

नाम—(हिं०) लाख, लाह, लाही; (अ०) लुक्; (फा०) लाक; (सं०) सिलाची (अथर्व०) लाक्षा, कीटजा, कृमिजा, जंतुका, रक्तमातृका; (बम्ब०, म०, कों०) ता० लाख; (गु०) लाख; (क, ते०, मल०), लाक्षा; (ले०) लैक्किफेर (टेकार्डिआ) लक्का *Laccifer (Tachardia) lacca*; (अं०) लाक्ष (Lac), लक्का (Lacca)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णनादि—एक प्रकारका प्रसिद्ध रालदार, लाल वा गहरे भूरा रंगका पदार्थ जो पलास, पीपल, बरगद, बेर, कुसुम आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंकी टहनियोंपर कई प्रकारके लाल रंगके बहुत छोटे-छोटे कीड़ों (Cateria lacca etc.)से बनता है। इसका स्वाद तिक्त एवं बुरा होता है। लाखको पानीमें पकाकर कई प्रकारके विभिन्न लाल रंग बनाये जाते हैं और उनमेंसे हर एकका अलग-अलग नाम रखा जाता है। अस्तु, (१) लाखके काढ़ेको जमाकर बनाये हुये रंगकी गुलाल; (२) काढ़ेमें रूई भिगोकर बनाई हुई बारीक-बारीक टिकिआओंको महावर या अलता (अलक्तक) और (३) पकाई हुई लाखकी सीठीके बनाए हुए बारीक-बारीक पत्तरोंको चपड़ा (Shell-Lac or Shellac) कहते हैं। यदि लाखको अग्निपर पिघलाकर किसी बरतनमें गरम जलमें टपकाएँ जिसमें धूलिकणादि तलस्थित हो जायँ और साफ लाख जलके ऊपर आ जाय, तो उसको लुक मग़सूल (धोई हुई लाख) कहते हैं।

कल्प तथा योग—दवाए लुक, कुर्सलुक।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म—लाख लेखन एवं विलयन है; शरीका शोधन करती और रक्तको बंद करती है। यह श्लेष्मनिःसारक और शरीरके द्रवोंको अभिशोषण करनेवाली, और यकृत् तथा आमाशयको शक्ति देती है तथा विशेषतः रक्तष्ठीवनको बंद करनेवाली है। उपयोग—लाख सर्वांगशोथ, जलोदर, कामला, कास और श्वासमें प्रयुक्तकी जाती है। इसे यकृत् और आमाशयके कई रोगोंमें खिलाते हैं। रक्तष्ठीवन बंद करनेके लिए आध माशासे एक माशा तक धोई हुई लाख बकरीके ताजे दूधके साथ खिलाते हैं। द्रवशोषणकर्ता होनेके कारण शरीरको कृश करनेके लिए आध माशासे २ माशे तक खिलावे हैं। अहितकर—प्लीहा रोगमें। निवारण—मस्तगी। प्रतिनिधि—वंशलोचन। मात्रा—०.५ ग्रामसे ० ग्राम ($\frac{1}{2}$ मासासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—लाख कड़वी, कसैली, शीतवीर्य, अनुष्ण, स्निग्ध, हलकी, बलकारक, शरीरके वर्णको उज्ज्वल करनेवाली, भग्नसन्धानकारक तथा कफ, पित्त रक्तपित्त, हिचकी, खाँसी, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, क्रिमि, कुष्ठ, विष, रक्तदोष, विषज्वर, शोष, नासारोग, त्वग्दोष और दाहको दूर करनेवाली है। (नि० सं०; नि० रत्नाकर)। महावर (अलक्तक) रजोरोधक तथा रक्तपित्त, क्षय, प्रदर और रक्तातिसारको दूर करनेवाली है। (आमेय संहिता)। पीपलकी लाख सबमें श्रेष्ठ होती है। लाखका रस मधुके साथ देनेसे रक्तवमन बंद होता है (आ० वि०)।

लाल

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) :
पास्सेरिफार्मीज-गण (Order : Passeriformes) : **फैमिली : प्लोक्किडी** (Family : Ploccidae)

नाम—(हिं०) लाल; (लें०) ऐमेन्डेवा ऐमेन्डेवा (*Amandava amandava*); (अं०) दि इंडियन रेड-मुनिया या वैक्स-बिल (The Indian Red Munia or Wax-bill)। भेद—यूरोलांका पंक्चुलेटा *Uroloncha punctulata*; (अं०) दि स्पाटेड मुनिया (The Spotted Munia)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध, चटकसे छोटी चिड़िया जिसका शरीर कुछ भूरापन लिये लाल रंगका होता है और जिसपर छोटी-छोटी सफेद बुन्दकियाँ पड़ी रहती हैं। नरको 'लाल' और मादाको 'मुनिया' या 'चित्ती' कहते हैं। मादा एक रंग होती है। चोंच उसकी लाल होती है। शरद ऋतुमें इसके पर गिरते हैं।

प्रकृति—गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस शीघ्र आमाशयसे नीचे उतर जाता (सरीउल् इन्हेदार) है। इसका मांसरस यकृत् एवं वृक्कके रोगोंमें लाभकारी है। बालापस्मारमें इसका थोड़ा-सा रक्त बालकको चटानेसे लाभ होता है। इसको भूनकर दमाके रोगीको खिलानेसे बड़ा लाभ होता है।

लोमड़ी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
क्रव्यभुज्-गण (Order : Carnivora) : **फैमिली : कैनिडी** (Family : Canidae)

नाम—(हिं०) लोमड़ी, लोमर (री), लोखंडी, लोम; (अ०) सालब; (फा०) रोबाह; (सं०) लोपाक (सु०) : (लें०) वल्पीज प्रजातिकी जातियाँ (*Vulpes Spp.*)

वर्णन—कुत्ते या गीदड़की जातिका एक जंतु जो ऊँचाईमें कुत्तेसे छोटा होता है, पर विस्तारमें लंबा। उत्तम वह है जो सफेद हो।

प्रकृति—इसका मांस खरहेके मांसके तुल्य, मतांतरसे अनुष्णाशीत, किसी-किसीके मतसे गरम एवं रूक्ष है। इसका पोस्तीन गर्मीमें समूरके बराबर है। साहेब जामा ने इसे अन्य समस्त जंतु-पोस्तीनों से अधिक गरम बताया है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतल एवं स्निग्ध प्रकृतिवालों तथा वृद्धों को इसके मांसका सेवन लाभकारी है। यह कामोद्दीपक है तथा जलोदर, अर्दित और कुष्ट रोगियोंको लाभकारी और अत्यधिक शीतमें भी गुणकारी है। जीवित लोमड़ीको पकड़कर उसके हाथ-पैर बाँध कर पानीमें डालकर इतना पकायें कि बिल्कुल गलकर रेशा-रेशा हो जाय। उस पानी के परिषेक (धारने)से वातरक्त एवं गठिया आराम हो जाता है। उस काढ़ेमें बैठने (अवगाहन)से संधिगत कठोरता जाती रहती है। इसमें जैतूनका तेल मिला लेनेसे जीवित लोमड़ीको जैतूनके तेलमें इतना पकाते हैं कि वह जलकर काली पड़ जाती है। पुनः उसको छानकर तेल रख लेवें। इस तेलके मलनेसे हाथ पैरका दर्द दूर होता तथा थकावट मिटती है। इसे शिशुओंके शरीरपर मलनेसे वे शीघ्र चलने लगते हैं। शैखने इसके काढ़ेसे अवगाहन (आबजन) एवं परिषेक (धारने) करनेसे पूर्व विरेचन द्वारा शरीरके पूर्णतया शुद्ध कर लेने तथा अवगाह एवं परिषेकोपरांत और बलवान् विलयन-औषधिका लेप करनेकी सलाह दी है। इसकी चर्बी किसी तेलमें पिघलाकर गठियापर मलनेसे लाभ होता है और कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है, तथा इसे निरंतर कानमें डालनेसे वधिरता जाती रहती है। यात्रामें इसकी चर्बी हाथ-पैर पर मलनेसे शीतसे होनेवाले विकारसे बचाव होता है। गाजरूनीके लेखानुसार यदि कठिन शीतमें शिशुओंको शीत लग जाय तथा उससे उनके हाथ-पैर पर सूजन आ जाय तो उस अवस्थामें लोमड़ीकी चर्बी पिघलाकर कईबार मलनेसे बड़ा लाभ होता है। परन्तु इसकी मालिशसे पूर्व शरीरका संशोधन कर लेना चाहिए, क्योंकि चर्बीकी मालिश कभी गर्मी और आकर्षणी शक्तिके कारण दोषोंको उतना विलीन नहीं कर सकती जितना वहाँ और खींच लेती है। इसकी चर्बी हाथ-पैर पर लगानेसे हानि नहीं करती तथा इसकी चर्बीपर पिस्सू एकत्र हो जाते हैं। इसका पित्ता,

उशक और करफ्सका पानी तीनों समप्रमाण मिलाकर कुष्ठ रोगके प्रारंभमें रोगीको नस्य देने तथा वातरक्तपर इसका पित्ता लगाने से बड़ा लाभ होता है। इसका पित्ता सूँघनेसे उन्माद आराम होता है। इसके वृषण कालीमिर्च और मद्यके साथ खानेसे पीछेकी ओर होनेवाला आक्षेप आराम होता है। इसके वृषण खानेसे मृगीमें भी उपकार होता है। इसके वृषण सुखा पीसकर ३॥ माशा खालेने से मैथुनशक्ति बढ़ती है। इसका फेफड़ा बालखोरेंपर लगानेसे बालनिकल आते हैं। इसका फेफड़ा सुखा पीसकर ४॥ माशे फाँका करनेसे खाँसी और दमा जाता रहता है। इसका यकृत् ४॥ माशे मद्यमें मिलाकर पीनेसे उसी क्षण प्लीहाशूल आराम हो जाता है। जिस व्यक्ति के चँदियाके बाल गिर जायँ उसे उसपर इसका रक्त लगानेसे वह पुनः निकल आते हैं। आगसे जले हुए स्थान, नासूर या किसी घावपर इसकी जलाई हुई खालका चूरन बुरकनेसे लाभहोता है। लोमड़ीकी कुचलियाँ लटकानेसे नींदमें दाँत पीसना बंद हो जाता है तथा इससे प्लीहा शोथ और बालापस्मार रोग भी मिट जाता है। इब्नजहरके लेखानुसार लोमड़ीकी विष्ठा (मल) सुखाकर खिलानेसे (रुबू) आराम हो जाता है। इसकी विष्ठा गुलरोगनमें मिलाकर स्त्री संगके समय शिश्नमुण्डपर लगा लेनेसे प्रबल कामेच्छा होती है। कण्ठके भीतर नोंक चिमट जाय, तो इसके बाल सुलगाकर मुंह खोलकर धूआँ पहुँचानेसे छुटकर बाहर आ जाती है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—सिकंजबीन, खट्टा अनार और दूध। **मात्रा**—मांस ३.५ ग्रामसे ४.५ ग्राम (३॥-४॥ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—लोमड़ी उन्मादरोगमें हितकारी है (भै० र० उन्मादाधिकार), अम्लरसयुक्त लोमड़ीका (लोपाक) शोरवा तथा इसी प्रकार कछुआ, मोर, तीतर, बटेर और मुरगेका शोरवा अम्लरस एवं घृतयुक्त मलक्षय को दूर करता है (च० चि० अ० १९)।

शंख

मोलस्का-संघ (Phylum : Mollusca) : **गैस्ट्रोपोडा-वर्ग** (Class : Gastropoda)

मोनोटोकार्डिया-गण (Order : Monotocardia) : **स्टेनोग्लॉसा-उपगण** (Sub-order : Stenoglossa)

नाम—(हिं०, बं०) शंख; (अ०) शङ्ख, नाकूस, वदअ, हलजून; (फा०) सफेद मोहरा, कजक; (सं०) शङ्ख, कम्बु; (बम्ब० गु०, म० कों० कना०) शङ्ख; (बं०) शाँख; (म०) शंखो; (ले०) टर्बिनेला रेपा (Turbinella rapa), जैन्कस पायरम् (*Xanchus pyrum*); (अं०) कोञ्च (Conch), कोञ्चशेल (Conch shell)। छोटे शंख (क्षुल्लक)को नेटिका (Natica) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतीय समुद्रतट।

वर्णन—शंख घोंघाजातीय समुद्रमें होनेवाले प्राणिका प्रसिद्ध अस्थिमय कोश है, जो घोंघेसे बड़ा और मोटा होता है। जो शंख बड़ा, वजनदार, श्वेतवर्ण और छिद्ररहित हो उसको औषधके काममें लेना चाहिए।

उपयुक्त अंग—संपूर्ण शंख तथा इसकी भस्म (यह सिलिकेट् ऑफ मैग्नेशिया है), शंखनाभि, शंखकीट (Fish of the conch)।

रासायनिक अंग—शंखकी रचना अन्य प्राणियोंकी अस्थियोंके समान होती है। किंतु अस्थियोंकी अपेक्षया इनमें चूना और फॉस्फोरस अधिक प्रमाणमें होता है। इसकी भस्ममें फॉस्फेट ऑफ लाइम अधिक प्रमाणमें पाया जाता है।

गुण-कर्म—शंख भस्म स्वेदल, मूत्रजनन (मुदिर्र), अस्थि-नाड़ीबलदायक तथा विषोंका अगद है। **उपयोग**—इसे जलाकर नेत्ररोगोंमें प्रयुक्त करते हैं। रोग चाहे शीतल हों वा उष्ण इसकी भस्म लगभग समस्त रोगोंमें लाभकारी है। कुशल चिकित्सक उचित अनुपानके साथ इसका प्रत्येक रोगमें उपयोग कर सकता है। यह विषैले पदार्थोंको विलीन करके शरीरसे निकाल देता है। अतएव उन समस्त रोगोंके लिए जिनके कारण खूनमें विषाक्तता

आ जाय, लाभकारी है। स्वेदल और मूत्रजनन होनेके बावजूद बल्य भी है। अधिकतया विविध प्रकारके ज्वरों विशेषकर राजयक्ष्मा और कुक्कुर एवं सर्पदंशका अगद है। महामारी जैसे प्लेग आदिके विष निवारणके लिए भी प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त शुक्रप्रमेह, औपसर्गिक पूयमेह, योनिस्राव, अर्श, नासूर, नाड़ीशैथिल्य, संधिवात, गृध्रसी, वातरक्त, आतशक, अश्मरी, आर्त्तवदोष तथा रक्तदुष्टि, आदिके लिए गुणकारी है।

आयुर्वेदीय मत—शंख शीत (बाह्य प्रयोगसे), क्षार, कटुविपाक, उष्णवीर्य, चक्षुष्य, वर्ण्य, ग्राही तथा पेटका दर्द (शूल), रक्तपित्त, ग्रहणीरोग, आँखकी फूली और तारुण्यपिटिका (मुँहाँसा)को दूर करनेवाला है (ध० नि०; भा० प्र०)। इनके अतिरिक अजीर्ण, अम्लपित्त, यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि, कास-श्वास और आमवातमें योग्य अनुपानके साथ शंखभस्म (२-४ रत्ती)का प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है।

शंख और कूर्म आदि कोशस्थ एवं (मकर आदि) पादिन वर्गके जीव (जलजन्तु) रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, पित्तविकारमें हितकर, विष्ठाकारक, कफवर्धक और वातनाशक है। (सु० सू० अ० ४६/११०)। भावप्रकाशमें बृंहण, बल्य और वृष्य भी लिखा है।

शकरतीग़ाल (शकर तगर)

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :

हेमिप्टेरा-गण (Order : Hemiptera)

वर्णन—यह 'तीग़ाल' नामी बड़ी मक्खी और भिड़की तरहके एक कीटका घर है जिसको वह अपनी लालासे बनाता है। स्वाद निशास्तकी तरह और चाबनेके पश्चात् मुखमें चरपराहटकी अनुभूति छोड़ जाता है। यह ताजा होनेकी दशामें मधुर होता है किन्तु पुराना होनेकी दशामें इसकी मधुरता बहुत कम हो जाती है। इसके विषमाकार, मटियाले सफेद टुकड़े होते हैं। यह अन्दरसे खोखला होता है जिसमें काले रंगका एक मृत कीट होता है। शकरतीगाल संभवतः बिसुनरीका छात अर्थात् लखौरी है।

प्रकृति—स्निग्धताप्रधान (मतांतरसे शीत लिए) समशीतोष्ण है।

गुण-कर्ण—पिच्छिल तथा उरोमार्दवकर है। इसका प्रचुर उपयोग आमाशयको शिथिल करनेवाला तथा उत्क्लेशजनक है। खांसी एवं कंठके खरत्वको दूर करनेवाला है। उपयोग-पिच्छिल एवं उरोमार्दवकर होनेसे वायुप्रणालियों तथा अन्नमार्गके खरत्व, अन्नमार्गशोथ और सूखी खांसीको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह स्वरशुद्धिके लिए तथा गलशोष एवं आमाशयशोषमें प्रयुक्त होता है। बहुधा शहद या किसी शर्बतमें मिलाकर स्वतंत्रतया या किसी अन्य औषधिके साथ उपयोग किया जाता है। अहितकर-उसका अधिक सेवन उत्क्लेशजनक है। निवारण-यवासशर्करा। प्रतिनिधि-मिश्री। मात्रा-१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

नव्यमत—आक्षेपहर होनेसे अपतन्त्रक, वातरक्त, वृक्करोग, शोथ, कामला और औपसर्गिक पूयमेह में गुणकारी है। (इं० मे० मे० भाग २ पृ० १६६)।

शहद

आर्थ्रोपोडा-संघ (Phylum : Arthropoda) : **कीट-वर्ग** (Class : Insecta) :

हीमेनोप्टेरा-गण (Order : Hymenoptera) : **फैमिली : एपिडी** (Family : Apidae)

नाम—शहद (हिं०) शहद (त), मध; (अ०) अस्ल, अस्लुन्नहल; (फा०) शहद, अंगवीन; (सं०) मधु; (द०) शहद; (बं०) मोधु; (म०, गु०) मध; (सिं०) माखी; (ले०) मेल (Mel); (अं०) हनी (Honey)। मोम (हिं०, फा०, बं०, द०) मोम; (अ०, फा०) मैन; (यू०) केरूस; (सं०) सिक्थ (क), मधूच्छिष्ठ; (म०, कना०) मेण; (गु०) मीण; (मा०) मैन; (ले०) सेरा (Cera); (अं०) वैक्स (Wax)। भेद—(१) पीला अश्शम्उल् अस्फ़र;

(फा०) मोमजर्द; (अं०) येलो बीज-वैक्स (Yellow-bees-wax); (लै०) सेरा फ्लेवा (Cera flava) और (२) सफेद (अ०) अश्शम्उल् अब्यज़; (फा०) मोम सफ़ेद; (लै०) सेरा ऐल्बा (Cera alba); (अं०) ह्वाइट बीज-वैक्स (White bees-wax)।

वक्तव्य—इसकी लेटिन संज्ञा 'सेरा' इसकी यूनानी संज्ञा 'सेरूससे' जिसका अरबी उच्चारण 'कीरूस' है, व्युत्पन्न है। शमअ अर्थात् मोमकी मोमबत्तियाँ बनाकर जलाई जाती हैं, इसलिए अरब और अजममें मोमबत्तीको भी शमअ कहते हैं।

पहले यह ख्याल था कि जिस प्रकार शहदकी मक्खी कतिपय उद्भिज्जोंसे शहद प्राप्त करती है, उसी प्रकार मोमको भी कतिपय उद्भिज्जोंसे प्राप्त करती है। परन्तु बादमें ज्ञान हुआ कि मधुमक्खीके उदरके आस-पास जो कोषाकार ग्रंथियाँ हैं, उनसे मलरूपमें मोम निकलती है।

पीली मोमको पानीमें पिघलाकर वायु एवं प्रकाशमें रखनेसे सफेद मोम तैयार किया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ है जिसको कई प्रकारकी मधुमक्खियाँ जिनको शहदकी मक्खियाँ मधुमक्खी (हिं०), मधुमक्षिका (सं०), नहला (अं०) एपिस मेलिफिका (*Apis mellifica* Linn.) या एपिस इण्डिका (*Apis indica*) आदि; हनी बी (Honey-bee) (अं०) कहते हैं, अनेक प्रकारके फूलोंके मकरन्दसे संग्रह करके अपने छत्तों (Bee-hive, Honey-comb) में रखती है। लाल और सफेद रंगके भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इनमें जो लाल, स्वच्छ, सुगंधित, साधारण चाशनीयुक्त, लेसदार, निर्मल और खूब मधुर हो, वह शहद सर्वोत्तम है। ऐसा मधु बड़ी मक्खियोंका होता है। हिमालयकी पहाड़ियों अथवा छोटी मक्खियोंका मधु सफेद रंगका होता है। मधुके गंध और स्वाद परसे किन पुष्योंसे वह मधु संगृहीत हुआ है उसका अनुमान हो सकता है। मधु पुराना होनेपर दानेदार और कभी-कभी मिश्रीके समान हो जाता है। उसको मधुशर्करा (सु०) कहते हैं। छत्तेमेंसे शहदको निचोड़ लेनेके बाद उस छत्तेको पानीमें पकाकर छान लेनेसे मोम प्राप्त होता है। यह मधुमक्खियोंकी उदरस्थ कोषाकार ग्रन्थियोंका मल है।

मधुकी शोधन-विधि—एक जल भरे हुए पात्रके बीचमें शहद भरा हुआ पात्र रखकर जलको इतना गरम करें कि शहद पतला हो जाय। बाद नीचे उतारकर ऊपरका गाढ़ा भाग चम्मचसे निकालकर ऊनी कपड़े (फलालेन)से छाननेसे मधु साफ हो जाता है। परीक्षा—यद्यपि असली शहदकी पहिचान तो उसका विशेष स्वाद ही है, तथापि कुछ अन्य विश्वस्त परीक्षायें यहां दी जा रही हैं। यथा मधु भरे पात्रमें मक्खीको पकड़कर डुबो देवें। यदि वह निकलकर उड़ जाय तो मधुको असली और यदि वह निकल न सके तथा उसके सारे शरीरमें शहद चिपक जाय तो उसे नकली समझना छाहिए। अथवा ५० घन सें० पानीमें ३ ग्राम पोटेशियम् आयोडाइड और १ ग्राम आयोडिन मिलाकर घोल तैयार करें। शहदमें भी बराबर पानी मिलाकर उसे पतला कर लेवें। इस पतले शहदको एक परखनलीमें लेकर उसमें उक्त घोलकी दो-चार बूँद छोड़े और खूब हिलाये। इससे शुद्ध होनेपर शहदका रंग नहीं बदलेगा। यदि शक्करकी चाशनी मिलाई गयी होगी तो शहदका रंग लाल या बैंगनी हो जायगा। उक्त घोलके बदले टिंक्चर आयोडीनकी बूँद भी डाल सकते हैं। अथवा काँचके एक ग्लासमें एक चम्मच शहद और एक चम्मच मेथीलेटेड स्पिरिट मिलाकर दोनोंको हिलायें। शहद शुद्ध होगा तो नीचे बैठ जायगा और स्पिरिट ऊपर उतराने लगेगी। शहद अशुद्ध होनेपर स्पिरिटका रंग दूध जैसा सफेद हो जायगा।

नकली शहद निर्माण-विधि—चीनीकी चाशनीमें एसेन्स आॅफ हनी मिलानेसे नकली शहद तैयार होता है।

रासायनिक संगठन—यह विभिन्न प्रकारकी शर्कराओंका एक यौगिक है। इसमें द्राक्षाशर्करा या ग्लूकोज अधिक राशिमें (औसतन् ७५%) होता है। इसके अतिरिक्त इसमें फलशर्करा (Levulose) और इक्षुशर्करा प्रभृति शर्कराएँ होती हैं। इनके अतिरिक्त इसमें मोम, गोंद, उत्पत् तैल, प्रोटीड्स, लवाब

(पिच्छा), रंजन द्रव्य, पिपीलिकाम्ल (फॉर्मिक एसिड), सुगंधि द्रव्य, राख, पुष्पपराग, भास्वर (फॉस्फरस), सुवा, अयस्, लोहक (मैंगेनीज), ताम्र, विटामिन्स (Vitamins), पिष्ट पदार्थोंका पचन करनेवाला एक पाचक विभेदीय किण्व (Diastatic ferment) तथा जल भी होता है। संक्षेपमें मनुष्यशरीरमें मिलनेवाले तथा मनुष्य शरीरके लिए हितकर प्रायः सर्व उपादान न्यूनाधिक मात्रामें मधुमें मिलते हैं। मधुमें जो शर्करा मिलती है वह एक शर्करेय (Mono-saccharide), अत्यन्त पचन सुलभ, अविदाहि, उत्तेजक, पोषक, बल्य और हृद्य है। इसलिए अग्निमांद्य, ज्वर, वमन, तृषा, अम्लोत्कर्ष (Acidosis), विषमयता (Toxaemia), मधुमेह, श्रान्तावस्था, हृदय-दौर्बल्य, हृदयावसाद (Collapse) इत्यादि अवस्थाओंमें मधु बहुत ही लाभदायक प्रतीत हुआ है। हृदयके लिए तो संप्रत मधुशर्करा (ग्लूकोज) एक प्रधान औषधि मानी जाती है और रुग्णावस्थामें हृदय दौर्बल्यको दूर करनेके लिए इसका उपयोग होता है। मधुमें जो अम्ल होते हैं उनके कारण वह कासश्वासादि श्वाससंस्थानके रोगोंके लिए हितकर होता है। संखिया, अंजन (Antimony), बिस्मथ (Bismauth), क्लोरोफार्म (Chloroform), कार्बनटेट्राक्लोराइड (Carbortetrachloride) आदि विषैले पदार्थोंका विषहरण करनेकी शक्ति मधुशर्करामें है। पाश्चात्य वैद्यकमें मधुशर्कराके उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। आशा है कि आयुर्वेदकी भाँति ही पाश्चात्यचिकित्सामें भी थोड़े दिनोंमें मधुके लिए ऊँचा स्थान मिल जायगा। असली मधुमें सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाय तो पुष्प पराग जरूर दिखाई पड़ते हैं। मोममें मायरिसीन (Myricin) लगभग ८०% और सीरोटिक एसिड (Cerotic acid) १५% ये दो प्रधान उपादान तथा सीरोलीन (Cerolein) लगभग ४% और सुगंधित एवं रंजक उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—अर्क मोम, रोगन मोम, कैरूती मुकव्वी,

शहद—

प्रकृति—ताजा शहद पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष) है। पुराना शहद तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म—कोथप्रतिबन्धक, लेखन, शोथपाचन-विलयन, बल्य तथा श्लेष्मनिस्सारक है। यह आहारपाचनमें सहायता करता, रक्तमें मीठे घटकोंकी वृद्धि करता, मलावरोध निवारण करता और विशेषतः कफज व्याधियों, जैसे—पक्षवध आदिमें लाभ करता है। **उपयोग**—औषधियोंको कोथ (सड़ने)से बचाने, उनका स्वाद रुचिकर बनाने तथा उनकी शक्ति स्थिर रखनेके लिए शहद प्रयुक्त होता है। सुतरां इसकी चाशनीमें जुवारिश, माजून और मुरब्बे बनाये जाते हैं। बल्य एवं वाजीकरणके लिए इसे दूधमें मिलाकर पिलाते हैं। कास और श्वासमें अकेले या उपयुक्त औषधि मिलाकर चटाते हैं। अर्दित और पक्षवधमें माउल्‌अस्ल (मध्वम्बु) पिलाते हैं। दुष्ट एवं प्रकोथयुक्त व्रणोंको शुद्ध करने और फोड़े-फुंसियोंको पकाकर फोड़नेके लिए इसे लगाते हैं। कतिपय त्वचाके रोगोंमें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका पतला लेप करते हैं दृष्टि-प्रसादनके लिए इसे नेत्रमें लगाते हैं। कानसे पीव बहनेकी दशामें शहदमें बत्तीआप्लुत करके उसपर सुहागे या अंजरूतका बारीक चूर्ण छिड़ककर कानमें रखते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिमें शिरः शूल एवं तृषा उत्पन्न करता है। **निवारण**—नीबूका रस, सिरका और अम्ल द्रव्य। **प्रतिनिधि**—दो शाब अंगूरी और पका छोहारा। **मात्रा**—२३ ग्राम से ४६ ग्राम (२ तोलेसे ४ तोले) तक।

मोम—

प्रकृति—अनुष्णाशीत, मतान्तरसे दूसरे दर्जेमें गरम और समस्निग्ध रूक्ष है।

गुण-कर्म—मोम कठिन शोथको विलीन एवं मृदु करनेवाला, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। **उपयोग**—मोमको अधिकतया मलहरोंमें प्रयुक्त करते हैं तथा अन्य औषधियोंके साथ इसकी कैरूती बनाकर वेदनाओंमें मालिश करते हैं। यह कठिन शोथोंके विलयन एवं मृदुकरणके लिए भी प्रयुक्त होता है। शुष्क कास, स्वरभंगमें

स्वरशोधनार्थ और छातीके दर्दमें इसे खिलाते हैं। अहितकर–क्षुधा एवं विबंधको कम करता है। निवारण–तिलका तेल। प्रतिनिधि–बाकलाका आटा। मात्रा–०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—मधु मधुर, कषायानुरस, रूक्ष, लघु, शीतल, दीपन, लेखन, बल्य, सन्धानीय, चक्षुष्य, स्वर (आवाज)के लिये हितकर, हृद्य, वाजीकर, शोधन, रोपण, प्रसादन, शरीरके सूक्ष्म मार्गों तक पहुँचनेवाला, मेधाकर, विशद, रोचन, त्रिदोषहर, परम योगवाही तथा मेदो रोग, प्रमेह, हिक्का, श्वास, कास, अतिसार, वमन, तृषा, शोव, रक्तपित्त, कृमि, तृष्णा, मूर्च्छा, क्लम, दाह और क्षतको दूर करनेवाला है तथा हलका होनेसे कफको और मधुर, पिच्छिल एवं कषाय होनेसे वात और पित्तको शांत करता है। इस प्रकार यद्यपि मधु त्रिदोष नाशक है तथापि अन्य दोषोंकी अपेक्षया चरकके मतसे उसका कफनाशक गुण अधिक प्रधान है। (च० वि० १)। नया मधु—बृंहण, सारक और कुछ कफहर तथा पुराना मधु ग्राहि, रूक्ष, मेद और स्थूलताको दूर करनेवाला तथा अतिलेखन है। शहद, शर्करा और गुड़ एक साल रखे रहनेपर पुराने माने जाते हैं। मधुशर्करा मधुर, कषाय, मधुरविपाक, रूक्ष, छेदन, प्रसादन तथा वमन और अतिसारको दूर करनेवाली है (सु० सू० अ० ४५; ध० नि०; भा० प्र०)।

मोम मधु, कटु, स्निग्ध, मृदु, भूतघ्न, व्रणरोपण, फटे हुये अंगका रोपण करनेवाला, भग्न (टूटी हुई) अस्थिका संधान करनेवाला तथा शोथ, विसर्प, कण्डू आदिको मिटानेवाला है (ध० नि०, रा० नि०)।

बिवाई फटनेपर स्नेहन-स्वेदन किये हुए पैरमें एक मिलाए हुए मोम, वसा, मज्जा, घी और दूधको धीरे-धीरे मर्दन करनेसे लाभ होता है (सि० यो० क्षुद्ररोगाधि० १०)। मोमको मुलेठी, लोध, सर्जरस, मजीठ, चंदन और मूर्वाके साथ पीस घीमें पकाकर अग्निसे जले सभी प्रकारके घावोंपर लगानेसे यह अच्छा रोपणका काम करता है (सि० यो० आगन्तु व्रणादि, २०)। चरकोक्त बलादिस्नेहशर्करारूप मरहमका एक प्रधान उपादान मोम है (च० चि० अ० २५। ७५-७६)। इसके अतिरिक्त यह व्रणोंके दाहकर्ममें भी प्रयोगकी जाती है। अस्तु, स्निग्ध तथा कष्ट सहनमें समर्थ पुरुषोंके कफ प्रधान व्रणोंमें दाह कर्मकी आवश्यकता होनेपर मोम या शहद अथवा लोहनिर्मित उपकरणको खूब गरम करके इनसे व्रणको जला देना चाहिये ऐसा चरकमें लिखा है (च० चि० अ० २५/१०२ १०४)। शहद और स्नेहों (मोम) द्वारा जलाना प्राय. उन अवस्थाओंमें प्रशस्त समझा जाता था जबकि व्रण रक्त वाहिनियों, स्नायुओं (Tendons), जोड़ों या हड्डियोंके भीतर गये हुए हों (सु० सू० अ० १२)। मोम आदिके साथ पकाया हुआ पिण्डतैल वातरक्तकी पीड़ाको दूर करनेके लिए मालिश किया जाता है (च० चि० अ० २९/१२२)। सफेद मोम कभी-कभी पाँचसे १० रत्तीकी मात्रामें अन्तःप्रयोगमें दी जाती है। अस्तु यवागूमें या दूधमें मोम डालकर पिलाना अथवा मोमके साथ घीको मिलाकर ठंढे पानीके साथ पिलाना—इन उपायोंसे अत्यन्त प्रबृद्ध आमाशयाग्नि (अत्यग्नि—भस्मक रोग) शान्त होती है (च० चि० अ० १५/२२५, २२८; अ० सं०)। स्नेहनके लिये मोम डालकर बनाई गई सिगरेटका धूम्रपान किया जाता है (च० सू० अ० ५।२२)। दमेमें मोम, राल और घीका धुआँ पिलाया जाता है (च० चि० अ० १७।७८)।

वक्तव्य—शहद एक ऐसी वस्तु है जिसका सेवत हर अवस्थामें, हर प्रकृति और हर रोगीको कराया जा सकता है। बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, रोगी, स्वस्थ, गर्भिणी आदि सब इसका प्रयोग निर्भयताके साथ कर सकते हैं। इसे जितनीभी देर रखा जाय यह खराब नहीं होता। शहदको कभी अकेला आगपर नहीं चढ़ाना चाहिए। शहद जरूरी परिमाणमें लेकर चौथाई पानी डालकर आगपर रखें। एक-दो उबाल आ जाय तो आगसे आगसे उतार लें। ठण्ढा होनेपर ऊपरकी झाग कलछसे अलग कर दें। इस तरह शहद कभी विषाक्त नहीं होता। नये शरदकी अपेक्षया पुराना शहद अधिक प्रशस्त होता है। आयुर्वेद और यूनानीमें शहदके एकसे ही गुण बताए हैं। शहदको घीमें मिलाकर प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नव्यमत—मोम क्षोभहर और लेपक समझा जाता है। भारतमें चरबीका प्रयोग करनेमें धार्मिक भावना होनेके कारण मोम चरबीका उत्तम प्रतिनिधि है। एक भाग पीली मोम और चार भाग शहदका मिश्रण सामान्य मरहमके रूपमें प्रयुक्त होता है।

शामा, श्यामा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षि-वर्ग** (Class : Aves) : **पास्सेरिफार्मीज-गण** (Order : Passeriformes) : **फैमिली : टूर्डिडी** : (Family : Turdidae)।

नाम—(हिं०) शा (श्या) मा, दामा, पुटपुटी; (अ०) अबुनमरून, नग़र; (फा०) हज़ारदास्ताने हिंद; (सं०) श्यामा, शामा; (ले०) किट्टासिंक्ला मालाबारिका (*Kittacincla malabarica*); (अं०) दि इंडियन श्यामा (The Indian Shama–a small singing bird)।

वर्णन—प्रायः एक या डेढ़ बित्ता लंबा एक प्रकारका पक्षी जिसके पीठका रंग कालाई लिए और पिलाई एवं खाकी रंगोंके बीच तथा किंचित् ललाई लिए होता है। सर्वथा काला नहीं होता। पेटके परोंका रंग खाकी जर्दी मायल होता है। सदा पूँछ उठाये हुए हिलाता रहता है। अधिक उड़ नहीं सकता। सुरीला होता है। जेठ बैशाखमें बहुत बोलता है। भारतका यह हज़ारदास्तान है।

प्रकृति—मांस गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस शीघ्रपाकी, अश्मरीघ्न, मूत्रजनन और वृक्कको लाभकारी है। नमक लगाकर सुखाया हुआ मांस दस्त बंद करता है। इसको वध करके नमक छिड़ककर तांबेके बर्तनमें जलाकर प्रतिदिन अश्मरीके रोगीको खिलानेसे बड़ा लाभ होता है।

शामी कबाब—मांसका क़ीमा करके प्याज कतरकर और मसाला पीसकर मिलाकर टिकिया बनाकर घी या तिलके तेलमें तल लेवें। गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वाजीकर एवं वल्य है तथा चेहरेका रंग सुर्ख करता है। उत्तम यह है कि मलोंसे शरीरका संशोधन कर लेनेके उपरांत इसका सेवन करें (खजाइनुल् मुलूक)।

शिश्न

नाम—(हिं०) इन्द्री, लिंग, नूनी, डंडी; (अ०) क़जीब; (सं०) लिङ्ग, शिश्न; (अं०) पेनिस (Penis)।

वक्तव्य—प्रत्येक प्राणिके प्रकृति, गुण-कर्म तथा उपयोग आदि, उस प्राणिके वर्णन-प्रसंगमें दिये गये हैं, अस्तु यहाँ उनका विवरण नहीं किया गया।

शुतुरमुर्ग

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **स्ट्रूथियोनिफॉर्मिज-गण** (Order : Struthioniformes)

नाम—(हिं०) शुतुरमुर्ग; (अ०) नोआम; (फा०) शुतुरमुर्ग़; (ले०) स्ट्रूथिओ कैमिलो (*Struthio camelo*); (अं०) ऑस्ट्रिच (Ostrich)।

वर्णन—अफरीकामें जितनेभी पक्षी मिलते हैं उनमें शुतुरमुर्ग सबसे बड़ा होता है। यह लगभग ८ फुट ऊँचा होता है और भारमें लगभग १५० सेर होता है। इसकी गर्दन लंबी ऊँटकी तरह होती है। पैर गायकेसे और सुंब फटे हुए होते हैं तथा रंग सफेदी लिए तेरह होता है। यह उड़ नहीं सकता घोड़ेके बराबर जमीनपर दौड़ता है। इससे ऊँचा कोई पक्षी नहीं होता। इसके बच्चेका मांस उत्तम होता है।

प्रकृति—तीसरे या चौथे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस वातविलयन, श्लेष्मानिःसारक एवं कफघ्न है तथा अंगघात, अर्दित, पक्षवध, वातरक्त, जलोदर और गर्भाशय संबंधी समस्त शीतल व्याधियोंको लाभकारी एवं कटिशूलनाशक है। जालीनूसके कथनानुसार बत्तख़ और शुतुर्मुर्गका मांस पुष्कल मलोत्पन्नकर्त्ता एवं दीर्घपाकी होता है। राजीके अनुसार इसका मांस अति सान्द्र (गलीज) है। इसके उक्त दोषका निवारण बत्तखमांसवत् है। इसके रक्तके लेपसे सूजन उतर जाती है। इसकी बीट झाँई और चेचकके दागको लाभकारी है। इसकी बीट जलाकर सिरके गंजपर लगानेसे तत्काल आराम हो जाता है। इसका **संगदाना** आमाशयको शक्ति देता (दीपन) है। इसकी **चर्बी** शिशुके हाथ-पैरपर मलनेसे वह शीघ्र चलने लगता है। कठिन कफज शोथोंपर इसके लगानेसे वे शोथ मिटजाते हैं। इसे मस्तकपर लगानेसे सर्दी एवं मूर्च्छा दूर होती है। इसके खाने और लगानेसे बिच्छूका विष उतर जाता है तथा इसके लेपसे हर प्रकारकी सर्दीका प्रभाव मिट जाता है। कतिपय ग्रन्थोंमें लिखा है कि इसकी चर्बी शिशुओंको खिलानेसे वे शीघ्र बोलने लगते हैं तथा उनके अंगोंकी सर्दी दूर होती है।

इसका अंडा अत्यन्त गरिष्ठ (सकील) है। यह आमाशयको हानि पहुँचाता है तथा विकारी रक्त उत्पन्न करता है। इसलिए इसे कम खाते हैं। इब्नजहर के अनुसार इसके पित्तेसे तुरत जीवधारी मरजाता है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको और मांस दीर्घपाकी है। **निवारण**—घी और सिरका।

संगदान

नाम—(हिं०) पथरी; (अ०) क़ानिसः; (फा०) संगदान (नः); (ले०) इन्ग्लुवीज़ (*Ingluvies*); (अं०) इन्ग्लुविन (Ingluvin)।

वर्णन—यह अन्त्र और आमाशयसे भिन्न एक प्रत्यंग है जो तीतर, बटेर आदि पक्षियोंमें आमाशयका स्थान ग्रहण करता है। मुर्गेका संगदान (संगदानमुर्ग़ या खुरोस) अधिकतया पोस्त संगदान नफी० १९७ औषधके काममें आता है।

कल्प तथा योग—माजून संगदाना मुर्ग। **प्रकृति**—उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही और यकृदामाशयान्त्र बलवर्धन है। **उपयोग**—उपयुक्त औषधियोंके साथ संग्रहणी और अतिसार में इसका उपयोग करते हैं। माजूनसंगदानए मुर्ग़ इसका प्रसिद्ध योग है जो अतिसारको बंद करने तथा आमाशयको शक्ति देनेके लिए प्रयुक्त होता है। **अहितकर**—दीर्घपाकी और शूल उत्पन्न करता है। **निवारण**—सिरका और नमक। **मात्रा**—१ ग्राम (१ माशा)।

संजाब

नाम—(फा०) सं (सिं) जाब।

वर्णन—चूहेसे बड़ा और धूँसके बराबर एक जंगली जंतु जो तुर्कीस्तानमें बहुत मिलता है। इसकी दुम बहुत छोटी होती है। बाल बहुत नरम होते हैं। इसकी खालकी पोस्तीन बनाते हैं जिसे अमीरलोग पहनते हैं। इसकी खालको भी 'संजाब' कहते हैं। इस जंतुके पेटके नीचे बाल सफेद होते हैं और बाकी रंग मटमैला होता है। किंतु पोस्तीन बनानेके लिए नीले रंगका उत्तम होता है। यह मेवा खाता है। इसलिए इसके मांसमें वसागंध और दुर्गंध नहीं होती।

प्रकृति—मांस पहले दर्जेमें गरम और दूसरे में तर (स्निग्ध) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस गर्मीको शांत करता है। इसीलिए कोई-कोई इसे शीत एवं स्निग्ध (तर) जानते हैं। यह उरःशूल, उरःव्रण और खाँसीके लिए लाभकारक है। मालीखोलिया (मद); उन्माद और अपस्मार रोगियों तथा सौदा प्रकृतिवालोंके लिए इसका खाना बहुत गुणकारी है। इसकी खालकी पोस्तीनमें

समूरसे गर्मी कम होती है, उससे अधिक सुगंधित होती और उसकी अपेक्षया समप्रकृतिसे भी समीप है। इस पोस्तीनके धारण करने (पहनने)से प्रकृतिमें समता आती है, वातनाड़ियोंकी वेदना शमन होती है। गर्मी कम होनेके कारण युवाओं, उष्ण प्रकृतिवालों और अति मद्य सेवियोंको इसका पोस्तीनधारण श्रेष्ठतर होता है। क्योंकि समताके साथ उष्णता उत्पन्न करता है। इसके बाल पीसकर व्रणपर छिड़कनेसे व्रण भरजाते हैं और रक्तस्राव होता हो तो वह बंद हो जाता है। **अहितकर**—मांस शूलकारक है। **निवारण**—बादामका तेल।

सकंकूर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप वर्ग** (Class : Reptilia)

नाम—(हिं०) सम्हूर, बनरोहू; (अ०) सक़ङ्कूर, सक़ङ्कुश; इस्क़ङ्कूर; (रूमी) सकन्कूर; (पं०) रेगमाही; (ले०) लैसर्टा स्किङ्कुस (*Lacerta scincus* Linn.); (अं०) स्किङ्क (Scink, Skink)।

वक्तव्य—'सक़ङ्कुश' और 'सक़ङ्कूर' यूनानी 'स्किग्कोस (Skigkos)'से अरबी बनाये गये हैं। मैबुइआ कैरिनेटा (*Mabuia carinata* Schneid) इसका भारतीय भेद है। अंगरेजीमें इसे इंडियन स्किंक (Indian Skink) और संस्कृतमें 'मरुगोधिका' कहते हैं। दे० 'रेगमाही'।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह रेगमाहीसे भिन्न मछलीकी जातिका लाल या पीले रंगका एक जंतु है जो अधिकतया मिश्रमें नील नदीके किनारे रेतमें पाया जाता है। यह मगरमच्छकी नस्लका या गोहकी तरहका होता है। इसी कारण इसे 'पानीका गोह' कहते हैं। इसका सुखाया हुआ मांस जो स्वादमें खारा और फीका होता है, औषधके काममें लिया जाता है। भारतीय सकंकूर उँगलीके बराबर एक छोटी मछली है जो रेतकी मछलीकी एक जाति है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—अत्यंत बलवर्धक, **वाजीकर**, **शिश्नोच्छ्रायकारक** और शीतल-कफरोगनाशक है। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ इसे चूर्ण और माजूनोंमें डालकर खिलाते हैं या अंडेकी जर्दीमें मिलाकर उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त पक्षवध, अर्दित, कम्पवात, अपतानक, वातरक्त और आमवातमें भी इसे खिलाते हैं। **तिरियाक अन्दरूमाखुश** नामक प्राचीन यूनानी योग का एक उपादान यह भी है। **अहितकर**—नेत्ररोगमें। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—रेगमाही। **मात्रा**—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—नादकर्णीके मतसे भारतीय सकंकूरका तेल जीवनीय (Restorative), उत्तेजक (उष्ण) वाजीकर और फिरंगहर है। (इं० मे० मे० २/१९१)।

सकुची

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सीरिज : पीसिज** (Series : Pisces) : **इलैस्मोब्रैंकी-वर्ग** (Class : Elasmobranchii) : **सेलेची-उपवर्ग** (Sub-class : Selechi) : **राजीफार्मीज-गण** (Order : Rajiformes) : **फैमिली : रैइडी** (Family : Raiidae)

नाम—(हिं०) सकुची, सेकुची, साकुच; (अ०) शफ़नीन बहरी (मरूजन); (सं०) शांकुचो, (शा) शुकुचः, शंकु (चि), शंकोच (चि); (बं०) साकुच; (ले०) रैइया जाति (*Raia species*); (अं०) रैइया (Raia)।

वर्णन—एक प्रकार की मछली जो साधारण मछलियोंसे भिन्न और प्रायः कछुएके आकारकी होती है। इसके छोटे-छोटे चार पैर होते हैं और एक लंबी पूँछ होती है जिसमें डंककी तरह कांटे होते हैं। जब यह किसीको लग जाते हैं तब अत्यंत वेदना होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कहते हैं कि इसकी पूँछको सोनेके कपड़ोंमें रखनेसे नींद जाती रहती है।

समुंदरफेन

मोलस्का-संघ (Phylum : Mollusca) : **किफेलोपोडा-वर्ग** (Class : Cephalopoda) : **डीकेपोडा-गण** (Order : Decapoda)।

नाम—(हिं०) समुंदरफेन, समुंदरझाग; (यू०) Alkuonion (D. 5·135); (अ०) अजाराफ़ी, जुब्दु (ज़बदु)ल् बहर; (फा०) कफेदरिया; (यू०) अजाराफ़ियून; (सं०) समुद्रफेन, अर्णवफेन (च०); (म०) समुद्रफेण; (गु०) समुद्रफीण; (ले०) ऑस सेपी (Os sepiae); (अं०) कट्ल-फिश बोन (Cuttle-fish bone)।

वक्तव्य—जंतुको लेटिनमें सेपिआ ऑफिसिलेलिस (*Sepia officinalis*) या सिफेलोपोडा (*Cephalopoda*) कहते हैं।

वर्णन—यह एक समुद्री जंतु (Sepia officinalis)की हड्डियोंका पंजर या पीठकी हड्डी है जो कुछ कालोपरांत एक बिशेष रूप ग्रहण कर लेती है और प्रायः समुद्रके पानीके ऊपर तैरती हुई पाई जाती है; इसलिए इसे समुंदरफेन (कफेदरिया) कहते हैं। यह ५-१० इंच लंबा और १-३ इंच चौड़ा, आयतांडाकार, चपटा, सफेद, खुरखुरा, हलका, जालीदार, कड़ा एवं भंगुर होता है। स्वाद फीका, तीखा एवं खारा होता है। यह शीघ्र चूर्ण हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कैल्सियम कार्बोनेट ८०-९०% तथा कैल्सियम फॉस्फेट एवं सिलिकायुक्त सल्फेट प्रभृति उपादान होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन होनेके कारण धुंध-गुब्बार, आँखकी फूली (नेत्रशुक्ल) और जाला प्रभृति जैसे नेत्ररोगोंके दूर करनेके लिए इसे अकेला या सुरमोंमें डालकर सुरमाकी भांति और अकेले या अन्य औषधियोंके साथ इसका अंजन दांतोंको साफ और दृढ़ करता है। झाइँ, व्यंग, त्वचाके दाग धब्बे प्रभृति जैसे त्वग्रोगों और कफज शोथको नष्ट करनेके लिए इसका तिला (पतले लेप)की भाँति उपयोग किया जाता है। यह विशेष रूपसे आर्तवजनन और दृष्टिप्रसादन है। अहितकर–शिरः रोगोंमें अहितकर एवं आसन्नविष है। निवारण–कछूका तेल। प्रतिनिधि–हज्रुक़ैसूर।

आयुर्वेदीय मत—समुंदरफेन कषाय, शीतवीर्य, लघु, पाचन, दीपन, लेखन, चक्षुष्य, सर तथा पित्त, कफ, कर्णपाक, कर्णस्राव, नेत्ररोग, विष, गुल्म, प्लीहा और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। (ध० नि०; आ० प्र० अ० १०; भा० प्र०)। चमकने (चि० अ० २६, श्लो० २४८) चूर्णाञ्जनमें अर्णवफेन (समुद्रफेन) डालनेको लिखा है।

शोधन—समुंदरफेनका ऊपरका कवच—(आवरण) निकालकर, नीबूके रसकी एक भावना देकर सुखा लेनेसे यह शुद्ध होता है।

नव्यमत—नाडकर्णीके मतसे कर्णशूल एवं कर्णस्रावमें इसका चूर्ण कानमें डालनेसे लाभ होता है। (इ० मे० मे० २/२१०)।

समूर

(अ०) समूर।

वर्णन—एक जंगली जानवर जो बहरुल् जवाहरके अनुसार बिल्लीकी तरह होता, यूरोप और अमेरिकाके उत्तरी भागके विस्तृत वनोंमें पाया जाता है। बालके रंगके विचारसे इसके कतिपय निम्न भेद होते हैं—(१) प्रायः बाल भूरे होते हैं, परन्तु गले और कानोंके किनारेपर सुन्दर पीतिमा रहती है। गर्मीकी ऋतुमें रंग कुछ हलका, बाल कम लंबे और उँगलियां जो जाड़ेके दिनोंमें पशमी बालोंसे ढँकी रहती हैं, उस आच्छादनको

झाड़कर बेबाल हो जाती हैं। (२) स्याह समूर जो अँगरेजीमें 'सैबल' कहलाता है, अधिक प्रसिद्ध एवं मूल्यवान है। पोस्तीनकी गुणवत्ता ऋतु और उक्त जानवरकी अवस्था एवं वयपर निर्भर करती है। अत्यंत काली पोस्तीन अधिक समादर पाती है। स्याहसमूर साइबेरिया देशमें होता है। इसकी पोस्तीन ठंडे देशमें होनेके कारण अत्युत्तम होती है। समूरके इन भेदोंके अतिरिक्त इंगलैंडमें इसका और एक भेद है जिसका गला सफेद होता है। भारतवर्षमें भी इसका एक अति सुन्दर भेद है जिसका गला पीला होता है। अमेरिकामें भी इसके कतिपय भेद होते हैं। बिना सिझाये (दबागत) इसका चमड़ा शीघ्र विकृत हो जाता है। अन्य जंतुओंकी पोस्तीनकी अपेक्षया इसके चमड़ेकी पोस्तीन मानव शरीरमें अधिक उष्णता उत्पन्न करती है। इस्लामी धर्मग्रन्थमें इसका मांससेवन वर्जित (हराम) होनेसे यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें इसके मांसका अधिक गुण वर्णन किया हुआ नहीं मिलता।

प्रकृति—गरम एवं रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—मांस वाजीकर, चर्बी पतला लेप करनेसे वृक्कको उष्ण करनेवाली और आर्द्रतानाशक तथा पोस्तीन वृद्धोंको सात्म्य, उष्णताजनक एवं शीत प्रकृतिवालोंको लाभकारक है। जिन मनुष्योंके वृक्क एवं वक्षमें शीत हो, उन्हें इसके पहननेसे लाभ होता है। इसके बाल जलाकर व्रणपर छिड़कनेसे व्रण सूख जाता है। संजावसे इसके पोस्तीनमें अधिक गर्मी होती है।

सरेस

नाम—(हिं०) सरेस, सहरेस; (अ०) गुरा, ग़रा, हुलाम; (फा०) सरेशम्, सरेश; (ले०) जेलेटीनम् (Gelatinum); (अं०) जिलेटीन (Gelatin)।

प्राप्ति तथा वर्णन—प्राणिज सरेश एक लसदार वस्तु है जो ऊँट गाय, भैंस आदि पशुओंके चमड़े, कण्डरा, बंधनी, कुर्री[1] आदि सरेशी धातुओंको या मछलीके पोटेको जलमें उबालकर और वायुमें सुखानेसे तैयार होता है। सरेससे यहाँ यही अभिप्रेत है। इसके पिलाई या ललाई लिए सफेद और चपटे अर्द्धस्वच्छ टुकड़े या लंबे-लंबे रेशे होते हैं। इसको यदि ५० भाग गरम जलमें घोला जाय, तो इस घोलमें कोई रंग एवं गंध नहीं होती और सर्द होनेपर वह फालूदे (जेली) की भाँति जम जाता है। यह सुरासार या ईथरमें अविलेय होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ग्लुटिन (Glutin), उष्णजलविलेय कज्जल (कार्बन) ५०%, नत्रजन १८%, उदजन ७%, ऊष्मजन २४% और गंधक ०·५% होती है। यह गुद और योनिवर्तिकाओं तथा गुटिका एवं मुखचक्रिकाओंमें पड़ता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—सरेस उपशोषण एवं पिच्छिल (मुग़र्री) है, रक्तको बंद करता और त्वचाको कांति अनास्थिनिर्मायिक प्रदान करता है तथा फुफ्फुसव्रणमें विशेष गुणकारी है। उपयोग–सरेसको मुखसे रक्त आने और फुफ्फुसगत व्रणमें खिलाते हैं। सूजन उतारने और घाव भरनेके लिए इसे शहदके साथ लगाते हैं। अग्निसे जले हुए अंगपर इसे जलमें घोलकर लगाते हैं। खुजली, दाद, किलास और झाइं नष्ट करनेके लिए इसे सिरकेके साथ पीसकर लेप करते हैं। अहितकर–अवरोधकारक। निवारण–सिरका। प्रतिनिधि–सरेशमाही। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

---

[1] कुर्रीसे यहाँ ऐसी तरुणास्थियाँ अभिप्रेत हैं जिनसे अस्थियोंका निर्माण होता है। ऐसी तरुणास्थियाँ जिनसे अस्थियोंका निर्माण नहीं होता, जैसे—पर्शुकाओंकी तथा अन्य तरुणास्थियाँ—इनसे प्राप्त सरेश सम पदार्थको पाश्चात्य वैद्यकमें कॉन्ड्रिन (Chondrin) कहते हैं।

सरेश (म) पनीर

नाम—(अ०) ग़रउल्जुब्न (जलूद); (फा०) सिरेश (म) पनीर।

वर्णन—पनीरके वरक शुष्क चूनेमें रखकर पत्थरमें दबाते हैं।

प्रकृति—संभवतः सर्द एवं रुक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका उपयोग औषधमें नहीं, कारीगरीमें होता है। वस्तुओं टूटे हुए शीशा और चीनी बर्तनके जोड़नेके लिए अनुपम वस्तु है। इसका जोड़ नहीं खुलता, बड़ा टिकाऊ होता है। (मख़्जन आदि)।

सांडा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप वर्ग** (Class : Reptilia) :
स्क्वैमेटा-गण (Order : Squamata) : **फैमिली ऐगेमिडी** (Family : Agamidae)

नाम—(हिं०) सांडा, मूसल सांडा (मुहीत, नुस्खा सईदी), असरसांडा; (सं०) ऊषरगोधा; (ले०) ऊरोमैस्टिक्स हार्डविक्किआई (*Uromastix hardwickii*); (अं०) स्पिग-टेल्ड सांडा (Sping-tailed Sanda)।

वर्णन—यह छिपकलीकी जातिका, पर आकारमें उससे कुछ बड़ा, छोटी-सी गोह या मोटे ताजे गिरगिट की तरहका एक प्रकारका जंगली जानवर है। इसके सारे शरीरपर बाल बिल्कुल नहीं होते, सिर तथा मुंह गोल, मगरकी तरह पूँछपर कांटे होते हैं जो उँगली फेरनेसे चुभते हैं। इसके दो हाथ और दो पाँव होते हैं और प्रत्येकमें पांच उँगलियां होती हैं जिनमें बीचकी उँगली बड़ी होती है। इसका रंग मटमैला होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस और निकाली हुई चर्बी (तेल वा वसा) तिलाके काममें आती है। वाजीकरणके लिए मूसलसांडा प्रसिद्ध एवं अव्यर्थ महौषधि है।

साँप

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सरीसृप-वर्ग** (Class : Reptilia) :
स्क्वैमेटा-गण (Order : Squamata) : **ओफीडिआ-उपगण** (Sub-order : Ophidia)

नाम—(हिं०) सांप; (अ०) हय्यः (तूलुल्उम्र = दीर्घायु); (फा०) मार; (सं०) सर्प, नाग; (ले०) नेजानेजी (Naja-naji); (अं०) स्नेक (Snake), सर्पेंट (Serpent)। नागराज (Naga bannale)।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मांसाहारी जहरीला प्राणी है। काले रंगका सांप (अफई-अ०) अधिक जहरीला होता है और यही अधिकतया चिकित्साके काममें लिया जाता है। सांप वसंत ऋतुमें अपने शरीरकी त्वचा उतारता है, जिसे कोंचुली (सं०) सर्पकञ्चुक, सर्पनिर्मोक; (अ०) सल्खुल्हय्यः; (फा०) पोस्तमार कहते हैं।

उपयुक्त अंग—समग्र सर्पको अन्तर्धूम जलाकर बनायी हुई मसी, मांस, सर्पका अंडा, चर्बी, केंचुली और सर्पमणि (मारमोहरा)। आयुर्वेदमें इसके विषका भी प्रयोग होता है।

कल्प तथा योग—तिरियाक फारूक (अफईका मांस)।

प्रकृति—सांप तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—सांपकी चर्बी और राख बाह्य प्रयोगसे लेखन और शोणितोत्क्लेशक है। केंचुली बवासीरको सुखानेवाली है। यूनानी वैद्यकमें इसका तथा सर्पविष (Snake venom)का आंतरिक उपयोग नहीं होता। बाह्यतः किलास एवं अर्शमें गुणकारक है। उपयोग—सांपकी चर्बीका वाजीकरणके लिए तिलाकी भांति उपयोग करते (शिश्नपर लगाते) हैं। मोतियाबिंदमें चर्बीको नेत्रके भीतर लगाते हैं। काले सांपका पेट चीरकर उसमें बकुची और

पँवाड़के बीज भरकर और पातालयन्त्रकी विधिसे तेल निकालकर किलासपर लगाते हैं। साँपके अंडोंको बूरए अरमनी और सिरकाके साथ पीसकर किलासमें लगाना गुणदायक है। अर्शाङ्कुरोंको सुखानेके लिए इसकी केंचुलीकी धूनी देते हैं और साँपकी केंचुलीकी मसी जैतूनके तेलमें जलाकर खालित्यपर लगाते हैं। इसकी राखको नौसादरके साथ पीसकर किलासपर तिला करते हैं। **अहितकर**—उष्ण एवं रूक्ष प्रकृतिके लिए। **निवारण**—प्रत्येक अवसरपर पृथक् निवारण है। **प्रतिनिधि**—एक भेद दूसरे भेदका।

आयुर्वेदीय मत—साँपका मांस रस और विपाकमें मधुर, नेत्रके लिए हितकर मेधा तथा अग्निको बढ़ानेवाला और अर्श, वातविकार, कृमि और दूषीविषको दूर करनेवाला है। दर्वीकर (फणवाले) और राजिमंत (दीपक) मधुर, कटुविपाक, दीपन, मल-मूत्र और अधोवायुका निर्हरण करनेवाला तथा नेत्रको हितकर है। अजगर अर्शके लिए हितकर है (सु० सू० अ० ४६/८३, ८४)। चरकने राजयक्ष्मामें सर्पमांस खानेको देनेके लिए लिखा है। जिस फलमें क्रुद्ध सर्पने दंश मारा हो उस फलको सान्निपातिक उदररोगीको खिलानेसे विमार्गगामी, स्रोतोंमें लीन और स्थिर दोषसंघात भिन्न होकर विरेचन द्वारा निकल जाता है। विरेचन होनेके पश्चात् रोगीको शीतल जलसे स्नान कराकर यथा बल दूध अथवा यवागू पीनेके लिए देना चाहिए (च० चि० अ० १३)। सूचिकाभरण आदि कई रसोंमें सर्पविषका प्रयोग रसग्रन्थोंमें पाया जाता है। सुश्रुतके मतसे काले साँप (गिद्ध, मुर्गा)की चर्बीमें मुलेठीका चूर्ण मिलाकर अंजन करनेसे वातज तिमिर रोग नष्ट होता है (सु० उ० अ० १७)। काले साँपको अन्तर्धूम जलाकर बनायी हुई मसी बहेड़ेकी मज्जाके तेलमें मिलाकर लगानेसे श्वित्र नष्ट होता है (सु० चि० अ० ९)। काले सर्पके विषका शोधन—जवान और बलवान् काले साँपका विष लेकर उसमें थोड़ा सरसोंका तेल मिलाकर सुखा लेवें। पीछे उसको अगस्तियाकी पत्तीका स्वरस, तुलसीकी पत्तीका स्वरस और कुछके क्वाथकी तीन-तीन भावना दें। सुखाकर कांचकी शीशीमें भरकर डाट लगा देवें। इस प्रकार शुद्ध किये हुए साँपके विषका ही औषधमें प्रयोग करना चाहिए (आ० वि० सू० अ० ६७)। काले साँपके मुँहमें काला सुर्मा रखकर, एक मास तक रखनेके बाद उसको निकाल पीस लेवें। पुनः उसमें चमेलीकी कली और सेंधानमक आधा-आधा भाग मिलाकर अंजन बनावें। यह तिमिरहर है। (च० चि० अ० २६)। कृष्णसर्पवसा, मधु और आँवलेके रसको घोंटकर बनाया हुआ अंजन सर्वाक्षिरोगहर है (च० चि० अ० २६)। माहेश्वरादि धूपमें साँपकी केंचुली पड़ती है। इसकी धूनी भगमें देनेसे मरा हुआ बच्चा गर्भसे गिर जाता है। कृष्णसर्पवसा, शंख, निर्मली और सुर्मा इनसे बने अंजनके प्रयोगसे चिरकालीन अंधता दूर होकर दृष्टि प्राप्त होती है (शा० सं०)। अर्द्धनारीश्वर नस्यमें भी साँप पड़ता है। साँपके मुख और मलके धुएँको चरक मृगीमें उपयोग करते रहे हैं। बवासीरके मस्सोंपर फनियर साँपकी चर्बी लगानेसे और साँपकी केंचुलीकी धूनी देनेसे आराम हो जाता है (च० चि० अ० १४/४९-५०)। राघवका अनुभव है कि बवासीरमें साँपकी केंचुली, मनुष्यके बाल, भांगरा और आकके फूल आदिसे मस्सोंको धूनी देनेसे मस्से सूख जाते हैं। (राघवानु० अ०, ३-२)। विषोंकी चिकित्सामें महर्षिचरक साँपके सिरका धुआं देनेसे लाभ समझते हैं (च० चि० अ० २३/९८)। सूतिकागारके कपड़ोंको साँपके केंचुलीकी धूनी देकर रोगकृमियोंसे शून्य किया जाता था। (च० शा० अ० ८/९३)। तितलीकी, साँपकी केंचुली, तोरई और सरसोंके दानोंको कड़वे तेलके साथ मिलाकर योनिमें धुआं देनेसे प्रसव शीघ्र होता है। साँपकी केंचुलीको हांडी भीतर बंद करके इस तरह जलायें कि धुआं बाहर न निकलने पावे। बच्चा मांके पेटमें ही मर जाय तो इस जली हुई राखको शहदके साथ घोटकर आँखोंमें आँजनेसे बिना कष्टके ही बच्चा बाहर निकल आता है। (चक्र—स्त्रीरोग चि०)। आँखके सब रोगोंके लिए चरकने यह योग बतलाया है—कृष्णसर्पवसा, पीपल, ढाकके फूलका रस, सेंधानमक और दस सालका पुराना घी, सबको एक जगह घोंट लेवें।

सारस

नाम—(हिं०, सं०, बं०) सारस; (सं०) सारस; (ले०) ऐन्टिगोन एन्टिगोन (*Antigone antigone* Linn.); (अं०) इंडियन क्रेन (Indian Crane); दि सारस क्रेन (The Sarus Crane)।

वर्णन—एक प्रकारका प्लववर्गीय प्रसिद्ध सुन्दर पक्षी जिसकी गर्दन, पैर और चोंच बहुत लंबी होती है। गर्दन सामने लाल होती है। पैर भी लाल होते हैं, और सारा शरीर सफेद होता है। सारसके जोड़े साथ-साथ रहते हैं, और जलार्द्र खेतोंमें तथा दलदली किनारोंवाले झीलों, तालाबों तथा नदियोंके किनारे घूमते मिलते हैं।

प्रकृति—सर्द एवं तर, मतांतरसे गरम एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस पित्त एवं रक्तविकारनाशक, बल्य, वाजीकर, दीर्घपाकी, मूत्रसंगकारक, सौदाजनक और अतिसारनाशक है।

आयुर्वेदीय मत—सारस आदि प्लववर्गके पक्षी सामान्यतया रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, वातकफकारक, बल्य, वृष्य, सारक, मलमूत्रको खुलकर निकालनेवाले तथा पित्त एवं रक्तपित्तनाशक हैं। (सु० सू० अ० ४६/१०६; भा० प्र०)। मिलित त्रिकटु, गोखरू, इलायची और सारसकी हड्डीका चूर्ण कोल प्रमाणमें मधु-मूत्रयुक्त सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है (च० चि० अ० २६)।

सालारमंदरा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **ऐम्फीबिया-वर्ग** (Class : Amphibia) : **यूरोडेला-गण** (Order : Urodela) : **फैमिली : सालामैन्ड्रिडी** (Family : Salamandridae)

नाम—(हिं०) सालारमंदरा; (यू०) सैलेमण्ड्रा (Salamandra); (ले०) सैलेमैन्ड्रा ऐट्रा *(Salamandra atra)*; (अं०) सैलैमेंडर (Salamander)।

वर्णन—एक कष्टदायक भौमकीट जो प्रायः नौशादरकी खानोंमें पाया जाता है। इसके चार पैर होते हैं। यह विविध वर्णका होता और धीरे-धीरे चलता है। इसकी गर्दन बारीक होती और पूँछ छोटी होती है। प्रायः सिर और पूँछ काली होती है। यह छिपकलीसे चौड़ा और बड़ा होता है। इसके काटनेसे मनुष्य मर जाता है। इसको हाथ-पैर काटकर अन्न तथा मल आदिसे शुद्धकर शहदमें डालकर रखते और आवश्यकता होनेपर काममें लेते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस व्रण-कोथकारक और उष्णताजनक होनेसे व्रणोत्पादक मलहरोंमें डाला जाता है। इसके लगानेसे गठिया और शीतजन्य शोथ जाते रहते हैं। इसको जैतूनके तेलमें पकाकर बालोंपर लगानेसे बाल गिर जाते हैं और शरीरकी त्वचामें व्रण उत्पन्न हो जाते हैं। इसको जलाकर बनाई हुई राख किलास एवं खुजलीपर मलनेसे लाभ होता है। इसके काटने तथा मांस खानेसे निम्न विष लक्षण प्रगट होते हैं—वेदना, शोथ, अपतानक, अंगघात और स्वाप प्रभृति लक्षण प्रगट हो जाते, चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रहती, जिह्वापर उष्ण शोथ हो जाता, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती, कभी आमाशयमें वेदना एवं शोथ उत्पन्न हो जाता, मल-मूत्र अवरुद्ध हो जाता, बैंगनी रंगके छाले पड़ जाते और कभी समस्त शरीर काला पड़ जाता है। यदि शीघ्र उपचार नहीं किया जाय तो शरीरसे दुर्गंध आने लगती और मांस गलकर गिरने लगता है। चिकित्सा—रक्तमोक्षण करें, वमन करायें, गायका ताजा दूध और मठा पिलायें तथा मक्खन चटायें। यवमंड तथा अंडेकी सफेदी या चावलोंकी पीच (माँड), मीठे बादामका तेल, मुरगाबीकी चर्बी और अंडेकी जर्दी (पीला भाग)के साथ बस्ति देवें और दष्टस्थानपर इसीका मांस लगा देनेसे सब विष खींच लेता है। विषघ्न प्रयोग (फादजहर)—(१) राल और शहद पीना; (२) गंधा-विरोजा और शहद चाटना; (३) मीआ और पखानबेद एवं शहद खाना; (४) भूमि या जल कच्छपके अंडे उबालकर खाना; (५) तिर्याक कबीर और मसरूदीतूस खाना आदि।

साही

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
कृन्तक-गण (Order : Rodentia) : **फैमिली हिस्ट्रिसिडी** (Family : Hystricidae)

नाम—(हिं०) साही, सेही, सीह, सजार (रू); (अ०) क़ (क़ु) नफ़ुज़, सारसल, शलीक; (फ़ा०) खारपुश्त; (सं०) शली, शल्य (क), शल्लक (की), सेंधा; (ले०) हिस्ट्रिक्स ल्युकुरा (*Hystrix leucura*) Gray & Hardwicke; (अं०) दि इंडियन पार्सूपाइन (The Porcupine)।

काँटाचूहा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
कीटभोजी-गण (Order : Insectivora) : **फैमिली : एरिनेसीडी** (Family : Erinaceidae)

नाम—(हिं०) काँटाचूहा; (ले०) एरिनेसियस् कोल्लेरिस (*Erinaceus collaris*); (अं०) हेजहॉग (Hedge-hog)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध जंगली जंतु, जो जंगली, पहाड़ी और दरियाई भेदसे तीन प्रकारका होता है। पहाड़ी जंगलीसे बड़ी होती है। बड़ा होनेपर यह २ फुट लंबी कुत्तेके बराबर बड़ी होती है। इसका सिर छोटा, थूथन बड़ा और विस्तृत तथा कान और आँख छोटे होते हैं। इसकी पीठपर बालोंके बदले $\frac{१}{२}$ फुट भर या उससे कुछ अधिक लंबे काँटे होते हैं। काँटेकी नोक हड्डीके समान ठोस एवं बहुत तेज होती है। मात्र सेहीसे इसका जंगली भेद अभिप्रेत होता है। यह जितनी पुरानी और बड़ी हो, उत्तम है। इसे दुलदुल और सेह कहते हैं। जंगली या साधारण साही जो प्रायः आबादियोंमें भी देखी जाती है, इसे जंगली चूहा कहते हैं।

उपयुक्त अंग—काँटा, लोम, फ़ादजहर।

कल्प तथा योग—अक्सीर खनाजीर।

वक्तव्य—मुरगा, कबूतर, खरहा तथा साही प्रभृति जीवोंको जलाकर कृच्छ्रश्वास और कासमें प्रयुक्त करने तथा उक्त रोगोंमें इनके लाभकारी सिद्ध होनेका वास्तविक रहस्य यह है कि उक्तजीवोंको जलाकर बनाई हुई भस्म वा मसीमें लवण पुष्कल प्रमाणमें होता है और यह स्पष्ट है कि लवण चाहे खनिज हो अथवा उद्भिज्जों या प्राणियोंको जलाकर बनाया गया हो, आयुर्वेद यूनानी और पाश्चात्य उभय वैद्यकके मतसे पैच्छिल्यनाशन (कातेअलज़ूजात), पाचन, क्षुधाजनक और श्लेष्मनिस्सारक है। जांगम लवणमें उपर्युक्त गुणोंके अतिरिक्त क्योंकि (फॉस्फेट ऑफ लाइम) भी पाया जाता है, अतएव यह उरोफुप्फुस रोगी और विशेषकर कृच्छ्रश्वास एवं कासमें अधिक गुणकारी है।

प्रकृति—पहले या दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस रूक्षता कारक और अत्यन्त श्वयथुविलयन है तथा दोषको अन्त्रपर गिरने नहीं देता। उपयुक्त औषधियोंके साथ सेवन करनेसे पक्षवध, कम्पवायु, वातव्याधियों एवं श्लीपद को लाभ पहुँचाता है। सर्द एवं तर (शीतस्निग्ध) प्रकृतिवालोंमें वाजीकरण करता है। मांस अपस्मार और मालीखोलिया (मद)के लिए परम गुणकारक है। तिर्याकुल्मजानीन कहलाता है। शय्यामूत्ररोगका नाश करता है। यहाँ तक कि इसके अतिसेवनसे मूत्र कठिनतासे उतरने लगता है। कण्ठमालाको भी लाभकारक है। कुष्ठके प्रारम्भमें इसका मांस सेवन करनेसे बड़ा लाभ होता है। कोढ़को यह रामवाण ओषधि है। शैखके कथनानुसार सुखाया हुआ इसका मांस कुष्ठमें गुणकारक है। इस कथनपर कर्शीकी यह आपत्ति है कि सूखा हुआ मांस सौदा उत्पन्न करता है, अतएव कुष्ठीके लिए यह अत्यन्त हानिकार है। पुनः इससे कुष्ठ किस प्रकार दूर हो सकता है? गीलानीने उक्त शंकाका समाधान इस प्रकार किया है—कि यह लाभ उसमें प्रभावज है। परन्तु पेटभर नहीं अपितु थोड़ा प्रतिदिन खाया

करें। इसका मांस आदि अपस्मारके लिए भी गुणकारी है। यदि ज्वर न हो तो जलोदरमें इसे सिकंजबीनके साथ देना चाहिए। वृक्कशूल और वृक्कके अन्य रोगको तथा जीर्ण ज्वरोंको एवं कीड़े-मकोड़ोंके विषको दूर करता है। इसकी जलाई हुई खाल मद्यके साथ खानेसे पक्षवध और सिकंजबीनके साथ शोफ (तहब्बुज लह्मी)को दूर करती है और १॥ माशा खानेसे चौथे दिन आनेवाला ज्वर जाता रहता है। इसकी जली हुई खाल व्रणपर छिड़कनेसे दुष्ट मांस का छेदन होता और व्रण सूखता है। इसकी चर्बीके लेपसे झाइं और काला दाग मिटता है। ३॥ माशा इसका पित्त ३॥ माशा मोममें मिलाकर इन दानोंके खाने या उसमें कपड़ा लगाकर योनिमें धारण करनेसे मृत भ्रूण गर्भाशयसे निकल पड़ता है। पहाड़ी साहीका मांसभी इसीके समान है तथा यह वातरक्तके लिए परम गुणकारक है। इसके कांटोंसे सर्प और अन्यान्य भूमिज कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं। दरियाई साहीका मांस जंगलीसे लतीफ है। आमाशयको शक्ति देता—दीपन, मूत्रल और कण्ठमाला नाशक है। इब्नजहर की अरबी पुस्तिकामें लिखा है कि जंगली साहीका पित्त पीनेसे कुष्ठ, उरःक्षत और पेचिश नष्ट होता है। बाल उखाड़कर इसका पित्त लगाने से पुनः वहाँ बाल नहीं निकलते। कुष्ठीको इसका मांस गुणकारक है। इसकी चर्बीके लेपसेभी कुष्ठको लाभ होता है। इसकी चर्बी जंबकके तेलमें पिघलाकर तलुवोंपर मलकर भूमिपर पैर रखनेके पूर्व यथेच्छ स्त्रीसंग कर सकते हैं। इसके पित्तमें नेत्रजालक काटनेका प्रभाव है। इसका ताजारक्त कुत्तेके काटे हुए स्थानपर लगानेसे लाभ होता है। अहितकर—मांसका अतिसेवन आमाशयको विकृत करता है तथा वस्तिको हानिकर है। निवारण—आमाशयके लिए इसे खूब गलाकर पकाएँ और कोई तेल या तिलके तेलमें भून लेवें तथा सिरका और कासनीके साथ पकाएँ वस्तिके दोष करफ्स और शहद दूर करते हैं। मात्रा ३·५ ग्रामसे ३४ ग्राम (३॥ माशा से ३ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—साही (शल्लक, शल्यक) रसमें मधुर, अम्ल, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, लघु तथा वात-पित्त-कफ (त्रिदोष), विष और कास एवं श्वासका हरण करनेवाला है। (च० सू० अ० २७/७६; सु० सू० अ० ४६।८२)। सुश्रुतने पित्त नाशक लिखा है। भाव प्रकाशमें इसे रक्तविकार और शोथनाशक भी लिखा है। साहीके कांटोंकी भस्म, घृत, मधु और शर्कराके साथ देनेसे श्वास एवं कास दूर होता है।

साहीकी पथरी (फादजहर)

वर्णन—यह एक प्रकारकी पथरी है जो जंगली साहीके पित्ताशयमें पित्तके जमनेसे बन जाती है। यह फादजहर हैवानीका ही एक भेद है जो कड़ी, गोल, किंचित् लंबोनरी और अखरोटके बराबर या कभी-कभी जायफलसे भी छोटी और रंगमें जायफलके रंगके समान होती है। यह प्रायः जावी साहियोंमें होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शीतल एवं स्निग्ध (तर) व्याधियोंके लिए लाभकारी है। कतिपय प्रकारके विषोंको नष्ट करता है, कुपचन, विसूचिका, वस्ति एवं वृक्क शूलको तथा कतिपय बलों (कुवा)को लाभ पहुँचाता है। इसकी सेवनविधि यह है—किसी बर्तनमें ७–८ तोले या १५–१६ तोले स्वच्छ एवं मीठा पानी भरकर पुनः इस पथरीको थोड़ी सी देर उसमें पड़ा रखें यहाँ तक कि पानी कड़ुवा हो जाय। पुनः निकालकर उस पानीको एक या दो बारमें रोगीको पिला देवें। पथरीको सुखाकर रखें। इससे जितना शीघ्र पानी कडुवा होता है उतना ही श्रेष्ठतर एवं प्रभावकारी है। बार-बारके भिगानेसे इसका द्रव्यांश थोड़ा-थोड़ा घटने लगता है। इसकी कड़ुआहट भी कम होती जाती है। प्रसवकालमें शीतसे प्रसूताकी अवस्था परिवर्तित होनेपर तथा विसूचिका रोगीको भी इससे कभी-कभी लाभ होता है।

सिंगी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **सीरिज : पीसिज** (Series : Pisces) :
टैलियोस्टोमी-वर्ग (Order : Teleostomi) : **साइप्रिनीफार्मीज-गण** (Order : Cypriniformes) :
फैमिली : सैक्कोब्रैन्किडी (Family : Saccobranchidae)

नाम—(हिं०) सिंगी (घी), सींगी, तोमडी; (अ०) अक़रब बहरी; (सं०) शृङ्गि (ङ्गी); (बं०) सिंगो या सिंगाड़ा माछ; (ले०) हेटीरोन्यूस्टीज फोस्सिलिस (*Heteropneustes fossilis*); (अं०) कैट फिश (Cat fish)।

वर्णन—एक प्रकारकी छोटी मछली जो बरसाती पानीमें अधिकतासे होती है। इसका सिर लंबा और रंग में ललाई लिये हुए होता है। इसके गलफड़ेके पास दोनों ओर दो सफेद काँटे लगे होते हैं जिनके मार देनेसे बड़ा दर्द एवं दाह होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसे आँखमें लगानेसे प्रसेक (नजला) और जाला दूर होता और दृष्टिको शक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार इसका मांस जलाकर लगानेसे प्रसेक, जाल, नेत्रव्रण और बाल खोरामें लाभ होता है। इसका मांस साधारण मछलियोंकी तरह खाया जाता है।

आयुर्वेदीय मत—इसका मांस तिक्त एवं कषाय रसयुक्त, लघु, स्निग्ध, रुचिकारक, वायुको शमन करनेवाला और कफको प्रकुपित करनेवाला है। (भा० प्र०)।

सिंह

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **क्रव्यभुज्-गण** (Order : Carnivora) : **फैमिली : फेलिडी** (Family : Felidae)

नाम—(हिं०) सिंह (घ), बबर, शेर बबर; (फा०) शेर बबर, शेरे कलाँ; (सं०) सिंह, केसरी (स्त्री–सिंह (हि) नी, (सिंही); (ले०) फेलिस लिओ (*Felis leo*); (अं०) लॉयन (Lion)।

वर्णन—बिल्लीकी जातिका सबसे बलवान् पराक्रमी और भव्य हिंसक, शिकारी एवं जंगली जंतु (पशुराज) जिसके नरवर्गकी गर्दनपर बड़े-बड़े बाल (जटा या केसर) होते हैं। वि० दे० "बाघ या शेर।"

गुण-कर्म तथा उपयोग—बरसाम और सरसामके रोगीके सिरके ऊपर इसका पित्त लगानेसे लाभ होता है। इसकी खालके ऊपर बैठनेसे कद्दूदाने नष्ट होते हैं। शतरुल्गिबमें इसकी खालकी धूनी-लाभकारी है। सभी गुण कर्मोंमें यह शेरके समान है अपितु उससे बलवत्तर है और गर्मीमें उससे अधिक है।

आयुर्वेदीय मत—सिंह आदि गुहाशय वर्गीय जीवोंका मांस मधुर, उष्णवीर्य, स्निग्ध, गुरु, बलकारक, नेत्र तथा गुह्येन्द्रिय (गुदा)के विकारोंसे पीड़ितोंके लिये (नित्य) हितकर और वातनाशक है। (सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)। समान भाग सिंहवसा और हींग लेकर नस्य देनेसे अथवा दससालका पुराना घी, सिंहवला और सेंधानमक मिला अंजन करनेसे विषमज्वर नष्ट हो जाता है। (चरक)।

सिर, सरी

नाम—(हिं०) सिर, सरी, भेजा; (अ०) रास; (फा०) कुल, कुल्लः; (सं०) शिर;

वर्णन—प्रसिद्ध अवयव, समस्त प्राणियोंमें बकरीका सिर श्रेष्ठतर है। इससे अभिप्रेत कल्लः और भेजा होता है।

प्रकृति—प्रत्येक प्राणिके शिरके अनुसार।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पुष्टिकर, दीर्घपाकीकिंतु पच जानेपर दौर्बल्यनिवारक, शुक्रवर्धक, परिश्रम करनेवालोंके लिए बहुत ही सात्म्य है। कल्लोंतरका मांस अन्य अंगोंकी अपेक्षया अधिक गरम होता है। परन्तु उसमें आर्द्रता अल्प और पोषणांश अधिक होता है। बकरीके बच्चेकी सरी शोरव बुक्क, वातनाड़ियों और आंतोंमें आर्द्रता उत्पन्न करता है। शिश्नोच्छ्राय अधिक करता है और कठिन शोथोंको मृदु करता है। बकरीके बच्चेकी सरी रूक्षताजन्य सिर दर्दको मिटाती है मस्तिष्कमें तरोताजगी पैदा करती है और उन्माद एवं अनिद्रामें लाभ करती है! इससे परिषेक (नतूल) करने और बस्ति देनेसे भी उक्त लाभ होता है। अहितर–आमाशयको कमजोर

करती, खराब डकार लाती और पेशाबमें दुर्गंध उत्पन्न करती है। निवारण–राई, सिरका, काँजी, पुदीना, सातर और गरम मसाल।

सींग

नाम –(हिं०) सींग (घ); (अ०) क़र्न; (फा०) शाख़ (हैवान); (सं०) शृङ्ग; (अं०) हॉर्न (Horn)।

वर्णन—चौपायोंके सिरपर शाखाके रूपमें होनेवाली एक कड़ी वस्तु। नरका सींग मादाकी अपेक्षया बड़ा और मोटा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रूक्षताजनक, संग्राही और रक्तस्थापक है। प्रायः इसे इतना जलाकर कि सफेद हो जाय, औषधके काममें लेते हैं। इस प्रकार जलाये हुएको आँखमें लगानेसे दोषका आना रुक जाता है। बारहसिंगे और बकरीका सींग जलाकर दाँतोंपर मलनेसे दाँत सफेद हो जाते हैं और उनकी जड़ दृढ़ हो जाती है तथा दर्द थम जाता है। इसे जला धोकर सेवन करनेसे रक्तष्ठीवन, रक्तार्श और रक्तातीसार बंद हो जाते हैं। इसकी धूनीसे भूमिके कीड़े-मकोड़े भागते हैं। प्रायः औषधमें बारहसिंगा अधिक प्रयुक्त होता है। प्रत्येक पशुके सींगका विवरण उस पशुके वर्णन प्रसंगमें किया जायगा। अहितकर–फुफ्फुसको। निवारण–कतीरा। प्रतिनिधि–असारून एवं कुलंजन।

सीप

मोलस्का-संघ (Phylum : Mollusca) : **पेलीकीपोडा-वर्ग** (Class : Pelecypoda) :
फिलिब्रैन्किआ-गण (Order : Filibranchia)

नाम—(हिं०) सीप, सीपी, सितुही, सुतही; (अ०) सदफ़; (फा०) गोशमाही; (सं०) शुक्ति; (बं०) जलशुक्ति, झिनुक; (म०, गु०, को०) सिम्प; (ले०) आस्ट्रिया ग्रीफॉइडीस (*Ostrea gryphoides* Schl.), ऑस्ट्रिआ इड्यु लिस (*O. edulis* Linn.); (अं०) ऑइस्टर (Oyster), बाइ-वाल्व शेल (Bi-valve shell)।

उत्पत्तिस्थान—ऐटलांटिक और हिंदमहासागरके तट।

वर्णन—यह छोटे तालाबों और झीलोंसे लेकर बड़े-बड़े समुद्रों तकमें पाये जानेवाले (विदाञ-शम्बुक) सीपनामक समुद्री एक जलजंतुका सफेद चमकीला कड़ा आवरण या संपुट (द्विकपाटीय प्रकश्च Oystetr shell, bivalve shell) जिसको औषध मेंकाम लिया जाता है। सीप हीकी एक जाति है जिससे मोती निकलता है। इस प्रकारकी सीपको सदफ़ मरवारीदी या सदफ़ सादिक़ (मुक्ताशुक्ति–मोतीकी सीप), (अं०) (Pearl oyster) कहते हैं। मात्र सीप शब्दसे यही विवक्षित होती है। औषधके लिए यही काममें ली जाती है। इसमें भी जो बड़ी भीतरकी ओर चमकदार, सफेद रंगकी और छिद्ररहित है, उसको औषधके काममें लेना चाहिए।

उपयुक्त अंग—आभ्यंतर पटल, सीपी (सीपका जीव) जो वाजीकर है। इस हेतु इसे कच्चा अथवा पकाकर खाते हैं।

रासायनिक संगठन—इस सीपमें कैल्सियम् कार्बोनेट ८५–९५%, फॉस्फेट एवं सल्फेट ऑफ कैल्सियम्, और मैग्नेसिअम्, आर्यन ऑक्साइन, अल्युमिना और सिलिका प्रभृति उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—कोहल सद्फ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रुक्ष।

गुण-कर्म—उवशोषण, लेखन, अतिसारघ्न तथा रक्तस्राव एवं रक्तष्ठीवनको बंद करनेवाला और विशेषतया रक्तस्तंभन है। उक्त गुण-कर्ममें जलाई हुई सीप अधिक वीर्यवान् है। उपयोग—दाँतों और मसूढ़ोंको साफ करती और उनसे रक्तस्रावको रोकती है। जलाई हुई सीपको (२॥ रत्तीकी मात्रामें) अतिसार, रक्तस्राव और रक्तष्ठीवनमें

प्रयुक्त करते हैं। कतिपय अन्य औषधियोंके साथ इसे श्वासरोगीको खिलाते हैं। तिला करनेसे यह झाइं, छीप आदिको दूर करती है। अग्निदग्धमें इसका अवचूर्णन और रोगनेगुलके साथ पतला लेप गुणकारक है। मोतीकी सीपके चमकीले भागको खुरचकर मोतीके स्थानमें प्रयुक्त करते हैं। मोतीकी सीप गुण-कर्ममें मोतीके समान हैं; परंतु सीप गुण-कर्ममें मोतीसे कम दर्जेकी है। मुक्ताके अभावमें उसके प्रतिनिधि रूपमें इसका व्यवहार करते हैं। मुक्ताशुक्तिकी शुद्धि तथा पिष्टि या भस्म बनानेकी विधि मुक्ताके समान ही है। अहितकर—खुश्की पैदा करता है। निवारण—सिरका और शहद। प्रतिनिधि—कहरुवा। मात्रा—०·२५ ग्राम-०·५ ग्राम से १ ग्राम (२-४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—सीप, शीत, पित्त, रुधिरविकार और ज्वरको हरनेवाली है जलकी सीप चरपरी, स्निग्ध, दीपन, रुचिकारक, नेत्रोंको हितकारी, बलवर्धक, तथा गुल्म विषदोष और शूलका नाश करनेवाली है। (रा० नि०)।

नव्यमत—इसका जीव वाजीकर है, इसलिए इसे कच्चा या पकाकर खाते हैं। (इं० मे० मे० भाग २ पृ० २११)।

सुरागाय

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
अंगुलेटा-गण (Order : Ungulata) : **फैमिली : बोविडी** (Family : Bovidae)

नाम—(हिं०) सुरागाय; (अ०) महा, महात; (फा०) अज़गाव, गावदश्ती; (सं०) च(चा)मर, चमरी (मृग), चमरपुच्छीगौ; (ले०) बॉस ग्रन्निएन्स (*Bos grunniens*)।

वर्णन—एक प्रकारकी दो नस्ली गाय जिसकी पूंछ गुफ्फदार होती है और जिससे चँवर (चौरी) बनता है। यह हिमालय पर्वतमें तथा खता और तिब्बतकी ओर होती है। गायको सुरा और बैलको याक कहते हैं। इनके शरीरपर रीछकी तरह बड़े-बड़े बाल होते हैं। मादा याक बहुत दूध देती है जो गायके दूधकी तरह स्वादिष्ट एवं पुष्टिकारक होता है। उन देशोंमें इसका मांस खाया जाता और बालोंके कपड़े बनाये जाते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस अत्यंत पुष्टिकर (कसीरुल्‌गिजऽ), बल्य है विशेषकर बृद्धों और शीतप्रकृतियोंको इसकी चर्बी वातरक्त, गठिया (आमवात), पक्षवध और अपतानक (कुज़ाज़)में लाभकारी है। अहितकर—मांस रक्तमें विदाह (इहतिराक़) उत्पन्न करता, सान्द्र सौदावी दोष एवं कुष्ठ उत्पन्न करता है। निवारण—सिरका, मुरब्बा और गरम मसाला।

आयुर्वेदीय मत—सुरागाय (चमर)का मांस रस और विपाकमें मधुर, स्निग्ध तथा कास और वातपित्त नाशक है। (सु० सू० अ० ४६।१००)।

सूँस, सूइस

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
सिटेसिया-गण (Order : Cetacea) : **फैमिली : प्लैटेनिस्टिडी** (Family : Platanistidae)

नाम—(हिं०) सूँ (सू) स, सू (सूँ, सु) इस; (अ०) खिंज़ीरुल्‌बहर; (फा०) खोक माही, खोक आबी, माही बीनी दराज़; (यू०, रू०) दुलफ़ीन; (उ०) दरियाका सूअर, सुअर मछली; (सं०) शिशुमार, जलकपि, चुलूक; (ले०) प्लैटेनिस्टा गैन्जेटिका (*Platanista gangetica*); (अं०) गैंजेटिक पॉरपॉइज (Gangetic porpoise), डॉल्फिन (Daulphin) Dolphin)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध काले रंगका दरियाई बड़ा सपाद जलजंतु जिसका सिर सूअर जैसा होता है। इसके गलफड़े नहीं होते तथा यह फूली हुई मशकके समान होता है। इसकी खालसे ढाल तैयार करते हैं। यह अकेला नदीमें नहीं फिरता अपितु गोल बांधकर फिरता है।

प्रकृति—इसका मांस अधिक सर्द एवं तर नहीं अपितु प्रकृतावस्थामें होता है। चर्बी गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस अत्यंत चिकना (स्निग्ध) और बृंहणीय होता है। इसके खानेसे सान्द्र दोष उत्पन्न होता और शरीरको बल मिलता है। गीलानीके कथनानुसार अपतानक रोगीको इसका मांस सेवन करानेसे उसका शरीर बलिष्ठ एवं स्थूल हो जाता है। इसकी चर्बीमें बसायँध आती है। इसके लगाने और खाने उभय प्रकारसे गठिया दूर होता है। इन्द्रायनके फलको अन्दर गूदा निकाल खोखला करके उसमें इसकी चर्बी भरकर आगके ऊपर रखें, यहाँ तक कि कई जोश आ जाय। पुनः इसे लेकर कानमें टपकानेसे पुराना से पुराना बहरापन अवश्य दूर हो जाता है। इसका दाँत शिशुके गलेमें लटकानेसे वह डरता नहीं। इब्नजहर के कथनानुसार इसकी चर्बी आगपर पिघलाकर जंबकके तेलमें मिलाकर यदि स्त्रीके शरीर पर अभ्यंग कराया जाय तो वह प्यारी हो जाय। **अहितकर**–मांस चिरपाकी है। **निवारण**–गरम मसाला।

आयुर्वेदीय मत—अर्शमें जब अधिक वेदना एवं शोथ हो तब सूइस (चुलूकी)की चर्बी लगवायें। (च० चि० अ० १४)।

सूअर

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
अंगुलेटा-गण (Order : Ungulata) : **फ़ैमिली : सूइडी** (Family : Suidae)

नाम—(हिं०) सू (सु) अर; (अ०) ख़िज़ीर (मादा = ख़िज़ीरः); (फा०) ख़ोक, गुराज़; (सं०) सू (शू) कर, व (वा) राह; (ले०) सूस स्क्रोफा (*Sus scrofa* Linn.); (अं०) हॉग (Hog) मादा = स्वाइन् (Swine); सूअर का छोटा बच्चा (घेंटुला, घेंटा = पिग (Pig)। (*Sus scrofa*, सूअर का विलायती भेद है। यह अफगानिस्तान और बलूचिस्तानमें पाया जाता है। सूअरके भारतीय भेदोंका नाम सूस क्रिस्टेटुस (*Sus cristatus*) तथा सूस ईडिकुस (*Sus indicus*) है। चर्बी-(हिं०) सूअरकी चर्बी; (अ०) शह्मुल् ख़िज़ीर; (फा०) पियः ख़ोक; (सं०) शूकर वसा; (ले०) ऐडेप्स (Adeps); (अं०) लार्ड (Lard)।

परिचय—यह सूअरकी शुद्ध आंतरिक ताजी वसा है जो सूअरके बच्चे (Pig)के उदर, विशेषकर आंत्रबंधिनी (Mesentery)के उपरिस्थित ओमेन्टम् (Omentum) और वृक्कों (Kidneys) तथा बाहरी कलाओंमें स्थित चर्बी है। यह एक मुलायम सफेद, मंदगंधमय, मधुरस्वादमय तथा उदासीन प्रतिक्रियामय एक स्नेह पिंड है। यह ईथर, बेंजीन और बाई सल्फाइड ऑफ कार्बनमें पूर्णतया विलीन हो जाती है।

प्राप्ति एवं शोधन—पहले इसे हवामें खुला रखें। फिर इसे पतले-पतले परतों (Slices)में काटकर खलमें घोंटकर एकजीव कर लेवें, तब इसे बरतन सहित एक पानी भरे पात्रमें रखकर इतना गरम करें कि चर्बी पिघलकर झिल्लीमय पदार्थोंसे अलग हो जाय, तब इसे छान लेवें। इसकी उत्क्लेशजनक गंध दूर करनेके लिए प्रायः प्रति आधसेर चर्बीमें ७॥ रत्ती फिटकिरी और १५ रत्ती साधारण नमक बारीक पीसकर मिलाते हैं (इ० मे० मे० भा० २/पृ० १३७)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध स्तनपायी चतुष्पद जन्तु जो जंगली (वहशी—वन्य) और पालतू (अहली—ग्राम्य) भेदसे दो प्रकारका होता है। इसको खाल अन्य पशुओंकी तरह मांस और चर्बीसे बिल्कुल पृथक् नहीं हो सकती। इसलिए उसके उतारनेका संकल्प नहीं करते। केवल बाल झुलस देते हैं। इस खालके नीचे जितनी दूर तक चर्बीकी सफेद तह (स्तर) होती है उसको उतार लेते हैं और नेवारकी तरह उसकी पट्टियां काट लेते हैं। यही सांट है।

लम्बी-लम्बी साँटें उबालकर ऊपरसे बाल उखाड़ लेते हैं, क्योंकि प्रथम जला लेनेमें खूँटियाँ रह जाती है। पुनः छोटी-छोटी बोटियाँ काटकर जैसा चाहते हैं, पका लेते हैं। जितनी साँट मोटी होती है उतना ही उत्तम होती है। शेष मांस लाल एवं तंतुमय होता है। मादासे नरका मांस उत्तम होता है। मादाका मांस अम्लता लिए होता है और साँट भी उसकी पतली होती है। सूअरका मांस शरद ऋतुमें सेवनीय होता है; क्योंकि उस कालमें साँट बहुत मोटी निकलती है। सूअरकी साँट अच्छी होती है। खोपरेका सा स्वाद होता है।

रासायनिक संगठन—ओलीइन लगभग ६०%, पामिटिन (Palmitin), मार्गरिन (Margarin) और स्टियरिन (Stearin) कुल लगभग ४०% होता है।

उपयुक्त अंग—चर्बी, मांस, पित्ता एवं पित्त और दूध, हड्डी, मूत्र, नख, खाल आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके आदिमें गरम और तीसरे दर्जेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस शरीरमें अवरोध एवं उष्णता उत्पन्न करता तथा है इसे प्रकृतिस्थ मनुष्यकी प्रकृतिके लिए सात्म्य बतलाते हैं, क्योंकि पचनेके उपरांत यह निःशेष शरीरका अंश बन जाता है और शरीरको स्थूल करता तथा पिच्छिल सान्द दोष उत्पन्न करता और बुद्धिको भ्रष्ट करता है। किसी-किसीके कथनानुसार इसका मांस अन्य समस्त जंगली जंतुओंके मांसोंकी अपेक्षया अनुष्णाशीत (मोतदिल) और उत्तम (पथ्य) है। परंतु यह बात सत्य इसलिये नहीं ज्ञात होती कि इसमें (रतूबत) अधिक है। किसी-किसीके मतसे इसका मांस शीघ्र पच जाता है और किसी-किसीके मतसे देरमें पचता है तथा उत्क्लेश उत्पन्न करता है। इसको खाकर चीनी या सिरका खाने या मदिरा पान करनेसे उक्त दोष दूर हो जाते हैं। इसके मांसकी पिच्छिलता दूरकर देनेसे इसका देरसे पचनेका दोष मिट जाता है। सूअरके बच्चे (घेंटा)से यद्यपि रक्त कम बनता है, तथापि यह पच शीघ्र जाता है। इसके निरंतर सेवनसे क्षीणकाय मनुष्य स्थूल हो जाता है। इसकी प्लीहा ताप तिल्लीपर रात्रिमें बाँधकर प्रातः अलग करके किसी जगह लटका देवें जिसमें सूख जाय, तो ताप तिल्लीका रोग जाता रहेगा। यही लाभ बकरीकी प्लीहासे होता है। सर्पदंशमें इसका कलेजा भूनकर मद्य और सुदाबके साथ खानेसे लाभ होता है। इसके खानेसे अन्यान्य विषैले कीड़ोंके काटनेमें भी लाभ होता है। सूअरका रक्त सर्व गुणकर्मोंमें मनुष्यके रक्तके समान है। इसकी मालिशसे स्त्रीका स्तन छोटा पड़ जाता है तथा उसका शोथ एवं जमा हुआ दूध प्रभावतः विलीन हो जाता है।

सूअरकी चर्बी—जालीनूसके अनुसार सूअरकी चर्बी नमक या मोमियाईके साथ वधिरताको दूर करता है तथा आक्षेपयुक्त अवयवपर लगानेसे लाभ करता है। उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका लेप शोथको विलीन करता है तथा शिश्नपर इसका लेप उसको कड़ा एवं (दराज) करता है। इसकी पुरानी चर्बीकी मालिशसे सर्द एवं कड़ी वातवाहिनियों (पुट्ठों)में गर्मी और नरमी आती है। यह चर्बी बालकों एवं स्त्रियोंके लिए तथा उन व्यक्तियोंके लिए जिनका मांस नरम हो अन्य सब चर्बियोंसे श्रेष्ठतर है। इसको मद्यमें धोकर राख या चूनेमें मिलाकर लेप करनेसे उष्ण शोथोंको लाभ पहुँचता है। इसे सिरकामें मिलाकर लगानेसे अभिघातज नाड़ीगत विकार दूर होता और शिथिलता जाती रहती है। उसके स्थान भ्रष्ट होनेपर इसे गुलरोगनोंमें मिलाकर लगाये। अग्नि दग्धमें इसकी मालिश करें। सर्दी या बर्फसे आघात पहुँचनेपर वहाँ इसको लगायें। इसकी मालिशसे गुदशूल एवं जरायुशूल आराम हो जाता है।

सूअरकी हड्डी—मनुष्यकी हड्डी (मानवास्थि)से मिला देनेसे शीघ्र जुड़ जाती हैं। इसकी जलाई हुई हड्डीका महीन चूर्ण अर्शाङ्कुरोंमें भरनेसे लाभ होता है। चौथियाके रोगीको इसे (हड्डी)को सनके कपड़ेमें लपेटकर बांधनेसे लाभ होता है। इसके (टखने)की हड्डी जलाकर लसी बनाकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे श्वित्रके दाग दूर होते हैं। टखनेकी हड्डीको इतना जलायें कि बिल्कुल सफेद हो जाय। इसमेंसे ४॥ माशा खानेसे (कोलून) नामक अन्त्रस्फीति दूर होती है। इसे शहदके साथ खानेसे कीटदंशज विष उतर जाता है।

सूअरका नख—जलाकर समप्रमाण चीनी मिलाकर खानेसे शय्यामूत्र एवं बारंबार मूत्र आनेका रोग जाता है।

सूअरकी विष्ठा—सूखी हुई दो चने प्रमाण खा-लेनेसे मृगी रोगमें लाभ होता है। इस पानी या मद्यके साथ खानेसे रक्तस्राव बंद हो जाता है तथा पार्श्वशूल आराम हो जाता है। कण्ठमालापर इसको मद्य और सिरकामें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है।

सूअरका मूत्र—नेत्रमें लगाते रहनेसे जाला कट जाता है। इसके पीते रहनेसे वस्ति और वृक्ककी पथरी निकल जाती है। यही लाभ वृषमूत्र सेवनसे होता है।

सूअरका पित्ता—कानमें टपकानेसे कानकी फुन्सी आराम होती है और पीव साफ हो जाता है। इसको (पशम)में लव करके योनिमें धारण करनेसे आर्तवरक्त और प्रसवशोणित अवरुद्ध हो जाता है तथा उदरस्थ शिशु भी निकल जाता है। शहद और कालीमिर्चके साथ लगानेसे गंजेके सिरपर बाल जम जाते हैं। सूअरके बच्चेका पित्ता शहदमें मिलाकर शिश्नेन्द्रियपर मालिश करनेसे सहवासेच्छा प्रबल होती है। सूअरकी खाल गृहमें रखनेसे मच्छर भाग जाते हैं।

आयुर्वेदीय मत—सूअर (वराह, सूकर)का मांस शीतवीर्य, स्निग्ध, भारी, रुचिकर, वृंहण, वृष्य, वल्य, तृप्तिकारक थकावटको दूर करनेवाला, स्वेदजनक तथा वायुनाशक है। (च० सू० अ० २७।७९; सु० सू० अ० ४६।१०२)। सूअरकी चर्बीमें असगंधका महीन चूर्ण या मधु मिलाकर लिंगपर मर्दन करनेसे लिंग स्थूल एवं दृढ़ होता है। (चक्रदत्त)। सूअरके रक्तमें किण्व, जीरा और सेंधानमक मिला लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ दूर होता है। (च० चि० अ० ७)।

सूअरनीका दूध

यह पिलाई लिये सफेद, किंचिन् मधुर तथा सर्द एवं तर होता है। यह बल्य एवं वृंहण है तथा उरःक्षत एवं राजयक्ष्मामें लाभ पहुँचाता है, परन्तु प्रायः त्वरोग उत्पन्न करता है। यूरोपवाले इसके परम प्रशंसक हैं और बहुधा इसे उपयोगमें रखते हैं। वे इसे मस्तिष्कावयवोंको बलप्रद बतलाते हैं जो कुछ न कुछ सत्य एवं अनुभवपूत प्रतीत होता है। अहितकर–दीर्घपाकी एवं आध्मानकारक है तथा किलास एवं (बहक सफेद) उत्पन्न करता है। निवारण–खंड। प्रतिनिधि–गदहीका दूध।

सौरी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **मत्स्य-वर्ग** (Class : Pisces) : **ओफिओसिफेली-फार्मीज-गण** (Order : Ophiocephaliformes) : **फैमिली : ओफिओसिफेलिडी** (Family : Ophiocephalidae)

नाम—(हिं०) सौर(री, ली); (सं०) शष्कुली; (बं०) शाल वा शङ्करमाछ; (ले०)—(१) चौना स्ट्राइएटुस (*Chauna striatus*); (२) चौना मारूलिउस (*Chauna marulius*)।

वर्णन—गरईकी जातिकी एक प्रकारकी गोल मछली। इसकी पीठके चोइंटे काले और पेटके पीलापन युक्त होते हैं। यह बहुत बड़ी नहीं होती। पानीसे बाहर करनेके बाद भी कुछ देर तक जीवित रहती है।

गुण-कर्म—इसका मांस ग्राही, हृदयके लिए हितकर और मधुर तथा कषाय रसयुक्त होता है। (भा० प्र०)।

हंस

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) : **ऐन्सेरीज-गण** (Order : Anseres) : **फैमिली : ऐनेटिडी** (Family : Anatidae) : **ऐन्सेरिनी-उपकुल** (Sub-family : Anserinae)

नाम—(हिं०) हंस (मादा–हंस (सि) नी, हंसी); (बं०) हंस; (बम्ब०) वल्लाकी; (ले०) ऐन्सर ईंडिकुस् (*Anser indicns Lath*); (अं०) गैन्डर (Gander), ड्रेक (Drake), दि बार-हेडेड गूज (The bar-headed goose)।

वर्णन—बत्तखके आकारका प्लवजातीय जलपक्षी जो बड़ी-बड़ी झीलोंमें रहता है। इसकी गर्दन पतली और बत्तखसे लंबी होती है और कभी-कभी उसमें बहुत सुंदर घुमाव दिखाई पड़ता है। इसके पाँव लंबे और लाल, चोंच लाल और टेढ़ी होती है। इसके सम्पूर्ण शरीरपर सफेद पर होते हैं। किंतु बाजूपर थोड़े लाल पर होते हैं। काज इससे भिन्न पक्षी है। यह पृथ्वीके प्रायः सब भागोंमें पाया जाता है और छोटे-छोटे जल-जंतुओं तथा उद्भिद् पर निर्वाह करता है।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस स्वरशोधक, चेहरेका रंग निखारनेवाला, क्षुधाजनक, अवयवोंको शक्तिप्रद और वाजीकर है। यह पित्त एवं सुर्खबादा को दूर करता, वाक्शक्तिकी वृद्धि करता, शुक्र उत्पन्न करता और बादीके रोगीको नष्ट करता है।

आयुर्वेदीय मत—हंसका मांस मधुर, उष्ण-वीर्य, भारी, स्निग्ध, स्वर-वर्ण तथा बलको देनेवाला, बृंहण, वीर्यवर्धक और वायुनाशक होता है (च० सू० अ० २७/५४)।

हड्डी

नाम—(हिं०) हड्डी, हाड़; (अ०) अज़्म; (फा०) उस्तख्वाँ (खान); (सं०) अस्थि, (लै०) ऑसियम् (*osseum*; बहुव० ऑसा ossa); (अं०) बोन (Bone)।

कुर्री

नाम—(हिं०) चबनी हड्डी, कुर्री; (अ०) गुज़रूफ; (सं०) उपास्थि, तरुणास्थि।

हड्डी

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरे दर्जेके आदिमें रूक्ष। जली हुई हड्डी तीसरे दर्जेके अन्तमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, रक्तस्थापन (हाबिस) और उपशोषण (रूक्षण) है। मानव अस्थि विशेषतः पुरानी, सड़ी-गली हड्डीको घिसकर पिलानेसे मृगी आराम हो जाती है। इसके काढ़ेसे सिरके ऊपर तरेडा (परिषेक) करनेसे नकसीर बंद होता है। बाएँ और दाहिनेके अर्धावभेदकमें विज्जूकी पसलीकी हड्डी गलेमें लटकाने (तअलीक)से लाभ होता है। पुरानी हड्डीके पिलानेसे अतिसार एवं रक्तस्राव बंद हो जाता है। कुत्तेकी हड्डीकी राख पिलानेसे बवासीर आराम होता है। बकरीके टखनेकी हड्डीको शहदके साथ घिसकर पिलानेसे वाजीकरण होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण–घी, धनिया, दही आदि। प्रतिनिधि–प्रायः गुणकर्मोंमें लकलकका मांस। मात्रा–बलाबलके विचारानुसार।

कुर्री (गुजरूफ-तरुणास्थि)

गुण-कर्म तथा उपयोग आदि—यह शीतल है तथा धातुओं (आजाए मुफ़रदा)की अपेक्षया शीघ्र पच जाती है। शीतप्रकृतियोंके लिए इसका निवारण गाढ़ा मद्य है। धातुएँ निम्न हैं—हड्डी, वातनाड़ी, स्रोत, कला, रक्तमांस, वसा (चर्बी), त्वचा और नख आदिका समावेश यूनानी धातुओंमें होता है। कुर्री इनमेंसे एक उपधातु (आजाए मुफ़रदा) है।

हरिन

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) : **अंगुलेटा-गण** (Order : Ungulata) : **फैमिली : सेर्विडी** (Family : Cervidae)

नाम—(हिं०) हरिन, हिरन; (अ०) ग़ज़ाल; (फा०) आहू; (सं०) हरिण, मृग; (लै०) सेर्वुस डैमा (*Cervus dama*, Linn.); (अं०) डियर (Deer), हार्ट (Hart)।

सींग—(हिं०) हरिनका सींग; (अ०) क़र्नुल्ग़ज़ाल; (फा०) शाख आहू; (सं०) मृगशृङ्ग, हरिणशृङ्ग; (अं०) हार्टस हॉर्न (Hart's horn), डियर हार्न (Deer horn)।

वर्णन—खुर और सींगवाला एक प्रसिद्ध चौपाया जिसकी बहुतसी जातियाँ होती हैं, जैसे—एण वा कृष्णसार—करिया साइल या काला हरिन (Indian antelope or Black Buck—*Antilop cervicapra* Linn.), बारहसिंगा, साँभर और कस्तूरीमृग आदि। चीतर भी इसकी एक जाति है जिसे अरबीमें 'सीतल' और संकृतमें 'चित्रमृग', 'चित्तल' वा 'चित्रल' और (लें०) सेर्वुस् एक्सिस (*Cervus axis*) एवं (अं०) स्पॉटेड डिअर (Spotted deer) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—सींग, मांस, खाल (मृगछाला), दूध (शीर आहू)। कल्प–सींग (सींगकी अन्तर्धूमदग्ध भस्म)का चूर्ण जो सफेद तथा गंध और स्वाद रहित होता है। इसमें ५७·५%फास्फेट ऑफ लाइम होता है। मात्रा—१ ग्रामसे १·५ ग्राम (१ माशासे १॥ माशा) तक।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस मानव प्रकृतिको सात्म्य, शीघ्रपाकी (सुपच), शीतप्रकृतिवाले को तथा अंगघात, पक्षवध, समस्त शीतल वातव्याधियों तथा शीतल हृत्स्पंदन एवं कामलाको लाभकारक है। जो लोग शरीरको कृश एवं रूक्ष बनाना चाहते हों, उनके लिए इसका मांस परम उपयुक्त है। कारण यह शीघ्रपाकी, रूक्षताकारक एवं अल्पाहार (कलीलुल्ग़िजा) है। तैयार हिरनका मांस उत्तम है। इसके मांसका कबाब सिरकाके साथ नहीं खाना चाहिए, क्योंकि अत्यंत (नाक़िस) और दीर्घपाकी हो जाता है। इसका भुना हुआ मांस देरमें उदरसे बाहर निकलता है। इसे खानेसे प्रायः अरुचि उत्पन्न हो जाती है। सिकंजबीन और खट्टे फलोंके खानेसे उसका निवारण होता है। बादाम, तिल, अखरोट और जैतून इनके तेल और नमक आदिके साथ पकानाभी इसका निवारण (दोषपरिहारकर्त्ता) है। हिरनकी चर्बी लगानेसे बाल लंबे होते हैं। हिरनके वृषणके ऊपर सातर और नमकका चूर्ण बुरक सुखाएँ। पुनः पीसकर योनिमें स्थापन करें। इससे आर्तवस्राव बंद हो जाता है। इसकी खालपर बैठनेसे रतिशक्ति कम (कामावसाद) हो जाती है। जहां यह खाल बिछी होती है, वहांसे कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं। इसकी मींगनियाँ गरम और रूक्ष एवं अत्यन्त लेखनीय होती हैं। नेत्रमें इसे सुरमेंकी भाँति लगानेसे नेत्रजालक कट जाता है। इब्नजहरके कथनानुसार घरमें हिरनके सींगकी धूनी करनेसे कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं। हिरनकी खाल धारण करनेवाला सर्पभयसे मुक्त रहता है। प्रतिदिन ३॥ माशा इसका पित्त तीन दिन तक खानेसे हर प्रकारका विष नष्ट हो जाता है। बंगको हिरनके रक्तमें मिलानेसे वह सुनहला रंग धारण करता है। हिरनका दूध घोड़ीके दूधसे गरम एवं तर (स्निग्ध) है तथा उससे अधिक (लतीफ) एवं परम वाजीकर है। मूत्रकृच्छ्ररोगीको इसका बाल जलाकर पिलानेसे लाभ होता है। कर्णशूलमें इसका पित्त बूँद-बूँद टपकानेसे उपकार होता है। अहितकर–उष्ण प्रकृति एवं शूलरोगीको। मांस रूक्षताजनक और शिरःशूलजनक है। इसका कबाब शूलजनक है। (मुफरदाते हिंदी)। निवारण–रूक्षताका निवारण तेल एवं अम्लत्वसे होता है। शिरःशूल, उष्ण प्रकृति और शूलके निवारणकी विधि यह कि प्रथम उबालें पुनः बादामके तेल या घीमें पकावें। कबाबोंका निवारण अम्लत्व है। वायु और आध्मान उत्पन्न करनेवालोंके लिए इसे अखरोट या जैतूनके तेल और गरम मसालाके साथ पकाना है।

आयुर्वेदीय मत—हरिण (ताम्र हरिण)का मांस रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, सुगन्धि, हलका मलमूत्रावरोधक तथा अग्निदीपक और दोषनाशक (सन्निपातनाशक (भा० प्र०) है। काला हिरण (एण) कषाय मधुर, हृद्य, संग्राही, रोचक, बलकारक तथा पित्त, कफ, रक्तरोग, (वात) और ज्वरनाशक है। (सु० सू० अ० ४६/५५-५६)।

हरियल

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : Aves) :
कोलम्बीफार्मिज-गण (Order : Columbaeformes) : **ट्रीरोनिनी-उपकुल** (Sub-family : Teroninae)

नाम—(हिं०) हरियल, हरिल, हारल, हरिता (या) ल; (सं०) हारीत (क), हारिल, रक्तपीत, हरित; (बं०) हथेला घुगु; (तें०) पोरगल; (लें०) क्रोकोपुस फीनीकोप्टेरुस (*Crocopus phoenicopterus*); (अं०) ग्रीन डव (Green dove), ए ग्रीन पोजन (A green pigeon)।

वर्णन—कबूतरसे छोटा और फाख्तासे बड़ा एक पक्षी जिसके दोनों बाजूके पर हरे होते हैं, परन्तु उनमें किंचित् सफेदीकी झलक भी होती है। उदरके पर फाख्तई रंगके होते हैं। सिर इसका गुलकासनीके रंग पर होता है, दुम और पैर छोटे होते हैं। यह जमीनपर कम उतरता, पेड़ों पर रहता और वृक्षोंके फल खाता है। इसका मांस तन्तुरहित एवं स्वादिष्ट होता है।

प्रकृति—मांस समप्रकृतिक (मोतदिल)।

गुण-धर्म तथा उपयोग—मांस लघु (सुबुक), शीघ्रपाकी, बल्य और वाजीकर है।

आयुर्वेदीय मत—मांस रूक्ष, उष्णवीर्य, किंचित् बादी (वातकारक), स्वेदकर, स्वरको सुधारनेवाला, कफकारक (मतभेदसे कफनाशक) तथा पित्त और रक्तपित्त का नाश करनेवाला है। (भा० प्र०)।

हरेवा

नाम—(हिं०) हरेवा, हरी बुलबुल;

वर्णन—हरे रंगकी एक सुन्दर सुरीली चिड़िया जिसकी चोंच काली, पैर पीले और लम्बाई १४ या १५ अंगुल प्रायः बुलबुलके बराबर होती है।

प्रकृति तथा गुण-कर्म—मांस गरम, रूक्ष एवं लघु है,

हाथी

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **स्तनधारी-वर्ग** (Class : Mammalia) :
अंगुलेटा-गण (Order : Ungulata) : **फैमिली : एलीफैन्टिडी** (Family : Elephantidae)

नाम—(हिं०) हाथी; (अ०) फ़ील; (फा०) पील; (सं०) हस्ति; (बं०) हाती; (गु०, म०, द०) हत्थी; (लें०) एलीफास इंडिकुस (*Elephas indicus*); (अं०) एलीफैन्ट (Elephant)।

वर्णन तथा प्राप्तिस्थान—एक बहुत बड़ा स्तनपायी चतुष्पद प्राणी जो सूंड़के रूपमें बढ़ी हुई नाकके कारण और सब जानवरोंसे विलक्षण दिखाई पड़ता है। यह प्रायः भारतवर्ष, ब्रह्मा और अफरीकामें पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—(१) दाँत (हिं०, म०, गु०) हाथी दाँत; (अ०) आज, सिनुल्फ़ील; (फा०) दन्दाने पी(फी)ल; (सं०) हस्तिदन्त; (अं०) आइवरी (Ivory), टीथ or टस्क्स (Teeth or Tusks); (२) नख (Nail); (३) मूत्र; (४) विष्ठा; (५) चमड़ा; (६) मणि और (७) मद।

कल्प तथा योग—दांतकी भस्म या उसका बुरादा या खूब बारीक चूर्ण, मिट्टीके बरतनमें अन्तर्धूम जलाकर बनाई हुई मसी, माजून नुशारए आज; तिर्याक अक्बर।

---

१. सु० चि० अ० ५ में हस्तिदन्तमसी और अ० ९ में मातङ्गदुग्धचर्म और राजनिघण्टुमें हस्तिमदके गुण-कर्म तथा उपयोगका उल्लेख मिलता है।

प्रकृति——हाथीका दाँत दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है। वैद्य गरम बतलाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हाथी दांतका चूर्ण ७ माशा शहदके साथ खानेसे स्मरणशक्ति बढ़ती है और संधिकी पीड़ा, पार्श्वपीड़ा, रक्तातिसार तथा रक्तस्राव बन्द होता है। हाथी दाँतको जलमें घिसकर अंजन करनेसे आँख साफ होती है और दर्शनशक्ति बढ़ती है। कषाय (काबिज) होनेसे श्वेतप्रदरमें इसका उपयोग करते हैं। बन्ध्यत्व दूर करनेके लिए स्त्रियोंको तथा कामलामें भी इसका उपयोग किया जाता है। बारहसिंगेकी भाँति इसका कुश्ता (भस्म) बना कर २॥ रत्तीसे १ माशा तक प्रयोग करते हैं। बन्ध्यत्व दूर करनेके लिए ऋतुस्नानोपरांत योनिमें इसकी वर्ति धारण कराते हैं। स्त्रीको चाहिये कि ऋतुस्नानोपरांत तीन रात निरंतर ४॥ माशे हाथी दांतका बुरादा और ९ माशे मिश्री फांके और चौथी रात पुरुषसमागम करे। इससे गर्भधारण हो जायगी। एलाजुल्गुर्बाके अनुसार इसे सप्ताहपर्यंत फांककर सातवें दिन पुरुषसंग करें। इसे पुदीनेके पानीके साथ कुछ दिन पीनेसे कोढ़को बढ़नेसे रोक देता है। हाथी दाँतके बुरादेके सम प्रमाण लोहेका बुरादा पीसकर बबासीरके मस्सोंपर बुरकनेसे लाभ होता है। जिस अंगमें हड्डीकी किर्च (शल्य) टूटकर रह गई हो, उसपर हाथी दांतका बुरादा बांधनेसे निकल आती है। इसका मोहरा गलेमें लटकानेसे अपस्मार और बालापस्मार आराम होता हैं। हाथीदांतको जलाकर राखको भेड़के घीमें मिलाकर मलहम बनावें। जहांके बाल उड़ गये हो या उड़ते जाते हों, उस स्थलको किसी तिक्त काढ़ेसे खूब धोकर उक्त मलहमको लगायें और सप्ताहमें दो बार उस स्थानके बाल बनवायें, बाल जम आवेंगे। शबरूजुस्सनमकी जड़के साथ हाथीदाँतको पचानेसे वह नरम हो जाता है। नेत्ररोगोंमें इसका नख २ भाग, तूतिया १ भाग, केसर ३ भाग—गायके दूधमें घिसकर लेप बनाकर आंखमें लगाते हैं।

हाथीका मांस अधिक रूक्ष होनेके कारण सेवन योग्य नहीं है। इसका पित्त आंखमें लगानेसे नेत्रका लेखन होता है, दृष्टिशक्ति वढती है और जाला कट जाता है। इसका नख भी घिसकर लगानेसे जाला कट जाता है। इसका मूत्र पीनेसे स्त्री गर्भवती होती है। यह मनुष्य मूत्रवत कार्य करता है। ज़ादगरीबमें लिखा है कि २ तोले ११ माशे या ४ तोले ४॥ माशेकी मात्रामें हाथीका मूत्र मैथुनसे पूर्व या पीछे पीना इस प्रयोजनके लिए गुणकारक है। हाथीकी लीद ३॥ माशे पीसकर शहदमें मिलाकर इसी मात्रामें चार सप्ताद पर्यंत चटाते रहें तो कभी गर्भवती न हो। इसी प्रकार इसको योनिमें धारण करनेसे भी स्त्री बन्ध्या हो जाती है। यह विलक्षण वात है कि मूत्र और दांतमें गर्भधारणाकी और लीदमें बन्ध्या बनानेकी शक्ति है। इसकी खाल पास रखनेसे वबाई बुखार आराम होते हैं। इसकी खाल जलाकर मोमरोगनमें मिलाकर नाड़ीव्रण और उन व्रणोंपर जो पूरित न हो सकते हों, लगानेसे लाभ होता है। मल त्यागके उपरान्त यह जली हुई खाल गुदापर मल लेनेसे बवासीरका रक्त बंद हो जाता है। बिना जली खालकी धूनीसे भी उक्त लाभ होता है। इसकी लीदकी धूनीसे कीड़े-मकोड़े भागते हैं और लेपसे झाइं और त्वचाके दाग जाते रहते हैं। मादनुश्शिफामें लिखा है कि हाथीकी मस्ती अर्थात् वह द्रव और पानी जो उससे टपकता है, वाल काला करता है, विष नष्ट करता है और श्वित्रका दाग मिटाता है।

आयुर्वेदीय मत—हाथी (गज)का मांस (रसमें)स्वादु, अम्ल, लवण, उष्णवीर्य, विरूक्षण, लेखन (शरीर कृशकारक) पित्तदूषक तथा कफ एवं वायुनाशक है। (सु० सू० अ० ४६।९६)। हथिनीका दूध—हथिनीका दूध (रसमें) मधुर, अनुरसमें कषाय, शीतल, स्निग्ध, भारी, वृष्य, शरीरको स्थिर (अत्यंत दृढ़) करनेवाला, बलकारक और नेत्रोंके लिए हितकर है। (च० सू० अ० २७।२२०; सु० सू० ४५।५८)। हथिनीका दही अनुरसमें कषाय, विपाकमें हलका, उष्णवीर्य, मलवर्धक तथा कफ और पाचनशक्तिका नाशक है। (सु० सू० अ० ४५।७४)। हथिनीका घी–हथिनीका घी तिक्त, हलका, अग्नि दीपक, मल और मूत्रका अवरोधक तथा कफ, कुष्ठ, विष, तथा कृमिका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५।१०४)। हाथीके दाँतकी मसी और रसौत (रसाञ्जन)को बकरीके दूध या जलमें भली-भाँति पीसकर १-१ तोलेकी गोलियाँ बना, सुखाकर रख छोड़े। इसको जलमें घिसकर जिस स्थानपरके बाल (केश) उड़ गये हों वहाँ लगानेसे बाल फिर उग आते हैं (सु० चि० अ० ५)। हाथीके चमड़ेको जलाकर बनाई हुई मसी तेलमें मिलाकर लगानेसे श्वित्र आराम होता है (सु० चि० ९)। अर्शके मस्सोंको हाथी

दांतके चूर्ण या हाथीके चमड़ेकी धूनी देनेसे पीड़ा और रक्तस्राव बंद होता है। हाथीका मद तिक्त, स्निग्ध, केश्य तथा अपस्मार, विष, कण्डू, व्रण, दद्रु, और विसर्पका दूर करनेवाला है। (रा० नि०)। मालतीकी कोंपलोंका क्षीर हाथीके मदमें सानकर लगानेसे श्वेत कुष्ठ दूर होता है (च०)। हाथीका मूत्र लवण, कुछ तिक्त, भेदन, तीक्ष्ण, वातघ्न, पित्त प्रकोपक, क्षार बनानेमें उपयुक्त तथा कृमि, कुष्ठ, मल-मूत्रका अवरोध विष, कफके रोग, अर्श और कलासको दूर करने वाला है (च० सू० अ० १; सु० सू० अ० ४५)। हाथीकी लीद पर पैदा हुए कुकुरमुत्तेको स्वेदितकर रस निचोड़ तेल, सेंधानमक मिला कानमें डालनेसे कर्णस्राव बंद हो जाता है।

हिलसा

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata); **मत्स्य-वर्ग** (Class : Pisces) ;
क्लूपोइफार्मीज-गण (Order : Clupeiformes)

नाम—(हिं०) हि (हे) लसा, इलसा; (सं०) इलिली, (लि, ली)स (श); (बं०) इलि(ली)श माछ; (ले०) हिल्शा इलिशा (*Hilsha ilisha* Ham & Buch.); (अं०) हिलशा फिश (Hilsha fish), इंडियनहेरिंग (Indian herring)।

वर्णन—एक प्रकारकी मछली जो चपटी और बहुत कांटेदार होती है। रोहूके बच्चेके समान हाथ सवा हाथ लम्बी, सफेद चोइंटेदार होती है।

गुण-कर्म—हिलसाका मांस मधुररसयुक्त, स्निग्ध, रोचक, अग्निवर्धक, कफकारक, किंचित् लघु, वीर्य-वर्धक तथा पित्त और वायुका नाशक है। (भा० प्र०)।

हुदहुद

पृष्ठवंशी-संघ (Phylum : Chordata) : **पक्षी-वर्ग** (Class : (Aves) : **कोरैसिईफार्मीज-गण**
(Order : Coraciiformes) : **फैमिली : उपूपिडी** (Family : Upupidae)

नाम—(हिं०) हुदहुद, खुटखुट बढ़ई, खुटक बढ़इया; (अ०) हुदहुद; (फा०) मुर्ग़ सुलेमान, पोपक, पोप (पो), शानःसर (क), शानः मुरङ्क्ब; (ले०) उपूपा एपोप्स (*Upupa epops*); (अं०) हूप (Hoop)।

वर्णन—एक चिड़िया जो हिन्दुस्तान और ब्रह्मामें प्रायः सब जगह पाई जाती है। इसके सिरपर परोंका ताज (मुकुट) होता है। इसके शरीरके समस्त परोंपर विभिन्न रंगोंके बहुतसे चिह्न और रेखाएं तथा पीले एवं काले विन्दु होते हैं। इसकी छाती और गर्दन खैरे रंगकी तथा चोटी और डैने काले और सफेद होते हैं। चोंच एक अंगुल लम्बी होती है। यह दुर्गंधित जानवर है। खवास अलाइयामें लिखा है कि जब यह पक्षी सूर्योदयके समय मुंह खोलता है तब इसके मुंहसे मक्खियां निकलकर उड़ने लगती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका मांस गुणमें जंगली चिड़ियोंके मांससे बलवत्तर है। सोयेके साथ पकाकर बनाया हुआ इसका मांसरस पीने और खानेसे अवरोधका उद्घाटन होता है, वस्ति एवं वृक्कमें संचित हुआ रक्त विलीन होता है और शूल (कुलंज) और पेचिशमें लाभ पहुँचता है। इसका ताजा हृदय घीमें तलकर शहदके साथ खानेसे बुद्धि और स्मरणशक्ति वढ़ती है। इसके हृदयको सुखाकर पीसकर शहदमें मिलाकर खानेसे वाजीकरण होता है। यह बालापस्मारमें लाभकारी है। विस्मृतिरोगमें इसका मांस खाने, हृदय चाबने और नेत्र पास रखनेसे प्रभावतः उपकार होता है। इसका पित्त या रक्त आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है हकीम मीर-मोहम्मदमोमिनने तोहफ़तुल्मोमिनीनमें लिखा है कि हुदहुदके नख अपने हाथ-पैरके नखोंके साथ मिट्टीके बर्तनमें जलाकर और पीसकर किसी मिष्ट पदार्थ या शर्बतमें मिलाकर जिसे व्यक्तिको खिलाएं वह अधीनस्थ एवं अनुचर

हो जाता है। जादगरीबमें लिखा है कि हुदहुदका मांसरस ओर मांस अपने प्रभावसे शूल (कुलंज)का नाश करते हैं। इब्नजहर कहते हैं कि घरमें इसके परोंकी धूनी देनेसे कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं। इसके रक्तको सुखाकर सोसनके साथ पीसकर तिलके तेलमें मिलाकर बालोंपर लगाकर एक घड़ीतक लगा रहने देनेके उपरान्त धो डालनेसे बाल काले और घुँघराले हो जाते हैं। पलकोंके पड़वाछ उखाड़कर वहाँ इसका पित्त लगानेसे फिर उनका निकलना बंद हो जाता है।

ह्वेल

पृष्ठ-वंशीसंघ : (Phylum: Chordata) **स्तनधरी-वर्ग** (Class : Mammalia)
सिटेसिया-गण (Order : Cetacea) : **फैमिली : बैलीनिडी** (Family : Balaenidae)

नाम—ह्वे (वे) ल; (सं०) तिमि, तिमिङ्ग (ङ्गि) ल; (बं०) तिमि; (ले०) बलीना (*Balaena*); मिस्टिकीटस (*Mysticetus*); (अं०) ह्वेल (Whale), ग्रीनलैंड ह्वेल (Greenland whale)। ह्वेलमछलीका वैज्ञानिक एवं अंग्रेजी नाम—(१) बैलीनोप्टेरा ईंडिका (*Balaenoptera indica*); (अं०) ब्लू ह्वेल (Blue whale)। (२) बैलीनोप्टेरा रोस्ट्रेटा (*Balaenoptera rostrata*); (अं०) पाइक ह्वेल (Poke Whale)। (३) ग्लोबीकिफेलुस ईण्डिकुस (*Globicephalus indicus*); (अं०) (Indian Pilot whale)।

वर्णन—एक बहुत बड़ा समुद्री जन्तुजो आजकल पाये जानेवाले पृथ्वीपरके सब जीवोंसे बड़ा होता है। यह लगभग ८० या ९० फुट तक लम्बे होते हैं। मछलीके समान ह्वेल अंडज जीव नहीं है, पिंडज है। मादा बच्चे देती है और अपने दो थनोंसे दूध पिलाती है। बहुत छोटे-छोटे कान भी ह्वेलके होते हैं। हिंद तथा प्रशान्त महासागरमें पाये जानेवाले एक अन्य जातिके ह्वेल–स्पर्म ह्वेल (Sperm whale–*Physeter macrocephalus*)की अँतड़ियोंमें होनेवाली रोगजन्य ग्रन्थिको 'अंबर' कहते हैं जिसका आयुर्वेद तथा यूनानी वैद्यकमें व्यवहार होता है। वि० दे० 'अंबर'।

प्राणिविज्ञानवेत्ताओंका कहना है कि ह्वेल पूर्व कल्पमें स्थलचारी जन्तु था और पानीके किनारे दलदलोंमें रहा करता था। हमारे यहांके प्राचीन ग्रन्थोंमें 'तिमिङ्गल' नामक एक बड़े भारी मत्स्य या जल-जंतुका उल्लेख मिलता है जो संभव है, ह्वेल ही है।

उपयुक्त अंग—ह्वेल दूध और मांस; स्पर्मह्वेलसे प्राप्त–उसके सिरकी चर्बी–सिटेसियम (Cetaceum-Spermaceti) तथा उससे प्राप्त तेल (Sperm oil or Oleum ceti) और अंबर।

सिरकी चर्बी

(अ०) मन्नुल्क़ीतुस; (ले०) सिटेसियम् (*Cetaceum*); (अं०) स्पर्मेसेसी (Spermaceti)।

वक्तव्य—सिटेसियम् (यू० कीतुस Cetus, अरबीकृत क़ीतुस = ह्वेल मछली, हूत)से व्युत्पन्न है।

वर्णन—यह हिंद तथा प्रशांत महासागरमें पाये जानेवाले स्पर्म ह्वेल (*Physeter macrocephalus*) Linn.) नामक ह्वेल मछलीके ऊर्ध्वहनुके समीपस्थ बृहत् कपालके सामने स्थित विशाल गह्वरमें रहनेवाला एक वसामय ठोस पदार्थ है। यह इस मछलीसे प्राप्त होनेवाले एक प्रकारके तेल (Sperm oil–Oleum ceti)से मिला हुआ पाया जाता है। यह मौक्तिक श्वेत (Pearly white), अर्द्धस्वच्छ, मणिभीय शूकर वसाके भौतिक स्थिति, एक मृदु (Bland) स्वाद और मंद वसामय गंधका पिण्ड (Unctuous mass) है। थोड़ा रेक्टिफायड स्पिरिट मिलानेसे इसका चूर्ण बनाया जा सकता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कहते हैं कि ह्वेलका दूध अत्यन्त मधुर, गाढ़ा, स्वादिष्ट एवं मनःप्रसादकर है। इसमें मक्खनभी खूब होता है। रासायनिक विश्लेषणसे यह ज्ञात हुआ है कि इस दूधमें रोगनिवारक वे ही तत्त्व अधिकतर पाये जाते हैं जिनके लिए लोग कॉडमत्स्य यकृत्तैल (कॉड लिव्हर ऑइल)का प्रयोग करते हैं। जिन

लोगोंने इसके दूधका उपयोग किया है वे कहते हैं कि यह दूध अन्य समस्त दूधोंसे अधिक उत्तम है। ह्वेलका भेजा खाने से उरःक्षत, उरोव्रण और उरःकलाओंको लाभ पहुँचाता है। ह्वेलके सिरकी चर्बी मलहरोंके बनानेमें काम आती है।

आयुर्वेदीय मत—समुद्रके मत्स्य (सामान्यतया) भारी, स्निग्ध, मधुर, पित्तका अधिक प्रकोप करनेवाले, उष्ण वातनाशक, वृष्य, विष्ठाके और कफवर्धक होते हैं। मांस सेवन करने या होनेसे ये समुद्रके मत्स्य विशेष करके बलवान होते हैं। (सु० सू० अ० ४६/११८,११९)। तिमिङ्गल (ह्वेल) मछलीकी चर्बीके मर्दन वा पीनेसे खालित्य दूर होता है।

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

[तृतीय खण्ड]

खनिज (पार्थिव) औषधाहार द्रव्य
(अद्‌विया व अग्ज़िया मा'दनिया)
विज्ञानीय विभाग २

प्राक्कथन

खनिज द्रव्यों (मा'दनियात) का यूनानी वर्गीकरण

यूनानी चिकित्सा विशारदों (हकीमों) या रसायनशास्त्रियों का किया हुआ खनिज द्रव्यों का वर्गीकरण अधोलिखित है :—

(१) ज़विल् अरवाह—ऐसे खनिज द्रव्य जो सूक्ष्मता के कारण अग्नि पर रखते ही अविलंब पिघल जाते तथा जिनके घटक वाष्प (अरवाह) बनकर उड़ने लगते हैं, जैसे—गंधक, पारा, शिंगरफ, रसकपूर, दारचिकना, संखिया, हड़ताल और मैनसिल। इन्हीं को रूह् भी कहते हैं। किसी-किसी ने इनको उपधात भी लिखा है जो ठीक नहीं है। यह अधातु (Non-metallic) तत्त्व हैं।

(२) ज़विल् नुफ़ूस—रसायनशास्त्र की परिभाषामें ऐसे द्रव्य जो ज़विल् अरवाह और ज़विल् अज्साद (लोह वा धातु) के बीच संबंध पैदा कर देते हैं; जैसे—नौशादर, शोरा, फिटकिरी, फिटकिरी गुलाबी और कपूर। इनमें कपूर यद्यपि एक उद्भिज्ज द्रव्य है, तथापि रसशास्त्री इसकी नणना ज़विल् नुफ़ूसमें करते हैं। किंतु उद्भिज्ज द्रव्य होनेके कारण मैंने कपूर का वर्णन यहाँ न कर इस ग्रन्थके उद्भिज्जौषधाहार द्रव्यविज्ञानीय प्रथम विभागके 'कपूर' शीर्षक में किया है।

(३) ज़विल् अज्साद—ऐसे खनिज द्रव्य (जसद) अज्साद मा'दनिया जो अग्नि पर रखने से द्रवित होते (पिघल जाते) और पीटकर बढ़ाने से बढ़ सकते हैं। इनके घटक वाष्प बनकर नहीं उड़ते, जैसे—सोना चांदी, तांबा, वंग (क़लई, रांगा), सीसा, जस्ता और लोहा ये सात। इनको फ़िलिज़्ज़ात (अ०-फिलिज़्ज़ का बहुव० = धातु) और जसद (अ० अज्साद का ए० व० = शरीर, देह) भी कहते हैं। आयुर्वेदमें इसे लोह, प्रचलित भाषामें धातु तथा अँगरेजीमें मेटल (matal) कहते हैं।

(४) अज्साद मुरक्कबा—एकसे अधिक धातुसे मिलकर बनी धातुको यूनानीमें अज्साद मुरक्कबा और आयुर्वेदमें मिश्रलोह कहते हैं, जैसे—तांबा और जस्ताके मेलसे पीतल तथा तांबा और रांगाके मेलसे कांसी बनती है। ये ताम्र-प्रधान मिश्रलोह के उदाहरण हैं।

(५) फ़र्अ अज्साद—जिन सात लोहों (धातुओं) का ज़विल् अज्साद शीर्षकमें नामोल्लेख किया गया है, उनमेंसे प्रत्येक की एक फ़र्अ (शाखा) अर्थात् उपधातु भी होती है। इसके निम्न प्रकार हैं—(१) जो उस धातु की खानसे निकले, जैसे—सोनेकी खानसे सोनामक्खी और चांदीके खानसे रूपामक्खी। (२) जो उस धातुके जलानेसे प्राप्त हो, जैसे—तांबेके जलानेसे संगरासिख (रूसोख़्तज) और लोहेके जलानेसे मंडूर (खुब्सुल् हदीद)। (३) जो कृत्रिम रूपसे धातुओंसे बनाई गई हो, जैसे—वंगसे मुरदासंग और सफेदा, जस्तेसे संगबसरी, तांबासे तूतिया (नीलाथोथा) जंगार कृत्रिम व खनिज और सीसासे सिंदूर। आयुर्वेदकी परिभाषामें इन्हे उपधातु कहते हैं।

गुणकर्ममें ये अपने मूल धातुके समान होती है। इतना ही नहीं, अपितु इनमेंसे कतिपय तो अपनी मूल धातुके उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य हैं। जैसे—मंडूर लोहे का। कतिपय अपनी मूल धातुसे निर्बल होती हैं; जैसे—सोनामक्खी और रूपामक्खी। ये उपधातुएँ अपनी मूलधातुओंके विपरीत अग्निपर पिघलती नहीं और तोड़नेसे टूटकर खंड-खंड हो जाती हैं।

इनके अतिरिक्त अभ्रक, सुरमा और चुंबक की गणना भी उपधातुओंमें की जाती है। शिलाजीतसे सत्त्वरूप लोहा प्राप्त होनेके कारण मैंने इसको लोहेकी उपधातुओं के प्रकरणमें स्थान दिया है।

(६) अहजार मा'दनिया (हजरिय्यात—पाषाण वा पत्थर)—ये जविल्‌अरवाहकी भांति न तो आगपर रखनेसे धूआं देते हैं और न जविल् अज्साद की भांति पिघल सकते हैं और न कूटनसे बढ़ सकते हैं, अपितु चोट लगनेसे खंड-खंड हो जाते हैं। इनको निम्न भेदोंमें बाँटा जा सकता है—

(१) **रत्न** वा **मणि (जवाहिर**—*Precious stone*)—जैसे अल्मास (हीरा), याकूत (माणिक, लाल), याकूत कबूद (नीलम), याकूत जर्द (पुखराज), ज़मुर्रद (पन्ना), ज़बरजद्द, गोमेद, लहसुनिया। यूनानी वैद्योंने सादृश्यके कारण मोती, प्रवाल शाखा व मूल, शुक्ति (सदफ़) और फादज़हर हैवानी की गणना भी, जो प्राणिज द्रव्य हैं, रत्नों (पाषाणों) में की है।

(२) उपरत्न—जैसे अकीक, संगे यशब, लाजवर्द, बिल्लौर (स्फटिक), सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, फीरोजा, तुरमुरी (वैक्रान्त), और संगे सुलेमान (Onyx)। तथा वानस्पतिक राल होनेसे कहरुवा (तृणकान्तमणि) का वर्णन इस ग्रन्थके उत्तरार्ध उद्भिज्ज औषधाहार द्रव्यविज्ञानीय विभाग १ में 'कहरुवा' शीर्षकमें किया गया है।

(३) सुधाप्रधान यौगिक—जैसे गोदंती, सुरमा सफेद, चूना (वा चूनेका कंकड़), खड़ी आदि।

(४) सिकताप्रधान यौगिक—जैसे बालू, संगजराहत, संगे रेशम (कौशेयाश्मा), जहरमोहरा (फादजहर मा'दनी), हजरुल् यहूद (बेरपत्थर), शादनज, संगसरमाही, हजरुल्‌कल्ब।

(५) परिशिष्टमें—कसौटी, कुरंड, काच।

(६) मृत्तिकाएँ (तोन वा गिल)—जैसे चीनी मिट्टी, गिल सफेद, गिल अरमनी, गिलेसुर्ख (गेरू वा सोनागेरू), गिल मख़्तूम, गिलमुलतानी, हसनधूप, गोपीचंदन।

(८) लवण एवं क्षार (मिल्ह व अल्कली)—लवणोंमें सेंधानमक, समुंदर नमक, सोंचर नमक, साँभर नमक, काला नमक तथा खारीनोन और क्षारों में पापड़खार तथा सुहागा का वर्णन यहाँ किया गया है। शेष लवणोंमें से विडलवण (नौसादर) का तथा क्षारोंमेंसे कलमी शोरा और फिटकिरीका वर्णन इस ग्रन्थके ज़विल्‌नुफूस विज्ञानीय द्वितीय अध्यायमें तथा जवाखार और सज्जीका वर्णन इस ग्रन्थके उद्भिज्ज औषधाहारविज्ञानीय द्वितीय खण्ड के क्रमशः 'जौ' और 'उश्नान' के प्रकरणमें किया है।

जविल् अरवाह विज्ञानीय अध्याय १

प्रकरण १

(१) गंधक (किब्रीत)

नाम—(हिं०, बं०, कश०, गु०, म०, द०, कों०, कना०, सिंघ, पं०) गंधक; (यू०) थीओन (Theion); (अ०) किब्रीत; (फा०) गोगिर्द; (सं०) गंधक, गन्धपाषाण, बलि; (बं०) गन्द्रोक; (ता०) गन्दकम्; (ते०) गंधकम्; ले०; (अं०) सल्फर (Sulphur)।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ है, जिसकी सुंदर पीलेरंगकी डलियां होती हैं। इससे विशेष प्रकारकी तीक्ष्ण गंध आती है। यह अधिकतया सीसा, जस्ता, लोहा और तांबेके साथ मिली हुई खानोंसे निकलती है। इसको उनसे शुद्ध करके काममें लेते हैं। इसके यह चार भेद हैं—(१) लाल, (२) पीला, (३) सफेदी लिये हरा और (४) कुछ-कुछ नीला।

इतिहास—चिकित्साशास्त्र के आदिमें कोथप्रतिबन्धक रूपसे गंधकका प्रयोग करते थे। यद्यपि बुकरात की रचनाओंमें इसका किंचित् उल्लेख नहीं मिलता, तथापि उनके शिष्य श्वासरोगमें इसका पुष्कल उपयोग करते थे। परंतु दीसकूरीदूस प्रथम व्यक्ति है जिसने गंधक के औषधीय उपयोगका उल्लेख किया है। वह उरः रोगोंमें इसका बाह्याभ्यंतर उपयोग करता था। जालीनूस भी उरः क्षतके रोगियोंको सिसलीमें ज्वालामुखी पर्वतोंसे गंधकीय बाष्प आघ्राणन हेतु भेजा करता था।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध।

गुण-कर्म—सर, रक्तप्रसादन, श्लेष्मनिस्सारक, श्वयथुविलयन, संशमन, कीटाणुहर, व्रणलेखन, लेखनीय और उरःक्षत एवं रक्तष्ठीवनमे अपने प्रभावसे गुणकारी है। श्वयथुविलयन, द्रवाकर्षण और सौदाजन्य रोगनिवारण—इसके प्रधान गुण-कर्म हैं। **उपयोग**—मृदुसारक होनेके कारण इसको अर्श, गुदचीर और हलके कब्जमें उपयोग करते हैं। कोष्ठमृदुकरणके अतिरिक्त यह अर्शाङ्कुरोंके दर्दको शमन करती है। उरःक्षत और रक्तष्ठीवनमें इसे शर्बत एजाज़ या ख़मीरए खशखाशमें मिलाकर चटाते हैं। रक्तप्रसादन होनेके कारण चंबल, छाजन (पामा), यौवनपिड़का, कण्डू, और कच्छू तथा दद्रु प्रभृति जैसे त्वचाके रोगोंमें इसका उपयोग लाभदायक होता है। यह कुष्ठघ्न, उपशोषण और लेखनीय है। उपर्युक्त त्वग्रोगोंमें पतला लेप और अभ्यंग के रूपमें इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। इसके सिवाय अन्य आर्द्र व्रणों, आर्द्र अरुंषिका, गोश्तख़ोरा (आकिला), इन्द्रलुप्त विशेष (दाउस्सालब एवं दाउल्हय्यः), झाईं और किलास (वहक़ व बर्स) तथा व्रणित कच्छू (जरब) में इसका मलहम बनाकर लगाया जाता है और अकेले या अन्य औषधियों के साथ प्रलेप किया जाता है। ग्रंथिविलयन के लिये तथा इसका संधिशोथ और प्लीहा-शोथ के लिये पतला लेप करते हैं। कफोत्सारि होने के कारण कास और कफज कृच्छ्रश्वास में इसे खिलाते हैं। वेदनानिवारण और विषाकर्षणके लिये इसको वृश्चिक दंश पर लेप करते हैं। **अहितकर**—आमाशय और मस्तिष्क के लिये। **निवारण**—कतीरा और ताजा दूध। **प्रतिनिधि**—एक भेद दूसरे भेदका प्रतिनिधि है। **मात्रा**—०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

योग तथा कल्प—दवाए किबरीत, जिमाद किबरीत, शुद्ध ऊर्ध्वपातित एवं अधःक्षिप्त गंधक, हब्ब किबरीत।

आयुर्वेदीय मत—गन्धक कटु, मधुरविपाक, सारक, पाचन, दीपन, वृष्य, योगवाहो तथा कफ, वात, कृमि और कुष्ठ (त्वचाके रोगों) को दूर करने वाला है।

प्रकरण २

(१) पारा (सीमाब)

नाम—(हिं०, द०, बं०, म०, उ०) पारा; (अ०) ज़ी(जै)बक़ (म० ज०), ऐनुल् हयात; (फ़ा०) सीमाब, जीव:; (सं०) पारद, रस; (गु०) पारो; (ले०) है(हाइ)ड्रार्जिरम् (Hydrargyrum); (अं०) मर्क्युरी, मर्करी (Mercury), क्विक सिल्वर (Quick silver)।

वक्तव्य—इसकी अरबी संज्ञा 'ज़ीबक़' फारसी 'जीव:' संज्ञाका अरबी रूपांतर है और गीलानीके कथनानुसार आश्चर्य नहीं कि इसकी उक्त फारसी संज्ञा 'जीव:' संस्कृत संज्ञा हो, जिसका अर्थ जीवन (हयात) है; क्योंकि रसायनशास्त्रियों के समीप इसकी एक संज्ञा ऐनुल्हयात भी है। अरबी 'सीमाब' संज्ञा का अर्थ (सीम = चाँदी + आब = पानी) चाँदी का पानी है। लेटिन हाइड्राजिरम् यूनानी 'हुडोराजिरोस' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ हुडोर = जल + अर्जिरोस = चाँदीका पानी है।

इतिहास—इस धातुका ज्ञान भी अतिप्राचीन है, सुतरां प्राचीन यूनानी, अरबी और भारतीय आर्यवैद्य इसके कतिपय योगोंका औषधरूपेण उपयोग करते थे। यूनानी मतसे यह सोने और चाँदीके बाद अन्वेषित हुई थी। प्राचीन रसायनविदों को भी यह धातु ज्ञात थी। सुतरां इसकी प्राचीन रासायनिक पारिभाषिक संज्ञा 'मर्क्युरी' या मर्करी अर्थात् 'उत्पत्' है। अरबीमें इसकी और भी अनेक संज्ञाएँ हैं, यथा—रूह, नाफिज, नटगार और ऐनुल् हयात आदि।

वर्णन—यह पिघली हुई चाँदीके समान प्रवाही और सफेद एक प्रसिद्ध धातु है जो कि समस्त धातुओंसे वजनी (भारी) होतीहै। शिंगरफ़, रसकपूर, दालचिकना, कज्जली आदि इसके प्रसिद्ध योग हैं।

प्रकृति—पारा दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें स्निग्ध है। आयुर्वेदके मतसे योगवाही एवं स्निग्ध है। पारद भस्म (कुश्ता सीमाब) दिल्लीके हकीमोंके अनुसार उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—बल्य, कफरोगनाशक, रक्तप्रसादन, वाजीकर, वीर्यपुष्टिकर, शुक्रस्तम्भन, कीटाणुनाशक और कृमिघ्न है।

उपयोग—दिल्ली के हकीम पाराको भस्म करनेके उपरांत प्राय: श्लेष्म और वातव्याधियों, जैसे—पक्षवध, अर्दित, कम्पवायु, आक्षेप, प्रसेक और प्रतिश्याय, कास और कृच्छ्रश्वास, आमवात, और रक्तविकारजन्य रोग, जैसे—कुष्ट और फिरंगमें उपयोग कराते हैं। वाजीकरण और शुक्रस्तम्भनके लिये भी प्रयुक्त होता है। राजयक्ष्मा और उर: क्षत रोगीको खिलाया जाता है। झवाई टोलाके हकीम व्रणोपशोषणके लिये बाह्य प्रयोग करते हैं। यह कण्डू और कच्छू तथा दुष्ट व्रणोंके लिये मलहरोंमें डाला जाता है। इसके लगानेसे सिरकी जूएँ मर जाती हैं। बल्य होनेके कारण राजयक्ष्मा और उर:क्षतमें इसका उपयोग करते हैं। इसकी भस्म बहुत सावधानीपूर्वक तैयार करना चाहिये, वरन् कच्ची भस्मके उपयोगसे संपूर्ण शरीर पर फोड़े-फुंसी और विस्फोट निकल आती हैं। कभी-कभी आंतोंकी गिरह खोलनेके लिये पारेको शुद्ध करके बड़ी मात्रामें खिलाते हैं, जिसके बोझसे गिरह खुल जाती है और पारा शोषित हुये बिना सरलान्त्रकी राह उत्सर्गित हो जाता है। इसका विशेष गुणकर्म व्रणलेखन और विलेशयजंतुनाशन है। **अहितकर**—मुख, कंठ, मस्तिष्क और कर्णके लिये। **निवारण**—दूध और घी। **प्रतिनिधि**—बारीक किया हुआ (महलूल) राँगा। **मात्रा**—भस्म १ चावलसे २ चावल तक।

आयुर्वेदीय मत—शुद्ध पारद षड्रस युक्त, योगवाही, सारक, गुरु, तीनों दोषोंको हरनेवाला, वाजीकर, बलकारक, रसायन, व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला, कृमिहर (कीटाणुनाशक) तथा सभी रोगों को दूर करनेवाला है।

(२) शिंगरफ

नाम—(हिं०) हिंगुल, शिंगरफ, सिमरिख; (यू०) Kinnabari (D. 5·109); (अ०) ज़िन्जफ़र (मख्जन), शि (सि) न्ज़फ़र; (फा०) शंगर्फ़; (सं०) हिङ्गु (ङ्ग) ल; (म०, बं०) हिंगुल; (पं०) शिंगरफ़; (गु०) हिंगलो; (लें०) हाइड्रार्जिराई बाई सल्फ्युरेटम् (Hydrargyri Bi-sulphuretum); (अं०) सिनेबार (Cinnabar), मर्क्युरिक सल्फाइड (Mercuric Sulphide)।

वर्णनादि—यह गहरे लाल रंगके भारी चमकीले टुकड़े हैं जो पारा और गंधक के यौगिक होते हैं। खनिज (प्राकृतिक) और कृत्रिम भेदसे शिंगरफ दो प्रकारका है। आजकल बाजारमें जो हिंगुल मिलता है वह कृत्रिम है। खनिज चीन आदि देशोंमें निकलता है। शिंगरफ रूमी इसका सर्वोत्तम भेद है जो औषधके काममें लिया जाता है।

कल्प तथा योग—कुश्ता शिंगरफ, अल्अहमर।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—संग्राही, उपशोषण और विलयन है। शिंगरफकी भस्म बल्य, वाजीकर, शुक्रस्तम्भन, वातनाड़ीबलदायक, कफरोगनाशक, रक्तशोधक तथा जीर्णज्वरनाशक, रक्तस्रावनाशक तथा व्रणरोपण है। उपयोग–शिंगरफका व्रणशोषण एवं व्रणस्थ रक्तस्राव रोकनेके लिए मलहरोंमें डालकर उपयोग करते हैं और शीतल शोथोंके विलयनके लिये लेप करते हैं। फिरंग एवं दुष्टव्रणोंमें इसकी धूनी देते हैं। नपुंसकता, शीघ्रपतन, अर्दित, पक्षवध, आमवात, प्रसेक, प्रतिश्याय, जीर्णज्वर, कास, कफज कृच्छ्रश्वास, फिरंग और कुष्ठ आदि रोगोंमें शिंगरफकी भस्मका उपयोग करते (खिलाते) हैं। अहितकर—कण्ठशोथ (खुनाक), आकुलता और हृत्स्पंदन पैदा करता है एवं विष है। निवारण—घी, दूध और पिच्छिल द्रव्य। प्रतिनिधि—शादनज मसूल। मात्रा—१ चावलसे २ चावल तक।

आयुर्वेदीय मत—हिंगुल वात-पित्त और कफ तीनों दोषों तथा समस्त रोगोंको हरनेवाला, दीपन, वृष्य और रसायन है। (र० चू० अ० ११)।

(३) रसकपूर

नाम—(हिं०, पं०) रसकपूर; (अ०) अक्सीरुद्दम (नवीन); (सं०, द०) रसकर्पूर; (लें०) हाइड्रार्जिराइ सब्क्लोराइडम् (Hydrargyri Sub-chloridum); (अं०) सबक्लोराइड् ऑफ मर्क्युरी (Sub-chloride of mercury), कैंलोमेल (Calomel)।

वक्तव्य—रसकपूर एक विषद्रव्य है। इसके सेवनसे मुँह आ जाता है, दांत हिलने लगते हैं, लालाग्रन्थियोंमें सूजन होती और लार बहने लगती है। इससे बचनेके लिये इसको केपसूलमें डालकर या मुनक्का आदिके भीतर रखकर निगल जाते हैं जिससे वह मुखमें न लगने पावे।

इतिहास—प्राकृतिक एवं कृत्रिमभेद से यह दो प्रकारका होता है। उम्दतुल्मुहताजके संकलयिताके अनुसार यह स्पेन और नीमसाके कतिपय स्थानोंमें प्रकृतरूपमें पाया जाता है। प्राचीन आरब्य चिकित्सक इसे बनाना भली भाँति जानते और प्रयोग करते थे।

वर्णन और निर्माण-विधि—रसकपूरके सफेद किंचित् मैले चमकदार स्फटिक (रवे) होते हैं जो कि पारा, गिल अरमनी, फिटकिरी और सेंधानमक इनके योगसे विशेष विधिसे बनाया जाता है।

कल्प तथा योग—कुश्ता रसकपूर, जौहर आतशक, जौहर कलाँ, जौहर मुनक्का, जौहर रसकपूर।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—तारल्यजनन, रक्तप्रसादन, रूक्षण, बाजीकर और विशेषतः फिरंगनाशक है।

उपयोग—दिल्लीके हकीमों द्वारा आतशक, दुष्टव्रण, वृक्क-बस्ति एवं मूत्रमार्गस्थ चिरज व्रणोंमें रसकपूर का ऊर्ध्वपातित सत्व (जौहर) आंतरिकरूपसे पुष्कल प्रयुक्त होता है। इसके उपयोगसे व्रण अति शीघ्र शुष्क हो जाते हैं। इसे वाजीकरणके लिये भी खिलाया जाता है। लखनऊके हकीम इसका केवल बाह्य प्रयोग करते हैं। व्रणलेखन होनेसे यह कतिपय मलहरोंमें भी डाला जाता है जो कि संगीय व्रणों और दुष्ट व्रणोंमें प्रयुक्त होते हैं। जौहर रसकपूर 'जौहर मुनक्का' के नामसे व्यवहारमें लिया जाता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिके लिये। **निवारण**—दूध और तेलादि। **मात्रा**—जौहर रसकपूर २ चावलसे ४ चावल तक।

आयुर्वेदीय मत—रसकपूर उपद्रवसहित फिरंगरोग (आतशक), नाडीव्रण (नासूर) आदिको नष्ट करता है।

नव्यमत—रसकपूर रक्तशोधक, पित्तघ्न कोथहरविरेचन, मूत्रजनन तथा त्वचाके रोग, फिरंग, ग्रन्थि, जीर्ण यकृच्छोथ, कामला, हृत्यकृज्जन्य जलोदर, सन्यास, वातरक्त, यकृच्छोथ, रक्तज्वर हुम्माए मुत्बिका, सिरदर्द, कम्पवायु, मूर्च्छा आदिके लिये उपकारक है। जिसके शरीरमें फिरंगीय दोष विद्यमान हो, रसकपूरके सेवनसे उसका मुंह आ जाता है। किंतु विरेचन औषधियोंके साथ देनेसे विरेक द्वारा उत्सर्गित होकर इसका उक्त दोष जाता रहता है। इसका गरारा फिरंगगत तालूके घावमें लाभकारी है।

(४) दारचिकना

नाम—(हिं०) दार (ल) चिकना; (अ०) सुलैमानी; (फा०) दार (रा) शिकना; (सं०) दारचिक्कण; (द०) शवीरम्; (पं०) दारचिंगना; (लें०) हाइड्राजिराइ परक्लोराइडम् (Hydrargyri Perchloridum); (अं०) परक्लोराइड ऑफ मर्करी (Perchlorlde of Mercury), करोंसिह्व सब्लिमेट (Corrosive Sublimate)।

वर्णन—यूनानी वैद्यकके मतसे दारचिकना पारा और संखियाका यौगिक है। यह सफेद, उज्ज्वल और भारी होता है। पाश्चात्य वैद्यकके मतसे करोंसिह्व सब्लिमेटके निर्माणकी विधि यह है—मर्क्युरिक सल्फेट, सोडियम् क्लोराइड (सैंधव) और मैंगेनीज डाइऑक्साइडको अग्नि पर ऊर्ध्वपातित करनेसे प्राप्त होता है।

इतिहास—आरब्य एवं भारतीय आर्य वैद्योंको भी इसका पूर्ण ज्ञान था। सुतरां उन्होंने इसके निर्माणकी विभिन्न विधियां वर्णन की हैं। इसके लिए यूनानी और वैद्यकीय ग्रन्थोंका परिशीलन करें।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। **गुण-कर्म**—दोषतारल्यजनन, रक्तप्रसादन, व्रणलेखन और कोथप्रतिबंधक। **उपयोग**—रक्तप्रसादन और व्रणलेखन होनेके कारण इसका जौहर (सत्व) उड़ाकर फिरंग (आतशक) रोगमें देते हैं। इसे मरहमोंमें डालकर फिरंगीय और अन्यान्य दुष्ट व्रणों पर लगाते हैं। **अहितकर**—विष है। **निवारण**—घी और दूध। **प्रतिनिधि**—संखिया। **मात्रा**—दारचिकनाका जौहर १ चावलसे २ चावल तक।

प्रकरण ३

(१) संखिया

नाम—(हिं०) संखिया, सोमल, सम्मुलखार, संबुल; (यू०) अर्सेनिकोन (D. 5·120); (अ०) सम्मुल्फ़ार, तुराबुल्हालिक, तुराबुल्फ़ार, रह्जुल्फ़ार, शुक (क्क); (फा०) मर्ग (गें) मूश; (सं०) मल्ल, सोमल, शंखविष, शङ्खविष, गौरीपाषाण, फेनाश्म; (बं०) शिमुलखार, शंकोविष, शङ्खविष; (म०) सोमल, सोमलखार; (गु०) सोमल, शंखियो; (लें०) आर्सेनिकम् (Arsenicum), एसिडम् आर्सेनिओसम् (Acidum Arseniosum), आर्सेनिकम् एल्बम् (Arsenicum Album); (अं०) आर्सेनिअस एसिड (Arsenious acid), (White Arsenic), आर्सेनिक (Arsenic)।

वक्तव्य—अल्तबरीके विचारसे लाल और सफेद भेदसे यह दो प्रकारका होता है। परंतु इब्नवैतारके कथनानुसार इसके अनेक भेद होते हैं, यथा—धूसर, पीत आदि (२।१६०)।

वर्णन—यह एक प्रकारका बहुत जहरीला प्रसिद्ध खनिज है,जो कि सफेद या हलका पीले रंगकी चमकदार डलियोंके रूपमें होता है। संखिया स्वयंभू विरल मिलता है। बाजारमें जो सफेद संखिया मिलता है, वह कृत्रिम होता है। प्रारंभमें यह अर्धपारदर्शक काचसदृश होता है; पीछे धीरे-धीरे शंखसदृश श्वेत वर्णका और अपारदर्शक हो जाता है।

कल्प तथा योग—हब्ब अहमर, जौहर सीन, दवाए खनाज़ीर, हब्ब सम्मुल्फार आदि।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—बल्य, वाजीकर, नाड़ीबलवर्धन, वायु तथा कफरोगनाशक, दीपन, रक्तप्रसादन, रक्तवर्धक, ज्वरघ्न, कीटाणुनाशक आग्नेय, उपशोषण तथा आमवातघ्न है। अधिक मात्रामें खानेपर यह सांघातिक विष है। **उपयोग**—दौर्बल्य, रक्ताल्पता, अग्निमांद्य, अर्दित, पक्षवध, आमवात, गृध्रसी, कटिशूल, कास, कफज कृच्छ्रश्वास तथा अन्य कफरोगोंमें संखियाका उपयोग किया जाता है। रक्तशोधक होनेके कारण कुष्ठ, आतशक, किलास और अन्य रक्तविकारजन्य रोगों एवं त्वचाके रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। ज्वरघ्न होनेके कारण नियतकालिक ज्वरों और कफज्वरोंमें इसे खिलाते हैं। आग्नेय होनेके कारण इसे कतिपय त्वग्रोगोपयोगी मलहरोंमें मिलाकर लगाते हैं। अर्शाङ्कुरोंको गिरानेके लिए भी यह पतले लेपके रूपमें प्रयुक्त होता है। इसे बाजीकर तिलाओंमें डालते हैं। इसकी भस्म भी आंतरिक रूपसे उक्त रोगोंमें प्रयुक्त होती है। संखियाके **विष लक्षण**—संखिया एक तीव्र सांघातिक विष है। अधिक मात्रामें संखिया खानेसे निम्न लक्षण प्रगट होते हैं—इसके प्रवेशमार्गमें दाह और खराश होनेसे वमन तथा विरेक होकर मनुष्य मर जाता है। सुतरां इसके खाते ही या एक घंटेसे पाँच घंटे तकके भीतर मुख, कंठ और गलेमें दर्द और खिचावट होने लगती है। कंठ और अन्नमार्गकी श्लेष्मल कलामें क्षत पड़ जाते हैं। गलेमें खुश्की और जलन मालूम होती है तथा उग्र तृष्णा, स्वरभेद, निगलन कष्ट, श्वास कृच्छ्रता और रक्तमूत्र प्रभृति विकार प्रायः होते हैं। प्रारम्भमें वमन और विरेक तथा अंतमें अन्त्र और आमाशयसे रक्त आने लगता है। उनमें दाह और शोथ हो जाता है। उदरमें व्याकुलताकारक दर्द होता है और उस दर्दके कारण उदरमें दबाने बल्कि छूनेसे भी उसकी वृद्धि होती है। स्वेदकी अधिकता, नाड़ी क्षीण, तीव्र और अनियमित, हस्त-पाद बल्कि संपूर्ण शरीर कभी शीतल और कभी उष्ण एवं रूक्ष हो जाता है और अंतमें मृगीकी भाँति आक्षेप होकर रोगी यमलोक सिधारता है। मरणोत्तर उदरविदारणकर देखने से संपूर्ण अन्नप्रणाली मुखसे लेकर गुदा पर्यन्त रक्त दिखाई देती है, और कभी-कभी उसमें व्रण, पूय या सड़न देखनेमें आती है। **उपक्रम**—इसके लक्षण प्रारम्भ होते ही सोयेके काढ़े, शराब, शहद और बूरए अरमनी या केवल गोदुग्ध पिलाकर वमन करायें। इसके उपरांत दूध तथा पिच्छिल द्रव्य (लब़ाब) आदि पिलाएँ। उपयुक्त एवं हृद्य औषधियोंसे हृदयको शक्ति प्रदान करें। चिकना शूरबा पिलाएँ। खीर और फीरनी चटायें। २–३ तोले कत्था जलमें घोलकर पिलाएँ। दूधमें घी मिलाकर पिलाएँ। केलेकी जड़का पानी और कपूर दें। यह तथा अन्य उपायोंसे रोगीकी जीवनरक्षाकरें। **अहितकर**—घातक विष है। **निवारण**—गोघृत और सफेद कत्था। **प्रतिनिधि**—एक भेद दूसरेका प्रतिनिधि है। **मात्रा**—शुद्ध संखिया $\frac{१}{१०}$ चावलसे $\frac{१}{३}$ चावल तक अथवा १ रत्तीके $\frac{१}{१००}$ भागसे $\frac{१}{५०}$ भाग तक। १ रत्ती मात्रा मारक विष है।

आयुर्वेदीय मत—शुद्ध संखिया योग्य मात्रामें सेवन करनेसे बलकारक, बाजीकर, रसायन तथा श्वास, शीतज्वर, पाण्डुरोग, प्लीहा की वृद्धि, फिरङ्गरोग, श्लीपद, सन्धिवात और कुष्ठ—इन रोगोंका नाश करनेवाला है।

(२) हड़ताल

नाम—(हिं०) हड़ताल, हरतार (ल); (अ०) ज़र्नीख़, ज़र्नीख़ अस्फर, अर्सानोक़ून; (फा०) ज़र्नीखे ज़र्द; (सं०) हरिताल, ताल; (म०, गु०) हरताल; (पं०) हड़ताल; (बं०) हरिताल; (ले०) आर्सेनियाइ ट्राइसल्फाइडम् (ArseniiTri—Sulphidum), आर्सेनिकम् टर (ट्राई) सल्फ्युरेटम् (Arsenicum Ter (tri)–Sulphuretum); (अं०) येलो ऑर्पिमेंट (Yellow Orpiment), येलो सल्फ्युरेट ऑफ आर्सेनिक (Yellow Sulphuret of Arsenic)।

वर्णन—यह पीले रंगका और चमकीला एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ है, जो गंधक और संखियाका यौगिक है। यह खानोंमें स्वाभाविक मिलता है और बनाया भी जाता है। इसमें गंधक और संखिया दोनोंके सम्मिलित गुण होते हैं। उत्तम हड़ताल वह है जो सोनेके रंगका पीला, चमकदार और भारी हो और अभ्रककी तरह जिसके अलग-अलग पत्र किये जा सकें। इसे अरबीमें ज़र्नीख़ तबक़ी (तबक़िय्या) या ज़र्नीख़ वर्क़ी (वर्क़िय्या), उर्दूमें हड़ताल तबकिया या वर्किया, संस्कृतमें (पत्रताल) कहते हैं। यह बलि और सोमलका प्रकृतिमें बना यौगिक है। खानेकी औषधमें तथा भस्म बनानेमें इसीका उपयोग होता है। इसका एक भेद पिण्ड तालक (पिण्ड-हरिताल) है जो पिण्डके रूपमें और पीला होता है।

कल्प तथा योग—रोग़न ज़र्नीख़।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—यह आग्नेय, लोमशातन और कृमिघ्न है। हड़ताल भस्म कफरोगनाशक, रक्तशोधक, उपशोषण, जीर्ण ज्वरनाशक, बाजीकर और शुक्रस्तम्भन है। विशेषकर यह तिलाओं और मरहमोंमें डाला जाता है।

उपयोग—दुष्ट व्रणोंके लिए इसे मलहरोंमें डालते हैं। प्रवृद्ध मांसको दूर करके तथा यदि उनमें कृमि पड़ गए हों तो उनको मारके यह व्रणको अच्छा कर देता है। बाल मूँड़नेके लिए इसे चूनेके साथ मिलाकर लगाते हैं। **हड़तालकी भस्म** (कुश्तए हड़ताल) कफज और वातज रोगों, जैसे-अर्दित, पक्षवध, कम्पवात, अपस्मार, प्रसेक एवं प्रतिश्याय, कास, कृच्छ्रश्वास, जलोदर, आमवात और रक्त विकारजन्य रोगों जैसे आतशक (फिरंग), कुष्ठ, अर्श और भगन्दरमें खिलाते हैं। यह वाजीकरणके लिए भी प्रयुक्त होता है। कफज्वरोंमें इसका उपयोग किया जाता है। अहितकर—संक्षोभजनन (लज़्ज़ाअ) है। निवारण—पीली हड़ (हर्रा) और बादामका तेल। प्रतिनिधि—मैनसिल। मात्रा—२ चावलसे ४ चावल तक।

(३) मैनसिल

नाम—(हिं०) मैनसिल; (अ०) ज़र्नीख़ अह्मर (सुर्ख़); (फा०) ज़र्नीख़ सुर्ख़; (सं०) मनःशिला, शिला, नैपाली; (बं०) मनछाल; (गु०) मनशिल; (कना०, को०) मनसिल; (म०) मनशील; (पं०) मनशिल; (मार०) मैनसल; (लै०) अॅर्सेनियाई डाइसल्फाइडम् (Arsernii Disulphidum), अॅर्सेनिकम् रुब्रम् (Arsenieum Rubrum); (अं०) रेल्ज़र (Realgar), रेड ऑर्पिमेन्ट (Red Orpiment), ऑर्सेनिक डाइसल्फाइड (Arsenic Disulphide), बाइ सल्फ्युरेट ऑफ आर्सेनिक (Bi-sulphuret of Arsenic)।

वर्णन यह हड़तालकी भाँति संखिया और गंधक का एक यौगिक है। इसकी रचनामें संखिया और गंधक के दो-दो अणु होते हैं। खनिज और कृत्रिम भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। अकृत्रिम, नारंगीके रंगकी, भारी और शीघ्र चूर्ण हो जाय ऐसी मैनसिल उत्तम होती है।

कल्प तथा योग—नुसखा शियाफ तरफ़ा।

प्रकृति—गरम एवं खुश्क। आयुर्वेदके मतसे भी उष्ण वीर्य। गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कटु (तिक्त), तीक्ष्ण, गुरु, कोष्ठमार्दवकर, शोथविलयन, विषहर, कफरक्तविकारनाशक है तथा श्वास, कास, ज्वर, यक्ष्मा और हाँफनेका रोग दूर करनेवाला है। यह शरीरका रंग निखारता और अधिक मोटापाको कम करता है। इसके लेपसे तर एवं खुश्क खुजली मिटती है। इसे गुलरोगनमें हल करके लेप करनेसे गुदागत फुंसियाँ, बवासीर और नासागत व्रण आराम होते हैं। समभाग चोक और मैनसिलको पीसकर मूँगके दानेके प्रमाणकी गोलियाँ बनाकर इसमें दो गोली प्रतिदिन निहारमुँह निगलनेसे अर्शमें बहुत लाभ होता है।

आयुर्वेदीय मत—शुद्ध मैनसिल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रसायन तथा खाँसी, ज्वर, श्वास, कण्डू और पाण्डुरोग का नाश करनेवाला है।

जविन्नुफूस-विज्ञानीय अध्याय २

प्रकरण १

नौसादर

नाम—(हिं०) नौसादर; (अ०) मिल्हुन्नार, मिल्ह अमोनिया; (फा० पं०) नोषादर; (सं०) नरसार, नृसा(द)रः, निशादल; (बं०) निशादल; (म०) नवसागर; (गु०) नवसार, नवसागर; (ले०) अमोनिआई क्लोराइडम् (Ammonii Chloridum); (अं०) सैल-अमोनिएक (Sàl-Ammoniac), अमोनियम् क्लोराइड (Ammonium Chloride)।

वर्णन—यह एक प्रकार का तीक्ष्ण झालदार क्षार या नमक है जो सफेद रंगके टुकड़ोंके रूपमें होता है। खनिज और कृत्रिम भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इनमें खनिज भेद एक प्रकारसे अप्राम्य है। बाजारमें मिलनेवाला नौसादर प्रायः अशुद्ध होता है और बहुधा पंजाबके करनाल प्रदेशमें एक विशेष प्रकारकी मिट्टी से बनाया जाता है। श्री यादव जी महाराज ने अपने रसामृत ग्रंथमें अनेक प्रमाणों द्वारा प्राचीनों के विड या विटलवण को नौसादर सिद्ध किया है।

कल्प तथा योग—अकसीरमेदा, तिरियाकमेदा, जौहर नौशादर, दवाए नौशादर (पयामे सेहत), नौशादर महलूल, हब्ब कबिद नोशादर।

प्रकृति—तीसरे (मतांतरसे दूसरे) दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्ण—दोबतारल्यजनन, शोथविलयन, कफोत्सारि, यकृदामाशयोत्तेजक, दोषाकर्षक, व्रणलेखन, व्रणशोधन, लेखनीय, मूत्रल और हर प्रकारके विषप्रभावको नष्ट करता हैं। **उपयोग**—नौसादरको यकृत् और आमाशयके रोगों, जैसे—यकृच्छोथ, यकृद्वृद्धि, यकृदामाशयदौर्बल्य आदिमें प्रयुक्त करते हैं। **हब्ब कबिद नोषादरी** (एक योगौषध) में यह प्रधान उपादानकी भांति प्रविष्ट है, जो कि यकृत् और आमाशयके समस्त रोगोंमें गुणकारक है, कृच्छ्रश्वास और कफज कासमें उपयोग किया जाता है, और कफका उत्सर्ग करके उपकार करता है। मूत्रल होनेके कारण जलोदर और अश्मरीमें भी उपयोग करते हैं। प्रसेकावरोधके कारण जो शिरःशूल और अर्धावभेदक हो उसमें प्रधमन की भांति प्रयुक्त किया जाता है। लेखन होनेसे फूली, प्रारंभिक मोतियाबिंदु और जाला आदि नेत्ररोगों में अकेला अथवा योगोंमें प्रयुक्त होता और लाभ पहुँचाता है। व्रण, किलास, गंज, दद्रु आदि त्वचाके रोगों में लेप और अवचूर्णनकी भांति प्रयुक्त होता है। **अहितकर**—आशयों (अहशाऽ) को अपनी तीव्रता से छेदन कर देता है। **निवारण**—दूध और स्नेह द्रव्य। **मात्रा**—२४० मि० ग्रा० से १००० मि० ग्रा० या १ ग्राम (२ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—विडनमक कुछ क्षारधर्मी (क्षारगुणयुक्त—विकृत त्वचा—मांसादिको गलाकर दूर करनेवाला), व्यवायी होनेसे दीपन, लघु (शीघ्र पचजानेवाला), सूक्ष्म, रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, व्यवायी (परिपक्व होनेके पहले ही शरीरमें प्रभाव दिखानेवाला), रूक्ष, वायुको ऊपर और नीचेसे अनुलोमन करनेवाला (अर्थात् जिन वायुओंका मार्ग ऊरकी ओर है, परन्तु प्रतिलोम होनेसे नीचेकी ओर गति की हुई हैं उन्हें अपने मार्ग—ऊपरकी ओर प्रवृत्त कराता है तथा जिनका मार्ग नीचेकी ओर है पर वे प्रतिलोम होकर ऊपरकी ओर गति करती हों तो उन्हें नीचेकी ओर प्रवृत्त हो, तो स्रोतः शुद्धि द्वारा उन दोषोंको हटाकर स्वमार्गमें प्रवृत्त करना वायुका अनुलोमन कहाता है), तथा विबन्ध, आनाह, विष्टम्भ, शरीरकी गुरुता, शूल और हृद्रोगको नाश करनेवाला है। (च. सू. अ. २७; सु. सू. अ. ४६; भा. प्र.)।

नव्यमत—श्लेष्महर होनेसे नौसादर कास एवं उरःक्षतमें लाभकारक है। अन्त्र, आमाशय और यकृत्को शक्ति देता है, स्वेद एवं मूत्र लाता है, रक्तको शुद्ध करता है तथा गृध्रसी, वातरक्त, वातवेदना और अर्धावभेदक में लाभ पहुँचाता है।

प्रकरण २

शोरा कलमी

नाम—(हिं०, पं०) शोरा, कलमी शोरा; (अ०) अब्क़र (मख्जन); (फा०) शोरा, कलमी शोरा, बारूद; (सं०) सोरक, सौरक्षार, सूर्यक्षार, कर्पूर शिलाजतु, पाकिमाक्षार; (बं०) सोरा; (म०) शोरा खार; (गु०) शोरो (सुरो) खार; (ले०) पोटेसी (सिआई) नाइट्रास (Potassæ (Potassii) Nitras); (अं०) पोटैसियम् नाइट्रेट (Patassium Nitrate), नाइट्रेट ऑफ पोटाश (Nitrate of Potash), नाइटर (Nitre), साल्टपीटर (Saltpetre)।

उत्पत्तिस्थान—हिन्दुस्तान और कतिपय अन्य देशोंमें क्षारीय (रेहवाली) भूमिमें सोरा भूमिकी धरातल पर सफेदीके रूपमें जमा होता है। इसको विशेष विधिसे साफ कर लेते हैं।

वर्णन—साफ किए हुए बढ़िया शोरेको शुद्धशोरा या कलमी शोरा कहते हैं। इसके सफेद रंगके चमकदार षट्पहल लंबे क्रिस्टल होते हैं जिनका स्वाद क्षारीय (शोरा) होता है और मुखमें शीतानुभव होता है। पाक विधिसे बनने के कारण इसे पाकिमक्षार (सु०) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—रसायनिक दृष्टिसे इसमें मुख्यद्रव्य पोटैसियम् नाइट्रेट है। इसके अतिरिक्त सोडियम् सल्फेट और क्लोराइड तथा दूसरी कुछ अशुद्धियाँ भी होती हैं।

कल्प तथा योग—अक्सीर गुर्दा, दवाए कड़ाहीवाली, सफूफ इन्द्रीजुलाब, दवाए मुदिर्र, शोराका तेजाब (सोरकाम्ल—Acidum Nitricum)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—छेदन, लेखन, प्रमाथी, श्लेष्मसंशोधन, विरेचन, मूत्रल, स्वेदन तथा रक्तस्कंदनको रोकनेवाला। इसका अतिसेवन हृदयदौर्बल्यकारक है तथा अन्त्र और आमाशयमें संक्षोभ उत्पन्न करता है। उपयोग—मूत्रल होनेके कारण अधिकतया मूत्रावरोधमें पान और लेपकी भाँति इसका उपयोग किया जाता है। यह मूत्रल होनेके साथही लेखन भी है। अतएव मूत्रमार्गस्थ व्रण वा सूजाकमें इसका उपयोग किया जाता है। लेखन होनेके कारण शरीरका मलदूर करने और कण्डूके लिए तिलाके रूपमें लाभदायक है। छेदन और प्रमाथी होनेके कारण विवृद्ध प्लीहा में भी उपयोय किया जाता है। प्रवर्तक और किसीकदर स्वेदल होनेके कारण ज्वरोंमें गुणकारक है। शोरा रक्तस्कंदनको रोकता है। अतएव वातरक्तका आवेग दूर करने और मदज शिरःशूल निवारणके लिए उपादेय है। श्वासका आवेग रोकनेके लिए धूम्र सेवन करते हैं। इसके पुष्कल उपयोगसे विरेक आने लगते हैं और अन्त्रामाशयमें संक्षोप उत्पन्न हो जाता है। हृदयदौर्बल्य तथा अन्त्र, आमाशय, यकृत और बस्तिके शोथयुक्त होनेकी दशामें इसका उपयोग नहीं करना चात्रिये। **अहितकर**—वृक्कको। **निवारण**—कतीरा और शहद। **प्रतिनिधि**—नमक इन्द्रायन। **मात्रा**—१ ग्राम से १॥ ग्राम (१ से १॥ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—पाकिमक्षार मेदनाशक, मूत्रल (सु० सू० अ० ४६), तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है। शोरेको काचपात्रमें छोटी इलायचीके चौगुने जल (हिम) में घोलकर छानकर धूपमें सुखालेवें। इसप्रकार शुद्ध किये हुये शोरेका औषधके लिये प्रयोग करें। इनका मारण और सत्वपातन नहीं होता (र० चू०/अ० १०)।

शोरा मूत्रविरेचन, स्वेदजनन, ज्वरहर, श्वेष्महर और शोथहर है।

प्रकरण ३

फिटकरी

नाम—(हिं०) फिटक (क) री; (अ०) शिब्ब, ज़ाज-अल्ज़ाज अब्यज़; (फा०) ज़ाक सफ़ेद, ज़मः (ज़मज-अरबीकृत); (सं०) स्फटिका, तुवरी; (बं०) फट्क(कि)री; (म०) फटकी; (गु०) फटकडी; (अं०) एलम् (Alum); (लै०) एलुमेन् (Alumen)।

वक्तव्य—अरबी संज्ञा 'ज़ाज' जो फारसी 'ज़ाक' संज्ञाका अरबी रूपान्तर है, विट्रियल (Vitriol) का समीचीन पर्याय है। किसी-किसी संग्रहकारने ज़ाज (ज़ाक, ज़ाग़) को फिटकिसी (शिब्ब) का पर्याय लिखा है। इसीलिए शिब्ब अर्थात् फिटकिरीके वर्णनमें ज़ाजको इसका पर्याय लिखा है। मख्ज़नुल्अद्वियाके संकलयिताने 'ज़ाक' के वर्णनमें तो लिखा है कि वह फिटकरी नहीं; किंतु ज़ाज अब्यजके वर्णन में उसे फिटकिरी लिखा है। पर सत्यतः ज़ाज फिटकरी नहीं, उसे हिंदीमें कसीस और पंजाबीमें काही कहते हैं और इसके यह दो भेद हैं; (१) प्राकृतिक और (२) कृत्रिम। प्राकृतिकके पुनः यह दो भेद होते हैं—(१) शुद्ध और (२) अशुद्ध। शुद्ध काही एक प्रकारकी मृत्तिका होती है जिसमें न्यूनाधिक लोहेके लवण अनहाइड्रस सल्फेटके रूपमें होते हैं। इस प्रकारकी काही पंजाबके विभिन्न प्रदेशोंमें होती हैं। विशदता हेतु पावल महोदय लिखित पंजाब प्रॉडक्ट्सका पृ० ६६ अवलोकन करें।

स्वरूप एवं रंगभेदसे ज़ाज कई प्रकारकी होती है जिनमें से कुछ के नाम अधोलिखित हैं।

(१)—(यू०) कल्कदीस; (अ०) ज़ाज अब्यज; (फा०) ज़ाज सफेद; (अं०) ह्वाइट विट्रियल् (White Vitriol); जिंक सल्फेट,

टि०—जिंक सल्फेटकी व्यापारिक संज्ञा ह्वाइट् विट्रियल है, और ह्वाइट विट्रियलका अरबी पर्याय ज़ाज अब्यज है। उम्दतुल् मुहताजके संकलयिताके अनुसार कोई-कोई इसको ज़ाज क़िब्रसी कहते हैं। किन्तु स्वरूपके विचारसे ज़ाज अब्यजको वस्तुतः जिंक सल्फेट नहीं समझना चाहिए, अपितु यह सल्फेट ऑफ आयर्न और एल्युमेन है। दे० पावल महोदय संगृहीत पंजाब प्रॉडक्ट्स नाम अंगरेजी ग्रंथका पृ० ६६ और मुहीत आजम आदि।

(२)—(हिं०) कसीस. हीराकसीस। दे० 'हीराकसीस'।

(३) 'नीलाथोथा' दे०।

(४)—(अ) ज़ाज अस्फ़र; (फा०) ज़ाज ज़र्द, ज़ाज रूमी; (यू०) कल्क़तार।

वक्तव्य—यह वस्तुतः ज़ाज अब्यजका ही एक भेद है। सुतरां जालीनूसने भी लिखा है कि कभी ज़ाज अब्यज कल्क़तारमें परिणत हो जाती है। पंजाब प्रॉडक्ट्स ग्रंथमें भी इसको ज़ाज सफेदका ही एक भेद लिखा है।

(५)—(अ०) ज़ाज अहमर; (फा०) ज़ाज सुर्ख, ज़ाज सूरी; (यू०) कल्कन्त, क़ल्कोस, मालीतरना; (लै०) पोटासियाई बाईक्रोमास (Potasii Bichromas)। यह वस्तुतः पोटासका एक यौगिक है।

उत्पत्तिस्थान—अफगानिस्तान, आसाम, नेपाल पंजाब, बिहार आदि।

वर्णन—यह एक मिश्र खनिज पदार्थ है। काच लवणके समान इसकी सफेद (रंगरहित), पारदर्शक, स्फटकीय डलियां होती है जो नमककी अपेक्षया वजनमें कम होती हैं। इसका स्वाद किंचित् अम्ल, मधुर और कषाय होता है। सफेद और लाल (गुलाबी) भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। यूनानी वैद्यकमें इसके यह तीन भेद लिखे हैं—(१) मुशक़्क़क़—यह साधारण सफेद फिटकिरी है। इसको शिब्ब यमानी—अल् शिब्बगुल् यमानी (इ० बै०) भी कहते हैं; (२) ज़ाज मुदह्रज (मुस्तदीर)—इसके गोल टुकड़े होते हैं और (३) रतब—यह नरम होती और शीघ्र टूट सकती है।

कल्प तथा योग-जरूर शिब्बी। इतिहास-फिटकिरी एक अतिप्राचीन औषधद्रव्य है। उम्दतुल्मोहताजके मतसे हकीम बुकरात और दीसकूरीदूसने इसका उल्लेख किया है।

प्राप्ति—प्रधानतया शिलाजीतमें परॉक्साइड आॅफ आर्यन के साथ अथवा नैपालकी एलम् अर्थ (Alum earth) में मिलती है अथवा पंजाब, राजपुताना, बिहार और कच्छकी रियासतोंमे पाये जानेवाले (Alum Shales) से तैयार की जाती है। बाजारमें मिलनेवाली फिटकिरी प्रायः अशुद्धि मिश्रित होती है। इसको निम्नविधिसे शुद्ध करके औषधके काममें लेनी चाहिये—इसे उबलते हुये पानीमें विलीनकर, विलयनको छानकर पुनः इतना पकायें कि उसके रवेबन जायें।

रासायनिक संगठन—फिटकिरी (Alum) ऐल्युमिनियम् और पोटैसियम्, एमोनियम्, लौह प्रभृति जैसी धातुओं से युक्त डबल् सल्फेट्स् के एक वर्गका साधारण नाम है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही, संशमन, रक्तस्रावरोधक, द्रव्यशोषण, छर्दिजनन, भ्रूण तथा अपरानिःसारक और ज्वरावेगनाशक है। **भुनी हुई फिटकिरी (दुग्ध फिटकिरी) फिटकिरी बिरियाँ**—(Alumen Exsiccatum, Dried or Burnt Alum) आग्नेय है। बस्ति, वृक्क और नेत्रके रोगोंमें यह विशेष गुणकारक है। **उपयोग**—संग्राही एवं रूक्षण होनेसे यह दन्तवेष्ट, शीताद, दन्तवेष्टघात (इस्तिरखाए लिस्सा), चलदन्त (तहर्रुक दंदाँ), मुखपाक, गलान्तर्ग्रन्थिशोथ (वरम लौज़तैन) और कण्ठशोथमें मंजन, अवचूर्णन, गण्डूष और कवलकी भाँति प्रयुक्त होती है तथा चिरज अतिसारमें यह चूर्णके रूपमें खिलाई जाती है। गुदभ्रंश तथा अर्शमें इसके काढ़ेसे गुद प्रक्षालन करते और गुदापर इसका अवचूर्णन करते हैं। संग्राही एवं रक्तस्तंभन होनेके कारण अन्त्रामाशयगत रक्तस्रावमें इसका आंतरिक उपयोग करते हैं। इसी कारण साधारण व्रणोंके रक्तस्रावको रोकनेके लिए इसके घोलसे व्रणोंको धोते हैं। नासागत रक्तपित्त और नासाव्रणमें इसके विलयनसे पिचकारी करते तथा प्रधमन करते हैं। दुष्ट मांसको दूर करनेके लिये भुनी हुई फिटकिरीको महीन पीसकर व्रणों पर छिड़कते हैं। नेत्राभिष्यंदमें लगभग दो रत्ती फिटकरीको दो तोले गुलाबजलमें घोलकर आश्च्योतन करनेसे दर्द और ललाई दूर हो जाती है। योनिका दाह एवं कण्डू, श्वेतप्रदर, प्रसवोत्तर गर्भाशयविस्तृति और सूजाकमें इसके घोलकी पिचकारीकी जाती है। बालकोंके उरोरोगों, जैसे—कंठशोथ और कासमें फिटकरीको वामक मात्रामें उपयोग करनेसे वमन होकर रोग निवृत्त हो जाता है। सुतरां इस प्रयोजनके लिए ३ माशे फिटकरीको बारीक पीसकर मधु वा शर्बतमें मिलाकर एक-एक घंटाके अंतरसे कई बार देते हैं। कालीखाँसीमें २ से ४ रत्ती तक उपयोग करनेसे लाभ होता है और वमन बंद हो जाता है। नियतकालिक ज्वरोंके दूर करनेके लिए २ से ३ रत्ती तक ज्वरके आवेगसे तीन घंटे पूर्व किसी शर्बतमें मिलाकर एक-एक घंटाका अंतर देकर चटानेसे आवेग (दौरा) रुक जाता है, बशर्तेकि कब्ज न हो। यदि कब्ज हो तो किसी मृदुसारक औषधीसे अन्त्र और आमाशयको शुद्ध कर लेना चाहिए। यदि प्रथम बारके उपयोगसे बारी दूर न हो, तो दूसरे-तीसरे दिन उपयोग करायें। भ्रूण एवं अपरानिःसारणार्थ इसका काढ़ा पिलाते हैं तथा फलवर्ति उपयोग करते हैं। **अहितकर**—अन्त्रामाशय तथा फुफ्फुसके लिए। **निवारण**—स्नेह और दूध। **प्रतिनिधि**—कतिपयगुण-कर्मोंके लिये नौशादर। **मात्रा**—२४० मि० ग्रा० से ०·५ ग्राम (२ से ४ रत्ती) तक। वामक मात्रा ३ ग्राम (३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—यह मधुर, कषाय, व्रणरोपण करनेवाली, ग्राही, संकोचक, रक्तस्रावको रोकनेवाली, केशकेलिये हितकर तथा श्वित्र और मुखरोगों का नाश करनेवाली है।

नव्यमत—गुदभ्रंश और योनिभ्रंशमें फिटकिरीके द्रवकी पिचकारी देनेसे लाभ होता है। नेत्राभिष्यन्दमें १ रत्ती फिटकिरी अर्कगुलाबमें मिलाकर उसकी २–४ बूँदें नेत्रमें डालनेसे आँखकी ललाई और पीड़ा कमहोती हैं। नकसीरमें फिटकिरीका चूर्ण फूँकने या द्रव डालनेसे रक्त आना बंद होता हैं। कुकुरखाँसीमें फुलाइ हुई फिटकिरीका चूर्ण २–३ रत्ती शहदमें मिलाकर चटानेसे लाभ होता है। शीतज्वरमें फुलाई हुई फिटकिरीका चूर्ण ५ रत्ती मिश्री मिलाकर ज्वरके वेगके पूर्व ३–४ बार देनेसे ज्वरकी बारी रुकती है।

(२) गुलाबी फिटकिरी

प्रकृति—तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह फिटकिरीकी जातिसे है किंतु उससे तथा हीराकसीससे भारी है। इसके गुणधर्म भी सफेद फिटकिरीके समान हैं। एक माशा इसका चूर्ण तीन माशा मिश्रीके साथ शीतपूर्व ज्वरमें कंपकपी प्रारम्भ होनेसे पूर्व सेवन करनेसे लाभ होता है। यदि उस दिन आ भी जाय तो चार दिन निरंतर सेवन करें, परीक्षित है। पथ्य दूध और चावल। गुलाबी फिटकिरी १० तोला, कालीमिर्च चार तोला, नीमके पत्ते सेर भरके लगभग लेकर प्रथम पत्तोंको पीसें। फिर फिटकिरी और मिर्चोंका चूर्ण मिलाकर घोंटें और चना-प्रमाणकी गोलियां बांध लेवें। यदि ज्वरके आवेगसे पूर्व इसका सेवन करें तो एक गोलीसे रुक जाय और यदि दौरा पड़ गया हो तो एक गोली खिलानेसे उतर जाता है। पार्श्वशूलके रोगीको तीन-तीन घंटेके बाद एक-एक गोली देनेसे लाभ होता है। इसे प्लेगके ज्वरमें भी देवें और ग्रंथियों पर लोबानके तेलकी मालिश करें। (ख० अ०)।

प्रकरण ४

कपूर

वक्तव्य—कपूर एक उद्भिज्ज द्रव्य है, खनिज नहीं। अस्तु इसका वर्णन इस ग्रंथके 'उद्भिज्ज औषधाहार द्रव्य विज्ञानीय खण्ड' में कपूर शीर्षकमें किया गया है।

जविल् अज्साद (लोह) विज्ञानीय

अध्याय ३

प्राक्कथन

इन धातुओं (अज्साद) के औषधीय प्रयोगका हेतु यह है कि प्रत्येक धातुका संबंध मानवशरीरके किसी न किसी अवयवसे अवश्य होता है। खोजी हकीमोंके मतसे मानव शरीरमें हर प्रकारकी धातु विद्यमान होती है तथा उसकी न्यूनाधिकतासे रोग उत्पन्न होता है। उनके मतसे मस्तिष्कमें चाँदी, हृदयमें सोना, यकृत् और वृक्कमें लोहा, बस्तिमें वंग, अन्त्रमें सीसा, वातनाड़ियोंमें ताँबा और नेत्रमें जस्ता होता है। ये धातु यौवनकालमें पूरे प्रमाणमें होते हैं। इसलिये उक्त कालमें धातुभस्मोंका सेवन वर्जित है। वृद्धावस्थामें ये शारीरधातुयें कम होते-होते बिल्कुल कम रह जाती हैं। अतएव उक्त अवस्थामें इनकी भस्में लाभकारी एवं क्षतिपूरक बनती हैं। इसके विपरीत पाषाणों, जंगमों और उद्भिज्जोंकी भस्में प्रत्येक अवस्था और आयुमें सेवनीय होती हैं।

पाश्चात्यवैद्यों (डॉक्टरों) का भी यह मत है कि मानव रक्तमें लोहके कण विद्यमान होते हैं। इनके विशेष प्रमाणमें विद्यमान रहने पर ही मानव स्वस्थ रहता है। रोगके कारण जब ये अपने निश्चित प्रमाणसे न्यून हो जाते हैं, तब रक्त अपेक्षाकृत पतला तथा मानव शरीर दुर्बल हो जाता है। इसी कमीको पूरा करनेके लिये वे लोहयौगिकोंका उपयोग करते हैं। उनका यह भी मत है कि सोना मस्तिष्क-बलदायक, चाँदी हृदय-बलदायक ताँबा और जस्ता नाड़ीबलदायक है तथा वे इन्हीं गुणोंके लिये इन धातुयौगिकोंका उपयोग करते हैं। उनके मतसे वंग एक बहुत ही उपयोगी धातु है। जैव-रसायनिक विश्लेषणसे यह ज्ञात हुआ है कि वंगका भी शरीरके बनने में मुख्य भाग है। यही नहीं अपितु शरीरमें जितनी खनिज धातुयें पाई जाती हैं उनमें वंगकी मात्रा सर्वाधिक है। एक फ्रांसीसी रसायनशास्त्रीने बतलाया है कि मस्तिष्कमें वंग धातु बहुतायतसे पाई जाती है। समस्त केन्द्रिय नाड़ी-संस्थानमें जो धातुयें हैं वह वंग ही हैं। नाग, वंग और यशद शारीरिक स्रावोंको रोकनेमें बहुत कुछ समर्थ होते हैं। अस्तु, इसका प्रमेह विशेषतः मधुमेह (जयाबीतुस) में शर्करास्राव रोकनेके लिये बहुत उपयोग होता है।

इन धातुओंकी शारीरोपयोगिता सिद्ध हो जाने पर अब प्रश्न यह होता है कि इनका उपयोग कैसे किया जाय? ये धातुयें अपनी मूल अवस्थामें तो मानवशरीरमें शोषित वा सात्म्यीकृत होनेके योग्य नहीं होतीं। इसलिये यूनानी चिकित्सक इनमेंसे कतिपय, जैसे सोने-चाँदीके बारीक वर्क (पत्र) बनाकर औषधमें प्रयुक्त करते हैं। अग्नि पर लाल करके इनको पानीमें बुझा बुझाकर जब पानीमें इनका असर आजाता है तब उस पानीको औषधकी भाँति पिलाते हैं। सुतरां उनके निश्चित सिद्धान्तके अनुसार सोनेका पानी-हृत्स्पंदन-हृत्स्फुरण एवं विराग (तवद्दुश) निवारक और हृदयबलदायक है। चाँदीका पानी इन समस्त गुणोंके अतिरिक्त पिपासाहर और मोतदिलकी कक्षातक शीत एवं रूक्ष है। वंग और सीसाका पानी-संग्राही, मूत्रसंग्राहक और शूलजनक है। ताँबेका पानी एवं संताप तृषाजनक और बाह्यतः मुखपाक (बुसूरफम), गलशुण्डिका (वरम लहात) एवं जलोदरनाशक है। लोहेका पानी यकृदामाशयबलदायक, प्लीहावृद्धिनाशक, हृत्स्पंदनहर, वाजीकरण, अन्त्रव्रणहर, तथा अर्शोजात अतिसार (इसहाल बासूरी) एवं एक प्रकारका हस्तिमेह—(सल्सुल्बौल) नाशक है।

इनकी भस्म बनानेका प्रयोजन यह होता है कि जिसमें ये धातु अपनी कठोरता छोड़कर इस योग्य बन जायें कि मानवशरीर इनको शोषित एवं सात्म्यीकृत कर सके और ये सरलतासे उस अवयवकी धातुकी क्षतिपूर्ति कर सकें जिनके लिये ये निर्दिष्ट हैं। धातुओंकी भस्म बनानेमें मूल उद्देश्य यह होता है कि धातु महीन कणके रूपमें रक्तमें शोषित होनेके योग्य बन जाय। अतएव सोने और चाँदीको कूटकर बारीक वर्क (पत्र) बना लेते हैं और औषधमें प्रयुक्त करते हैं। शेष धातुओंमें भी यद्यपि ऐसा होना संभव है कि इनके बारीक पत्र बना लिये जायें या कूटकर अत्यन्त श्लक्ष्ण चूर्ण बना लिया जाय। परंतु सोने, चाँदीके अतिरिक्त विशेषकर ताँबा, वंग और

सीसामें एक प्रकारकी विषमयता विद्यमान होती है जिसका निवारण वा परिहार जलानेसे किया जाता है। इस जलानेकी क्रियाको यूनानी वैद्यकमें एहराक़ (आयुर्वेदमें भस्मीकरण वा मसीकरण) कहते हैं। जलाई हुई धातुयें शुद्ध होकर इस योग्य बन जाती हैं कि वे शरीरमें शोषित हो जायँ। एहराककी क्रिया जिस प्रकार निम्न श्रेणिकी धातुओंका दोषनिवारण करती है, उसी प्रकार सोना-चाँदी श्रेष्ठ धातुओंको शरीरमें अधिकाधिक शोषित होने योग्य बनाती है।

परंतु यहां पर यह विचारणीय है कि यूनानी चिकित्साकी प्राचीन पुस्तकोंमें धातुओंकी भस्मोंका बिलकुल ही उपयोग नहीं मिलता। यहाँ तक कि १९वीं शतीके अंत तकके लिखे किसी भी ग्रंथमें भस्मोंका शरीरके ऊपर उपयोग नहीं पाया जाता। यूनानी चिकित्सक तो धातुभस्मोंको किसी रोगमें देनेका नाम सुनकर ही कानोंपर हाथ धरते हैं। उनमें अब तक यह विश्वास जमा हुआ है कि धातुभस्में यदि सेवनकी जायँ तो कुछ दिनमें इनका शरीरमें दुष्प्रभाव देखा जाता है। यही नहीं उनका तो यह मत है कि प्रत्येक विषकी चिकित्सा संभव है पर भस्मके विषका कोई उपचार नहीं, वह अचिकित्स्य है। उनका कहना है कि कुश्ता कुश्ता करके ही छोड़ता है—''कुश्ता कुश्ता मीकुनद''। उन लोगोंकी सम्मति है कि यदि धातु-भस्में सेवन भी कराई जायँ तो जिन व्यक्तियोंकी आयु पचास वर्षसे ऊपर हो, उन्हें दी जाय, बच्चों और युवकोंको तो धातु-भस्में कदापि न देनी चाहिये।

उनके प्राचीन चिकित्सा ग्रंथोंमें कुछ रत्नों और पत्थरोंकी भस्मोंका उपयोग मिलता है। विस्तारके लिये देखें ''पाषाण विज्ञानीय विभाग।''

पाठक कहेंगे कि आजकलकी उर्दू भाषाकी यूनानी पुस्तकोंमें धातु-भस्मोंकी काफी चर्चा पाई जाती है। यह कहांसे आई? इनके इतिहासको ढूँढा जाय तो बहुत दूर जाना नहीं पड़ता, इसी ५०-६० वर्षके भीतर इन पुस्तकोंकी रचना हुई है और इनके लेखकोंका गढ़ दिल्ली और लाहौर ही रहा है। इनके परिशीलनसे यह ज्ञात होता है कि उनमें जो कुछ भी है उनका बहुत कुछ आधार प्रायः हमारे रसग्रंथ ही हैं। धातु-भस्मोंके निर्माणमें यूनानी चिकित्सकोंने प्रायः हमारे रसग्रन्थोंसे ही अधिक विधियाँ संग्रहकर अपनी पुस्तकोंमें प्रकाशित किये हैं। यूनानी चिकित्सक भी भीतर-भीतर धातु-भस्मोंसे उसी प्रकार प्रभावित थे जैसे आयुर्वेदज्ञ पूर्वकालमें थे। किंतु १६वीं शतीके बाद जिस प्रकार आयुर्वेदज्ञोंने धातु-भस्मोंको अपनाकर उनको अपने ग्रंथोंमें स्थान दिया, इसी प्रकार बीसवीं शतीके बाद यूनानी लेखक धातु-भस्मोंको अपनाकर उनका उपयोग करने लगे। इस प्रकार इस ५०-६० वर्षमें ही इसका इतना अधिक प्रचार एवं प्रसार हुआ कि इस विषयपर अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

चूंकि इस ग्रंथमें प्रत्येक धातु वा पाषाण तथा उसकी भस्मके गुणप्रयोग ही दिये हैं, भस्मनिर्माणविधि नहीं दी है। अस्तु, उसके लिये मेरे लिखे आगे प्रकाशित होनेवाले 'यूनानी रसशास्त्र' ग्रंथका अवलोकन करें।

प्रकरण १

सोना (तिला)

नाम—(हिं०, बं०) सोना, सोबरन; (अ०) ज़हब, इक़्यान; (फ़ा०) तिला, ज़र; (सं०) सुवर्ण, स्वर्ण, कनक, काञ्चन; (म०) सोनें; (गु०) सोनुं; (ले०) ऑरम् (Aurum); (अं०) गोल्ड (Gold)।

वरक या पत्र—(हिं०) सोनेका वरक; (अ०) वर्क़ुज़्ज़हब; (फ़ा०) वर्क़े ज़र, वर्क़े तिला; (सं०) सुवर्णपत्र; (अं०) गोल्ड लीफ (Gold leaf)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध बहुमूल्य पीले रंगकी अन्य सभी धातुओंमें श्रेष्ठ तथा उनकी अपेक्षया अधिक प्रसरणशील धातु है। इसके अधिक सूक्ष्म पत्र (वरक) बनाये जा सकते हैं और तार खींचा जा सकता है। जल और वायुके उत्तापके किसी अंशमें इस पर कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये इसकी रंगत और चमक दीर्घकाल तक पूर्ववत् बनी रहती है। यह अम्लराज (मिलित एक भाग सोरेका तेजाब और दो भाग नमकका तेजाब जिले 'एक्वा रेजिआ' कहते हैं) में विलीन हो जाता (घुल जाता) है।

इतिहास—प्रायः देशोंमें प्राचीन कालसे यह धातु ज्ञात है। सुतरां यूनानी, अरबी और भारतीय आर्यवैद्य वर्क़ (पत्र), चूर्ण आदिके रूपमें अतिप्राचीनकालसे औषधमें इसका उपयोग करते हैं तथा अनेक रोगोंमें इसे लाभकारी जानते हैं। विशदताके लिए उम्दतुल् मुह्ताज, पिजिश्कीनामा और अन्य यूनानी एवं आर्यवैद्यकीय ग्रंथोंका परिशीलन करें। यद्यपि यूरूपीय डॉक्टरोंने शैख़ुर्रईस बू अली बिनसीना की नकल करते हुए यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें लिखित सुवर्णके सभी गुणकर्मोंका उल्लेख किया है; परंतु ईसवी सन्की पंद्रहवीं शतीमें डॉ० बराकलियूसंने सोनाका दारचिकनाके साथ योग कर उसका नाम सुवर्णपिष्टी (मह्लूल शम्सी या मुकल्लस शम्सी) रखा तथा फिरंगमें उसे उपयोगी बतलाया। पुनः उसका रसकपूरके साथ संयोग करके भी फिरंगमें उपयोग किया गया तथा लाभकारी पाया।

यूरूप और अमरीकामें भी इसके प्रायः योग बहुशः वातरोगोंमें प्रयुक्त किए गये हैं। परंतु उनके गुण संदिग्ध होनेके कारण उनका परित्याग कर दिया गया। अलबत्ता हाल ही में इसके कतिपय योग प्रयुक्त होते हैं।

कल्प तथा योग—पत्र (वरक), भस्म, सोनेका द्रव (माउज़्ज़हब), खमीरा तिला, माजून तिला आदि।

प्रकृति—उष्णता लिये हुए अनुष्णाशीत। आयुर्वेदमें इसे शीतवीर्य (र० वै० सू०) एवं स्निग्ध (र० चू०) लिखा है।

गुण-कर्म—बल्य, सौमनस्यजनन, यकृद्बलवर्धन, वाजीकर, संशमन, दोषविशोधन, उरःक्षत एवं राजयक्ष्मामें गुणकारी, शुक्रल, वीर्यपुष्टिकर, हृद्य और मेध्य है। **उपयोग**—हृदयबलोल्लासजननके लिए सोनेके वर्क़ खिलाए जाते हैं। हृदयदौर्बल्य, हृत्स्पंदन, मद, उन्माद, कामावसाद, शुक्रप्रमेह, शुक्रतारल्य, दोषविकृति उरःक्षत एवं राजयक्ष्मा (दिक) रोगमें इसकी भस्म सेवनकी जाती है। **अहितकर**—बस्ति को। **निवारण**—मधु एवं शर्करा। **मात्रा**—२ चावलसे $\frac{1}{2}$ वा १ रत्ती तक। **वर्क़**—४ मि० ग्रा० से १० मि० ग्रा० ($\frac{1}{30}$ ग्रेन से $\frac{1}{12}$ ग्रेन। **चूर्ण**—२० मि० ग्रा० से ४० मि० ग्रा० ($\frac{1}{6}$ ग्रेन से $\frac{1}{3}$ ग्रेन)। **भस्म**—१०० मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० ($\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{4}$ ग्राम)।

आयुर्वेदीय मत—मधुर, कषाय, मधुरविपाक, शीतवीर्य, स्निग्ध, लघु, वर्ण्य, रसायन, रुचिकर, दीपन, बृंहण, उत्तम वाजीकर, मेधा और स्मृतिको बढ़ानेवाला तथा राजयक्ष्मा, उन्माद, वात-पित्त और कफके रोग, विष और जरावस्थाको दूर करनेवाला है। सुवर्ण भस्म रसायन है। (र० वै० भा० अ० ३; र० चू० अ० १४)। अपक्व सुवर्ण (वरक या सूक्ष्म चूर्ण) विषनाशक (च० चि० अ० २३) है।

प्रकरण २

चाँदी (नुक़्रा)

नाम—(हिं०) चाँदी, रूपा; (अ०) फ़िज़्ज़ः, ज़ौ (ज़ू) लज, नुक़्रा; (फा०) सीम; (सं०) रौप्य, रजत; (बं०) रूपा; (म०) चाँदी, रूपें; (गु०) रूपुं; चाँदी; (ले०) अर्जेण्टम् (Argentum); (अं०) सिल्वर (Silver)।

वक्तव्य—वैद्यकशास्त्रका संबंध कुछ-न-कुछ ज्योतिष्शास्त्रसे भी है और ज्योतिष्शास्त्रमें मस्तिष्कका संबंध चन्द्रमा (क़मर) से है और चांदका संबंध चांदीसे है। इसी संबंधसे इसका हिंदी-उर्दू नाम चाँदी रखा गया है और इसीलिये प्राचीन रसायनविद्यामें इस धातुका रासायनिक चिह्न चन्द्रमा और रसविद्याकी परिभाषामें इसका नाम क़मर (चन्द्रमा) था जो अद्यावधि प्रचलित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन अरबोंकी इस भ्रममूलक धारणा का अनुसरण कि मस्तिष्कका संबंध चन्द्रमासे है और चन्द्रमाका चांदीसे तथा यह कि चन्द्रमाका प्रभाव कतिपय मस्तिष्करोगों पर पड़ता है, यूरोपवासियोंने भी किया। इसीलिये लेटिन भाषामें चन्द्रमाको लुना (Luna) कहते हैं। इसी संबंधसे सिल्वर नाइट्रेटको लुनर कॉस्टिक (Lunar Caustic) और डॉक्टरीमें उन्मादको ल्युनेसी (Lunacy) कहते हैं। यह उत्तम उष्णतावाहक, विद्युद्वाहक और प्रसरणशील है।

वर्णन—यह एक सफेद चमकीली और मूल्यवान् प्रसिद्ध धातु है। इसके बहुत बारीक पत्र और तार बनाये जा सकते हैं। चाँदी हवामें खुली पड़ी रहनेपर भी उसपर जंग नहीं लगता। सोरेके तेजाब (सोरकाम्ल-नाइट्रिक एसिड) में यह घुल जाती है।

प्राप्तिस्थान—यद्यपि यह खानोंमें शुद्ध भी पाई जाती है, तथापि बहुधा गंधक, संखिया या सुरमा प्रभृति धातुओंके साथ मिली हुई पाई जाती है। इनसे इसे भिन्न करके काममें लेते हैं। इसकी शोधनविधि सोनाके समान है। चाँदीकी खानें सिंध, आगरा, दिल्ली और लाहौरमें हैं (आईन अकबरी)। प्राचीनकालमें सुरमा (Galena), जिसमें अल्पांशमें यह होती है, चाँदी निकाली जाती थी। बहुतसे स्थानोंमें अब भी उक्त स्रोतसे चाँदी निकाली जाती है (जर्नल आँफ आयुर्वेद, फर० १९२६)।

इतिहास—यह एक मूल्यवान् धातु है, जिसका ज्ञान जनसाधारणको अतिप्राचीनकालसे है। परंतु द्रव्यगुणमें इसका समावेश सर्वप्रथम अरबोंने किया। वे कतिपय मस्तिष्करोगों, यथा—मालीखोलिया, मराक, बसवास, अपस्मार और कम्पवात आदिमें इसका उपयोग करते थे और हृदयबलदायक रूपमें हृत्स्पंदनमें भी लाभकारी जानते थे। सुतरां अघुना भी यूनानी, इसलामी और भारतीय आर्यवैद्य चाँदीके वर्क़ और इसकी भस्मका कई एक वातव्याधियों, विशेषकर कामावसाद, मस्तिष्क-हृदयदौर्बल्यमें उपयोग कराते हैं। परंतु अर्वाचीन शोधोंके अनुसार मस्तिष्क रोगोंमें यह अनुपयोगी है। माजून आदिमें चाँदीके वर्क़ मिलाकर देना या गोलियों पर चाँदीका वर्क़ चढ़ाना भी आरब्य चिकित्सोंकी ही ईजाद (आविष्कार) है।

कल्प तथा योग—शुद्ध चाँदीके बने पत्र या वरक $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती, सूक्ष्म चूर्ण $\frac{1}{4}$ र० तथा कुश्ता नुक़्रा (रौप्य भस्म)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध।

गुण-कर्म—यह बल्य, मनःप्रसादकर, हृदयबलदायक, शुक्रल एवं मस्तिष्क-यकृत्-आमाशय बलदायक और वीर्यपुष्टिकर है।

उपयोग—चाँदीके वर्क़ (पत्र) बनाकर मनःप्रसाद एवं बलवर्धनके लिये प्रायः हृदय और मस्तिष्करोगोंमें उपयोग किये जाते हैं। चाँदीको तपाकर जलमें बुझाते और उस जलको भी मनःप्रसाद एवं बलवर्धनके लिये पिलाते हैं। उत्तमांगोंको बलप्रदान करने तथा उष्ण हृत्स्पंदन, वातिक अन्यथाज्ञान, मद, उन्माद, शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य तथा स्वप्नदोषमें एवं वाजीकरणके लिये इसकी भस्म (कुश्तऐ नुक़्रा) खिलाते हैं। यह पुराने दुश्चिकित्स्यरोगों जैसे—

मूर्च्छा, उरःक्षत एवं राजयक्ष्मामें लाभकारी है। हृदयोल्लासके लिये इसका पत्र और उत्तमाङ्गोंको बल प्रदान करनेके लिये भस्म विशेष रूपसे प्रयुक्त होती है। अहितकर—अन्त्रको। निवारण—कतीरा और मधु। प्रतिनिधि—फीरोजा। मात्रा— पत्र एक दो नग। भस्म २ चावलसे १ रत्ती तक।

आयुर्वेदीय मत—यह रसमें कषाय और अम्ल, मधुरविपाक, शीतवीर्य, स्निग्ध, सारक, वयःस्थापन, बलप्रद, रुचिकर, लेखन तथा वात, पित्त, भ्रम और उन्मादको दूर करनेवाली है।

प्रकरण ३

ताँबा (मिस)

नाम—(हिं०) ताँबा, तामा; (यू०) कालकोस; (अ०) नोहास, क़ुल्ज़; (फा०) मिस्; (सं०) शुल्व, ताम्र; (बं०) तामा; (गु०) त्रांबुं, तांबुं; (म०) तांबें; (ले०) क्युप्रम् (Cuprum) (अं०); कॉपर (Copper); (रसा० परि०) ज़ुहरा।

वर्णन—यह लाल रंगकी एक प्रसिद्ध चमकीली खनिज धातु है। ताँबेका प्रधान विलायक शोरेका तेजाब (सोरक द्रावक–नाइट्रिक एसिड) है। जंगार, नीलाथोथा और रूसोख्तज इसीसे तैयार किये जाते हैं। इसके मिश्र लोह (Alloy) पीतल, काँसा और जर्मन सिल्वर आदि हैं। इसके खनिज पत्थरको जिससे ताँबा निकलता है संगरासिख़ कहते हैं। जब खानमेंसे ताँबा प्राप्त करते हैं और पिघलाकर शुद्ध करते हैं तब जो मैल निकलता है, उसे 'अक़लीमियाए नोहास्' और ताँबेको गरम करके कूटनेसे ताँबेसे जो मैल पृथक् होता है उसे 'खुब्सुलोहास' कहते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका विवरण अपने-अपने शीर्षकमें होगा।

इतिहास—यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं उपयोगी धातु है, जिसे प्राचीनकालसे लोग जानते और प्रयोग करते हैं। शुद्ध ताम्र औषधतया प्रयुक्त नहीं होता। अलबत्ता जलाए हुए ताम्र (रासुख्त, मिस सोख्ता) का प्रयोग आरब्य एवं अजमी चिकित्साविद् प्राचीनकालसे करते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें तूतिया आदि इसके कतिपय योगोंका प्रयोग होता है।

कल्प तथा योग—कुश्ता मिस (ताम्रभस्म)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (र० चू०) या शीतवीर्य (सु०) संग्राही, बल्य, रक्तप्रसादन, कफ-रोगनाशक और विशेषतः दृष्टिवर्धक एवं व्रणलेखन है। उपयोग—कास, श्वास, कफज्वर, आमाशय और यकृज्जन्य व्याधि, आमवात, हस्तिमेह, भगंदर, कुष्ठ, किलास और वाजीकरणके लिये ताम्रभस्मका आंतरिक उपयोग किया जाता है। अहितकर—उत्क्लेश और वमन लाता है। निवारण—ताजा दूध और स्नेह। प्रतिनिधि—सोहन-मक्खी। मात्रा—(भस्म) १ चावलसे २ चावल तक।

आयुर्वेदीय मत—यह तिक्त, कषाय, कटु, मधुर, मधुर विपाक, उष्णवीर्य (र० चू०; शीतवीर्य–सु०), सारक, लघु, लेखन, रोपण, नेत्रके लिये हितकर, दीपन, ऊर्ध्वाधःशोधन तथा पित्त, कफ, विष, उदर, आम, कृमि, स्थूलता, अर्श, क्षय, पांडुरोग, कुष्ठ, कास, श्वास, पीनस, अम्लपित्त, शोथ, शूल, तथा यकृत्-प्लीहा और ग्रहणीके रोगोंका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६; र० चू० अ० १४; आ० प्र० अ० ११)।

नव्यमत—डॉक्टर लोग इसके योगोंको अत्यल्प प्रमाणमें देते हैं। यह वमन, अतिसारघ्न और वातनाड़ी बलदायक है तथा जीर्ण अतिसार, यक्ष्मा, शुक्रप्रमेह, प्रवाहिका और श्वेतप्रदरमें प्रयुक्त होता है।

ताँबेका मैल

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क। गुण-कर्म तथा उपयोग—शक्तिमें लोहकिट्टके निकट है, किंतु उससे निर्बल है, लेखन और तारल्यजनन है। नेत्र एवं व्रणकी औषधियोंमें प्रयुक्त होता है। फोड़ों और व्रणोंके ऊपर बुरकनेसे उनको भरता है। इसका आंतरिक प्रयोग घातक विष है। निवारण—बबूलका गोंद और कतीरा।

प्रकरण ४

वंग (कलई)

नाम—(हिं०) राँगा, कलई, वंग; (अ०) रसास, रसास अबयज़, क़स्दीर, क़लई; (फा०) अरज़ीर; (सं०) वंग, रंग, त्रपु; (द०) कत्थील; (मा०) कथीर; (पं०) राँग (गा); (म०) कथील; (गु०) सीसु, कलई; (ले०) स्टेनम् (Stannum); (अं०) टिन् (Tin)।

वर्णन—यह एक नरम, सफेद, चमकीली प्रसिद्ध खनिज धातु है, जिसकी भस्म औषधमें प्रयुक्त होती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ७३ और द्रवणाङ्क २३२ डिग्री सेन्टिग्रेड होता है। खुली वायुमें पड़े रहनेपर भी शुद्ध वंगकी चमक खराब नहीं होती। वंगके ऊपर साधारण जल-वायु तथा उद्भिज्ज अम्लोंका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। इसलिये लोहा, ताँबा पीतल आदि धातुओं पर वंगकी कलईकी जाती है। बाजारके राँगेमें ब्यापारी लोग अपने लाभके लिये सीसा मिला देते हैं। कभी-कभी वंगके साथ अल्पमात्रामें लोहा, ताँबा, संखिया आदि अन्य धातुका मिश्रण होता है। इस प्रकारके वंगको मिश्रक और जिसमें अन्य धातुओंका मिश्रण नहीं होता उसे खुरक या खुरवंग कहते हैं। यह खुरवंग ही शास्त्रोक्त गुणकारक होता है। मिश्रकवंग अहितकारक है। अतः औषध बनानेमें उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। खुरवंग सफेद रंगका, नरम, चिकना, अग्निपर शीघ्र पिघलनेवाला, बजनमें भारी और शब्दरहित होता है। मिश्रकवंग श्यामता लिये सफेद रंगका होता है।

कल्प तथा योग—दवा डिप्टीसाहबवाली, सफूफकलई, सफूफकलई कुश्ता।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है। **गुण-कर्म**—रूक्षण, ग्राही, वीर्यपुष्टिकर, शुक्रस्तम्भन विशेषकर सूजाक एवं शुक्रप्रमेहनाशक है। **उपयोग**—इसकी भस्म शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य, शुक्रप्रमेह, शुक्रस्राव, योनिस्राव और सूजाकमें प्रयुक्तकी जाती है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति एवं फुफ्फुसोंके लिए। **निवारण**—स्निग्ध पदार्थ और दूध आदि। **प्रतिनिधि**—सीसा (नाग)। **मात्रा**—१२० मि० ग्रा० (१ रत्ती—मतांतरसे १-२ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—बङ्गभस्म दीपन, पाचन, रुचिकर, बुद्धि वर्धक, शीतवीर्य, शरीरके सौन्दर्यको बढ़ानेवाली, व्रणहर, आरोग्यकर, वीर्यवर्धक, क्षयहर तथा स्वप्नमें होनेवाले शुक्रपात (स्वप्नदोष) को रोकनेवाली है।

नव्य मत—वंग एक बहुतही उपयोगी धातु है। शरीरके जीवरसायनीय विश्लेषण (Biochemical analysis) से यह ज्ञात हुआ है कि वंगका भी शरीरके बननेमें एक मुख्य भाग है। यही नहीं अपितु शरीरमें जितनी खनिज धातुयें पाई जाती हैं, उनमें वंगकी मात्रा सर्वाधिक है। यहाँ तक कि एक फ्रांसीसी रसशास्त्रीने यह बतलाया है कि मस्तिष्कमें वंग धातु बहुतायतसे पाई जाती है। समस्त केन्द्रिय वात संस्थानमें जो धातुयें मिलती हैं, वह वंग ही है। नाग, वंग और यशद शारीरिक स्रावोंको रोकनेमें बहुत कुछ समर्थ होते हैं। इसलिये इसका प्रमेह विशेषकर मधुमेहमें शर्करास्राव रोकनेके लिये बहुत उपयोग होता है।

प्रकरण ५

सीसा (सुर्ब)

नाम—(हिं०) सीसा; (अ०) आनुक, रसासुल्अस्वद, आबार (मरूजन), इबार (इ० बै०); (फा०) उस्रुब, सुर्ब; (सं०) सीसक, नाग; (बं०) सीसे; (पं०) सीष, सुर्ब, शीशा; (म०) शिसें; (गु०) सीसुं; (क०) शीस; (ले०) प्लम्बम् (Plumbum); (अं०) लेड (Lead)। इबार (Black lead) मतांतरसे Burnt lead (Lead oxide, I. B. 9); (रसा०) जुहल।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध बहुत भारी और नरम धातु है। सफेदा, मुरदाशंख, सिंदूर और सुरमा (अंजन) आदि इसीसे बनते हैं।

वक्तव्य—यह एक अति प्राचीन धातु है। यह प्राकृतिक रूपमें शुद्धावस्थामें तो अत्यल्प प्राप्य है। बेशक गंधकके साथ मिली हुई लेड सल्फाइडके रूपमें जिसे गैलीना (Galina) भी कहते हैं, पुष्कल पाई जाती है। सुतरां इसीमेंसे उसको पृथक् कर लेते हैं। मुरदाशंख इसीको खुश्क भस्म है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी, इसलामी और भारतीय वैद्योंको यह पूर्णतया ज्ञात था। बेशक उन्होंने इसकी उत्पत्ति पारा एवं गंधकसे लिखी है, जो यथार्थ नहीं। वे इसके कतिपय यौगिकोंका औषधरूपमें प्रयोग करते थे।

इब्नुल्बैतार गाफिकीका उद्धरण देते हैं जिसका कहना है कि अल्रसास सफेद सीसा है जिसे अल्क़स्दीर भी कहते हैं। जब कि काला सीसाको उस्रुब कहते हैं (संचिका २ पृ० १४०)। यू० Psimuthion (D. 5. 103), इस्फीदाज (अ०)—इ० बै०; (फा०) सफेदा (इस्फीदाजुर्रसास का संक्षिप्त रूप)। यह सीसक चूर्णका एक विशिष्ट कल्प है। (इ० बै० संचिका १, पृ० ३९)।

कल्प तथा योग—अस्वद।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क (मतांतरसे सर्द एवं तर)। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य।

गुण-कर्म—उपशोषण, सांद्रकर, स्तम्भन, संग्राही और रक्तस्तम्भन है। **उपयोग**—इसकी भस्म (कुश्तए उस्रुब) शीघ्रस्खलन, शुक्रतारल्य, रक्तस्राव, मधुमेह, शुक्रप्रमेह और स्वप्नप्रमेहमें विशेष गुणदायक है। सीसेको घिसकर उष्णशोथ और अर्शाङ्कुरोंपर तिला करते हैं। इससे बवासीरके मस्से सूखकर झड़ जाते हैं। स्वप्नदोषकी अधिकतामें इसका पत्तर बनाकर गुर्देके स्थान पर बांधते हैं। कण्ठमाला तथा अन्यान्य कठिन शोथों पर भी इसका पत्तर बनाकर बांधा जाता है। **अहितकर**—फुफ्फुसको। **निवारण**—मधु और दूध। **मात्रा**—१ रत्ती (२–४ तक)।

आयुर्वेदीय मत—नागभस्म मधुर, गुरु, स्निग्ध, लेखन उष्णवीर्य, सर, वाजीकर, दीपन तथा वातरोग, रक्तप्रदर, प्रमेह और अर्शको दूर करनेवाली है।

नव्यमत—बाह्य प्रयोगके अतिरिक्त अतिसार, प्रवाहिका, विसूचिका, आन्त्रव्रण, प्रमेह, रक्तष्ठीवन, और कफ बन्द करनेके लिये इसके योगोंका आभ्यन्तर उपयोग करते (खिलाते) हैं।

प्रकरण ६

(१) जस्ता (जस्त)

नाम—(हिं०) जस्त, जस्ता; (अ०) शिब्ब:, श(शि)ब:, ख़ारसीन; (फा०) रूय, रूय (रूह) तूतिया, जसद; (सं०) रसकसत्व, खर्परसत्व (प्रा० ना०), य(ज)शद (उत्तरकालीन भा० प्र० आदिका नाम)। रीतिहेतु; (बं०) दस्ता; (म०) जस्त; (गु०) जसद; (पं०) जस्त; (नेपा०) दस्त; (ले०) जिंकम् (Zincum); (अं०) जिंक (Zinc)।

वक्तव्य—मख्ज़नुल् अदविया और मुहीत आजम प्रभृति यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें शबः के नामसे जस्ता वर्णित है और उन्हीं ग्रन्थोंमें इसकी फारसी संज्ञा 'रूमी तूतिया' लिखी है। परंतु अर्वाचीन फारसी मेटीरिया मेडिका जनाब नजिमुल् अतिब्बा संकलित और बेरूतमें प्रकाशित पिजिश्कीनामा ग्रन्थमें इसकी फारसीसंज्ञा केवल 'रूमी' लिखी और कर्नेलयबूस कसानदेक संकलित अरबी ग्रन्थ उसूलुल्कीमियामें इसकी अरबी संज्ञा केवल तूतिया लिखी है। किन्तु प्रामाणिक अरबीमें लिखित मेटीरिया मेडिका अर्थात् उम्दतुल् मुहताज और मिश्रमें प्रकाशित अन्य अर्वाचीन अरबी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें इसकी अरबी संज्ञा 'ख़ारसीन' लिखी है। मुहीत आजममें इसको ख़ारसीनी लिखा है।

यूनानी चिकित्सक शिबः अर्थात् जस्ताको स्वरूपके विचारसे सीसा और वंगके मध्य मानते हैं।

प्राचीन यूनानी वैद्य अक़लीमियाके स्वरूपवर्णनमें मतभेद व्यक्त किए हैं। वस्तुतः अक़लीमिया (क़लीमिया) भी क़लामीन या कैलेमीन है।

इतिहास—प्राचीन भारतीयों, मिश्रियों, यूनानियों और ईरानियोंको खनिज जस्ता (ब्लेंड या कैलेमीन)का अवश्य ज्ञान था; क्योंकि इसे ताँबाके साथ मिलाकर पीतल और काँसी बनातेथे। किंतु शुद्ध जस्ताका ज्ञात उन्हें नहीं था। मीरुह नामक एक फरांसीसी अन्वेषक कहता है कि तृतीय शती मसीहीमें खनिज जस्ताको 'मरक शीशा उज़्ज़हब' कहा जाता था। स्विटजरलैंडवासी हकीम बारकल्सूस (Barculsus) प्रथम व्यक्ति था जिसने सन् १५४१ ई० में इस शुद्ध धातुका अन्वेषणकर उसका वर्णन किया।

वर्णन—यह एक श्वेत-नीलवर्ण (नीलाभ श्वेत) वा श्वेतवर्णकी प्रसिद्ध कठिन धातु है जो खानसे कार्बन (कज्जल) और गंधक आदिके साथ मिली हुई जिंक कार्बोनेट या कैलामीन (Zinc Carbonate or Calamine) जिसे कोई खपरिया और कोई संगबसरी मानते हैं और जिंक सल्फेट—ब्लेंड (Zinc Sulphate—(Blende), आदिके रूपमें निकलती है। कैलेमीनको अरबीमें क़लामीन या क़ोलामिया या अक़्लीमिया कहते हैं। इसे विशेष विधिसे उनसे पृथक् करके काममें लेते हैं। यूरूप और अमरीकामें ब्लेंड और कैलेमीनकी बहुशः खानें हैं और जस्तेको शुद्ध करनेकी भी वहाँ पर बहुतसी खानें हैं। सुतरां संसारके बहुवा देशोंमें वहींसे जस्ता जाता है। प्राकृतिक सल्फाइड या कार्बोनेट ऑफ जिंकको तीव्र अग्नि देनेसे वह ऑक्साइड बन जाता है। पुनः उसमें कोयला मिलाकर अग्नि देनेसे ऑक्सीजन पृथक् होकर शुद्ध जस्ता रह जाता है। यूनानी वैद्यकमें इसका फूल (जस्त शिगुफ़्त—जिंक ऑक्साइड) और भस्म (कुश्ता जस्त) प्रयुक्त होती है। आयुर्वेदमें इन्हें क्रमशः **पुष्पांजन** और **यशदभस्म** कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राहक, संशमन (अवसादक), रूक्षण, वीर्यपुष्टिकर, शुक्रस्तम्भन, वाजीकरण, ज्वरघ्न और नेत्ररोगोंमें लाभकारक है। **उपयोग**—जस्तेको भस्म करके शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य, सूजाक, शुक्रप्रमेह, रक्तस्राव, श्वेतप्रदर (सैलानुर्रिहम) और ज्वरोंमें प्रयुक्त करते हैं। प्रायः नेत्ररोगोंमें अंजनकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसका फूल बालकोंके नेत्रपाक रोगमें पुष्कल उपयोग करते हैं। **अहितकर**—प्लीहाको। **निवारण**—मधु और स्नेह (तेल) आदि। **प्रतिनिधि**—सीसा। **मात्रा**—भस्म १२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (१/२ रत्ती से १ रत्ती) तक। १२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्राम (१ से २ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—यह कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, नेत्रके लिये हितकर तथा कफ पित्त, प्रमेह, पाण्डुरोग और श्वासका नाश करनेवाला है।

नव्यमत—नेत्ररोगोंके अतिरिक्त वातनाडीबलदायक रूपसे इसका आभ्यन्तर उपयोग करते हैं। व्रणोंके लिये मलहम आदिकी भाँति इसका प्रयोग होता है।

(२) जस्तेका फूल

नाम—(हिं०) जस्तेका फूल, जस्तका कुश्ता, फूलकी हुई जस्त; (अ०) ऑक्सीहुल्ख़ारसीन, तूतिया (नवीन); (फा०) जस्त शिगुफ़्त, तूतिया रूमी, पंब: रूमी; (सं०) पुष्पाञ्जन, रीतिज, रीतिपुष्प; (गु०) जसद वा फूल, कांसांजन; (मा०) जसदकी मली; (अं०) ऑक्साइड ऑफ जिंक (Oxide of Zinc) या जिंक ऑक्साइड (Zinc oxide)। (लै०) जिन्साइ ऑक्साइडम् (Zinci Oxidum)।

वक्तव्य—(१) 'तूतिया' 'फारसी' 'दूदिया' संज्ञाका अरबी रूपांतर है। अरबीमें इसको हजरुल्कोहल और फारसीमें संगसुरगा भी कहते हैं। आरब्य चिकित्सकोंने तूतियाको कई भेदोंमें विभक्त किया है; यथा—(१) तूतियाए हिंदी जो सफेद नीलगूँ और भारी होता है। (२) तूतियाए किरमानी गिलाई लिए और हलका होता है। (३) तूतियाए चीनी जो पीले रंगका मोटा और दलदार होता है। (४) मज़ाखी जो पतला और परतदार होता है।

(२) तूतियाए क़िरमानीको तूतियाए सुफ़ालक या संगबसरी भी कहते हैं। इसका आयात किरमानसे बसरामें होता है और वहाँसे अन्यान्य स्थानोंको जाता है, अतएव बसरासे संबंधित किया गया। इसके स्वरूप

परिचयमें लिखा है कि यह एक दूद (धुआँ) है जो कि किरमानमें सीसेकी खानके धूल एवं कंकड़ोंको भट्ठीमें आंच देकर उसमेंसे सीसा और तांबा प्राप्त करते समय भट्ठीके धुँआकशमें संचित हो जाता है। (३) उम्दतूल् मुह्ताजके संकलयिताके अनुसार तूतिया तीन प्रकारका होता है। (१) खनिज जो अक़लीमिया या कैलेमीनके ऊपर पाया जाता है। यह भारी और अपक्वस्वाद होता है। (२) कृत्रिम जो इस प्रकार बनाया जाता है कि अक़लीमिया (कैलेमीन) को पीसकर पिघले हुए तांबे पर थोड़ा-थोड़ा डालते जाते हैं, जिसमेंसे बाष्प उड़कर जम जाते हैं। यह बीचके वजनका और अर्धस्वच्छ होता है। (३) औद्भिज्ज या वानस्पतिक जो प्रत्येक तिक्त, अम्ल और दुग्धमय वृक्षों, जैसे—आस, तूत, और खर्नूब आदिसे प्राप्त करते हैं। आस और सफरजल से प्राप्त किया हुआ सर्वोत्तम समझा जाता है। (४) तूतियाए अख्ज़र—यह खनिज और कृत्रिम होता है। खनिज भागल आदि स्थानोंमें जो हिसारके सन्निकट हैं, पाया जाता है (देखो पॉवल महोदय संकलित पंजाब प्रॉडक्ट्स नामक ग्रंथ नं० ३६३ पृ० १६७)। कृत्रिमका वर्णन नीलाथोथा (तूतियाए अख्जर या तूतियाए हिंदी) में किया गया है।

वर्णन—यह क्वचित् खनिजरूपमें प्राप्त होता है। जयपुर (राजस्थान) में यह कृत्रिमविधिसे बनाया जाता है। लोहेकी कड़ाहीमें जस्ता डालकर नीचे तीव्र अग्नि देनेसे जस्तेकी खील (लावा-जस्त शिगुफ़्त) बनती रहती है। उसको जस्तेका फूल कहते हैं। यही आयुर्वेदका पुष्पाञ्जन (च०) है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी वैद्योंको उक्त औषधि ज्ञात थी। सुतरां डॉ० मीरने अस्वूदयून (खाकस्तर) के नामसे इसका उल्लेख किया गया है। इसके एक अत्यन्त स्वच्छ भेदका 'मफूलकस' के नामसे जालीनूसने वर्णन किया है। प्राचीन अरबी एवं अजमी चिकित्सकोंने तूतिया नामसे इसका उल्लेख किया है जो वास्तवमें अशुद्ध ऑक्साइड ऑफ जिंक है।

प्रकृति—शीत।

गुण कर्म तथा उपयोग—जस्तेकी राख कड़वी, कसेली तथा कफ, पित्त, शुक्रप्रमेह, कामला तथा आँखोंको बहुत लाभ पहुँचाती और दमाको मिटाती है। इसको पानमें रखकर खानेसे कफपित्तज शुक्रप्रमेह आराम होता है। अरनीकी जड़की छालके चूर्णके साथ खानेसे पाचनदौर्बल्य (अपचन) दूर होता है।

मात्रा— ०.५ ग्राम (४ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—यह श्वेतवर्ण, स्निग्ध, शीतवीर्य तथा सर्वप्रकारके नेत्रके रोग, प्रबल हिक्का, विष, ज्वर और क्षयको दूर करता है।

प्रकरण ७

लोहा

नाम—(हिं०, द०, बं०, उ०) लोहा; (अ०) हदोद; (फा०) आहन; (सं०) लो (लौ) ह, अयस्; (म०) लोखंड; (गु०) लोढुं; (लै०) फेरम् (Ferrum); (अं०) आयर्न (Iron)।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध खनिज धातु है। साफ किये हुए उत्कृष्ट लोहेको फ़ौलाद कहते हैं। इसको हल करके (महलूल) वा भस्म करके प्रयोग करते हैं।

कल्प तथा योग—अतरीफल फौलादी, सफूफ फौलादी आदि।

इतिहास—मानवको लोहाका ज्ञान तांबा, टिन और कतिपय अन्यान्य धातुके पश्चात् हुआ। क्योंकि यह सर्ववादिसम्मत है कि लोहे आदिका निष्कासन खानसे धातुओंके निकालने और उनको साफ करने पर निर्भर है और यह कला वा विद्या अति आदिकालमें मानवको ज्ञात न थी। जेनोफोन (Xenophon) के कथनानुसार सर्वप्रथम

कालूफ जातिके लोगोंने जो कालासागरके समीपवर्ती प्रदेशोंमें बसेथे खनिज अयस् अर्थात् अशुद्ध लोहेको पिघलाकर शुद्ध किया। इसी लिए यूनानी वाङ्मयमें लोहेकी एक संज्ञा कालूफ (Chalups) है और इसी संबंधसे अंगरेजीमें भी केलीबिएट (Chalybeate) ऐसे द्रव या यौगिकको कहते हैं जिसमें लोहेके घटक मिश्रीभूत या संघटित हों। प्राचीन यूनानी रसायनविदोंको यह धातु भलीभाँति ज्ञात थी। क्योंकि उनकी परिभाषामें इसका नाम 'मलास' था जिसको अरबीमें 'मिर्रीख' कहते हैं।

वैद्यकशास्त्रमें लोहेका प्रयोग अतिप्राचीन है। कहते हैं कि प्रथमतः केवल इसी धातुका अन्तः प्रयोग किया गया था, जिसको तीन सहस्र वर्षसे ऊपर होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—दीपन, यकृत्प्लीहाबलवर्धन, संग्राही (काबिज), वाजीकर, हस्तिमेहघ्न, रक्तवर्धक और अन्त्रसंग्राहक है। **उपयोग**—लोह या फौलादकी भस्म मंदाग्नि, यकृत्प्लीहा दौर्बल्य, प्लीहावृद्धि, रक्ताल्पता, कामावसाद और मूत्रातीतमें खिलाया जाता है। कोष्ठाङ्गोंको शक्ति देनेके अतिरिक्त यह संग्राही भी है। अतएव जीर्ण अतिसार और रक्तातिसारमें भी खिलाया जाता है। यकृदामाशयदौर्बल्य तथा अन्त्रामाशयातिसारमें लोहेसे बुझाया हुआ पानी या लोहेसे बुझाई हुई छाछ पिलाई जाती है। **अहितकर**—कब्ज बढ़ा देता है। **निवारण**—ताजा दूध और मक्खन। **प्रतिनिधि**—मण्डूर। **मात्रा**—लोह भस्म (कुश्तए आहन) या फौलाद भस्म (कुश्तए फौलाद) चार चावलसे १ रत्ती तक।

नव्यमत—डॉक्टर लोग लोहेको रक्तका एक उपादान मानते हैं। उनके विचारसे रक्तकी लालिमाका कारण लोहा ही है। उनके खोजोंके अनुसार लोहा संग्राही, रक्तवर्धक, दीपन तथा दौर्बल्य, रक्ताल्पता, आर्तवाल्पता, क्षुधाकी अल्पता और प्लीहावृद्धि, इनको दूर करनेवाला है।

अज्साद मुरक्कबा (मिश्रलोह) विज्ञानीय

अध्याय ४

प्रकरण १

पीतल

नाम—(हिं०) पीतल; (अ०) शब, सुफ़्र; (फा०) बिरिंज; (सं०) पित्तल, रीतिका, रीति; (म०, गु०, बं०) पितल; (अं०) ब्रॉस (Brass)।

वर्णन—पीले रंगका एक प्रकारका मिश्रलोह (धातु) जो १ भाग जस्ता और २ भाग ताँबा या १ भाग जस्ता और ३ भाग ताँबेसे गलाकर बनाया जाता है। यह खनिज भी होता है। जो पीतल नरम, सुंदर पीले रंगका, चमकदार, मजबूत, पीटनेपर भी न टूटनेवाला और चिकना (स्पर्शमें) हो वह अच्छा होता है। जस्ता, ताँबा और निकलको परस्पर मिलाकर पिघलानेसे (जर्मन सिल्वर) बन जाता है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क, आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पीतल वायु और कफके विकार नष्ट करता है तथा कामला और प्लीहवृद्धिमें लाभ पहुँचाता है। इसको जलाकर शहदमें मिलाकर छाईं और दूसरे दागोंपर लगावेसे वे साफ हो जाते हैं। इसे मकोय या कासनीके रसके साथ घिसकर सूजनेके ऊपर लेप लगानेसे सूजन उतरती है। इसे आँखमें लगानेसे नेत्र कण्डू, जाला और आँखोंसे आँसू बहना आराम होता हैं। जलाये हुए (या भस्म किये हुए) पीतलके आंतरिक प्रयोगसे पीले दस्त आते हैं। इसके वर्तनमें खाना (पकाकर) खानेसे हृदयको शक्ति प्राप्त होती है, दिलकी धड़कन दूर होती है, मस्तिष्कावयोंको लाभ पहुँचता और सीनेको हानि होती है। तथा आमाशयकी दुर्बलता दूर होती है। इसके वर्तनमें का पानी सदैव पीनेसे पेटमें कब्ज पैदा हो जाता है। यहाँ तक कि अंवतोगत्वा इससे शूल (कुलंज) का रोग हो जाता है और शरीरका वर्ण पीला हो जाता है। **अहितकर**—प्लीहाको। **निवारण**—शहद। **मात्रा**—०.५ ग्राम (४ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—यह तिक्त, रूक्ष, कुछ उष्णवीर्य, शोधन, लेखन तथा रक्तविकार, पित्त, कृमि, कुष्ठ और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है।

प्रकरण २

काँसा

नाम—(हिं०) काँसा (सी०), कसकुट; (अ०) तालीक़ून, सुफ़्र; (फा०) सफेद रोई, रोय (ई), रोईं; (सं०) कांस्य, कंसक; (म०) कासें; (गु०) कांसुं; (बं०) काँसा; (मार०, पं०) कांसी; (अं०) बेल मेटल (Bell metal)।

वर्णन—आठ भाग ताँबा और दो भाग वंग (राँगे) को एकत्र गलानेसे काँसा बनता है। ब्रोंज (Bronze) भी एक प्रकारका कांसा है। इसमें १२ प्रतिशत वंग तथा थोड़ा जस्ता, ताँबा और सीसा होता है। कृत्रिम और खनिज भेदसे कांसा दो प्रकारका होता हैं। तालीकून (रूमी वा यूनानी) इसका खनिज भेद है। खनिज कांसी बहुत पीली होती हैं। यह आंचपर भी काली नहीं पड़ती। इस लिये अरबवासी इसे सुफ़्र (पीला) कहते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेके अंतमें गरम एवं खुश्क है। वैद्यलोग भी इसे उष्णवीर्य (र० चू०) एवं खुश्क मानते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसे पानीमें घिसकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती है। पानके रसमें घिसकर आमाशय द्वारके ऊपर लगानेसे अतिसार नष्ट होता है। काँसीसे आइनेके बराबर एक तख्ता (पट्ट) बनाकर अँधेरे मकानमें लटकाकर उसे लकवे (अर्दित) के रोगीको निरंतर देखते रहनेको कहें। इससे लकवा आराम होता है। इसका तथा पीतलका मोचना बनाकर बाल उखाड़नेसे वे फिर नहीं निकलते अथवा देरमें निकलते हैं। इसकी भस्म अल्प मात्रा (आधी रत्ती) सेवन करनेसे द्रवोंका शोषण होता है, बुद्धि बढ़ती है, वमन बंद होता है, और कतिपय अंगोंकी सूजन दूर होती है। सूँघनेकी शक्ति न रहनेमें इससे उपकार होता है। अल्प मात्रामें तो यह निर्विषैला है किंतु अधिक मात्रामें आसन्न विष है।

आयुर्वेदीय मत—यह तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, लेखन, नेत्रको स्वच्छ करनेवाला (दृक्प्रसादन), तथा वात, पित्त, कृमि और कुष्ठको दूर करनेवाला है। कांसेके बर्तनमें भोजन करना हितकर-आरोग्यप्रद है। (र० चू० अ० १४)। राजनिघण्टुमें इसे कफनाशक, रूक्ष, कषाय, रुचिकारक और दीपनपाचन एवं पथ्य तथा भावप्रकाशमें लेखन, विशद, सर, यह अधिक लिखा है।

फ़र्अ अज्साद (उपधातु) विज्ञानीय

अध्याय ५

प्राक्कथन

जिन सात लोहों (धातुओं) का नामोल्लेख एवं विवरण, गत जविल्अज्साद विज्ञानीय अध्याय ५ में किया गया है, यूनानो वैद्योंके मतसे उनमेंसे प्रत्येक लोहकी एक-एक फ़रअ (शाखा) अर्थात् उपधातु भी होती है। इसके निम्न भेद होते हैं—

(१) जो उस धातुकी खानसे निकले। जैसे—सोनेकी खानसे सोनामक्खी और चांदीकी खानसे रूपामक्खी। परंतु यह कोई आवश्यक नहीं कि सोनामक्खी सोनाकी खानसे और रूपामक्खी चांदीकी खानसे ही निकले। (२) जो उस धातुके जलानेसे प्राप्त हो। जैसे ताँबाके जलानेसे संगरासिख' और लोहेके जलानेसे 'मंडूर' प्राप्त होता है ऐसी यूनानी वैद्योंकी मान्यता है। याद रहे कि यद्यपि लोहेके जलानेसे किट्ट रूपमें मंडूरकी प्राप्ति तो होती है; तथापि ताँबेके जलानेसे 'संगरासिख' की नहीं, अपितु रूसोख्तजकी प्राप्ति होती है। संगरासिख तो ताँबेका खनिज पत्थर है जिसके जलानेसे ताँबेकी प्राप्ति होती है। (३) जो धातुओंसे कृत्रिम रूपसे बनाई गई हो, जैसे कलई अर्थात् वंगसे मुरदासंग तथा सफेदा, जस्तेसे संगबसरी, ताँबेसे तूतिया (नीलाथोथा) किंवा जंगार कृत्रिम एवं खनिज और सीसेसे सिन्दूर। इन सभी भेदोंको यूनानी वैद्य उपधातु कहते हैं। इनके अतिरिक्त उनके मतसे अभ्रक, सुरमा और चुंबककी गणना भी उपधातुओंमें को जाती है। गुणधर्ममें ये उपधातुयें अपनी मूल धातुके समान होती हैं। इतना ही नहीं, अपितु उनमेंसे कोई-कोई तो अपनी मूल धातुकी उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है, जैसे मंडूर लोहेका। कोई-कोई अपनी मूल धातुसे निर्बल होती है, जैसे—सोनामक्खी और रूपामक्खी। ये उपधातुयें विपरीत अपनी मूल धातुओंके अग्निपर पिघलती नहीं हैं तथा तोड़नेसे टूटकर खंड-खंड हो जाती हैं।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि मुरदासंग कलईसे नहीं, अपितु सीसेसे बनाया जाता है। यह सीसेका विशेष आक्साइड (Oxide) है। इसलिये मैंने सीसेकी उपधातुओंके प्रकरणमें इसका विवरण किया है।

इनका कुश्ता (भस्म) संभवतः शेष पत्थरोंके कुश्तेकी भाँति बनाया जाता है। सुतरां मख्जन अक्सीरके रचयिताने कतिपय उपधातुओंका विवरण खनिज पत्थरोंके कुश्तों (भस्मों) के प्रकरणमें किया है। किंतु उनमें कतिपय कृत्रिमतया धातुओंसे बनाई जाती है, उनके गुण भी अपनो मूल धातुसे किसी प्रकार मिलते-जुलते होते हैं। अस्तु यह उचित जान पड़ता है कि इनका विवरण एक पृथक् अध्यायमें किया जाय। इसीलिये यहाँ उनका इस अध्यायमें एकत्र विवरण किया गया है।

इनमें कतिपय उपधातुओंका उपयोग, जैसे—सोनामक्खी, तूतिया, मुरदासंग, संगबसरी और मण्डूर (खुब्सुल् हदीद), भस्मके रूपमें किया जाता है, शेष उपधातुओं जैसे रूपामक्खी, संगरासिख, जंगार और सिंदूर आदिका उपयोग भस्म (कुश्ता) के रूपमें नहीं होता।

प्रकरण १

सोनेकी उपधातु सोनामक्खी

नाम—(हिं०) सोनामक्खी, सोन (ना) माखी; (अ०) हज्रुन्नूर, मर्क़शीशा, मारक़शीशाए ज़हबी; (फा०), संगरूशनाई, हज्र रूशनाई; (सं०) सुवर्ण (स्वर्ण) माक्षीक, माक्षि (क्षी) क; (गु०) सोनामखी, माक्षीक; (म०), सोन्मक्की, सोनामक्खी, दगडी सोनामुखी; (अं०) कॉपर पायराइट्स (Copper Pyrites), चेल्को पाइराइट (Chalco Pyrite)।

वर्णन—यह एक खनिज पदार्थ (उपधातु) है,ज़ो भारतमें कई स्थानोंमें पाया जाता है और वजनमें भारी, रंगमें सुनहला तथा चमकीला होता है। यह सोनेकी खानसे निकलता है। सोनेके अभावमें औषधियोंमें इसका उपयोग किया जाता है। यह ताँबेका मुख्य खनिज धातु है। उत्तम सोनामक्खीसे $\frac{१}{३}$ ताँबा प्राप्त होता है। यह तापी नदी, किरात, चीन और यवनदेशमें उत्पन्न होता है।

वक्तव्य—पहले यूनानी संज्ञा 'मर्क़शीशा' खानिके अर्थोंमें प्रयुक्त था, पश्चात् कतिपय खनिज सत्वोंके लिए प्रयुक्त किया गया। आरब्य चिकित्सक कहते हैं कि मर्क़शीशा एक पाषाणकी यूनानी संज्ञा है, जो सोने, चाँदी, ताँबे और लोहेकी खानोंसे प्राप्त किया जाता है और इसमें उनके घटकभी मिश्रीभूत होते हैं जो पृथक् किए जाते हैं। सुतरां यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें इसके स्वरूप एवं गुणवर्णनमें लिखा है कि वह एक प्रकारका पाषाण है जो मग्नीसियासे अल्पतर उज्ज्वल है और वह चार प्रकारका होता है; ज़हबी (सुवर्ण), फ़िज्जी (रजत), नुहासी (ताम्र) और हदीदी (लौह)। अस्तु, मर्क़शीशाए फ़िज्जी जिसको हिन्दीमें रूपामक्खी कहते हैं वह वर्तमान बिस्मथ (Bismuth) के लगभग समान है। इसकी लेटिन संज्ञा बिस्म्युथम् (Bismuthum) का उच्चारण कोई-कोई बिस्म्युथम् करते हैं। मिश्रवासियोंने इसका उच्चार 'बिज़्मूत' किया है और ईरानियोंने 'बिस्मूत'।

इतिहास—प्राचीनकालमें इस सत्वका उपयोग केवल सौन्दर्यके लिए किया जाता था और इसके वैद्यकीय उपयोगकी उस समय तक उपेक्षाकी जातीथी जब तक कि सन् १७८६ ई० में एक डॉक्टर महोदयने एतद्विषयक गुण-कर्म एवं प्रयोगका वर्णन नहीं किया। यद्यपि प्रारम्भमें यह केवल सौन्दर्यकी एक औषधि माना जाता रहा, तथापि धीरे-धीरे मुखमण्डलके विभिन्न त्वगीय रोगोंमें इसके गुणकारी प्रभावकी ख्याति बढ़ती रही। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन यूनानी वैद्योंने मर्क़शीशाका व्यवहार प्रायः रोगोंमें किया और वे इसे विलयन एवं लेखन मानते थे। उत्तरकालीनोंके कथनानुसार यूरूपमें इसके आन्तरिक उपयोगका आरम्भ ईसवी सन् की सत्रहवीं शतीके अंतमें हुआ।

सुवर्णमाक्षिक नववर्णं सोनेके जैसे रंगका, ऋजु कोण (और धार तथा फलक) रहित, अनियत आकारका, भारी (विमलकी अपेक्षया) तथा हाथसे खूब रगड़नेपर हाथमें कालापन लानेवाला होता है। जो बाहरसे कुछ काला और तोड़नेपर भीतरसे सुनहरे रंगका दिखे तथा कसौटीपर घिसनेसे जिसका सोने जैसा रंग (कस) उतरे वह माक्षीक श्रेष्ठ होता है।

वक्तव्य—आजकाल वैद्यलोग माक्षिक नामसे जिस द्रव्यका प्रयोग करते हैं वह प्रायः विमल होता है। माक्षीक कोण-धार तथा फलक-पहल रहित और विमल कोण-धार और फलकवाला होता है। यह दोनोंमें बड़ा भारी दृश्य अन्तर है। (रसामृतम्)।

रासायनिक संगठन—इसकी संघटनामें ताम्रके दो अणुओंके साथ—गंधकके एक तथा अयस्के दो अणुओंके साथ—गंधकके तीन अणुओंका मिश्रण होता है। अर्थात् सुवर्णमाक्षिकमें गंधकके साथ ताम्र और अयस् दोनों एकत्र

मिले हुए होते हैं। इसका तुरतका तोड़ा हुआ अच्छी जातिका खनिज भीतरसे सोने जैसा पीला दिखता है। यह चाकूसे काटा जा सकता है और हलका घन-हथौड़ेसे सहजमें चूर्ण किया जा सकता है (भा० र० शा० पृ० ४२०)।

इसका भस्म बनानेसे उसमें गंधक (और रहा हुआ कुछ संखियेका अंश) जलकर उड़ जाता है और ताम्र तथा लोहेकी मिश्रित भस्म (ऑक्साइड) बनती है।

रासायनिक संगठन—रसायनकी दृष्टिसे यह दो भाग गंधक और एक भाग तांबे और लोहेका यौगिक (गंधताम्रायस्) है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (अ० सं०)। **गुण-कर्म**—यह लेखन, संग्राही, दृष्टिवर्धक एवं श्वयथुविलयन है।

उपयोग—इसको अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ खरल करके दृष्टिदौर्बल्य निवारणके लिये नेत्रमें लगाते हैं। इसे मरहमोंमें मिलाकर व्रणोंमें लगाते और सिरकेके साथ पीसकर झाइं एवं किलास पर पतला लेप करते हैं। **अहितकर**—प्रायः अंगोंको। **निवारण**—शीतल स्निग्ध पदार्थ तथा स्नेहद्रव्य। **प्रतिनिधि**—रूपामक्खी। **मात्रा**—आंतरिक रूपसे उपयोग नहीं की जाती।

आयुर्वेदोय मत—सुवर्णमाक्षिक मधुर, तिक्त, कुछ कषाय, विपाकमें कटु, लघु, शीतवीर्य, वाजीकर, रसायन, बलकारक, योगवाही तथा कफ, पित्त, क्षय, पाण्डुरोग, कृमि, कुष्ठ, ग्रहणी, अर्श, मन्दाग्नि, कामला, राजयक्ष्मा, स्वरभंग, अरुचि, बस्ति-हृदय और कण्ठके रोग, विष, शोथ, उदरवृद्धि, अनिद्रा तथा अनुपानविशेषसे तीनों दोषों और सर्वरोगोंको दूर करनेवाला (र० चू० अ० १०; रसार्णव प० ७; अ० सं० उ० स्था० अ० ३९; आ० प्र० अ० १२) तथा जरा और प्रमेह (मधुमेह) नाशक है (सु० मधुमेह० चि० अ० १३)।

प्रकरण २

चांदीकी उपधातु

रूपामक्खी

नाम—(हिं०) रूपामक्खी; (अ०) मरक़शीशाए फ़िज़्ज़ी; (सं०) रौप्यमाक्षिक, तारमाक्षिक, रजतमाक्षिक; (अं०) आयर्न पाइराइट्स (Iron Pyrites)।

वर्णन तथा रासायनिक संगठन—यह एक भारी, चांदीके जैसे रंगकी, सुवर्णमाक्षिकसे अल्पगुणवाली, कुछ अम्ल रसवाली, स्याहीमायल खनिज वस्तु है। यह लोहगंधक का एक विशिष्ट यौगिक (लोहद्विगंधित) होता है। विमल भी माक्षिकका ही एक भेद मालूम होता है। भस्म बनानेसे गंधक (और रहा हुआ संखियेका कुछ अंश) उड़ जाता है और गंधकके योगसे बनी हुई लोहेकी भस्म मिलती है।

वक्तव्य—दोनों प्रकारके माक्षिक (सोनामक्खी और रूपामक्खी) तांबे और लोहेके यौगिक हैं। इसलिये इनको तांबे या लोहेकी उपधातु मानना चाहिये न कि सोना और चांदीकी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। **गुण-कर्म**—बाहरी तौर पर यह लेखन, संग्राही और द्रवाभिशोषण-कर्ता भी है। यह नेत्ररोगोंमें विशेष गुणदायक है। **उपयोग**—इसे अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ सुरमाकी भांति महीन खरल करके दृष्टिदौर्बल्य, नेत्रजालक, अर्म (नाखुना) और सिराजाल दूर करनेके लिए नेत्रमें लगाते हैं। व्रणस्थ दुष्ट मांसको नष्ट करने और दुर्गन्धित द्रवको सुखाकर उनकी शुद्धिके लिए इसे कतिपय मलहरोंमें डालकर लगाते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिके लिए। **निवारण**—बादाम और कद्दूका तेल। **प्रतिनिधि**—मुरदासंख। **मात्रा**—आंतरिक उपयोग नहीं होता।

प्रकरण ३

ताँबे की उपधातुएँ

(१) रूसोख्तज (संगरासिख)

नाम—(हिं०) जलाया हुआ ताँबा; (अ०) रूसोख्तज; (फा०) (रूसोख्तस्तः), रूयसोख्त, रासोख्त, मिरज सोख्ता, संगरासिख; (सं०) दग्ध ताम्र।

वर्णन—फारसी रूयसोख्तः से रूसोख्तज अरबी बनाया गया है। संगरासिखका अर्थ (फा० संगपत्थर, अ० रासिख, रस्ख = मैल) ताँबेका मैल है। यह जलाया हुआ ताँबा (ताँबा सोख्ता) है जो गन्धक और लाहौरी नमक के द्वारा ताँबे के वर्कों (पत्रों) को जलाकर तैयार किया जाता है। दोनों ओरसे लाल रंगका पतला, चिकना और मिश्री श्रेष्ठतर होता है। बहुत जला हुआ कालेरंगका होता है। यह उत्तम नहीं होता। गीलानीके मतसे यह बाल काला करनेवाले खिजाबों में पड़ता है।

वक्तव्य—ताँबेके खनिज पत्थरको जिससे ताँबा निकलता है, कोई-कोई **संगरासिख** कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे (मतांतरसे तीसरे) दर्जेमें गरम और खुश्क। **गुण-कर्म**—अत्यन्त ग्राही, रूक्षण, तीक्ष्ण, व्रणलेखन, लेखन तथा आग्नेय (अक्काल), व्रणशोधन, दुष्टव्रणोंको फैलनेसे रोकनेवाला और व्रणरोपण के लिये प्रधानतया प्रयुक्त होता है। **उपयोग**—इसको अधिकतया खिजाबोंमें डालते हैं। दूषित व्रणोंके अतिरिक्त द्रवोंको सुखाने और अधिक मांसको दूर करनेके लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। आन्ध्य, जाला और नेत्रशुक्ल (फूली) में भी यह अंजनके रूपमें प्रयुक्त होता है। खानेसे यह कैथी प्रवृत्ति उत्पन्न करती है। इसके खानेसे पीला पानी बलपूर्वक निकलता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—मोम और तिलका तेल। **प्रतिनिधि**—ताँबेका बुरादा। **मात्रा**—आन्तरिक प्रयोगके लिये ७ रत्ती।

(२) जंगार

नाम—(हिं०) जंगार (ल), पितराई; (अ०) ज़ङ्गार; (फा०) ज़ंगार (ल); (सं०) नीलकल्क; (र० प्र० सु० अ० १); (द०) ज़ंगाल; (गु०) ज़ंगार; (ले०) क्युप्राई सब्एसीटास (Cupri (–as) subacetas); (अं०) सब्एसीटेट ऑफ कॉपर (Subacetate of Copper), वर्डिग्रिस (Verdigris), ईरुगो (Aerugo)।

वर्णन—एक हलका हरे रंगका चूर्ण है जो ताँबेसे तैयार किया जाता है। इसके यह दो भेद हैं—(१) खनिज जो खानेमें से निकलता है। इसे ज़ंगार मादनी (फिरंगी), दह्नामिस्सी या दह्नएफ़िरंग कहते हैं। दे० "दहनएफिरंग"। (२) कृत्रिम (मस्नूई या गैरमादनी) जो ताँबेपर सिरकाके बाष्प पहुँचानेसे बन जाते हैं। इसे ज़ंगार सिनाअत कहते हैं। **विलेयता**—यह खनिज अम्ल, शुक्ताम्ल (सिरकेका तेजाब) और अमोनियामें विलीन हो जाता है। जलमें पीसनेसे लगभग आधा विलीन हो जाता है।

कल्प तथा योग—तम्रीख जंगार, मरहम जंगार, मरहम सब्ज।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क है। **गुण-कर्म**—आग्नेय, व्रणकारक और व्रणलेखन, विशेषकर अवसादन (उभरे या ज़ायद मांसको खा जानेवाला) है। **उपयोग**—आग्नेय और व्रणलेखन होनेसे दुष्ट व्रणोंमें जंगारको मरहमोंमें मिलाकर लगाते हैं। उत्सन्न और दूषित मांसको नष्ट करके और दूषित द्रवोंकी उत्पत्ति बन्द करके यह व्रणको अच्छा कर देता है। सिराजालक (जाला), शुक्ल (फूला), दृष्टिमांद्य और नेत्रव्रण आदि नेत्ररोगोंमें अन्य औषधियोंके साथ अञ्जनकी भांति इसका उपयोग करते हैं। तीक्ष्ण क्षार और व्रणकारक होनेके कारण यह आन्तरिक उपयोगमें नहीं आता। **अहितकर**—कण्ठ और नाडियोंको। **निवारण**—ताजा घी और लबाब।

(३) दह्नएफिरंग

नाम—(फा०) दहानफिरंग, दह्नः, दह्नएफिरंग, दह्नमिस्सी, जंगार मादनी, जंगार फिरंगी; (अ०) दह्नज (फा० दह्नः से अरबीकृत)।

वर्णन—एक पत्थर जिसके नग बनते हैं। यह जंगारका वह भेद है जो सोने, चाँदी, ताँबे और लोहेकी खानसे निकलता है। यह आयुर्वेदीय रसशास्त्रका 'सस्यक' हो सकता है। दह्नएफिरंगको जोहरी लोग उपरत्न मानते हैं (रत्नप्रदीप)। इसके निम्न भेद हैं—तिलाई (सोनेके रंगका), नुक़रई (चाँदीके रंगका), मिस्सी (ताँबेके रंगका) और आहनी (लोहिया रंगका)। इनके पहिचाननेकी विधि यह है कि नीबूके साथ कलई किये हुए लोहे जैसे छुरी या तलवार पर घिसें, यदि पीला निकले तो तिलाई, सफेद निकले तो नुक़रई, ताँबेके रंगपर निकले तो मिस्सी भेद समझें। जंगार मादनीसे यही 'दह्ना मिस्सी' अभिप्रेत है। यदि लोहिया रंग निकले तो आहनी समझें। इनमें सर्वोत्तम तिलाई है। नेत्ररोगोंमें इसीका उपयोग होता है। यह कई रंगका होता है—(१) कालाई लिये हरा—जब वायु निर्मल होता है तब साफ दिखाई देता है। वायुमें धूलिकण मिले रहने पर मैला दिखाई देता है। (२) ताऊसी (मयूरक) ललाई लिये और उज्ज्वल। (३) पिलाई लिये ताऊसी और (४) कालाई लिये ताऊसी (मोरपंखके रंगका)। इनमें उत्तरोत्तर भेद उत्तम होता है।

प्रकृति—तीसरे या चौथे दर्जेमें गरम एवं खुश्क (मतांतरसे सर्द एवं खुश्क) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह विषोंका अगद और मारक विष है। अफीमके विषमें इसे नीबूके रसमें घिसकर खिलानेसे लाभ होता है। किन्तु इसके सेवनसे कोष्ठावयवों में क्षत हो जाता तथा व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है। अस्तु, केवल विषोंके अगदरूपमें सेवनके सिवाय इसका आन्तरिक रूपसे सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह स्वयं विष है। इसके विषलक्षण उत्पन्न होते ही अन्य विषोंकी चिकित्साकी भाँति चिकित्सा करनी चाहिये। इसका आन्तरिक सेवन न करना ही उचित है। इसे सुदाबके काढ़ेमें घिसकर नाकमें सुड़कने से अथवा कस्तूरीके साथ पीसकर नस्य देनेसे मृगीमें लाभ होता है। इसको अकेला अथवा विशेषकर मोती और नीलाथोथेके साथ महीन पीसकर और रेशमी कपड़ेमें छानकर अञ्जनकी भाँति लगानेसे आँखका जाला कट जाता है और दृष्टिशक्ति बढ़ती है। इसे बिच्छूके दंश स्थानपर लगानेसे उपकार होता है। इसके लेपसे श्वित्र और (बहक) के दाग जाते रहते हैं। दाद और सिरके गंज पर इसे सिरकेमें पीसकर लगानेसे लाभ होता है।

(४) नीलाथोथा

नाम—(हिं०, उ०) तूतिया, नीला तूतिया, नीलाथोथा; (अ०) तूतिया, तूतियाए अख्ज़र (अर्ज़क़), तूतियाए हिंदी; (फा०) तूतियाए सब्ज़; (सं०) तुत्थ (क), तुत्थाञ्जन, मयूरतुत्थ, शिखिग्रीव (मयूर ग्रीव); (बं०) तुतिया, तुँते; (म०) मोरचुत; (गु०) मोरथुथो (पु); (ले०) क्युप्रम् (क्युप्राई) सल्फास (Cuprum (Cupri) Sulphas); (अं०) कॉपर (क्युप्रिक) सल्फेट (Copper (Cupric) Sulphate), ब्ल्यू विट्रिऑल (स्टोन) Blue Vitriol (Stone)।

वक्तव्य—इसको भी कोई-कोई 'जाज किब्रली' कहते हैं। दे० 'हीराकसीस'।

वर्णन—नीलाथोथा गहरे नीले रंगकी डलियों या तिकोनी वा तिर्छी कलमोंके रूपमें होता है। यह ताँबेकी उपधातु है और ताँबेको गंधकाम्लमें घोलकर सुखाने पर और क्वचित् स्वयंभू रूपमें भी प्राप्त होता है। नीला तूतिया और हरा तूतिया (तूतियाए सब्ज़) भेद से यह दो प्रकार का होता है। इनमें नीलातूतिया अधिक तीक्ष्ण और दाहक होता है। हरा उसकी अपेक्षया किसी भाँति निर्बल होता है। इसके लिए देखिये 'हीरा कसीस'।

विलेयता—१ भाग ३॥ भाग शीतल जलमें विलीन हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी भस्म ताम्रके गंधकयोगसे बनी भस्म है जिसमें ऊष्मजनके दो परमाणु होते हैं। यह वर्णमें धूसरवर्ण-कत्थई होता है। यह स्वादमें अत्यंत कषैला होता है।

कल्प तथा योग—तुत्थ द्रव और तुत्थ मलहर।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद के मत से उष्णवीर्य।

गुण-कर्म—आग्नेय (अक्काल), संग्राही, व्रणलेखन, वमन, रक्त और वातनाड़ी बलदायक, श्लेष्मनिःसारक और व्रणनाशक है। उपयोग—दुष्टमांसके दूर करने और व्रणोंके सुधारके लिये तूतिया को मलहरोंमें डालते हैं, और इसके विलयनसे व्रणोंको धोते हैं। आग्नेय होनेके कारण इसको पक्ष्मशात और पोथकी (कुकरों) में तथा फिरंगीय व्रणों पर भी लगाते हैं। नवीन और पुराने सूजाक तथा गर्भाशयसे सफेद द्रव स्रवता हो उस दशामें इसे पिचकारी करते हैं। संग्राही होनेके कारण प्रवाहिका और अतिसारमें इसका आंतरिक प्रयोग करते हैं। वामक होनेके कारण स्वापजनन विषोंमें इसे कै लानेके लिये देते हैं। रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ और फिरंगमें इसका आंतरिक उपयोग होता है। वायुप्रणालियों से कफोत्सर्गके लिये रोहिणी (खुनाक वबाई), खुनाक भेद (जुबहा), स्वरयन्त्रशोथ और वायुप्रणालिक शोथमें भी खिलाते हैं। रक्तानुकारी (मुकव्वी खून) होनेसे कतिपय रक्तरोगोंमें भी प्रयुक्त होता है। आग्नेय होनेके कारण सतर्कतापूर्वक इसका आंतरिक उपयोग किया जाता है। अल्प प्रमाणमें उपयोग करनेसे यह कब्ज पैदा करता है; किंतु अधिक प्रमाणमें (२ रत्तीसे ५ रत्ती तक) उपयोग करनेसे वमन लाता है। यदि इसको कै लानेके लिये दिया जाय और कै न आये तो अन्त्र और आमाशय शोथयुक्त हो जाते हैं। इसलिये कै न आनेकी दशामें आमाशमको इससे तुरत शुद्ध कर देना चाहिये।

तूतियाके विषलक्षण और उसकी चिकित्सा

इसके निरंतर अधिक प्रमाणमें सेवन करनेसे विषलक्षण प्रगट हो जाते हैं। इससे उदरमें दर्द और मरोड़ होता है। नीले या हरे रंगकी कै आती है। मुखका स्वाद कसेला होता है; सिर घूमता और दर्द करने लगता है। प्रलाप और तीव्र आक्षेप होता है। मूत्रकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। अंततः रोगी मूर्च्छित हो जाता है। इसका विष दूर करनेके लिये आमाशयको वमन द्वारा या अन्य उपायसे भलीभाँति शुद्ध करें। इसके उपरांत अंडोंकी सफेदी दूधमें मिलाकर पिलायें या यवमंड दें। पेचिस और मरोड़ को दूर करनेके लिए जलमें किंचित् अफीम घोलकर पिलायें।

अहितकर—सांघातिक विष है। निवारण—स्नेह और वमन कराना। मात्रा—२ चावल से ४ चावल तक। वमनार्थ २ रत्ती तक।

आयुर्वेदीय मत—तूतिया कटु, कषाय, उष्णवीर्य लघु, वमन करानेवाला, क्षारकर्मकर, लेखन (व्रणमांसलेखन), भेदन, चक्षुष्य, तथा कफ, पित्त, विष, अर्श, कुष्ठ, कण्डू, श्वित्र, कृमि और व्रण का नाश करने वाला है। (रसामृतम्)।

नव्यमत—नाडी बलदायक एवं संग्राही होनेसे तूतिया प्रमेह, सूजाक, श्वेतप्रदर, जीर्ण अतिसार, और प्रवाहिकामें प्रयुक्त होता है।

प्रकरण ४

लोहेकी उपधातुएं

(१) मंडूर

नाम—(हिं०) लोहकीट, लोहेकी मैल, मंडूर; (अ०) खुब्सुल्हदीद; (फा०) चिर्केआहन, रीमे आहन; (सं०) मण्डूर, लोहकिट्ट, लोहमल; (म०, गु०), मण्डूर; (ले०) फेरी पर-ऑक्साइम् रुब्रम् (Ferri Per Oxidum Rubrum); (अं०) फेरोसोफेरिक ऑक्साइड (Ferroso ferric Oxide), इम्प्योर रेड ऑक्साइड ऑफ ऑयर्न (Impure Red Oxide of Iron), आयर्नरस्ट (Iron rust)।

वर्णन—यह लोहेका मैल है जो लोहेको पिघलानेके समय उससे भिन्न हो जाता है। औषधमें पुराना छिद्ररहित, भारी, चिकना, शीघ्र न टूटनेवाला, कुछ रक्तवर्ण और आबादीसे दूर पड़ा हुआ लोहकिट्ट लिया जाता है। यह प्रायः झाँवादार होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें लोह ४·५ प्रतिशत, स्फटिकम् ऊष्मिद, मैग्नेशियम् ऊष्मिद, चूनजम् ऊष्मिद, चूनशैलेत, मैंगेनीज ऊष्मिद, चून बलिकेत आदि होते हैं। कभी-कभी लोहेके साथ थोड़ा ताँबेका अंश भी पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म—दीपन, बस्तियकृद्बलदायक, आमाशयस्थद्रवशोषणाचूषणकर्ता, हस्तिमेह नाशक, आर्तवार्शोजात-रक्तस्तम्भन विशेषकर यकृद्बलदायक है। **उपयोग**—इसे धोने और शुद्ध करनेके बाद औषधमें प्रयुक्त किया जाता है। यकृदामाशयदौर्बल्य, जलोदर, प्लीहावृद्धि, हस्तिमेह या मूत्रातीत, रक्तवातार्श और अति रजःस्रावमें यह पुष्कल प्रयुक्त होता है। यह माजून खुब्सुल्हदीद (फंजनोश) का प्रधान उपादान है जो दीपन, क्षुधाजनन और रक्तार्शके लिए उपयोग की जाती है। **अहितकर**—अत्यधिक रूक्षता उत्पन्न करता है। **निवारण**—दूध, घी और स्निग्ध पदार्थ। **प्रतिनिधि**—फ़ौलाद। **मात्रा**—शुद्ध मण्डूर या मण्डूर भस्म (कुश्तए खुब्सुल्हदीद) १२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक। २४० मि० ग्रा० से १.५ ग्राम (२ रत्तीसे १॥ माशा तक)।

आयुर्वेदीय मत—मण्डूर भस्म शीतवीर्य, वृष्य, उत्तम रक्तवृद्धिकर तथा पाण्डुरोग, शोथ और प्लीहाकी वृद्धिको दूर करनेवाली है। बालकोंको लोहभस्मकी अपेक्षया मण्डूर भस्म विशेष अनुकूल होती है। (रसामृतम्)।

(२) हीराकसीस

नाम—(हिं०) कसीस, हीराकसीस, हरातूतिया; (अ०) ज़ाज सब्ज, ज़ाज क़िबरसी, ज़ाजे अख़्ज़र; (यू०) क़ुल्क़न्द; (फ़ा०) ज़ाक सब्ज; (सं०) कासीस (काशीश), खेचर, खग; (बं०) हिराकोस, हिराकोसिस; (म०) हिराकस; (गु०) हीराकसी (सी); (ले०) फेराइ सल्फास (Ferri Sulphas); (अं०) फेरस सल्फेट (Ferrous Sulphate), आयर्न सल्फास (Iron Sulphas), सल्फेट ऑफ आयर्न (Sulphate of Iron), ग्रीन विट्रियल (Green Vitriol)।

वर्णन—यह लोहेका एक विकार है जो गंधकके रासायनिक योगसे होता है और देखनेमें कुछ हरापन लिये मटमैले या हलके हरे रंगके कलमोंके रूपमें होता है। लोहेको गंधकके तेजाबमें गलानेसे हीराकसीस निकलता है। लोहेका विकार होनेसे लोहेकी उपधातुओंके प्रकरणमें इसका विवरण किया गया है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—उपशोषण, ग्राही, रक्तवर्धक, आर्तवजनन तथा उदरकृमिनाशन है और बाह्यतः रक्तस्रावरोधक है। **उपयोग**—उपशोषक होनेके कारण हीराकसीस व्रणोंमें प्रयुक्त किया जाता है। यह संग्राही भी है; इसलिये मसूढ़ों और दाँतोंको दृढ़ एवं मज़बूत करने तथा उनके रक्तस्रावको रोकनेके लिये इसे दंतमंजनोंमें डालते हैं। रक्तस्रावरोधक होनेके कारण क्षतोंसे रक्तक्षरण रोकनेके लिये भी उपयोग किया जाता है। रक्तवर्धक होनेके कारण रक्ताल्पता (पांडुमें) प्रयुक्त होता है। आर्तवजनन होनेके कारण रजोरोध एवं कृच्छ्रार्तवमें अन्य औषधियोंके साथ इसकी गोलियाँ बनाकर खिलाई जाती हैं। उदरकृमिनाशन होनेके कारण हर प्रकारके उदरज कृमि विशेषतः कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। किन्तु यह विषैला है; इसलिये सतर्कतापूर्वक इसका आंतरिक उपयोग करना चाहिये।

अहितकर—विष है। **निवारण**—मधु और स्नेह द्रव्य। **मात्रा**—६० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (½ रत्तीसे २ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—यह अम्ल, कषाय, उष्णवीर्य, बलकारक, बालोंको काला करनेवाला, नेत्रके लिये हितकर तथा विष, श्वित्र, पाण्डुरोग और प्लीहाकी वृद्धिको दूर करनेवाला है। कासीस रजःप्रवर्तक (आर्तवजनन) है।

(३) अभ्रक (अबरक)

नाम—(हिं०) अभ्रक, भोडल; (अ०) तल्क़, कौकबुल् अर्ज़, अर्कुल्‌उरूस; (फा०) अबरक, तलक, सितारे ज़मीन; (सं० बं०, म०, गु०) अभ्रक; (लें०) टैल्कम् (Talcum; (Creta gallica); (अं०) माइका (Mica), टैल्क (Talc)।

प्राप्तिस्थान—सीरिया और भारतवर्षमें बंगाल, बिहार, राजपूताना, जयपुर, मद्रास, नेलौर और मध्यप्रदेश आदिकी पहाड़ियोंमें इसकी बड़ी खानें हैं।

वर्णन और भेद—यह एक प्रकारका स्फटिकवत् खनिज द्रव्य है। इसकी रचना पत्राकार होती है और इसके अत्यन्त पतले-पतले परत किये जा सकते हैं। यह कालाई लिये सफेद रंगका, चमकदार और सहजमें टूटनेवाला होता है। इसके यह चार भेद होते हैं—(१) सफेद, (२) काला, (३) पीला और (४) लाल। इनमें लाल और पीला हिन्दुस्तानमें कम मिलते हैं। इसलिये सफेद और काला ये दो ही अधिकतया औषधके काममें लिये जाते हैं। इनमें काले रंगका वज्राभ्रक सबसे उत्तम है। इसमें भी जो चिकना, बड़े चौड़े दलवाला अधिक वजनदार भारी हो तथा जिसके पत्र सुगमतासे अलग किये जा सकें वह उत्तम है।

रासायनिक संगठन—सफेद अभ्रकमें पोटैसियम् और ऐल्युमिनियम्‌के ऑक्साइड तथा सिलिकॉन् और काले अभ्रकमें मैग्नीसियम्, ऐल्युमिनियम् तथा सिलिकॉन्‌के ऑक्साइड्स तथा थोड़ा-बहुत प्रमाणमें लोह होता है।

कल्प तथा योग—कुश्ता अबरक (अभ्रकभस्म)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। गुण-कर्म—संग्राही, उपशोषण, रक्तस्तंभन, वीर्यपुष्टिकर, वीर्यस्तंभन, वाजीकर और ज्वरघ्न। उपयोग—इसकी भस्म बनाकर प्रसेक और प्रतिश्याय, कास तथा कृच्छ्रश्वास प्रभृति जैसे कफज रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। प्रत्येक अंगसे रक्तस्राव रोकने, श्वेतप्रदर और सूजाक नष्ट करने, शुक्रतारल्य, शीघ्रपतन, शुक्रप्रमेह और नपुंसकताको दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। सर्व प्रकारके ज्वरों यहांतक कि राजयक्ष्मा (तपेदिक) में भी इसका उपयोग होता है। जीर्ण ज्वर या शरीरका उत्ताप बढ़ते रहनेपर अभ्रक भस्म सेवनसे उत्तापकी मात्रा घट जाती है। यह आन्तरिक व्रणोंका शोषण-रोपण करता है। उपयुक्त अनुपानसे यह सरद-गरम और परस्पर विरोधी हर प्रकारके रोगमें गुणदायक है। बहुशः भस्मोंके विपरीत इसमें किसी प्रकारके विष प्रभावकी आशंका नहीं है। हर रोगीमें प्रत्येक ऋतु, वय और रोगमें इसका निरापद उपयोग होता है। विना भस्म किये हुए अभ्रक (अब्रक खाम) को बारीक पीसकर मुर्गीके अंडेकी सफेदीमें मिलाकर अग्निदग्ध पर इसका पतला लेप लगाते हैं। सफेद अभ्रककी अपेक्षया काले अभ्रककी भस्म अधिक वीर्यवान् समझी गयी है। उत्तमांगों तथा शरीरकी दुर्बलता, नपुंसकता और दुष्प्रतिक्रिय व्याधियोंमें इसका सफल उपयोग किया जाता है। अहितकर—वृक्कको। निवारण—तुख्म करफ्स। प्रतिनिधि—रक्तस्तंभनके लिये खड़ी मिट्टी (गिल कोमूलिया)। भस्मकी प्रतिनिधि अकीक भस्म। मात्रा—(भस्म) १२० मि० ग्रा० या १ रत्ती।

आयुर्वेदीय मत—अभ्रक भस्म बलकारक, बुद्धिवर्धक, वाजीकर, उत्तम रसायन तथा कास, श्वास, पाण्डुरोग (रक्ताल्पता), क्षय, जीर्णज्वर, प्रमेह, परिणाम शूल, अम्लपित्त, ग्रहणी रोग, श्वेतप्रदर, अपची, शोथ, अर्श, शीतपित्त तथा भ्रम (चक्कर आना)—इन रोगोंको और अनुपान विशेषसे सर्वरोगोंको नष्ट करनेवाली है।

(४) चुंबक

नाम—(हिं०) चुम्मक, चुंबक, चुंबक पत्थर; (अ०) हजर मिक़्नातीस, हजरुल्हदीद, मिक़् (ग़्) नातीस; (फा०) संगे आहनरुबा, संगे चमक; (सं०) अयस्कान्त, कान्त (चुंबक) पाषाण, चुम्बक, लोहचुम्बक; (पं०) चमक पत्थर; (लै०) फेरी ऑक्साइडम् मैग्नेटिकम् (Ferri Oxidum Magneticum); (अं०) मॅग्नेट (Magnet), लोडस्टोन (Loadstone); मेग्नेटिक आयर्न ओर (Magnetic Iron Ore)।

वर्णन—यह एक प्रकारका लोहा मिला हुआ कालाई लिये लाल रंगका कड़ा पत्थर (खनिज धातु) है जो लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है। यह प्राकृतिक और कृत्रिम भेदसे दो प्रकारका होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म—लोहाकर्षक, लेखन, संशोधन, संग्राही, व्रणलेखन, रक्तस्तम्भन और व्रणरोपण है। **उपयोग**—लोहाकर्षक होनेसे इसे उन लोगोंको खिलाते हैं जिनको लोहचून खिलाया गया होता है अथवा जिनके उदरमें लोह-किट्ट संगृहीत हो गया होता है। यह उनको आकर्षित करता और अपने उत्सर्गके साथ उनको उत्सर्गित कर देता है। संग्राही होनेके कारण अन्य संग्राही औषधियोंके साथ अतिसार बंद करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। व्रणलेखन और संशोधन होनेसे लोहेके शस्त्रसे क्षत हो जानेपर इसका अवचूर्णन करते हैं। यह क्षतोंसे रक्तस्रावको रोकता और उनका शोषण-रोपण करता है। मसीकृत (मुहरिक़) और धोया हुआ (मग़सूल) चुंबक पत्थर इस विषयमें अधिक बलवत्तर होता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिये। **निवारण**—दूध और स्नेह। **मात्रा**—१ ग्राम या १ माशा।

वक्तव्य—यूनानी वैद्योंने अभ्रक और चुंबकका वर्णन हजरियात् (पाषाणों) में किया है, परंतु ये लोहेकी उपधातुएँ हैं। अतएव मैंने इनका वर्णन यहाँ लोहेकी उपधातुओंमें किया है। उसी प्रकार गेरू, गिल अरमनी, गिलमख्तूमका भी समावेश लोहेके यौगिक होनेसे इसीके अन्तर्भूत होना चाहिये; परंतु मृत्तिका होनेसे इनका समावेश मृत्तिकाओंमें किया गया है।

आयुर्वेदीय मत—कांतपाषाणकी भस्म शीतवीर्य, बृंहण, रक्तसंजनन, बल्य, बुद्धिवर्धक, वाजीकर, रसायन तथा कास, श्वास, क्षय, पाण्डुरोग, जीर्णज्वर, हृदयकी धड़कन, मूर्च्छा, मोह, रजोदोष और रक्तपित्तका नाश करनेवाली है।

(५) शिलाजीत

नाम—(हिं०) शि(रसि)लाजीत; (अ०) हजरुल्मूसा, क़फ़रुल्हिद; (फा०) मूमियाई हिन्दी; (सं०) शिलाजतु, गिरिज, अश्मजतु, शैलनिर्यास; (बं०, म०, गु०) शिलाजित; (पं०) सलाजित; (मा०) सलाजीत; (क०) सिलाजित; (तें०) शिलाजत; (लै०) एस्फाल्टम् (Asphaltum); (अं०) एस्फाल्ट (Asphalt), मिनरल् पिच (Mineral pitch), जूज़ पिच् (Jews pitch), ब्लैक बिट्युमेन (Black Bitumen)। **वक्तव्य**—शिलाजीतके समान अरब और फारसके दाराब आदि पहाड़ोंसे पसेवके रूपमें प्राप्त वस्तुको यूनानी वैद्यकमें मूमियाई[1] कहते हैं। इसे हम सिलाजीत फारसी कह सकते हैं। परन्तु अधुना उक्त मूमियाई एक प्रकारसे अप्राप्य है। सुतरां हकीम लोग उसके स्थानमें शुद्ध शिलाजीत (सत शिलाजीत) अर्थात् मोमियाई हिन्दी काममें लेते हैं।

---

[1] अल्मूमियाईके विषयमें जिसे मूमिया और यूनानीमें मौमिआ Moumia तथा पिट्टसफल्टोस Pittasphltos (D. 1. 100.) और अँग्रेजीमें पिस्स-अस्फाल्ट—Pissasphalt कहते हैं, इब्नुल्बैतार कहते हैं कि उक्त शब्द का प्रयोग जितना Pissaphalt के लिए होता है, उतना ही क़फ़रुल्यहूद, अस्फाल्टम् (Asphaltum) और अल्मूमिया अल्कबूरीके लिए भी होता है जो मिश्रमें बहुतायतसे पाया जाता है और शवोंके संरक्षणार्थ यूनानियों (मिश्रियों) द्वारा प्रयुक्त किया जाता था। (संचिका ४, पृ० १६९)।

उत्पत्ति एवं प्राप्तिस्थान—हिन्दुस्तानमें हिमालय की पहाड़ियोंमें, मई और जूनके महीनेमें जबकि ग्रीष्म अपनी चरम सीमापर होता है, तब शिलाजीत निकलता है। भारतवर्षमें यह अबतक अधिकतया गिल्गित्त आदि कश्मीरी इलाकों और बद्रीनारायण, गढ़वाल, अल्मोड़ा तथा पश्चिमी नेपालकी जुमला एवं डुथला पहाड़ियोंसे आता था। परंतु जबसे गिल्गित पाकिस्तानके अधिकारमें चला गया तबसे नेपाल आदिसे ही शिलाजीत आता है। इनमें कश्मीरी इलाकेका शिलाजीत श्रीनगर और रावलपिंडीमें और नेपाली इलाकेका हरिद्वार, अल्मोड़ा, बागेश्वर, काठमांडू और नेपालगंजमें आकर विक्रय होता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका, काले रंगका लेसदार पसेव (पाषाणों का मद) है जो पर्वतोंकी दरारों या लोहेकी खानवाले गड्ढोंसे मोमियाईकी भाँति पसीजकर (स्रावित होकर) जम जाता है। गंध गोमूत्रवत् स्वाद किसी कदर मिठास लिये तिक्त, क्षारीय, कुछ-कुछ चरपरा एवं कषाय होता है। शिलाजीत सीधे चट्टानोंसे लसदार पसेवके रूपमें बहकर नीचे गिरता है, इसलिये उसमें रेत, कंकड़, गोंद तथा मिट्टी आदि मिली रहती है। अतः इसका शोधन (मिट्टी आदिसे रहित) करके औषधके काममें लेते हैं। जो शिलाजीत काले रंगका, भारी (वजनदार), स्निग्ध, मिट्टी-कंकर रहित और गोमूत्रके समान गन्धवाला हो वह उत्तम होता है (सु०)।

शिलाजीतकी मिट्टी सूखी हो तो उसका चूर्ण बना, नरम हो तो छोटे-छोटे टुकड़े बना, कड़ाहीमें डाल, ऊपर चौगुना उबलता हुआ पानी डाल, ठंढा होनेपर हाथसे मसलकर छोड़ देवें। इसी प्रकार दिनमें तीन-चार बार उसे रकब मलकर या हिलाकर छोड़ दिया करें। दूसरे दिन ऊपरका पानी निथार. कपड़ेसे छान, उबाल आवे इतना गरम करके रख छोड़ें। मिट्टीमें और दूसरा दुगुना पानी डालकर, ठंढा होनेपर हाथोंसे मसलकर रहने देवें। दूसरे दिन ऊपरका पानी निथारकर पहलेवाले जलमें मिला देवें। इस प्रकार मिट्टीमें से पानीमें जबतक शिलाजीत का अंश आता रहे तबतक करते रहें। शिलाजीतमें मिट्टीका अंश आना बंद होनेपर मिट्टीको फेंक देवें। फिर दूसरे पात्रमें इकट्ठे किये हुए जलको धूल-कण आदिसे सुरक्षित स्थानमें प्रतिदिन प्रातःकाल धूपमें रखें और संध्याको पानीके ऊपर जो शिलाजीतकी मलाई आवे उसको सावधानीसे लेकर एक काच पात्रमें इकट्ठा करते रहें। जब पानीके ऊपर मलाई आना बंद हो जाय तब जलको फेंक देवें। अब इस साफ शिलाजीत मिले पानीसे दो प्रकारसे शुद्ध शिलाजीत तैयार की जाती है। प्रथम उक्त विधिसे प्राप्त शिलाजीत मिले पानीको तीव्र धूपमें सुखा लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त शोधित शिलाजीतको **शिलाजोत आफताबी (सूर्यतापी)** कहते हैं। अथवा संगृहीत पानीको उफान आनेतक अग्निपर गरम करके एक दिन रहने देवें। दूसरे दिन ऊपरका जल निथारकर ले लेवें और नीचे बैठी हुई मिट्टीको फेंक देवें। निथरे हुए जलको फिर अग्निपर गरम करके एक दिन रहने देवें। दूसरे दिन ऊपरका जल निथारकर गरम करें और नीचे जमी हुई मिट्टीको फेंक देवें। इस प्रकार जबतक नीचे मिट्टी बैठे तबतक प्रतिदिन करता रहे। जब नीचे मिट्टी बैठना बंद हो जाय तब शिलाजीतमिश्रित पानीको सीधे मंदी आँचपर अथवा अच्छा हो कि बालू भरे नादमें रखकर नीचे अग्नि लगाकर गाढ़ा कर लेवें। इस प्रकार शुद्ध किये हुए शिलाजीतको **शिबाजीत आतशी (अग्नितापी)** कहते हैं। इस प्रकार अग्निपर पकानेसे शिलाजीतके कार्मुक प्रधान वीर्य कम हो जाते हैं। इसलिये आतशी सिलाजीतकी अपेक्षया शिलाजीत आफताबी गुणमें श्रेष्ठ होता है। उसमें भी वह शिलाजीत सर्वोत्तम होता है जो लोहेकी खानमें उत्पन्न हो **शिलाजीतको** जिसे शिलाजीत आहनो (लौह शिलाजतु) कहते हैं। और सौभाग्यवश आजकल उपलब्ध भी यही होता है और जो चरकके मतसे गूगल जैसा, कड़वा, कुछ नमकीन (लवणानुरस), विपाकमें कटु और शीतवीर्य होता है (च० चि० अ० १, पा० ३)। सूर्यतापी शिलाजीत शोधनकी विधिसे शुद्ध करके तैयार कर लेवें।

वक्तव्य—यूनानी निघण्टु ग्रन्थोंमें मोमियाईके निम्न भेदोंका उल्लेख मिलता है—(१) मोमियाई कानी या मादनी अर्थात् सिलाजीत फारसी; (२) मोमियाई हजरी (सिलाजीतका पत्थर)। ये दोनों असली मोमियाई हैं;

(३) मोमियाई हैवानी; (४) मोमियाई शजरी और (५) मोमियाई तरकीबी, ये तीनों नकली एवं अमली (कृत्रिम) हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें निर्यास, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, अंशतः राल तथा वसाम्लके अतिरिक्त इसमें बड़े प्रमाणमें बेन्ज़ोइक एसिड (सत लोबान) किंवा हिप्प्युरिक एसिड और उनके लवण होते हैं। वैद्यकीय दृष्टिकोणसे इसके प्रधान कार्मुक वीर्य इसमें स्थित लोबानाम्ल (बेञ्जोइक एसिड Benzoic acid) और बेञ्जोएट्स (Benzoates) अर्थात् बेन्जोइक एसिडके लवण हैं (आर० एन्० चोपड़ा)। किंतु तीव्राग्नि इसके उक्त प्रधान वीर्य एवं मोमवत् प्रधान सत्व अर्थात् कार्मुक वीर्य (प्रभावांश) यूरिया (Urea) को नष्ट कर देता है। इसलिये शिलाजीतको अग्निके ऊपर काढ़ा करके पकाना कदापि उचित नहीं है। प्रत्युत उसे सदैव तीव्र धूपकी गरमोसे पकाना चाहिये जिससे उसका प्रभावांश पूर्णतया स्थिर रहे। इसलिये सदा सूर्यतापी शिलाजीतका औषधमें प्रयोग करना चाहिये।

शिलाजीतसे सत्वरूपमें लोहा प्राप्त होता है, इसलिये मैंने लोहेकी उपधातुओंके प्रकरणमें इसका विवरण किया है।

शुद्ध शिलाजीतकी परीक्षा

एक सफेद कांचके पात्रमें जल भरकर, उसमें एक सलाई पर थोड़ा शिलाजीत लेकर सलाईको जलमें थोड़ा नीचे लेजावें। यदि शिलाजीत धुएँ जैसा नीचेकी ओर जाकर जलमें घुल जाय तो समझना चाहिये कि शिलाजीत शुद्ध—मिट्टी आदिसे रहित है। यदि वह कफके छिछड़े जैसा नीचेकी ओर जाने लगे और जलमें सब न घुलकर कुछ पृथक् रह जावे तो समझना चाहिये कि—इसमें मिट्टी आदिका कुछ अंश शेष रह गया है। कई विक्रेता बाँझ वृक्षके गोंदसे नकली शिलाजीत बनाकर लाते हैं जो ऊपर लिखी हुई परीक्षामें ठीक उतरता है। परन्तु उसमें असली शिलाजीतका स्वाद और गन्ध नहीं होता। आयुर्वेदीय शास्त्रोंमें जो यह लिखा है कि जो शिलाजीत अग्निपर थोड़ा डालनेसे लिङ्गाकार धारण करे और निर्धूम हो वह शुद्ध होता है। वह अक्षरशः सत्य नहीं है। क्योंकि शिलाजीतसे कुछ न कुछ धुआं उठता ही है। वह सर्वथा निर्धूम नहीं होता।

असली और नकली शिलाजीतकी मुख्य पहचान—(१) पानीके किसी पात्रमें शिलाजीत डाल दें। असली शिलाजीत निःशेष घुल जायगी और बिल्कुल तलस्थित न होगी; किन्तु नकली ऐसी नहीं होती। (२) किसी पात्रमें कड़वा तेल और तिलका तेल अथवा केवल घृत डालकर गरम करें। जब वह गरम हो जाय, तब उसमें शिलाजीतको डाल दें और आँच पूर्ववत् देते रहें। असली शिलाजीत घी और तेलमें मिल जायगी; परन्तु नकली शिलाजीत कभी न मिलेगी। (३) असली शिलाजीतका स्वाद किंचित् मधुरता लिए तिक्त होता है। एक बार जो शुद्ध शिलाजीतको जिह्वासे चख लेता है वह फिर उसका स्वाद सहजमें भूल नहीं सकता। (४) असली शिलाजीतके डले होते हैं, यदि बहुत सूख गया हो तो चटखदार टूटती है। यदि किंचित् गीली हो तो मुलायमियत लिये हुए बढ़ जाती है। नकली शिलाजीत कठिनतासे टूटती है। इसके अतिरिक्त उसमें लेस होती है। अन्य जिसमें अधिक मिट्टी हो वह मिट्टीके समान ही टूटती है। (रिसालए शिलाजीत)।

कल्प तथा योग—सफूफ (चूर्ण), हब्ब मोमियाई, हब्ब अम्बर मोमियाई, हब्ब सत गिलोय सिलाजीत-वाला, माजून मोमियाई।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—वस्तिवृक्कामाशय बलवर्धन, शुक्रल, वीर्यपुष्टिकर, कफछेदन, उदरकृमिनाशन, अश्मरीनाशन और विशेषकर वल्य एवं वाजीकर है। मोमियाईको यूनानी निघण्टुग्रन्थोंमें उत्तम व्रणशोधनरोपण, भग्नसंधानकर, प्रमेहघ्न और वाजीकर लिखा है। उपयोग—अतएव वाजीकरण, शुक्रजनन तथा सूजाक, व्रण और वीर्यपुष्टिके लिये अकेले या अन्यान्य औषधियोंके साथ शिलाजीतकी गोलियां या चूर्ण बनाकर पुष्कल उपयोग करते हैं।

यह सर्वप्रकारके जरयान (शुक्रप्रमेह) में लाभ करता है। बस्ति और वृक्कको बलप्रदान करनेके कारण मूत्रातीत (सल्सुल् बौल) और मधुमेहमें इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिये। **निवारण**—दूध और स्निग्धपदार्थ। प्रतिनिधि—मोमियाई। मात्रा—०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्तीसे १ माशातक (२ रत्तीसे धीरे-धीरे बढ़ाकर १॥–२ माशेतक)। इसके सेवनकी सर्वोत्तम विधि दूध आदिमें इसका ताजा घोल बनाकर पिलानाहै। इसका काढ़ा कदापि बनाना नहीं चाहिये। इसके सेवनसे पूर्व किसी रेचनके द्वारा कोष्ठशुद्धि कर लेना चाहिये। इसके सेवनकालमें तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल, विदाही एवं गुरु पदार्थोंके सेवनसे तथा कुलथी, मकोय और कबूतरके मांससे तो बिल्कुल परहेज करना चाहिये। इसका पूरा लाभ कुछ दिनके सेवनसे होता है।

आयुर्वेदीय मत—शिलाजीत कटु, तिक्त, कषायानुरस, कटुविपाक, उष्णवीर्य, सारक, शोषण, छेदन, रसायन, योगवाही, शरीरको परम दृढ़ करनेवाला, मेधा (बुद्धि) और स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाला तथा जरावस्था सब प्रकारके साध्यव्याधि, विशेषकरके प्रमेह, कुष्ठ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, गरदोष, शोष, शोथ, अर्श, गुल्म, पाण्डुरोग, जीर्ण विषमज्वर, शर्करा (मूत्रके साथ रेत आना), अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वातरक्त, उदररोग और कृमिका नाश करता है। शिलाजीतको वात, पित्त और कफहर वनस्पतियोंके कषायोंकी भावना देनेसे शिलाजीतके गुण बढ़ जाते हैं (सु०; च०; आ० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नव्यमत—

बाह्य—शिलाजीतका स्थानिक प्रभाव बहुत कुछ डॉक्टरीकी प्रसिद्ध औषधि इक्थियोल (Icthyol) के समान होता है। इसलिये हम उसके स्थानमें शिलाजीतका अच्छी तरह प्रयोग कर सकते हैं। यह पूतिहर, कोथ-प्रतिबन्धक, कीटाणुनाशक, श्वयथुविलयन है तथा शरीरके जिस भागपर लगाया जाय वहाँ संज्ञानाश करता है। अस्तु आघात-प्रत्याघातजन्य सूजन एवं वेदना दूर करनेके लिये तथा सन्धिगत एवं अन्य दर्दमें भी इसे गरम पानीमें घोलकर लेप करते हैं। सद्यःक्षतसे रक्तस्राव होनेपर उबालकर साफ किये हुए पानीमें इसका घोल बनाकर उससे उक्त स्थानको धारनेसे घाव बिल्कुल पकने नहीं पाता और शीघ्र आराम हो जाता है। गुदकृमिके निर्हरणार्थ इसकी बत्ती बनाकर गुदामें रखते हैं।

आभ्यन्तरिक—खिलानेपर यह खफीफ पसीना लाती है तथा त्वचाकी ग्रन्थियोंको उत्तेजित करती है और जब औषधिका कुछ अंश त्वचाके स्रोतोंके रास्ते बाहर निकलता है तब इसका सूक्ष्म कोथनिवारक प्रभाव होता है। इसलिये यह कामलाजन्य कण्डू, कुष्ठ, छाजन तथा त्वग्रोगोंमें इसका अच्छा कार्य होता है और इसके सेवन करनेवाले के पसीनासे भी सदैव इसकी विशिष्ट गन्ध आती है। इसके प्रयोगसे धमनियाँ फैल जाती हैं और रक्ताभिसरण भलीभाँति होता है, इसलिये आघात-प्रतिघातमें भी इसका उपयोग गुणकारक होता है, कारण वहाँ संचित रक्त विलीन होकर दर्द एवं चिह्न मिट जाता है। यही कारण है कि उक्त औषधि बाहरी और भीतरी उभय प्रकारके चोटोंके लिये बहुत गुणकारी सिद्ध हुई है। **अन्त्र और आमाशय**—कटु एवं तिक्त होनेके कारण यह पाचक रसोंके उद्रेकको तीव्र करती है जिससे भूख बढ़ जाती है और पाचन उत्तम हो जाता है तथा खाया-पिया शरीरका भाग बनता है। अवसादक होनेके कारण प्रायः वमनहर है, अन्त्रामाशयका कोथ दूर करनेके कारण इससे वायुकी उत्पत्तिमें स्पष्टतया कमी हो जाती है। यद्यपि यह सारक एवं विरेचन नहीं है, तथापि पित्तनिःसारक होनेके कारण स्वाभाविक कब्जनिवारकके तद्वत् अवश्य है। इन्हीं कारणोंसे यह दायमी कब्ज, पुराने कुपचन और अर्शके लिये परम गुणदायक वस्तु है। इसके अतिरिक्त यह अन्त्रकृमिके रोगियोंके लिये भी बहुत गुणकारक है विशेषतः जब विद्यमान कृमियोंको रेचन द्वारा निःसरित कर दिया जाय तो इसके उपयोगसे पुनः कृमिकी उत्पत्तिकी आदत दूर हो जाती है। **यकृत्**—यकृदुत्तेजक होनेसे यकृत्सत्वके समान इससे पित्तका उद्रेक तीव्र हो जाता है। यह गाढ़े पित्तको पतला करती है। अतः गाढ़े पित्तसे हुई पित्त प्रणालियोंकी सूजन गाढ़े पित्तके पतला होकर निकल जाने तथा

इसके कोथहर गुणके कारण कम हो जाती हैं। इससे पित्त-प्रणालियां भी शुद्ध एवं विस्फारित हो जाती हैं तथा यकृत् या पित्ताशयकी पथरियाँ सांद्रीभूत पित्तके पतला होने एवं पित्तके प्रवाहके जोरसे आंतमें जा गिरती हैं। तात्पर्य यह कि इस प्रकार यह औषधि यकृत् एवं पित्ताश्मरी के लिये अत्यन्त गुणदायक है। इसके सेवनसे पित्तके भलीभांति उद्रिक्त होते रहनेके कारण अश्मरीका पुनरभव नहीं हो सकता।

पित्तप्रणालीकी सूजन एवं अवरोधके कारण हुई कामला और उसमें होनेवाला कब्ज आदि विकार एवं त्वचाकी खुजली और पित्ताशयसे अँतड़ियोंमें पित्तके न गिरनेसे जो सफेद एवं सूखा मलत्याग होता है, शिलाजीतके उपयोगसे समस्त विकार दूर हो जाते हैं। कारण इसके उपयोगसे मूत्रकी राशि बढ़नेसे इस रास्तेसे विषैले दोषका काफी निर्हरण हो जाता है।

यकृत्की क्रिया बिगड़नेसे हुआ मधुमेह इसके दीर्घकालिक (कई मासके) निरन्तर उपयोगसे अवश्य जाता रहता है। अन्य प्रकारके मधुमेहोको इससे भी अधिक कालतक इसका सेवन करना चाहिये। इससे टिकाऊ लाभ होता है, तात्कालिक नहीं।

फुप्फुस—उपसर्गहर एवं श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण यह कृच्छ्रश्वास एवं दमा, तीव्र एवं जीर्ण कास विशेषतः बच्चों एवं अत्यन्त दुर्बल वृद्ध मानवोंमें जब कफ गाढ़ा हो इसके उपयोगसे बड़ा लाभ होता है। यकृत्के विकार एवं कुपचनके कारण हुए दमामें भी यह शीघ्र प्रभावकारी है। काफी समयतक नियमित सेवन करनेसे यह न केवल आक्षेपजन्य पीड़ाओंको ही दूर करती है, अपितु रोगको सदाके लिये ठीक कर देती है। आक्षेपहर, मूत्रजनन और श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण वातरक्तजनित दमामें इससे बड़ा लाभ होता है।

दीपन-पाचन होनेके कारण यह खाये-पिये आहारको यह शरीरका भाग बनाती है। श्वासोच्छ्वास संस्थानपर उत्तेजक प्रभाव करती और यकृत्वृक्क तथा अन्त्रामाशयकी क्रियाको तीव्र करके रक्तको दोषों और मलोंसे शुद्ध करती है जिससे स्वास्थ्यको स्थिर रखनेके लिये सामान्यतया गुणकारी है। कोथप्रतिबन्धक एवं बल्य होनेके कारण प्रायः उरःक्षत विशेषतः मधुमेहजन्य उरःक्षतमें इसका प्रयोग बहुत उपयोगी एवं उचित होता है। उपर्युक्त गुणोंके कारण ही यह अन्त्रक्षयमें भी गुणकारी है।

हृदय एवं रक्तानुधावन—हृत्स्पंदन, हृत्स्फुरण और मिथ्या हृच्छूलमें इसके उपयोगसे अत्यन्त सन्तोषप्रद परिणाम प्रगट होते हैं। बढ़े हुए रक्तचापके लिये यह एक प्रधान औषधि है।

मूत्रसंस्थान—यह मूत्रजनन है तथा मूत्रमें आनेवाली शर्करा और शुक्लि (ऐल्ब्युमिन) की राशिको घटाती है।

वृक्क—यह समस्त शरीरकी धमनियोंको विस्फारित करनेवाली, मूत्रजनन एवं अश्मरीघ्न है। परन्तु मिहिक (युरिया) की राशि बढ़ाती है। अतएव मेहिकाम्ल (युरिक एसिड) से उत्पन्न हुई अश्मरी एवं शर्करामें इसका उपयोग वर्जित है।

स्वेदन होनेके कारण रक्तगत विषद्रव्योंका निर्हरण करके हर प्रकारकी विषमयताको दूर करती है। मूत्र-विषमयता आदिका निवारण करती है। इसके अतिरिक्त जलोदर आदिमें संचित जलको भी कम करती है।

बस्ति—बस्तिशोथहर होनेसे यह बस्तिगत रक्तसंचय, शोथ एवं बार-बार मूत्र होनेका कष्ट दूर करती है और यदि मूत्रमार्ग संकुचित न हो गया हो तो मूत्रावरोधके लिये भी गुणकारी है तथा बिंदुमूत्रता (तक़्तीरुल्बौल), सूजाक और व्रण (कर्हा) में भी इसका लाभदायक प्रभाव होता है। कोथहर होनेसे व्रण (कर्हा) पर इसका अत्युत्तम प्रभाव होता है तथा घाव भर जाता है।

वातनाडी संस्थान—यह पूरी मात्रामें किंचित् नाड्यवसादक, स्वप्नजनन और आक्षेपहर है। साधारण मात्रामें नाडीबलदायक एवं शामक है। आक्षेपहर होनेसे अपतन्त्रकके लिये बहुत गुणकारी है। इसके अतिरिक्त यह वातिक दौर्बल्य, अनिद्रा (मेनिया) और मृगीके लिये प्रायः लाभकारी सिद्ध हुई है।

जननावयव—यह स्त्री-पुरुष उभय जननावयवोंपर विशेष बल्य प्रभाव करती है, जिससे अतिरज, श्वेतप्रदर, कामावसाद, शुक्रप्रमेह और स्वप्नप्रमेहके लिये बहुत गुणकारी है।

समवर्त क्रिया या पाक (मेटाबोलिज्म)—यह शरीरके प्रत्येक अवयवका सुधार करती है। अस्तु, जो अवयव क्षीण हो गये हों उनके धातुओंका नवनिर्माण एवं पोषण करती है और जिनकी क्रिया सीमासे बढ़ी हुई (अप्रकृत) हो उनको सीमाके भीतर (प्रकृतिस्थ) रखती है। इस प्रकार यह समस्त शरीरावयवोंको अपनी प्रकृतिस्थ अवस्थापर ले आती है। यह शरीरपर उत्तेजक प्रभाव करती है और भारको कम करती है तथा किंचित् सारक एवं स्वेदन है। (रिसाला शिलाजीतसे सारांशरूपमें अनूदित)।

प्रकरण ५

जस्ते (सीसे और कलई) की उपधातुयें

(१) संगबसरी

नाम—(हिं०) संगबसरी; (अ०) तूतिया, हज्रुल्कोहल; (फा०) संगेसुरमः, तूतियाए किरमानी, तूतियाए सोफालक, संगबसरी।

वर्णन—इसके मटियाले (खाकस्तरी) रंगके टुकड़े होते हैं जो सीसेकी खानकी मिट्टी एवं संगरेजों (Galena or Gray antimony) से सीसा और ताँबा निकालते समय भट्ठीके धुआँकशमें धूएँके जम जानेसे न जाते हैं। इसे छुड़ा लेते हैं। इसी प्रकार राँगे और जस्तेसे भी संगबसरी तैयार किया जाता है। यही जमा हुआ धूआँ 'संगबसरी' और 'तूतियाए किरमानी' है। जिस संगबसरीके टुकड़े और नलकियाँ सख्त हों और उनमें मिट्टीका अभाव हो, वह श्रेष्ठ है। इसे धोने (मग़सूल करने) के उपरांत औषधमें प्रयुक्त करना चाहिये। यह बसरा और ईरानसे आता है। दे० 'जस्तेका फूल' वक्तव्य (२)।

वक्तव्य—प्रायः यूनानी वैद्य (हकीम) 'संगबसरी' को ही 'खपरिया' मानते हैं। परंतु संगबसरीका उपर्युक्त वा अन्य यूनानी ग्रन्थोक्त विवरण देखनेसे यह ज्ञात होता है कि यह अखनिज द्रव्य है तथा कृत्रिम रूपसे तैयार की जाती है। आयुर्वेदीय रस ग्रन्थोंमें खर्परका सत्व निकालनेको कहा है। यही नहीं अपितु इससे सफेद रंगका सत्व निकलता है, ऐसा बतलाया जाता है। अब यह विचारणीय है कि क्या उक्त संगबसरीसे सत्व निकल सकता है? कदापि नहीं। इसके अतिरिक्त प्राचीनकालमें खपरिया और ताँबासे पीतल बनाया जाता था। आजकल ताँबा और जस्तेसे पीतल बनाया जाता है। प्रश्न यह होता है कि क्या संगबसरीसे पीतल बन सकता है? कदापि नहीं। यदि संगबसरी और ताँबाके मिलानेसे पीतल नहीं बन सकता तो फिर संगबसरीको किस तरह खपरिया कह सकते हैं। तात्पर्य यह कि संगबसरी खपरियासे सर्वथा भिन्न द्रव्य है, फिर भी पंसारियोंके यहाँसे खपरिया माँगनेपर संगबसरी ही मिलती है। इस भ्रमका प्रारम्भ मख्ज़नुल् अद्वियाके लेखकके इस लेखसे कि 'भारतवासी संगबसरीको खपरिया कहते हैं', होता है। यद्यपि वास्तविकता इससे कोसों दूर है। (आयुर्वेदिक फार्माकोपिया)। दे० 'खपरिया'।

रासायनिक संगठन—नाग, अंजन, चाँदीका अवशेष जो गंधकका यौगिक बनता है।

कल्प तथा योग—सुरमा, अंजन, कोहलुलजवाहर।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—व्रणलेखन, दृष्टिवर्धक, संग्राही एवं दीपन।

उपयोग—धोने (मग़सूल करनेके) बाद संगबसरीका उपयोग करते हैं। यह अधिकतया उन नेत्रांजनों (सुरमों) तथा नेत्रवर्तियोंमें डाला जाता है जो दृष्टिको शक्ति देने और नेत्रव्रणको सुखानेके लिए उपयोग किये

जाते हैं। इसके अतिरिक्त व्रणलेखन होनेके कारण हर प्रकारके व्रणोंमें यह अवचूर्णन एवं मलहरकी भाँति प्रयुक्त होता है। संग्राही एवं दीपन होनेके कारण संग्रहणीमें इसको शुद्ध करके खिलाया जाता है। मात्रा—०.५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

(२) खपरिया

नाम—(हिं०) खपरिया; (अ०) शबः मादनी; (फा०) जसदकानी; (सं०) खर्पर तुत्थ, रसक, खर्पर, रीतिकृत्; (बं०) खापर; (गु०) खापरियुं; (म०) कलखापरी; (पं०) खपरिला; (मा०) खपरियो; (अं०) जिंक ओर (Zinc Ore)।

वर्णन—यह खनिज वा कच्चा (अशुद्ध) जस्ता अर्थात् जस्तेका खनिज धातु है। इसके ये दो भेद होते हैं—(१) कार्बनके साथ मिला हुआ अर्थात् कैलेमीन (Calamine–Carbonate of Zinc)[१] जिसे आयुर्वेदीय रसग्रन्थोक्त 'दर्दुर रसक' और (२) गंधक के साथ मिला हुआ अर्थात् ब्लेन्ड (Blende Sulphate of Zinc)[२] जिसे रसग्रन्थोक्त 'कारवेल्लक रसक' कहना चाहिये। इनका सत्त्व पातन करनेसे सत्त्वरूपमें जस्ता प्राप्त होता है। यह दोनों प्रायः अमेरिका से आते हैं और अधुना कतिपय प्रसिद्ध आयुर्वेदीय फार्मेसियों से भी प्राप्त हो सकते हैं। यदि ये प्राप्त न हों तो इनके स्थानमें खर्परका सत्त्व अर्थात् शुद्ध जस्ता (Zinc) प्रयोगमें लाना चाहिये। बाजार में खपरियाके नामसे मिलनेवाले संगबसरी आदि पदार्थ नकली—कृत्रिम हैं, यशद के खनिज नहीं हैं। अस्तु खर्परके स्थानमें इनका प्रयोग उचित नहीं है। (आयुर्वेदिक फार्माकोपिया)

गुण-कर्म तथा उपयोग—यूनानी वैद्यों (हकीमों) ने संगबसरी को ही खपरिया माना है। अस्तु, यूनानी निघंटुग्रन्थोंमें उनके खपरियाके लिखे हुए गुणकर्म संगबसरीके हैं न कि खपरियाके। उसके लिये संगबसरी, जो खपरिया नहीं है, देखें। यहाँ पर आयुर्वेदके मतसे खपरियाके गुण-कर्म दिये गये हैं।

आयुर्वेदीय मत—यह कटु, कषाय, शीतवीर्य, लघु, क्षार, लेखन, भेदन, वमन करानेवाला, चक्षुष्य तथा कफ, पित्त, सर्व प्रकारके प्रमेह, नेत्र रोग, क्षय, विष, अश्मरी, कुष्ठ और कण्डूका नाश करनेवाला है। (र० चू० अ० १०)।

प्रकरण ६

सीसे की उपधातुयें

(१) मुरदासंख

नाम—(हिं०) मुरदासंख (ग), मुरदाशंख, मुरदासिंग (घी), मुरदासन; (अ०) मुर्दासंज (प्राचीन), ऑक्सीदुर्रसास (नवीन); (फा०) मुरदासंग, मुर्दारसंग (प्राचीन), ऑक्सीद सुर्ब (नवी०); (रासा०) किल्सुर्रसास; (सं०) मृद्दारश्रृंग, बोद्दारश्रृंग; (बं०) मुद्राशंख, मुर्दारसिंग; (म०) मुर्दाडशिंग; (गु०) बोदार; (पं०) मुर्दासिंग; (ले०) प्लम्बाई ऑक्साइडम् (Plumbi Oxidum); (अं०) लेड ऑक्साइड (Lead Oxide), लिथार्ज (Litharge), फ्लावर्स ऑफ लेड (Flowers of lead)।

वर्णन और निर्माण-विधि—इसकी हलका पिलाई लिए लाल पीले रंगकी वजनी डलियाँ वा परत होते हैं। यह सीसेसे बनाया जाता है तथा सीसेका विशेष ऊष्मिद (सीसे और ऑक्सिजनका यौगिक) है।

यह धातुवत् आभा-प्रभायुक्त, स्वाद और गंधमें गोपीचंदनके समान और वाह्य रूप-आकृतिमें बहुत कुछ अभ्रकके समान होता है। चूर्ण में जहाँ तहाँ इंटके रंगकी मिट्टीके कण दिखाई देते हैं।

---

[१] (ले०) Zinci Carbonas; (अं०) Zinc Carbonate.

[२] (ले०) Zinci Sulphas : (अं०) Zinc Sulphide or Sulphurate.

कल्प तथा योग—मरहम नासूर, जरूर मुरदासंग,

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—लेखन, आग्नेय, उपशोषण, द्रवाभिशोषण, विशेषकर उदरकृमिनाशन एवं व्रणलेखन है। **उपयोग**—इसको अकेले या अन्यान्य औषधियोंके साथ जख्मोंके लिये अवचूर्णनकी भाँति या मलहम बनाकर उपयोग करते हैं। विरेचन और उदरकृमिनाशन होनेके कारण शुद्ध करके इसको आंतरिक उपयोगकी औषधियोंमें भी डालते हैं; किंतु विषयुक्त होनेसे सतर्कतापूर्वक इसका उपयोग करना चाहिये। इसकी भस्म लौंग-मिर्च और घृतसे सेवन करनेपर उपदंशमें लाभ होता है। **अहितकर**—शूल (कुलंज) और मरोड़ पैदा करता है। **निवारण**—सिरका और बादामका तेल। **प्रतिनिधि**—सफेदा। **मात्रा**—१२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्राम या ०.५ ग्राम (१ से २ वा ४ रत्ती) तक; किसी-किसीने उदरकृमिनाशनके लिये १॥। माशेतक इसकी मात्रा लिखी है।

मुरदासंगका शोधन—मुरदासंगका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण और सेंधानमक या समुद्रनमक एक काचपात्रमें डालकर उसपर इतना पानी डालकर रख छोड़ें कि चार अंगुल ऊपर रहे। दिनमें एक बार लकड़ीसे खूब हिला देवें। सप्ताहमें एक बार सेंधा नमक और पानी बदल देवें। इस प्रकार चालीस दिन नमकके पानीमें रखनेके बाद, साफ पानीसे सातबार धो, सुखाकर शीशीमें भर लेवें अथवा ऊनी कपड़ेमें बांधकर दोलायन्त्रकी विधिसे बाकलाके दानोंके साथ जलमें बाकलाके दाने पकनेतक पकावें। इस प्रकार तबतक करें जबतक कि मुरदासंगका चूर्ण सफेद रंगका न हो जाय। इस प्रकार शुद्ध हुए मुरदासंगका आन्तरिक उपयोग करें।

आयुर्वेदीय मत—यह कृमिघ्न, रेचन, व्रणका शोधन-लेखन और रोपण करनेवाला, बालोंको काला रंग देनेवाला तथा लिङ्गदोष (उपदंश) और कफका नाश करनेवाला है।

(२) सफेदा

नाम—(हिं०, म०) सफेदा; (अ०) इस्फ़ेदाज; (फा०) इस्फ़ेदाब, सुफेदाब; (द०) सफेदा; (बं०) सोफेदा; (गु०) सफेदो; (पं०) सफैदा; (ले०) प्लम्बाई कार्बोनास (Plumbi Carbonas); (अं०) लेड कार्बोनेट (Lead Carbonate), ह्वाइट् लेड (White Lead)। **वक्तव्य**—उपर्युक्त नाम सीसाके बने सफेदाके हैं।

वर्णन—यह एक सफेद रंगका नरम और भारी प्रसिद्ध चूर्ण है जो राँगे (कलई), सीसे और जस्तेको विशेष विधिसे जलाकर बनाया जाता है। कलईसे जो सफेदा बनाया जाता है उसको सफेदए अर्ज़ीर, सुफ़ेदाब रूमी और सफ़ेदए काश्ग़री (अ०—इस्फ़ेदाजुर्रसास) कहते हैं। यह सर्वोत्तम होता है तथा औषधके काममें आता है।

कल्प तथा योग—मरहम अजीब (मरहम सफेदा काशगरी), मरहम सफेदाज, मरहम सफेदाब काफूरी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष; मतांतरसे शीत तीसरे दर्जेमें।

गुण-कर्म—संग्राही, उपशोषण, संशमन तथा दाहप्रशमन, पिच्छिल (मुग़र्री), व्रणरोपण तथा रक्तस्तम्भन है और नेत्राभिष्यंद एवं नेत्रव्रणमें विशेष गुणकारी है। **उपयोग**—सफेदाको अधिकतया उष्ण नेत्राभिष्यंद, तारकाकी फुंसियाँ और नेत्रव्रण आदि जैसे नेत्ररोगोपयोगी नेत्रवर्तियोंमें डालकर या अकेले उपयोग किया जाता है। अग्निदग्धके लिए इसे अंडेकी सफेदीमें मिलाकर लगाते हैं, जिससे जलन और दर्दमें कमी हो जाती है। यदि जलनेसे जख्म हो गया हो तो उसको अच्छा कर देता है। इसके अतिरिक्त उष्ण शोथों तथा जख्मोंके लिए मरहमोंमें डालकर उपयोग किया जाता है। मूत्रकी जलन, सूजाक, बस्तिव्रण और नासिकाव्रणमें इसका पिचकारीके द्वारा उपयोग करते हैं। आन्त्रव्रणमें इसकी बस्ति भी दी जाती है। रक्तस्रावमें यह तिलाकी भाँति प्रयुक्त होता है। इसका आंतरिक उपयोग नहीं होता। **अहितकर**—कंठशोथजनक और गर्भनिरोधक है। **निवारण**—अनीसूँ, सौंफ और मधु। **मात्रा**—आंतरिक उपयोगमें नहीं आता।

(३) सिंदूर

नाम—(हिं०) सि (सें) दू(घु)र, इंगुर; (अ०) उस्‌रुन्ज, इस्‌रिंज, उस्‌रंज; (फा०) सिरिन्ज, सुरंज; (सं०) सिन्दूर; (पं०) संधूर, इंगूर; (म०) शेंदूर; (गु०) सिंदूर; (ले०) प्लम्बाइ ऑक्साइडम् रुब्रम् (Plumbi Oxidum Rubrum); (अं०) रेड ऑक्साइड ऑफ लेड (Red Oxide of Lead), रेड लेड (Red Lead)।

वर्णन—यह चमकीले पिलाई लिए (नारंगी) रक्त वा रक्त वर्णका एक दानेदार, मणिभीय चूर्ण है जो सीसेसे विशेष विधिसे तैयार किया जाता है। उत्तम सिंदूर वह है जो बहुत रक्तवर्ण, भारी और मैदेके समान चिकना हो और अग्निमें न जले।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क, आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य।

कल्प तथा योग—मरहम स्याह।

गुण-कर्म—व्रणलेखन-रोपण, कृमिघ्न, व्रणको मलादिसे शुद्ध करनेवाला, और रक्तस्तम्भन है। **उपयोग**—सिंदूरको बाह्य रूपसे अकेले या अन्य औषधियोंके साथ मलहम बनाकर व्रणोंमें प्रयुक्त करते हैं। यह उनको पीव, कृमि आदिसे शुद्ध करके बहुत शीघ्र अच्छा कर देता है। अग्निदग्धोपयोगी मलहरोंमेंभी इसको डालते हैं। सद्यः व्रणोंसे रक्तस्राव बंद करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। इसको खानेको नहीं दिया जाता। **अहितकर**—सांघातिक विष है। **निवारण**—तेल आदि स्नेह द्रव्य। **प्रतिनिधि**—सफेदा।

आयुर्वेदोय मत—यह उष्णवीर्य, व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला, भग्नका संधान करनेवाला तथा विसर्प, कुष्ठ, कण्डू और विषका नाश करनेवाला है।

(४) सुरमा

नाम—(हिं०) सुरमा, काला सुरमा; (अ०) इस्मद, इस्मिद (इ० वै०), कोहल; (फा०) सुरमा, संगे सुरमा; (सं०) नीलाञ्जन, सौवीराञ्जन; (बं०, म०) सुरमा; (गु०) सुरमो; (ले०) प्लम्बाइ सल्फ्युरेटम् (Plumbi Sulphuratum); (अं०) गॅलेना (Galena), सल्फाइड (सल्फ्युरेट) ऑफ लेड (Sulphide (Sulphuret) of Lead)।

वक्तव्य—स्याह सुरमा पारा और गंधक का एक यौगिक है। परंतु भारतवर्ष और पंजाबमें जो कंधारी सुरमा पुष्कल विक्रय होता है वह वास्तवमें गंधक और सीसाका एक यौगिक है जिसको अँगरेजीमें गैलेना (Galena) या सल्फ्युरेट ऑफ लेड (Sulphuret of Lead) कहते हैं। **संभवतः इसी प्रकारके सुरमा स्वरूपको जनाब शैखुर्रईस-बू-अली सीना ने पता लगाकर 'इस्मद' को 'मृतसीसकसत्व' लिखा है।**

वर्णन—यह सीसे का मूल-धातु—प्रधान खनिज (Ore of Lead) है जो सीसा और गंधकके योगसे बनता है और रंगमें काला, स्निग्ध और स्रोतोञ्जनसे अति गुरु, मंद आभा-प्रभायुक्त (Ghimmering), रश्मिरहित, घनाकार पिंडरूप और मणिभीय प्रबंधमें नलिकाकार (Tubular) होता है।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यों (हकीमों)का 'सुरमा' यही है। यूनानी वैद्योंने जिसे 'सुरमी' या 'सुरमए इस्फहानी' कहा है, वह आर्य वैद्योंका क्रमशः 'सौवीराञ्जन' और 'स्रोतोऽञ्जन' मालूम होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि चरक और सुश्रुतके समयमें गॅलेना और ऐन्टिमनी सल्फाइड दो ही प्रचलित थे। पीछे जब सुरमा इस्फहानी मालूम हुआ तबसे गैलेना (सुरमा) को नीलाञ्जन, ऐन्टिमनी सल्फाइड (सुरमी) को सौवीराञ्जन और सुरमए इस्फहानी को स्रोतोञ्जन मानने लगे। इनके अतिरिक्त सुरमाके एक और भेद—सफेद

सुरमाका वर्णन यूनानीके आधुनिक रसग्रन्थोंमें मिलता है। वह प्रवाल और शंख आदिकी भाँति कैल्सियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate) या कार्बोनेट ऑफ लाइम् (संगमरमर) का ही एक यौगिक (चूनजम् का ही ऊष्मिद) है। इसका उपयोग गोदंती भस्मके समान करते हैं।

(५) सुरमी (सौवीराञ्जन)

नाम—(हिं०) सुरमीका पत्थर, काला सुरमा; (सं०) अञ्जन, वरनाग, सौवीराञ्जन; (बं०) सुरमा; (म०) सुरमा; (गु०) सुरमो; (लें०) ऐन्टिमोनियाई सल्फाइडम् (Antimonii Sulphidum); (अं०) ऐन्टिमनी सल्फाइड (Antimony Sulphide), ब्लैक ॲन्टिमनी (Black Antimony)।

वक्तव्य—'एन्टिमोनियम्' यह दो यूनानी संज्ञाओं 'ऐण्टी = प्रति, और मोनाक्स = सन्यासी' का यौगिक है। अस्तु, इसका योगार्थ 'सन्यासीसंहारक' है। सन् १४९० ई० में वालेन्टीन नामी एक रासायनिकने जिसने सर्वप्रथम इस अमिश्र वा शुद्ध धातुके असली लक्षणोंका वर्णन किया, इसके वैद्यकीय गुणकर्म ज्ञात करनेके लिए इसे कुछ सन्यासियोंको सेवन कराया और वे सबके सब इस विषके सेवनसे मृत्युके घाट उतर गए। इसलिए इसका नाम 'ऐन्टिमोनियम् (सन्यासियोंका संहारक)' पड़ गया।

इसकी प्राचीन लेटिन संज्ञा स्टिबियम् (Stibium) इसकी प्राचीन यूनानी संज्ञा 'स्टिबू' से जिसका अर्थ 'अस्वच्छ या मलिन बनाना' है, व्युत्पन्न है। सुतरां इसकी वर्तमान रासायनिक चिह्न Sb इसके उसी लेकिन संज्ञा स्टीबियम् (Stibium) का संक्षिप्त रूप है।

इतिहास—जैसा कि इसके उपरिलिखित यूनानी एवं रूमी संज्ञाओंके नामकरण हेतुसे ज्ञात होता है, यह द्रव्य 'इस्म' के रूपमें प्राचीन यूनानी एवं रूमी चिकित्सकोंको ज्ञात था। सुतरां यूनानी हकीम दीसकूरीदूस ने 'स्टीम्मी' और रूमी हकीम बलीनास ने 'स्टीअम्' नामसे इसका उल्लेख किया है। और इन उभय चिकित्सकोंने इसको वमन एवं विरेचन लिखा है। इस विषयमें प्रायः चिकित्सक अद्यावधि इनके अनुयायी हैं। परंतु हकीम बुकरात एवं हकीम जालीनूसने इसमें संग्राही एवं छेदनीय गुणकी संभावनाकी ओर संकेत किया परंतु उन्होंने इसका केवल बाह्य उपयोग ही किया था।

प्राचीन यूनानी चिकित्सक इस धातुका उपयोग प्राकृतिक यौगिक, जैसे इस्मद (सुरमा) के रूपमें करते थे; परन्तु उनको शुद्ध धातुके स्वरूपका ज्ञान नहीं था। अस्तु, उनका विचार था कि सुरमा (ऐन्टिमोनियम् सल्फाइड) का मूल गंधक और रद्दी पारा है जिसको अप्रकृत ऊष्माने निर्बल ऊष्माके साथ ग्रथित कर दिया। और कोई इसे गंधक और सीसाका मिश्रण समझते थे। शैखुर्रईसने इसे मृत सीसकसत्व लिखा है, जिसका कारण अभी आगे बतलाया जायगा।

प्राप्तिस्थान—विजयानगरम, हिमालय और पंजाबकी कई खानोंसे सुरमा निकलता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका प्रसिद्ध खनिज पदार्थ (Ter-Sulphide of Antimony) है जो काले या भूरे रंगका चमकदार और भारी होता है जिसका महीन चूर्ण स्त्रियाँ आँखोंमें लगाती हैं। सुरमी एक निकृष्ट प्रकारका स्याह सुरमा है जिसमें गंधक जस्ताके साथ मिश्रीभूत होता है। यह अधिक कठोर होता है।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टिसे यह ऐन्टिमोनियम् और गंधकका एक यौगिक है।

कल्प तथा योग—कोहल काजल, कुर्स कोहल, कोह्‌लुल्‌जवाहर, कोहल अशा, कोहल गुलकुंजद, कोहल रोशनाई।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरे दर्जेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—यह चक्षुष्य, संग्राही, उपशोषण, कोथप्रतिबंधक, रक्तस्तम्भन और विशेषतः रक्तस्राव एवं नेत्ररोगोंमें गुणदायक है।

उपयोग—सुरमेको अधिकतया नेत्रबलवर्धनके लिए अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ बारीक खरल करके आंखोंमें लगाते हैं और बारीक पीसकर जखमोंपर छिड़कते हैं। ताजे जखमोंपर छिड़कनेसे यह रक्तस्रावको बंद करता है। आर्तवशोणितको बंद करनेके लिए फलवर्तिके रूपमें इसका उपयोग करते हैं। नकसीर बंद करनेके लिए इसको नाकमें फूंकते और मस्तकपर लेप करते हैं। मसूरिकाके प्रारंभमें नाक, कान और आँखको सुरक्षित रखनेके लिए इसे उक्त अंगोंमें लगाते हैं। **अहितकर**—उरः फुप्फुसको। **निवारण**—कतीरा, शर्करा और हरे धनिएका रस। **प्रतिनिधि**—सीसा। **मात्रा**—आंतरिक उपयोगमें नहीं आता।

आयुर्वेदीय मत—सौवीराञ्जन गुरु, स्निग्ध, नेत्रके लिये हितकर, रसायन, सुवर्ण को मारनेवाला (सुवर्णकी भस्म बनानेवाला) और अन्य लोह (धातु) को मृदु करनेवाला है। (र० चू० अ० १७)।

पाश्चात्य वैद्यकमें इसका आभ्यंतर उपयोग भी होता है।

सुरमा इस्फहानी—संभव है यह शुद्ध होता हो। परंतु डॉ० पावल साहब स्वरचितग्रन्थ एकोनॉमिकल प्रॉडक्ट्स ऑफ पंजाबके पृ० ११ पर लिखते हैं कि सुरमा इस्फहानीके नमूनाका विश्लेषण करनेपर उसमें लोहेका मिश्रण पाया गया। वह पेशावरके समीपस्थ बाजौरके खनिज सुरमा को शुद्ध (खालिस) सुरमा बतलाते हैं और पर्वतीय सुरमा और पंजाबके कतिपय अन्य स्थानोंके सुरमा को निकृष्ट (अशुद्ध) बतलाते हैं।

अहजार मा'दनिया (हजरियात-पाषाण) विज्ञानीय

अध्याय ६

प्राक्कथन

अनुभवसे यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि भिन्न-भिन्न प्रकारके पत्थर (रत्नोपरत्न आदि) मानव शरीरपर विभिन्न प्रकारके प्रभाव प्रकट करते हैं। इनका खाना और पीना तो लाभकारी है ही, इनके गलेमें डाल लेने (लटकाने) या विशेष पत्थरोंका नगीना अँगूठीमें जड़ा लेनेसे शरीरके ऊपर इनका प्रभाव प्रगट होता है। यूनानी और आर्य वैद्य दोनों ही इन प्रभावोंके समर्थक हैं। सुतरां प्रयोग और अनुभवसे ऐसे प्रभावोंकी सत्यता सिद्ध होते हुए यदि इनका आंतरिक प्रयोग भी किया जाय तो धातुओंकी भाँति विविध प्रकारके पत्थर भी मानव शरीरके भिन्न-भिन्न अवयव सम्बन्ध रखते हुए प्रतीत होते हैं—शरीरमें पहुँचकर अपना प्रभाव उसी अवयवपर पहुँचाते हैं जिनसे उनका सम्बन्ध है। यथा—संगयशबका हृदयसे, संगेयहूदका मूत्रावयवसे विशेष सम्बन्ध है। यूनानी चिकित्सक तो इनका पत्थरपर घिसा हुआ चूर्ण (हक्काका) उपयोग करते हैं। परन्तु आर्य चिकित्सक धातु भस्मोंकी भाँति इनकी भस्म वनाकर प्रयोगमें लेते हैं। इनकी देखा-देखी अग्निद्वारा पत्थरोंकी भस्मोंकी निर्माण विधि एवं प्रयोगका ग्रहण देहली और लाहौरके यूनानी चिकित्सकोंद्वारा आजसे कुछ काल पूर्व हुआ और अब उनमें खूब प्रचलित हो गया है। प्राचीन यूनानी चिकित्साग्रन्थोंमें कुछ रत्नों और पत्थरोंकी भस्मोंका उपयोग मिलता है। यथा—अकीक, पन्ना, नीलम, माणिक्य, संगयशब आदि। इन रत्नों-पत्थरोंको भस्म करनेकी उनकी विधि भी बहुत ही सीधी-सादी है।

उनके यहाँ इन पत्थरोंको भस्म करनेके लिये किसी भी रत्न या पत्थरको अग्निमें रखकर खूब तपाते हैं और उसे फिर उसी उत्तप्त अवस्थामें निकालकर अर्क गुलाब या केवड़ा या बेदमुश्क आदिमें बुझाते हैं। तपाते-बुझाते जब वह पत्थर नरम होकर भंगुर हो जाते हैं तो उनको कूट-पीसकर रूह-गुलाब या केवड़ा या बेदमुश्कमें इतना खरल करते हैं कि वह मक्खन सा मुलायम हो जाता है। बस खरल करते हुए सुखाकर रख लेते हैं, यह उनकी भस्में हैं।

इससे भिन्न—मुक्ता, प्रवाल आदिका भी वह उपयोग करते हैं, किन्तु इनकी भी भस्म नहीं बनाते, प्रत्युत इनको कूटकर बारीक पीस लेते हैं और अर्क गुलाब, केवड़ा, बेदमुश्क आदिके अर्कमें घोटकर खूब बारीक-सा मुलायम चूर्ण बना लेते हैं। यही इनका कुश्ता मोती या मूँगा होता है। इन दोनों भस्मोंका नाम आयुर्वेदज्ञोंने 'चन्द्रपुटी मुक्ता' या 'चन्द्रपुटी प्रवाल' रखा है।

पत्थरोंकी भस्ममें जवीउल्अरवाह (पारा, गंधक आदि) की भस्मके समान न तो यह भय होता है कि वह सूक्ष्मताके कारण शरीरमें कोई क्लेशदायक उथल-पुथल पैदा करेंगे और न कतिपय निम्न कोटिकी धातुभस्मोंकी भाँति यह आशंका होती है कि उसके अपक्व रह जानेसे विषमयता प्रगट होगी। अपितु पत्थरोंकी भस्में यदि उत्तम बन जायँ तो आशातीत लाभ प्रगट करती हैं। पर यदि अपक्व (कच्ची) रह जायँ तो हानि पहुँचानेके स्थानमें केवल यही होगा कि कोई प्रभाव न करेंगी या बिलकुल कम प्रभाव करेंगी। तात्पर्य यह कि इनके उपयोगसे किसी प्रकारकी हानिकी संभावना नहीं है। इसका अपवाद केवल हीराभस्म है जिसकी अधूरी वा कच्ची भस्म विषमयताके कारण नहीं, अपितु अपने छेदनीय गुणके कारण हानिका हेतु होती है।

यहां पर चिकित्सोपयोगी तथा चिकित्सामें प्रयुक्त प्रत्येक पत्थरका नामादिसहित आवश्यक सभी विवरण किया गया है। विस्तारभयसे केवल भस्म-निर्माण-विधि नहीं दी गई है। भस्म-निर्माण-विधि तथा कुछ अन्य कल्पनाओं आदिका विवरण अपने 'यूनानी रसशास्त्र' नामक ग्रन्थमें करूँगा। यहाँपर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इन पत्थरोंकी बनी हुई उत्तम भस्म गुणप्रभावमें धातुभस्मकी अपेक्षया किसी प्रकार कम लाभकारी नहीं होती, अपितु विशिष्ट पत्थरोंकी भस्में धातुभस्मोंसे भी अधिक गुणकारी होती हैं। परन्तु इसके साथ भस्म उत्तम बननेकी शर्त अवश्य है।

आगे उनमेंसे प्रत्येकका अपेक्षित विवरण दिया जा रहा है।

प्रकरण १

रत्न-मणि

नाम—(हिं०) मणी (णि), नगीना, जवाहिर; (अ०) जौहर (बहुव० जवाहिर); (फा०) गौहर; (सं०) रत्न, मणि; (अं०) प्रेशस् स्टोन (Precious stone), जेम (gem)।

वर्णन आदि—कुछ विशिष्ट छोटे चमकीले बहुमूल्य पदार्थ विशेषतः खनिज पदार्थ या पत्थर, जैसे—हीरा, मानिक, नीलम, पुखराज, पन्ना, जवरजद, गोमेद, लहसुनिया, मोती, मूंगा आदि। जिस ग्रहका जो रत्न बताया गया है यदि वह ग्रह जन्मकुण्डली, महादशा या अन्तर्दशामें अनिष्ट स्थानमें रहा हो तो अनिष्ट फलकी शान्ति, इष्ट फलकी प्राप्ति तथा उस ग्रहकी प्रसन्नताके लिये उसके उत्तम जातिके रत्नका जिस प्रकार शरीर स्पर्श हो, उस प्रकार उसको शरीरपर धारण करना चाहिये।

सब प्रकारके रत्न ओजको बढ़ानेवाले, मनको प्रसन्न करनेवाले तथा समग्र शरीरावयवोंको विशेषतः हृदय (दिल) और मस्तिष्क (दिमाग) को शक्ति देनेवाले हैं। आगे इनमेंसे हर एकका विवरण किया गया है।

(१) हीरा (अल्मास)

नाम—(हिं०, बं०) हीरा; (अ०) मास; (फा०) अल्मास; (सं०) हीरक, वज्र; (म०) हिरा; (पं०) हीर, अल्मास; (गु०) हीरो; (ते०) बज्र; (कना०, को०) वज्र; (ले०, यू०) एडॅमास (Adamas); (अं०) डाएमंड (Diamond)।

प्राप्त स्थान—पहले यह दक्षिण भारतवर्षके गोलकुण्डाकी खानोंसे और अब अधिकतया दक्षिण अफरीकाके जोहांसवर्गकी खानोंसे आता है।

वर्णन आदि—यह एक प्रसिद्ध महारत्न या बहुमूल्य खनिज पत्थर है जो अपनी चमक, स्वच्छ पारदर्शकता और कड़ाईके लिए प्रसिद्ध है। यह संसारके सारे पदार्थोंसे कड़ा होता है। यह अधिकतर तो सफेद अर्थात् बिना रंगके होता है; पर पीले (जैती) हरे (गुर्वए चश्म अर्थात् बिल्लीकी आँख जैसा), लाल, नीले और कभी-कभी काले (हब्शी या जागी अर्थात् काकवर्णीय) हीरे भी मिल जाते हैं। किन्तु इनमें एक रंग उज्ज्वल सफेद सर्वोत्तम समझा जाता है। यह शुक्रग्रहका रत्न माना जाता है।

परीक्षा—जिस हीरेकी चमक पानीमें डालनेसे कम न हो वह सच्चा है। क्योंकि अन्य सब रत्नोंकी चमक पानीमें डालनेसे कम हो जाती है और हीरेकी चमक कम नहीं होती।

रासायनिक संगठन—आधुनिक रसायनशास्त्रके अनुसार हीरा कार्बन या कोयलेका ही विशेष रूप है जो प्राकृतिक दशामें पाया जाता है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म—छेदनीय, प्रबल आग्नेय, और इसका लटकाना हृदयबलवर्धन, भयनिवारक और प्रसवसौकर्यकारक वर्णन किया जाता है। हीरेकी भस्म उत्तमाङ्ग बलवर्धन और वाजीकर है। **उपयोग**—छेदन एवं आग्नेय होनेके कारण हीरेकी कनी अन्त्र-आमाशयमें क्षत डालकर अति शीघ्र प्राणनाश कर देती है। अतः कोई-कोई लोग इसको खाकर आत्मघात कर लेते हैं। उत्तमाङ्ग बलवर्धन एवं वाजीकरणके लिये औषधकी भाँति आन्तरिक रूपसे हीरेकी भस्म खिलाई जाती है। **मात्रा**—१ चावलसे २ चावलतक।

आयुर्वेदीय मत—हीरा कषाय, मधुरादि षड्रसयुक्त, शीतवीर्य, रसायन, सारक, वमनकारक, नेत्रोंके लिये हितकर, शरीरको वज्रके समान दृढ़ करनेवाला, लक्ष्मीवर्धक (धारण करनेसे पाप और अलक्ष्मीका नाश होता है), पुष्टि, बल और वीर्यवर्धक, वर्णको सुन्दर करनेवाला, सुखकारक तथा शोष, क्षय, भ्रम, भगन्दर, प्रमेह, मेद, पाण्डू, उदररोग, वातकुष्ठ, पित्त, भ्रम, कफ, वात, शोक, मद, मेद और सूजनको दूर करनेवाला है।

(२) मानिक (याक़ूत)

नाम—(हिं०) मानिक, लाल; (अ०) याक़ूत, याक़ूत सुर्ख़; (सं०) माणिक्य, पद्मराग, सौगन्धिक; (बं०) माणिक, चुणी; (पं०) मानक; (गु०) माणेक; (म०) माणि (णी)क; (ले०) रूबिएनस (Rubianus); (अं०) रूबी (Ruby)।

प्राप्तिस्थान—इसकी खानें ब्रह्मा, सयाम, लंका, मध्य एशिया, यूरोप, आस्ट्रेलिया आदि अनेक भूभागोंमें पाई जाती हैं। बदख़शाँ का लाल बड़ा मशहूर है।

वर्णन, भेदादि—यह कुरण्ड (कुरुविंद) की जातिका एक बहुमूल्य पत्थर है जो लाल रंगका और हीरेको छोड़कर सबसे कड़ा होता है। मूल्यमें हीरेके बाद इसीका नंबर है। यह गहरे लाल रंगसे लेकर गुलाबी रंग और नारंजीसे लेकर बैंगनी रंगतकके मिलते है। इनमें सबसे उत्कृष्टतर लाल रुम्मानी (=कंदहारी अनारके दानेके समान) है। इसमें भी जो स्वच्छ, स्निग्धस्पर्श और व्रणछेदरहित हो वह उत्तम होता है। इसको हिंदीमें मानिक, पीले (याक़ूत ज़र्द) को पुखराज और नीलेको नीलमणि (फारसीमें नीलम) कहते हैं। चुन्नी तोबडा या याक़ूत गार्नेट् (Garnet) और लाल स्पाइनेल् (Spinel) भी मानिकके ही भेद हैं। जिस मानिकमें चिह्न नहीं होता और चमक अधिक होती है वह उत्तम माना जाता है और अधिक मूल्यवान् होता है। यह सूर्यग्रहका रत्न माना जाता है।

पद्मराग का प्रचलित नाम माणिक्य है। बहुतसे हकीम व वैद्य पद्मरागको माणिक्य या चूनी समझते हैं। परन्तु पद्मराग नीलमका सहोदर है। लाल (माणिक्य) और याकूती (चूनियाँ) इससे सर्वथा भिन्न रत्न हैं। 'शबचिराग़' एक जातिका मानिक ही है, जो बहुत ही लाल, दहकते कोयलेके समान होता है। आकारमें मानिकसे कुछ बड़ा होता है। रात्रिमें दीपक जैसा चमकता है। इसलिये इसका नाम शब-चिराग़ (शब = रात्रि, चिराग़ = दीपक) पड़ गया है।

रासायनिक संगठन—रासायनिक विश्लेषण द्वारा मानिकमें दो भाग ऐल्यूमिनम् और तीन भाग आक्सिजनका पाया जाता है, जिससे रसायनशास्त्रियोंके मतसे यह कुरण्डकी जातिका पत्थर प्रतीत होता है। इसमें एस विशेषता यह भी है कि बहुत अधिक तापसे सुहागेके योगसे यह काँचकी भाँति गल जाता है और गलनेपर उसमें कोई रंग नहीं रह जाता। आजकलके रासायनिकोंने काँचसे नकली मानिक बनाया है जो असली मानिकसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इसमें लोहे और क्रोमियम् के अल्प मिश्रणसे लाल रंग आता है।

कल्प तथा योग—पिष्टी और भस्म तथा याकूती कल्प, खमीरा याकूत, मुफर्रेह याकूती, याकूती बारिद मोतदिल, याकूती शैखुर्रईस, याकूती हार्र (सादा,लूलुई), मुफर्रेह याकूती मोतदिल आदि।

प्रकृति—समशीतोष्ण और दूसरे दर्जेमें खुश्क है। मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म—इसे मनःप्रसादकर, हृद्य, मेध्य, प्रकृत देहाग्निका उद्दीपक और संरक्षक, रक्तस्तंभन और मरकवायुजन्यदोषनिवारक है। **उपयोग**—याकूतको बहुत बारीक खरल (पिष्टी) करके मुफर्रेह और याकूती कल्पोंमें डालते हैं जो हृदयबलवर्धन और सौमनस्यजननके लिये तथा प्रकृत देहाग्निके संरक्षणोद्दीपनार्थ प्रयुक्त होते हैं। इसकी भस्म उत्तमाङ्गबलवर्धनके लिए तथा उन्माद, अपस्मार, हृत्स्पंदन, ग्रंथिक सन्निपात (प्लेग), रक्तस्राव, और

उरःक्षत एवं राजयक्ष्मामें प्रयुक्त होती है। दृष्टिदौर्बल्यमें इसका अंजन भी करते हैं। अहितकर—इसमें कोई अहितकर गुण नहीं है। निवारण—अम्बर और सोना। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरेका। मात्रा—१-२ रत्ती। अनुपान—सेब, आमला तथा गाजर आदिके मुरब्बाके साथ चाँदीके २-४ वर्क लगाकर प्रातः-सायं सेवन कराते हैं।

आयुर्वेदीय मत—यह मधुर, स्निग्ध, वाजीकर, हृदयको बल देनेवाला, दीपन, मेध्य, बलकारक, रसायन तथा वात, पित्त और क्षयको दूर करनेवाला है।

(३) नीलम (याकूत कबूद)

नाम—(हिं०) नीलम, नीला याकूत; (अ०) याक़ूत कबूद; (फा०) नीलम; (सं०) शक्रनील, इन्द्रनील, नील, नीलमणि; (पं०) नीलम्, नील, काबूद, अस्मानी; (म०) नीलम; (गु०) नीलम, शनि; (ते०, ता०) नीलम्; (सि०) नील; (ले०) सेफायरस (Sapphirus); (अं०) सेफायर (Sapphire)।

वक्तव्य—अँगरेजी सेफायर यूनानी सफीरूस (Sappheiros = लाजवर्द, Lapis lazuli) से लेटिन सेफायरस द्वारा व्युत्पन्न है।

वर्णन—यह कुरुविन्दजातीय एक पारदर्शक नीला, बहुत कड़ा मूल्यवान् पत्थर (महारत्न) है। यह कड़ाईमें हीरेसे द्वितीय और हलके नीलेसे लेकर गम्भीर नीलवर्णतकका होता है। इसका नग आदि बनाते हैं। यह औषधमें भी काम आता है। गहरे नीले रंगका, स्वच्छ, स्निग्धस्पर्श और तेजस्वी (पानीदार) नील उत्तम होता है। यूनानी वैद्यकके मतसे यह मधुर और कषाय होता है। यह शनिग्रह का रत्न माना जाता है।

उत्पत्तिस्थान—हिन्दुस्तान, कश्मीर-जम्मू, ब्रह्मा, स्याय और लंका।

रासायनिक संगठन—नीलम ॲल्युमिनियम् और ऑक्सिजनका यौगिक है। इसमें कोबाल्ट अल्प मात्रामें मिला रहनेसे इसका नीला रंग होता है। भस्म करनेपर यह ऊष्मिद ही रहता है। भस्मका वर्ण श्वेत, नीलाभायुक्त और स्वाद फीका होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सौमनस्यजनन है, दिलकी धड़कन (खफ़क़ान) और वातिक अन्यथा ज्ञान (वसवास) को लाभ पहुँचाता है; अपने प्रभावसे नेत्रको शक्ति देता, विषके विकार और फोड़े-फुन्सीको नष्ट करता है; अंगोंको विशेषतः मस्तिष्कको शक्ति देता और रूक्षता उत्पन्न करता है। प्रतिनिधि—मानिक। मात्रा—८ जौसे ६ रत्ती तक।

आयुर्वेदीय मत—नीलम वाजीकर, दीपन, बलकारक, मेध्य, हृद्य, विषहर, रसायन तथा तीनों दोष, श्वास और कासको दूर करनेवाला है।

(४) पुखराज (याकूत ज़र्द)

नाम—(हिं०) पु(पो)खराज; (फा०) याक़ूत ज़र्द; (सं०) पुष्पराग; (बं०, म०, गु०) पोखराज; (अं०) टोपेज (Topaz); (ले०) टोपेजिओ (Topagio)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर एशिया और बर्मा।

वर्णन—यह कुरुविन्द जातिका महारत्न है। यूनानी वैद्यकमें इसे याकूत अर्थात् मानिकका ही एक भेद माना है। अस्तु, इसके गुणकर्म-प्रयोग आदि अलग नहीं लिखे हैं। यह पीला तथा हरा भी होता है। चम्पा या अमलतासके फूलके समान पीले रंगका अथवा नारंगी रंगका, स्निग्धस्पर्श और चमकदार (पानीदार) पुखराज उत्तम होता है। यह गुरुग्रह का रत्न माना जाता है। पीरूका पुखराज बड़ा प्रसिद्ध है, पुखराज नीले आदि रंगोंका भी होता है, परन्तु उनका मूल्य बहुत ही कम है।

रासायनिक संगठन—यह ऐल्युमिनियम् और सिकता (सिलिका) का यौगिक है।

प्रकृति—शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अम्ल, लघु, शरीर और आमाशयकी प्रकृतोष्माका वर्धक तथा विष, वमन, कफ, पचनदौर्बल्य, क्षुधा, उष्णता (दाह), वात, कुष्ठ, रक्तदोष और बवासीरको नष्ट करता है। यह शारीरिक बलका संरक्षक, बलवर्धक, बुद्धिवर्धक, आयु और जीवनका सहायक है (अनुभूत चिकित्सासागर)।

आयुर्वेदीय मत—यह दीपन, लघु, पाचन तथा विष, वमन, कफ, वात, अग्निमान्द्य, दाह और कुष्ठका प्रशमन करनेवाला है (र० चू० अ० १२)।

(५) पन्ना (जमुर्रद)

नाम—(हिं०) पन्ना; (अ०) ज़ोम(मु)र्रद, ज़मुर्रद; (सं०) तार्क्ष्य[1], मरकत, गरुडोद्गार, गारुत्मत, हरिन्मणि; (पं०) ज़म्रुद, पन्ना, सब्ज़; (म०) पाच; (गु०) पातुं; (लै०) स्मराग्डस (Smaragdus); (अं०) एमेरॅल्ड् (Emerald)।

वर्णन—यह हरे या घासके रंगका स्वच्छ आभायुक्त कहीं-कहीं नीले रंगका भी मिल जाता है, इसको एक्वामेरिन (Aquamarin) कहते हैं। यह एक प्रकारका रत्न है जिसमें अन्य पत्थरोंकी अपेक्षया कम कड़ाई होती है। ज़बरजद्द इसीका एक भेद है जो पिलाई लिये हरा होता है। यूनानी वैद्यकमें रंगके विचारसे (रंगकी न्यूनाधिकताके कारण) इसके निम्न भेद किये गये हैं—(१) ज़ुबानी (हरी मक्खीके समान), (२) रैहानी (रैहाँ पत्रके समान। इसको 'ज़ोमुर्रद नौ' भी कहते हैं।), (३) फ़ुस्तुक़ी (पिस्ताके समान)। इसको 'ज़ोमुर्रद कोहना' भी कहते हैं। (४) सिलक़ी (चुकंदरवत्), (५) ज़ंजारी (जंगारवत्) और (६) क़ुर्रासी (गंदनावत्)। जो पन्ना बाँस या केलेके पत्ते जैसे हरे रंगका, छिद्र और बुद्बुद रहित, स्निग्ध स्पर्श और आबदार हो उसे अच्छा माना जाता है यह कारिल माना जाता है।

रासायनिक संगठन—पन्ना सिलिका, ऐल्युमिना, बेरिलियम् और ऑक्सिजनका यौगिक है। भस्म करनेपर ऑक्साइड (ऊष्मिद) ही रहता है। भस्मका वर्ण श्वेत नीलाभायुक्त और स्वाद फीका होता है।

कल्प तथा योग—खमीरा जमुर्रद।

उत्पत्तिस्थान—मिश्रकी पहाड़ियाँ, पीरू और सूडान।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, उत्तमाङ्गबलदायक, उपशोषण, मूत्रल, अश्मरीघ्न, विषोंका अगद विशेषतः प्रकृत देहाग्नि तथा हृदय एवं मस्तिष्क बलदायक है। उपयोग—मनःप्रसादकर और उत्तमाङ्गबलदायक होनेके कारण याकूती जैसे योगोंमें इसका श्लक्ष्ण चूर्ण डाला जाता है तथा हृत्स्पंदन (धड़कन), रक्तष्ठीवन, यकृदामाशयदौर्बल्य, जलोदर, वृक्कदौर्बल्य, कामला, विष और रक्तातिसारको नष्ट करनेके लिये इसको घिसकर पिलाया जाता है। उपर्युक्त गुणकर्मोंके लिये इसकी भस्म भी खिलाई जाती है। अहितकर—बस्तिको। निवारण—कस्तूरी और अर्क गुलाब। प्रतिनिधि—रुद्धातिसारमें प्रवालशाखा। मात्रा—०.५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक। भस्म—६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (½ रत्तीसे १ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—पन्ना ओजको बढ़ानेवाला तथा ज्वर, वमन, विष, श्वास, सन्निपात, अग्निमान्द्य, पाण्डुरोग और शोथका नाश करनेवाला है (र० चू० अ० १२)।

---

[1] पन्नाको संस्कृतमें 'तार्क्ष्य' कहते हैं। इसी जातिका एक दूसरा रत्न भी है जिसे संस्कृतमें 'मरकत' कहते हैं। इन दोनोंमें साधारण सा ही भेद है। इन दोनोंका उपयोग एक सा ही है। गुण भी एक से ही हैं।

(६) ज़बरजद्द

पन्नाका एक भेद जिसका रंग पन्नेसे हलका होता है। यह पन्नाकी खानमें पैदा होता है और मूल्यमें भी उससे कम ही है। यह बहुधा लंका, सायबेरिया तथा चीनकी सीमामें पाया जाता है। यह हरे और पीले रंगका होता है। इनमें श्रेष्ठतर वह है जो स्वच्छ हरे रंगका साफ हो, शीघ्र टूट न सके। पीला बहुत हलका और साफ होता है। इसमें आँच उठानेकी शक्ति नहीं। यह हरापन लिये पीला और ललाई लिये हरा भी होता है। किंतु इनमें उत्तरकथित भेद निकृष्ट होता है। हरा साफ कमरंगको 'मिश्री' और हरापन लिये पीलेको 'क़िब्रसी' और ललाई लिये हरेको 'हिंदी' कहते हैं।

प्रकृति—शीतल एवं रूक्ष। मतांतरसे उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुण-कर्ममें यह जमुर्रदके समान होता है तथा लेखन, उल्लासप्रद, रक्तरोधक, बंद पेशाबको खोलनेवाला, अश्मरी छेदक एवं निस्सारक, दर्शनशक्तिदायक और कुष्ठघ्न है। इसे गलेमें लटकानेसे मृगी आराम होता तथा प्रसवमें सौकर्य होता है। अँगूठीमें इसे नगकी भाँति जड़कर पहननेसे उल्लास प्राप्त होता तथा भय एवं चिंता दूर होती है। भूतावेश और नजर लगनेमें इस अँगूठीके धारण करनेसे लाभ होता है और इसके कारण मृगी भी नष्ट होती है। गर्भवतीको प्रसवकालमें इस अँगूठीके धारण करनेसे प्रसवमें सौकर्य उत्पन्न हो जाता है। इसके वर्तनमें मद्य रखकर पीनेसे नशा नहीं होता। इसके लगानेसे दर्शनशक्ति तीव्र होती है इसलिये इसे कोहलुल्‌जवाहर में डालते हैं। इसको ओर निरंतर देखते रहनेसे भी दर्शनशक्ति तीव्र होती है। इसको पीसकर खानेसे हृदयको शक्ति प्राप्त होती है। यदि किसीने विष भक्षण कर लिया हो अथवा किसी विषैले कीड़ेने काट खाया हो तो इसके पीनेसे उपकार होता है। यदि सर्पदष्टको कुरंडके पत्थरपर बकरीके दूधके साथ जबरजद घिसकर पिलाये तो लाभ प्राप्त हो। अहितकर—रतिशक्ति (बाह) को। निवारण—शहद। प्रतिनिधि—जमुर्रद। मात्रा—२.२५ ग्राम (२। माशा)।

(७) गोमेद

नाम—(सं०, हिं०, बं०, गु०, म०) गोमेद; (सं०) गोमेदक, लोहितमणि; (ले०) गोमेदकम्; (अं०) सिनॅमोन् स्टोन् (Cinnamon Stone), हेसोनाइट (Hassonite)।

वर्णन—यह रत्न गायकी चर्बी (गोमेद) के रंगका होता है। इसलिये इसको गोमेद कहा जाता है। स्वच्छ, गोमूत्रके समान रंगवाला, स्निग्धस्पर्श, छिद्ररहित और पानीदार गोमेद उत्तम समझा जाता है। यह राहुग्रह का रत्न माना जाता है। इसकी गणना महारत्नोंमें होती है।

प्रकृति—उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अम्ल, लघु, पाचन, क्षुधावर्धक, वायुके रोगोंको नष्ट करनेवाला तथा गुण-कर्ममें चन्द्रकान्तके समान है। यह हृदयकी दुर्बलता एवं दिलकी धड़कनको दूर करता और बुद्धिको बढ़ाता है तथा वात, कफ, पित्त और नेत्र एवं त्वचाके रोगों और खांसीको दूर करता है।

आयुर्वेदीय मत—गोमेद दीपन, पाचन, रुचिकर, त्वचाके लिये हितकर, बुद्धिको बढ़ानेवाला और कफ, पित्त, क्षय और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है (र० चू० अ० १२)।

(८) लहसुनिया

नाम—(हिं०) लहसुनिया, लहसन्या; (अ०) ऐनुल्हर्रः, जज्अ; (सं०) वैडू(दू)र्य, रुद्राक्षक, बिडालाक्ष; (म०) लसण्या, मार्जारनेत्री; (गु०) लसणियो; (अं०) कैट्स आई (Cat's eye)।

वर्णन—यह धूमिल रंगका एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर है। इसका रंग और बाह्याकृति (देखाव) बिल्लीकी आँख जैसा होता है। इसलिये इसका अरबीमें ऐनुल्हर्रः (ऐन = नेत्र + उल् + हर्रः = बिल्ली) संस्कृतमें बिडालाक्ष, अँगरेजीमें कैट्स आई और मराठीमें मार्जारनेत्री नाम रखा गया। इसकी रचनामें प्रधानतः ऐल्युमिनियम्, बेरिलियम् तथा अल्प प्रमाणमें अयस् और क्रोमियम् ये तत्त्व होते हैं। यह नौ रत्नोंमें है तथा लाल, पीले और हरे रंगका भी होता है। कुछ श्यामता और हरापन लिये सफेद रंगका, चिकना, छिद्ररहित और चमकदार तथा जिसके मध्यमें १-३ सूतके जैसी चमकती हुई अर्ध रेखायें दीखती हों, वह श्रेष्ठ होता है और "ढाई सूत" का कहलाता है। इसको केतुग्रहका रत्न माना जाता है।

यूनानी वैद्योंके मतसे जज्अ नेत्रके समान एक पाषाण है जिसके यह दो भेद होते हैं—(१) ऐनुल्हर्रः अर्थात् लहसुनिया और (२) संगसुलेमानी (फा०)। इनके सिवाय इसके और भी भेद होते हैं। सारांश यह कि लहसनिया रत्नजातीय एक पत्थर है जो स्वच्छ या उज्ज्वल श्वेत होता और अकीक नहीं जैसा कि प्रसिद्ध है, अपितु याकूतकी खानोंमें मिलता है। यह लहसुनकी पुत्थीके समान होता है। इसलिये 'लहसुनिया' कहलाता है। देखो खजाइनुल् अदविया भा० ६, पृ० १८५-१८६ तथा हकीम शरीफखाँ लिखित तोहफा आलमशाही नामक फारसी ग्रंथ जिसमें लिखा है कि इसके समस्त गुणधर्म याकूत रुम्मानी के समान हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। वैद्य भी गरम बतलाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शूलरोग (कुलंज) नाशक, अत्यन्त रूक्षताकारक, लेखन और कामलाहर है। इसको नेत्रांजनकी भाँति महीन चूर्ण बनाकर नेत्रमें लगानेसे मोतियाबिंद (नुजूल) नष्ट होता है। हकीम शरीफखाँ लिखित तोहफा आलमशाहीमें लिखा है कि इसका यह प्रभाव है कि जो इसे अपने पास रखता है उसे नजर नहीं लगती और हर प्रकारकी आफत एवं भूतबाधा, आदिसे वह सुरक्षित रहता है। इसके इन दो अन्य गुणोंका भी उल्लेख उसमें पाया जाता है। प्रथम यह कि इसको रखनेवाला आर्थिक हानि नहीं उठाता तथा मुसीबतोंका आखेट नहीं होता। द्वितीय यह कि जब वह समरक्षेत्रमें वर्तमान हो और उसकी ओरके योद्धा पराजित होकर भाग खड़े हों तो इसके रखनेवाले व्यक्तिको चाहिये कि वह आहतोंमें लेट जाय। शत्रुके लश्करका जो मनुष्य उसके पास आयेगा, उसको यह रक्ताप्लुत (मक़्तूल) नजर आयेगा। इसलिये उसको छोड़कर चला जायगा और कोई उसको न पहिचान सकेगा। इसके ये दोनों गुण एक नक्काश (सोनार) ने भारतीय जौहरियोंसे प्राप्त किये हैं (ख० अ०)।

लहसुनिया अम्ल, उष्णवीर्य, पैत्तिक रक्त एवं दर्द, शूलरोग, उदररोग तथा कफ और वायुको नष्ट करता है। यह बुद्धि, आयु, बल, पाचकाग्निको बढ़ाता और रसायन है (अनुभूत चिकित्सासागर)।

आयुर्वेदीय मत—वैदूर्य दीपन, सारक; बुद्धि-आयुष्य और बलको बढ़ानेवाला तथा रक्तपित्त और पित्त-प्रधान रोगोंको दूर करनेवाला है (र० चू० अ० १२)।

वक्तव्य—मख्जनुल् अदवियाके लेखक श्रीमान् हकीम सय्यद मोहम्मदहुसेन उलवी महोदयने पाषाणसे सादृश्य होनेके कारण मोती (मरवारीद)[1], सीप (सद्फ) और मर्जा (मूंगा व उसकी जड़ अर्थात् बुस्सद) की गणना हजरियात (पाषाण) वा खनिज द्रव्यों (मादनियात) में की है। परंतु ये जाङ्गम द्रव्य हैं। इसी प्रकार 'फादेजहर हैवानो' भी एक प्राणिज द्रव्य है। अस्तु, मैंने इनका वर्णन प्राणिज द्रव्योंमें किया है।

---

[1] आयुर्वेदमें भी इसका (मुक्ताका) समावेश पार्थिवद्रव्योंमें किया गया है—पार्थिवाः सुवर्णरजत मणिमुक्ता मनः नशिलामृत्कपालादयः ॥ सु० सू० १ अ० श्लो० ३० ॥ यह द्रव्य यद्यपि उत्पत्तिकी दृष्टिसे जंगम है तथापि संगठनकी दृष्टिसे पार्थिव हैं। इसलिये इसका समावेश पार्थिव वर्गमें किया गया है। मुक्ताके समान शङ्ख, कौड़ी, घोंघा, अग्निजार इत्यादि द्रव्य भी प्राणिज हैं।

प्रकरण २

उपरत्न

वर्णन– कम दामके रत्न वा पत्थर अर्थात् घटिया रत्नको उपरत्न कहते हैं। जैसे—अकीक, संगयशब, लाजवर्द आदि। इनमें प्रत्येकका विवरण नीचे किया गया है।

(१) अकीक

नाम—(अ०, हिं०, पं०) अकीक; (अं०) ॲगेट् Agate (सं०) रक्ताश्म (नवीन)।

प्राप्तिस्थान—इसकी खान यमनमें है। यह रोम नदीके किनारे भी मिलता है। इनमें यमनी श्रेष्ठतर होता है। यह बंबई, बांदा और खम्भातसे आता है। इसके कई भेद यमन और बगदादसे भी आते हैं।

वर्णन—यह रंगीन, चमकदार, अस्वच्छ, बहुमूल्य प्रसिद्ध खनिज पत्थर है जो रंगभेदसे कई प्रकारका होता है। इनमें पिलाई लिये रक्तवर्ण यमनी अकीक सर्वोत्तम होता है। यह दूसरोंकी अपेक्षया कड़ा होता है। उत्तमतामें इसके बाद पीला है, फिर सफेद। किसी-किसीके मतसे यकृत्‌के वर्णका (लोहित) अकीक श्रेष्ठतर है। शजरी, जज़्अ, हज्रसुलैमानी (संगे सुलैमानी—Onyx), लहसुनिया (Cat's eye) और ओपल (Opal) भी अकीककी जातिके ही पत्थर हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी घटनामें सिकता (सिलिका Silica) ७०% से ९६% तक, थोड़ा-बहुत ऐल्युमिना (Alumina), ऑक्साइड ऑफ आयर्न किंवा ऑक्साइड ऑफ मैंगेनीज न्यूनाधिक प्रमाणमें होते हैं। इसकी रचना प्रायः श्याम अभ्रकके समान होती है।

कल्प तथा योग—पिष्टी, भस्म।

प्रकृति—द्वितीय कक्षामें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—हृद्य, रक्तस्तम्भन, प्रमाथी, अश्मरीघ्न और चक्षुष्य है। उपयोग—४ रत्ती से १२ रत्ती अकीक पीसकर (अकीक पिष्टी) अकेले वा सेवके शर्बतके साथ सेवन करनेसे दिलकी धड़कन दूर होती और हृदयको शक्ति प्राप्त होती है। रक्तार्श, रक्तनिष्ठीवन और रक्तस्राव, विशेषकर दुश्चिकित्स्य रजःस्रावमें अकेले या अन्य रक्तस्तम्भन औषधोंके साथ इसका उपयोग बहुत ही गुणकारी होता है। यह यकृत्प्लीहाके अवरोधोंका उद्घाटन करता और वृक्क एवं बस्तिस्थ अश्मरीको उत्सर्गित करता है। इसको सुरमामें मिलाकर या अकेला नेत्रमें अंजन करनेसे दृष्टि पुष्ट होती (दर्शन शक्ति बढ़ती) है। इसको जलाकर दांतों पर मलनेसे दाँतोंकी जड़ोंसे रक्त बहना बंद होता है और मसूढ़े दृढ़ होते हैं। इसकी राख क्षतके ऊपर भुरकानेसे तत्काल रक्तस्राव रुक जाता है। इसको पास रखनेसे क्रोधादि मनोविकारोंका वेग शांत हो जाता तथा दिलकी धड़कन और चिन्ता दूर होती है। इब्न जुह्‌र के अनुसार श्वेत रेखायुक्त आसमानी अकीक पीनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इसके मंजनसे दाँतोंकी मैल एवं दुर्गन्ध जाती रहती है। इसकी किरकिराहटरहित उत्तम भस्म उपर्युक्त रोगोंके अतिरिक्त उत्तमांगोंको बलप्रद, वाजीकर और शुक्रल है, तथा मन्द ज्वर, दोषसंमिश्रज्वरोंमें प्रयुक्त होती है। यह सूजाक तथा चिरज-व्रणोंका शोषण-रोपण करती है। **अहितकर**—कंठ एवं वृक्कको। **निवारण**—कतीरा और खरबूजे वा कद्दूके बीजका मग्ज। **प्रतिनिधि**—प्रवालशाखा और कहरुवा (मतांतरसे श्याम अभ्रक)। **मात्रा**—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशासे २ माशा) तक। भस्मकी मात्रा किसी-किसीके मतसे १ रत्तीसे लेकर ४ रत्ती (कोई-कोई १ माशे तक) देते हैं। परंतु कम मात्रामें देना लाभकर है। प्रायः मुरब्बा आँवला, सेब या गाजरसे इसकी भस्मका उपयोग कराते हैं। उसमें चांदीके दो-चार वर्क लगाकर उसके साथ अकीक भस्म देते हैं। मक्खनसे हृदयदौर्बल्य तथा हृदयोद्वेगमें अच्छा

लाभ होता है। मस्तिष्क-दौर्बल्यमें मलाईमें मिलाकर देते हैं। उन्माद, मालिन्खोलिया (मद) और ऋत्वाधिक्यमें लाभदायी है। अकीक भस्म प्रदर, प्रमेह, कास, जीर्ण फुफ्फुसक्षत, आन्त्रक्षत और विवर्धित उष्णताको दूर करता है।

आयुर्वेदीय मत—अकीक शीतवीर्य, रूक्ष, रक्तस्तम्भन, दाँतोंको दृढ़ करनेवाला और मानसिक रोगोंमें लाभ पहुँचानेवाला है। सुवर्णभस्म या सोनेके वरक (१/१६ भाग) मिलाकर बनाई हुई अकीककी पिष्टी अतिवृष्य होती है (सि० भै० म० माला)।

(२) संगेयशब

नाम—(हिं०) संगयशब, हौलदिली; (अ०) यशब, अबुक़ल्मून, हजरुल्ब (य) श्फ़, हजरुल्यशब; (फा०) यशम, संगेयशब (यशम); (सं०) हरितमणि, व्योमाश्म (नवीन); (अं०) जेड (Jade)।

उत्पत्तिस्थान—ब्रह्मदेश, दक्षिण चीन, भोट (तिब्बत), न्यूजीलैंड, मेक्सिको इत्यादि।

वर्णन—एक प्रकारका कीमती कड़ा पत्थर है। रंगके विचारसे यह कई प्रकारका होता है। उनमें सर्वोत्तम जैतूनी, फिर पिलाई लिए हरा, फिर गहरा हरा, फिर सफेदी लिए हरा और फिर सफेद है। यह जितना साफ, सरुन और स्वच्छ हो, उतना ही उत्तम है। इसकी पिष्टी वा भस्म औषधके काममें ली जाती है। कड़ाईमें पद्मराग, नीलम और वज्रके बाद इसीका नंबर आता है। इससे हमारे घोटनेके खरल बनते हैं जो रत्नों की पिष्टी बनानेके लिये उत्तम समझे जाते हैं।

इसकी सर्वोत्तम पहिचान यह है कि इस पत्थरको हथौड़ासे तोड़ा जाय तो संगयसब बड़ी कठिनाईसे टूटता है। संगपशम इसका एक निकृष्ट भेद है जो जल्दी टूट जाता है। संगयशब और संगपशम दोनों ही जहरमोहरा रंगके हल्के हरे रंगके पत्थर हैं। औषधमें यशबके लक्षणवाला पत्थर लेना चाहिये।

रासायनिक संगठन—यह उदजन मग्नम् शैलिकेतका यौगिक (क्षारातु स्फटयातु सैकतीय) है। भस्म करने पर ऊष्मिद ही रहता है। स्वाद फीका।

कल्प तथा योग—पिष्टी, भस्म, क़ुर्स संगयशब।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष; मतांतरसे दूसरेमें अथवा दूसरे दर्जेके अंतमें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह हृदयरोगोंमें तथा मस्तिष्क और स्नायुसंबंधी रोगोंमें विशेष गुणकारी है। इसका पीना हृदय और आमाशयके लिए शक्तिदायक है। विशेषतया हृदयको शक्ति देनेके लिये इसकी भस्म या पिष्टी बनाकर उपयोग किया जाता है। आमाशयशूल और आमाशयदौर्बल्य दूर करनेके लिए यह अनुपम औषधि है। अश्मरी, प्रवाहिका, सदाहमूत्र और अश्मरीमें यह अत्यन्त लाभप्रद है। यह आंतरिक जख्मोंको दूर करता और रक्त आना बंद करता है। इसको हृदयके ऊपर लटकानेसे हृत्स्पंदन (इसीलिये इसके बने सुन्दर ताबीजोंको हौलदिली कहते हैं।) और वातिक अन्यथाज्ञान दूर होता है। आमाशयके ऊपर लटकानेसे आमाशय और अन्नमार्गमें शक्ति आती है तथा गलेमें लटकानेसे यह कंठशोथको विलीन करता है। इसे जच्चाकी रानमें बाँधनेसे प्रसवसौकर्य होता है। मुखमें रखनेसे यह प्यास बुझाता है। इसकी भस्म धातुकी निर्बलता और मस्तिष्ककी उष्णताको दूर कर स्मरणशक्तिको बढ़ाती है। मात्रा—१२० मि० ग्रा० से ३६० मि० ग्रा० (१–३ रत्ती)। भस्म २–४ रत्ती; पिष्टी २–८ रत्ती। (मतांतरसे २ रत्तीसे ४–६ रत्तीतक)।

(३) लाजवर्द

नाम—(हिं०) रा (रे) वटी, लाजवर्द; (अ०) लाज़वर्द; (फा०, पं०) लाजवर्द; (सं०) राजावर्त (क), नीलाश्मा; (लै०) लैपिस लेजुली (Lapis lazuli); (अं०) अजुवर (Azure)।

वक्तव्य—फारसी लाजवर्द (लाज = नक़्श, आवर्द = लानेवाला) से 'लाज़वर्द' अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—यह फारस, अफ़गानिस्तान और मध्य एशियाकी ओरसे आता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका प्रसिद्ध अपारदर्शक कीमती पत्थर (उपरत्न) है जो जंगाली रंगका या गहरे नीले रंगका अथवा साफ नीलवर्णका एवं चमकदार होता है। इसके ऊपर सुनहले छींटे होते हैं।

वह लाजवर्द जो कड़ा, भारी, स्वच्छ, नीला और चमकदार हो, जिसपर सुनहले छींटे हों, जिसकी निलाहट में ललाई और हरियालीकी झलक हो, जिसकी रगोंमें खाक न हो वह उत्तम और जो इसके विपरीत हो उसे नकली समझना चाहिये। असलीको पीसनेपर उसका रंग नहीं बदलता। सोनेकी खानसे निकला हुआ उत्तम और ताँबेकी खानसे निकला हुआ अधम समझा जाता है। गंजबादावर्द में इसकी परीक्षण-विधि इस प्रकार लिखी है—(१) इसका चूर्ण थोड़ासा लेकर साफ पानीमें मलें और थोड़ी देर रख दें, जिसमें वह तलस्थित हो जाय। फिर देखनेपर यदि पानीमें रंग न आये; अपितु अपनी असली हालतपर रहे तो शुद्ध, वरन् कृत्रिम समझें। (२) ताँबेके गरम पत्तर या दहकते हुए कोयलेपर डालनेसे यदि यह थोड़ी देरमें जल जाय या काला पड़ जाय तो नकली और यदि अपनी पूर्व अवस्थापर रहे तो असली समझें।

वक्तव्य—यह बाहरसे आता है; किंतु इसके व्यापारका अड्डा भारतवर्षमें है। (अतिसारमें मग़्सूलकी अपेक्षया गैरमग़्सूल अधिक वीर्यवान् होनेसे अतिसारमें गैर-मग़्सूल प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त अन्य रोगोंमें इसे धोकर (मग़्सूल करके) प्रयुक्त किया जाता है। इसके मग़्सूल करनेकी विधि मेरे लिखे यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान नामक ग्रन्थके पूर्वार्धमें आये भेषजकल्पनाविज्ञानीय अध्याय ४ के प्रकरण ५ में देखें। यूनानी वैद्य (हकीम) इस प्रकार धोये हुए लाजवर्द (लाजवर्द मग़्सूल) को अर्क गुलाब या अर्क केवड़ेमें घोंट पिष्टी बनाकर उपयोग करते हैं। आयुर्वेद (र० चू० अ० १०) में इसका शोधन-मारण तथा भस्मका प्रयोग भी है।

रासायनिक संगठन—यह सिकता, हीनरजत, चूना, सर्जिका सत्व और गन्धक इनका यौगिक है। यूनानी मतसे यह थोड़ा पारा और बहुतसी उत्तम गंधकका यौगिक है।

कल्प तथा योग—लाजवर्द मग़्सूल व गैर मग़्सूल, पिष्टी, भस्म, हब्बलाजवर्द, सफूफ लाजवर्द आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क है। धोया हुआ लाजवर्द (लाजवर्द मग़्सूल) पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें खुश्क है। लखनऊके हकीम पहलेमें गरम और दूसरेमें खुश्क किंतु दिल्लीके हकीम दूसरेमें गरम व खुश्क मानते हैं।

गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, हृद्य, ग्राही, सान्द्रदोषविरेचनीय (गाढ़े दोषोंको शरीरसे बाहर निकालनेवाला), रक्तशोधक, आर्तवजनन और विशेषकर सौदावीरोगनाशक है।

उपयोग—बाह्य प्रयोगसे लेखन और रूक्षण है। अधिकतया वातिक अन्यथाज्ञान मालिन्खोलिया और उन्माद जैसे सौदावी रोगोंमें लाजवर्दका उपयोग कराते हैं। इससे विरेक् होकर ये रोग दूर होते हैं। झाईं और किलास पर इसका पतला लेप करते और व्रणोंपर बारीक पीसकर छिड़कते हैं। नेत्राभिष्यंद, नेत्रस्राव, पक्ष्मशात और नेत्रव्रण आदि जैसे नेत्ररोगोंमें इसे खूब महीन खरल करके सुरमेकी भाँति लगाते हैं। नकसीर बंद करनेके लिए इसे नाकमें फूँकते हैं और आर्तवजननके लिए इसका चूर्ण खिलाते और योनिमें फलवर्ति रखते हैं। यह आतशक (फिरंगोपदंश) की पारेसे उत्कृष्ट एवं उसके मुँह आना प्रभृति दोषोंसे रहित और निरापद औषधि है। इसलिए राजाओंको सेवन कराया जाता है। इसी कारण इसे राजावर्त कहते हैं। **अहितकर**—उत्क्लेश एवं आकुलताकारक है। **निवारण**—कतीरा और मस्तगी। **प्रतिनिधि**—हज्र अरमनी। **मात्रा**—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—लाजवर्द दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन तथा प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डुरोग, कफ और वातका नाश करनेवाला है (र० चू० अ० १०)।

(४) बिल्लौर

नाम—(हिं०) स्फटिक; (अ०) हजरुल्बिल्लौर; (फा०) बिल्लौर; (सं०) स्फटिक, शिवरत्न; (म०) स्फटिक, काचमणि; (गु०) फटक, बिलोर; (अं०) रॉक क्रिस्टल् (Rock Crystal), पेबल् (Pebal)।

वर्णन—यह एक प्रकारका खनिज पत्थर है जो नियताकार छः पहलू, छः कोना (षट्कोण), शंक्वाकार, उज्ज्वल, शीशेसे अधिक पारदर्शक अत्यन्त चमकीला और चिकना होता है। यह जमुर्रदसे नरम और कांचसे कड़ा होता है। काच पर घिसनेसे काचको काटता है। यह प्रायः सफेद रंगका होता है। पर कभी-कभी रंगीन भी मिलता है। यह जितना नरम हो उतना ही बुरा है। जो अत्यन्त सफेद और साफ हो वह उत्तम है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २·६ से २·८ और काठिन्य ८ होता है।

असली-नकलीकी पहिचान

बिल्लौरके एक टुकड़ेपर हलदी रगड़े। जब हलदीका रंग निकल आये तब ऐनकका बाल पेच खोलकर ऐनकके फ्रेमसे पृथक् करके उसका एक किनारा उसी पत्थरपर जहाँ हलदी रगड़ी थी रगड़ें। यदि वह पत्थर होगा तो हलदीका रंग पीला रहेगा, कोई परिवर्तन नहीं होगा। यदि रंगमें ललाई आ जाय तो समझ लें कि पत्थर नहीं, काँच है। साधारण प्रकारके कांचके किनारोंपर हरियाली मालूम होती है। किंतु पत्थरमें यह नहीं होती। परंतु बहुत उत्तम एवं स्वच्छ शीशेमें भी हरियाली नहीं मालूम होती।

कल्प तथा योग—भस्म या पिष्टी। मात्रा—२४० मि० ग्राम से ०.५ ग्राम (२-४ रत्ती)।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको सुरमेकी भाँति महीन पीसकर आँखमें लगानेसे जाला कट जाता और आँखकी खुजली जाती रहती है। नींदमें चौंक पड़ने और रोने तथा कम्पवात (राअशा) में इसे बालकोंके गलोंमें लटकानेसे प्रभावतः लाभ होता है। इसका यह प्रभाव है कि इसको अपने पास रखनेसे परेशान करनेवाले स्वप्न दिखाई नहीं देते और दाँतोंमें दर्द नहीं होता तथा इसको निरंतर देखते रहनेसे सिराजाल—जाला (सबल) रोगका नाश होता है। दूधवाली स्त्रीको छातियोंपर इसे लगानेसे दूध बढ़ता है।

आयुर्वेदीय मत—यह मधुर, बलकारक, अति शीतल तथा रक्तपित्त, ज्वर, दाह आदिका नाश करनेवाला है (र० तं० २३ त०)।

(५) सूर्यकान्त (आतशी पत्थर)

नाम—(हिं०, म०) सूर्यकान्तमणि, आतशी पत्थर, चकमक पत्थर; (अ०) हजरुन्नार, (हजरुल्फ़हम), हजरुल्असम; (फा०) संग आतशोजनः, संग आतशी, संगचक्माक; (सं०) सूर्यक्रान्त, अग्निगर्भ; (अं०) सन् स्टोन् (Sun-Stone), मैग्निफाइंग ग्लास (Magnifying Glass)।

वर्णन—यह स्फटिक (बिल्लौर) की जातिका एक पत्थर (उपरत्न) है जिसपर लोहा मारनेसे आग उत्पन्न होती है और धूयें जैसी गंध आती है।

कल्प तथा योग—पिष्टी तथा भस्म।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष, मतांतरसे उष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको पीसकर कण्ठमालाके जख्मोंपर छिड़कनेसे उपकार होता है। व्रणोंके (व्रणरोपण) मुखमें लगानेसे उनको भर लाता है तथा जो व्रण किसी प्रकार सूखते नहीं उनको लाभ होता है। प्रसवसौकर्यके लिए इसे कपड़ेमें बांधकर स्त्रीकी रानमें लटकाते हैं। परंतु प्रसवोपरांत इसे पृथक् कर देना चाहिये।

आयुर्वेदीय मत—यह उष्णवीर्य, मेध्य, रसायन, धारण करनेसे सूर्यको प्रसन्न करनेवाला तथा वात-कफनाशक है (आ० प्र० अ० १३)।

(६) चन्द्रकान्त

नाम—(सं०, हिं०) चन्द्रकान्त; (अ०) जुब्दुल्क़मर, हजरुल्क़मर, बुज़्ज़ाक़ुल्क़मर; (फ़ा०) दुर्रनजफ़; (अं०) मून स्टोन (Moon Stone)।

वर्णन—यह बिल्लौरकी जातिका एक प्रकारका मटियाला सफेद चमकीला और हलका पत्थर (उपरत्न) है जो पूर्णचन्द्रकी किरणोंके सामने धरनेसे इसमेंसे नीचेकी ओर पानी झरता है, ऐसी मान्यता है। चाँदीको खींचता है तथा गँदलापन सफेदीमें परिणत हो जाता है। जयपुरके जौहरी लोग इसको गोदन्त कहते हैं। यह पश्चिम तथा अफरीका और अरबमें मिलता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं पहलेमें रूक्ष, मतांतरसे अनुष्णाशीत एवं पहले दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मृगीरोगमें इसे पानीमें घिसकर नस्य देने तथा बाँधनेसे लाभ होता है। मसूरके दानेके बराबर लेकर खानेसे भी मृगी जाती रहती है। अन्यथा ज्ञान, उन्माद और दिलकी धड़कनमें भी इसके खानेसे उपकार होता है तथा रक्तस्राव बंद हो जाता है। इसे बाँधनेसे भूत-प्रेत बाधासे बालकोंकी रक्षा होती है। अहितकर—वृक्कको। निवारण—कतीरा।

आयुर्वेदीय मत—यह शीतवीर्य. स्निग्ध, हृद्य, तथा दाह, पित्तविकार, ज्वर और रक्तपित्तका प्रशमन करनेवाला है।

(७) फीरोजा

नाम—(हिं०) पि (पी, पे) रोजा; (अ०) फ़ीरोज़ज; (फ़ा०) फ़ी (पी) रोज़ः; (सं०) पेरोज (क); (ले०) टरकेसिअस टरकिना (Terchesious turchina); (अं०) टर्कोइज (Turquoise or Turkois)। वक्तव्य—फारसी 'पीरोज़ः' से 'फ़ीरोज़ज' अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—ईरान विशेषतः नेशापुर, खजंद, किरमान और शीराज तथा क्वचित् हिंदुस्तानके पहाड़ोंमें तिब्बत आदिमें इसकी खानें हैं। यह ईरानसे भारतवर्षमें आता है।

वर्णन—यह पिलाई लिए हरा अथवा हरापन लिए नीला (आसमानी) अस्वच्छ रंगका उपरत्न है जिसके नगीने प्रायः बनाए जाते हैं। हर प्रकारका फीरोजा, चर्बी, कस्तूरीकी गंध और पसीना लगनेसे खराब और बदरंग हो जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २·७५ और काठिन्य ६ है।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टिसे यह हाइड्रस फॉस्फेट ऑफ ऐल्युमिना अर्थात् ऐल्युमिनियम्, किंचित् लोह और ताँबेका फॉस्फेट् है।

कल्प—भस्म या पिष्टी।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और तीसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह हृदयको उल्लास और प्राणौज (रूह) को शक्ति देता है। इसे आँखमें लगानेसे दृष्टि बलवान् होती है और नेत्रगत क्लेद शुष्क हो जाता है। यह आँखके ढलके, रतौंधी एवं जालेमें और प्रायः नेत्ररोगोंमें गुणदायक है। यह हृदय, मस्तिष्क और आमाशयको बल प्रदान करता, दस्तोंको बंद करता, अश्मरीका छेदन करता तथा अन्त्रव्रण एवं हृत्स्पंदनमें लाभ पहुँचाता है। इसका गलेमें लटकाना हृदयको अपने प्रभावसे शक्ति देता और भयको दूर करता है। यह मृगी और तापतिल्लीमें गुणदायक है। हर प्रकारके विषमें

३॥ माशे फीरोजा मद्यके साथ खानेसे उपकार होता है। इसे ९ रत्ती खानेसे बिच्छूका विष उतरता है। **अहितकर**—वृक्कको। **निवारण**—कतीरा। **प्रतिनिधि**—ज़ोमुर्रद। **मात्रा**—१॥। माशा। भस्म १-२ रत्ती।

आयुर्वेदीय मत—यह कषाय, मधुर, शीतवीर्य, दीपन, सारक, हृद्य तथा विष और नेत्रके रोगोंको दूर करनेवाला है।

(८) वैक्रान्त (तुरमुरी)

नाम—(हिं०) तुरमुरी (ली); (सं०) वैक्रान्त, वैक्रन्तक; (म०) तु (तो) रमली; (गु०) तरमरी; (अं०) टुर्मेलीन (Tourmaline)। **वक्तव्य**—श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयने महारसोंमें परिगणित वैक्रान्तको मैंगेनीज (Manganese) और उपरत्नोंमें परिगणित वैक्रान्तको तुरमली या फ्लोर् स्पार् (Flour Spar) समझा है (रसामृतम्)।

वर्णन और भेद—यह आठ धार, आठ फलक और छः कोणवाला, चिकना, भारी तथा श्वेत, रक्त, पीला, नील, परेवे जैसे रंगका, श्यामवर्ण और काला ऐसा सात भिन्न-भिन्न वर्णका अथवा मिश्रित वर्णवाला होता है (र० चू०)। रसपद्धतिके अनुसार यद्यपि यह सात रंगका होता है तथापि कृष्णवर्ण वैक्रान्तको छोड़कर अन्य वर्णवाले वैक्रान्त औषधके लिये निरुपयोगी हैं। शोधन-मारण करनेके पश्चात् इसे औषधके काममें लेते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वैक्रान्त तीनों दोषोंको हरनेवाला, छहों रसोंवाला, देहको दृढ़ करनेवाला तथा पाण्डुरोग, उदर, ज्वर, श्वास, कास, राजयक्ष्मा और प्रमेहको दूर करनेवाला है (आ० प्र० अ० १३)।

(९) कहरुबा

यह वानस्पतिक अश्मीभूत राल है न कि खनिज पत्थर। इसलिये उद्भिज्जौषधाहार द्रव्यविज्ञानीय द्वितीय खण्डमें 'कहरुबा' शीर्षकमें इसका विवरण किया गया है।

(१०) संगसुलेमान

नाम—(हिं०) संगसुलेमान; (अ०) हजरसुलेमानी; (फा०) संगसुलेमानी; (अं०) ऑनिक्स (Onyx)।

प्राप्तिस्थान—इसकी खानें यमन, अफरीका (हबशा) और भारतवर्षमें भी मिलती हैं।

वर्णन—यह जज़्अ नामक रत्नका एक भेद है। यह एक प्रकारका पत्थर है जो अकीकको खानमेंसे निकलता है। इसके भीतर सफेद और श्यामवर्णके परत होते हैं जो चौड़ाईके रुख काटनेसे रेखायें बनकर ऊपरके धरातलमें गोलाकार और अगोलाकार प्रतीत होते हैं। इससे मनियाके दाने बनाते हैं जो सुलेमानी दाने कहलाते हैं। जिसमें पीले और लाल परत होते हैं उसे सुलेमानी नहीं कहते। यदि इस पत्थरको इस प्रकार न काटें तो रंगोंकी वृत्ताकार, वक्र और तरंगित रेखायें न मालूम हों। ऐसी रेखायें उन परतोंके कटनेसे हो जाती हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह अत्यन्त रूक्षण, तीक्ष्ण एवं लेखन है। इसके पीनेसे कामला नष्ट होता है। इसे बालकके गलेमें लटकानेसे मुखसे लालास्राव होने लगता है और बालापस्मार नष्ट हो जाता है। इसको सुरमेकी भाँति महीन पीसकर आँखमें लगानेसे जाला कट जाता है, मोतियाबिन्द आराम होता है। इसका महीन चूर्ण क्षतपर छिड़कनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है और दुष्टमांस कटकर ताजा उत्तम मांस उत्पन्न हो जाता है। स्त्रीके बालोंमें इसे बाँधनेसे शीघ्र प्रसव हो जाता है। इसको पास रखनेसे अर्दित (लकवा) आराम होता है।

किल्स (सुधा)

प्राक्कथन

सुधा (चूना Calcium) मानव-शरीरका एक प्रधान घटक है। यह अस्थि आदिमें प्रचुर प्रमाणमें पाया जाता है। शरीरमें सुधाकी कमीसे मनुष्य फक्क, अस्थिवक्रता प्रभृति अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित हो जाता है। उक्त अवस्थामें उसे आरोग्यलाभके लिये बाह्य चूनाकी आवश्यकता पड़ती है। चूना सृष्टिमें पार्थिव (मादनियात), उद्भिज्ज (नबातात) और जङ्गम (हैवानात) इन तीनों प्रकारके पदार्थोंसे प्राप्त होता है और औषधके काममें आता है। इसीलिये यूनानी वैद्यकमें इन तीनों प्रकारके चूनोंका चिकित्सामें पुष्कल व्यवहार देखनेमें आता है।

चूना प्रकृतिमें प्रधानतया पार्थिव वा खनिज पत्थरों वा कंकड़ों, जैसे—चूनेके कंकड़ (Lime Stone) को भस्म कर प्राप्त किया जाता है जो औषधके काममें आता है। गोदन्ती, खड़िया, सफेद सुरमा आदि विविध प्रकारके चूनाके ही उदाहरण हैं जिनका वर्णन आगे किया गया है।

इनके अतिरिक्त उद्भिज्ज क्षारोंमें भी चूना मिलता है तथा उनके उपयोगसे शरीरमें चूनेकी कमीकी पूर्ति एवं उसकी कमीसे होनेवाले रोगोंकी शांति होती है।

इन उभय प्रकारके चूनोंकी अपेक्षया जंगमोंके कठोर भागोंसे जो उत्पत्तिकी दृष्टिसे जंगम होनेपर भी रचनाकी दृष्टिसे पार्थिव पाषाणोंसे अधिक सादृश्य रखते हैं तथा अपने गुण-कर्ममें खनिज द्रव्योंकी अपेक्षया किसी प्रकार कम नहीं होते, भस्मकी विधिसे प्राप्त चूनेका चिकित्सामें पुष्कल व्यवहार होता है। मानवशरीरगत चूनासे, सैन्द्रियक चूना होनेके कारण रचनामें अधिक सादृश्य होनेसे इसका शरीरके लिये अधिक उपयोगी होना स्वाभाविक भी है।

इस प्रकार (जांगम) चूनाकी प्राप्ति निम्न जंगम द्रव्योंसे होती है। जैसे—मोती, मूँगा (शाखा व जड़) आदि कीटगृहसे, शुक्ति (साधारण तथा मुक्ताशुक्ति Bi-valve Shells), शंख, कौड़ी (Conch Shells Cowry), घोंघा (Snail Shells) तथा कच्छपपृष्ठ आदिसे जो विशेष प्रकारके जलजन्तुओंके ऊपरी आवरण है। इनमें तथा इनके अतिरिक्त कुक्कुटाण्डत्वक्, टिड्डी और केकड़ा तथा इनके ऊपरी आवरण, सावरशृंग वा मृगशृंग आदिमें जिनकी रचना अन्य प्राणियोंकी अस्थियोंके समान होती है, प्रचुर प्रमाणमें चूना पाया जाता है। परंतु इनमें हड्डियोंकी अपेक्षया चूनकज्जलेत (कॅल्सियम् कार्बोनेटके रूपमें चूना और चून स्फुरेत (कॅल्सियम् फॉस्फेट) के रूपमें फॉस्फोरस अधिक होता है। इनकी भस्ममें चूनफॉस्फुरेत (फॉस्फेट ऑफ लाइम) अधिक प्रमाणमें पाया जाता है (पाणिज अस्थियोंमें इनका प्रमाण बराबर होता है, जो सार्वदैहिक दुर्बलता, नाडीदौर्बल्य, कम्पवात और प्रारम्भिक उरक्षतमें एक परमगुणकारी औषध स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि इनकी भस्में भी सामान्य दौर्बल्यमें प्रयुक्त होती है तथा शरीरावयवोंको शक्ति देती है।

टिड्डी (Lobsters) और केकड़ेकी भाँति कच्छपपृष्ठकी रचनामें भी फॉस्फोरस (चून फास्फुरेतसे मिला हुआ चूनकज्जलेत) अधिक प्रमाणमें होता है। इसलिये इसकी भस्म फुफ्फुसरोगों उरःक्षत और राजयक्ष्मामें प्रयुक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त इनमें तथा विशेषक इनकी हड्डियोंमें चूना काफी प्रमाणमें होता है। अतएव इनकी मसी वा भस्म उरःक्षत रोगमें विशेष उपयोगी मानी जाती है। इसके उपयोगसे भूख बढ़ जाती है। खाँसी और कफमें कमी आ जाती है और दस्त बन्द हो जाते हैं।

यही कारण है कि यूनानी वैद्यकमें तथा आयुर्वेदमें भी इन चूनोंका इतना अधिक व्यवहार होता है। इनका विशेष विवरण और गुण-प्रयोग इसी ग्रन्थके जाङ्गमद्रव्यविज्ञानीय विभाग २ में उन-उन प्राणियोंके वर्णन प्रसंगमें किया गया है।

एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि मोती, मूँगा, विविध प्रकारकी शुक्तियाँ (सीपियाँ), शंख, घोंघा, कुक्कुटाण्डत्वक् आदि सुधाप्रधान प्राणिज अवयव महीन पीस लेने या सिर्फ आगमें जला लेनेसे भी अपने गुण-कर्म-प्रभाव जो उनमें निहित हैं, प्रकट करते हैं। गुणाधान और गुणवर्धनके लिये विविध प्रकारकी वृटियोंके साथ इनकी भस्म बनाकर भी उपयोग करते हैं।

प्रकरण ३

(१) चूना

नाम—(हिं०) चूना; (अ०) किल्स, जस्स; (फा०) आहक, नूरा, गच; (द०) चुन्ना; (सं०) सुधा, चूर्ण; (बं०) चून (ण), चूना; (म०) चुना; (गु०) चूनो; (क०) सुण्णा; (मल०) नूरा; (ले०) कै(का)ल्क्स (Calx); (अं०) लाइम (Lime), क्विक लाइम् (Quick lime)।

वक्तव्य—लैटिन 'कैल्क्स' अरबी 'किल्स' से व्युत्पन्न है। उपर्युक्त,बुझा या अनबुझा उभय प्रकारके चूनेके साधारण नाम हैं; परंतु इनका प्रयोग प्रायः बुझा हुआ चूनाके अर्थमें होता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका तीक्ष्ण क्षार भस्म है जिसको एक विशेष प्रकारके सुधा पाषाण (Lime Stone) अर्थात् चूने के कंकड़ (Calcium Carbonate) को भट्ठियोंमें तीव्र अग्नि देकर बनाया जाता है। संगमरमर तथा अन्य पत्थरों, शंख, घोंघा आदि सैन्द्रियक द्रव्योंको भस्म करनेसे भी चूना प्राप्त होता है। यह सफेद रंगकी सख्त डलीके रूपमें और निर्गंध होता है। इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है। जबतक इन डलियोंको पानीमें न बुझाया जाय, उसको आहक आबनारसीदा (अनबुझा चूना) कहते हैं। परंतु जब इन डलियोंको पानीमें भिगो दिया जाता है या उनपर पानी डाल दिया जाता है, तब उसको आहक आबरसीदा (बुझा हुआ चूना) कहते हैं। जब इसपर जल डाला जाता है, तब यह अत्यन्त उष्ण बाष्प छोड़ता है और फूलकर चूर्णसा बन जाता है।

चूर्णोदक (सुधोदक) कल्पना—बुझा हुआ चूना १ तोला एक सेर परिस्रुत जलके साथ एक बोतलमें डाल दें और बार-बार हिलायें। इसके उपरांत कुछ देरतक रख छोड़ें। फिर उसके ऊपरका स्थिर स्वच्छ पानी निथार लें। यही आबे आहक (चूर्णोदक) है। इसको हरे रंगकी शीशीमें डाट लगाकर अँधेरी जगहमें रखना चाहिये।

यूनानी वैद्यकमें इसके गुण-कर्म तथा प्रयोग भी दिये हैं। नाम—(अ०) जब्सीन, जस्स; (फा०) संगेगच, संगेशीरीं, संगेगच। 'जब्सीन' संभवतः 'जिप्सम्' (Gypsum) से व्युत्पन्न है।

प्रकृति—अनबुझा चूना चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म—व्रणकारक, दहन, लोमशातन, विलयन और व्रणशोथपाचन; बुझा हुआ चूना संशमन, शीतजनन, व्रणलेखन, रक्तस्तम्भन। चूनेका पानी आमाशयमें दूध फटनेको रोकता है और आमाशयका सुधार करता है। उपयोग—बुझा हुआ चूना हिंदुस्तानमें पानपर कत्थाके साथ लगाकर खाया जाता है। इसके प्रयोगबाहुल्यसे दन्तमूल नष्ट हो जाते हैं। अनबुझे चूनेको दूने हड़तालके साथ गरम पानीमें मिलाकर लोमशातनके लिये त्वचापर लगाते हैं। (इसे थोड़ी देर बाद गरम पानीसे धो दें और फिर गुलरोगन लगा दें। अधिक कालतक लगाये रहनेसे त्वचापर व्रण पड़ जाते हैं)। इसे हड़तालके साथ मस्सोंपर लगानेसे वे गिर जाते हैं। सूजनको विलीन करने और पकाकर फोड़नेके लिये बुझे हुए चूनेका लेप किया जाता है। धोये हुए चूनेको घीमें मिलाकर साधारण व्रणों, व्रणित कच्छू और अग्निदग्धावयवपर लगानेसे बहुत शीघ्र लाभ होता है। चूनेके पानीके समप्रमाण अलसी या गरीका तेल मिलाकर मरहम बनायें और अग्निदग्धावयव या स्तनाग्रोंके ऊपर लगायें तो दाह एवं वेदना तत्क्षण शांत हो जाती है। धोया हुआ चूना ताजे ज़ख्मोंपर छिड़कनेसे रक्तस्रावको बन्द करता और वेदनाको शांत करता है। कपड़ेकी एक बत्तीको अंडेकी सफेदीमें लथेड़कर और उसके ऊपर बुझा हुआ चूना छिड़ककर नाकमें रखनेसे नकसीर बन्द हो जाता है। विसूचिकामें समप्रमाण चूनेका पानी और प्याजका रस दोनोंको मधुमें मिलाकर चटाते हैं। जिनके आमाशयमें दूध फट जाता है, भलीभाँति नहीं पचता और वह फटा हुआ दूध वमनके द्वारा निकालना है, उक्त दोषनिवारणके लिये चूनेका पानी दूधमें मिलाकर उपयोग किया जाता है।

चूनाके विषलक्षण—कभी-कभी भूलसे अधिक प्रमाणमें चूना खा लिया जाता है जिससे मुख, अन्नमार्ग, अन्त्र और आमाशयमें क्षत हो जाते तथा दाह और वेदना प्रगट हो जाती है और मरोड़के साथ खूनके दस्त आने लगते हैं। और कभी अंतिम अवस्थामें हस्त-पाद शीतल हो जाते हैं तथा धड़कन एवं मूर्च्छा होती है, गरम पानीमें घी मिलाकर पिलाते और बार-बार कै कराते हैं। इसके बाद ताजे गोदुग्धमें बादामका तेल मिलाकर या अंडेकी सफेदी फेंटकर मिलाते हैं। मात्रा—चूर्णोदक २॥ तोलेसे १० तोलेतक और एक वर्षके स्तन्यपायी शिशुको २ माशेसे ५ माशे तक।

नव्य मत—चूनेका पानी अम्लपित्त, कृमि, शूल और ग्रहणी-विकारको दूर करता है। इससे कुल्ला करनेसे मुखपाक (मुँहके छाले) अच्छा होता है। इसे ५–१० तोला छोटी पिचकारी द्वारा गुदामें चढ़ानेसे स्थूलान्त्रस्थ कृमि नष्ट होते हैं। कमर, घुटने आदिके दर्द तथा यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिपर चूना और शहद या चूना और गुड़ मिलाकर लेप करनेसे लाभ होता है। चूना, अंडेकी सफेदी और शहदको खूब मिलाकर, कपड़ेपर लगाकर, जहाँ चोट-मार लगी हो, वहाँपर इसकी पट्टी लगा देनेसे बड़ा लाभ होता है।

(२) गोदन्ती (हड़ताल गावदन्ती)

नाम—(हिं०) गोदन्ती, गोदन्ती हड़ताल; (लाहोर) गोदन्ती; (बम्ब० बाजार) गोदन्ती, घापाण; (म०) गोदन्ती, शिरगोला; (गु०) गोदन्ती, घापाण, चिरोडी; (दक्षिण भारतके सिद्ध संप्रदाय) कर्पूरशिला; (लें०) कैल्सियाई सल्फास (Calcii Sulphas); (अं०) कैल्सिअम् सल्फेट (Calcium Sulphate), जिप्सम् (Gypsum), सेलेनाइट (Selenite)।

वर्णन—यह एक खनिज पत्थर है। बाजारमें यह श्वेत चमकदार पत्रमय शिला या पहलदार या पासेदार टुकड़ोंके रूपमें मिलती है। रासायनिक दृष्टिसे यह सुधा और गन्धकका समास (कैल्सिअम् सल्फेट Calcium Sulphate—सुधागन्धित) है। यद्यपि इसे गोदन्ती हड़ताल कहा जाता है, तथापि यह हड़तालका कोई भेद नहीं है। प्रायः इसकी भस्म बनाकर जिसे प्लास्टर ऑफ पेरिस (Plaster of Paris) कहते हैं, औषधमें प्रयुक्त करते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह हर प्रकारका ज्वर और श्लेष्मरोगनाशक, श्लेष्मनिःसारक, संग्राही और रक्तस्तम्भन है। इसकी भस्म उरःक्षत और राजयक्ष्मामें प्रयुक्त होती है। हर प्रकारके ज्वर विशेषतः ऋतुज्वरोंमें गोदन्तीकी भस्मका उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त कफज रोगों, कास, कृच्छ्रश्वास, आमवात, सूतिकारोग, उरःक्षत और राजयक्ष्मामें भी इसे खिलाया जाता है। संग्राही एवं रक्तस्तम्भन होनेके कारण अतिसार और रक्तस्राव बन्द करनेके लिये भी यह प्रयुक्तकी जाती है। मात्रा—१२० मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० या १–४ रत्ती (मतांतरसे १–२ माशा)। अनुपान—शहद, गायका दूध या घी।

आयुर्वेदीय मत—गोदन्ती भस्म शिरःशूल, ज्वर, क्षय, कास, पाण्डुरोग, उरःक्षत, बालशोष और श्वेतप्रदरमें विशेष गुणकारक है (रसामृतम्)।

(३) खड़िया

नाम—(हिं०) खड़ि (रि) या, दुधिया, दुद्धी (विलायती चूना); (अ०) क़ोमूलिया; (सं०) खटिका, खटिनी; (बं०) खड़ी (खड़ीमिट्टी), फूलखड़ी; (म०) खडू; (गु०) खड़ी, खड़ी माटी; (लें०) क्रेटा (Creta), क्रेटी (Cretae); (अं०) चॉक (Chalk), मार्बल (Marble)।

वर्णन—खड़ियाके बिषमाकार, सफेद, स्वादरहित, भंगुर, जीभपर चिपकनेवाले और विरूप टुकड़े होते हैं। कभी-कभी यह चूर्णरूपमें भी मिलती है। यह कार्बोनेट ऑफ लाइम (कैल्सियम् कार्बोनेट–कैल्सियाई कार्बोनास) का यौगिक है जो त्रिविधात्मक (जाङ्गम-औद्भिद-पार्थिव) सृष्टिमें पायी जाती है। इसको पानीमें घोलकर कपड़ेसे छानकर ३-४ घंटा पड़ा रहने देवें। पुनः ऊपरका पानी निथारकर फेंक देवें और नीचे बैठी हुई मिट्टीको सुखाकर काममें लेवें। इस प्रकार शुद्ध की हुई खड़ीको लेटिनमें क्रेटा प्रिपेरेटा (Creta Preparata) और अंगरेजीमें प्रिपेयर्ड चॉक (Prepared Chalk) कहते हैं। उपर्युक्त हिंदी और बंगला नाम इसीके हैं। यह शुद्ध कार्बोनेट ऑफ लाइमका यौगिक है जो औषधके काममें आता है। इसके यह दो भेद होते हैं—(१) मुलायम (फूलखरी, चाखरी) और (२) कड़ी (काटखरी)।

यूनानी ग्रन्थोंमें इसके यह तीन भेद लिखे हैं—(१) सफेद, उज्ज्वल और सुगंधित (कर्पूरगंधी); (२) किंचित् नीलवर्ण, चिकनी और स्निग्ध होती है, देरमें टूटती है और पानीमें शीघ्र नहीं घुल सकती। यह स्पेन और अर्मीनियासे आती है। ये दोनों भेद श्रेष्ठतर हैं; (३) काली होती है। यह भी स्पेनमें मिलती है। यह प्रथम दोनों भेदोंसे निकृष्ट होती है। सुवर्णगैरिक (सोनगेरू) खड़ीका रक्त भेद (Red chalk) है।

मात्रा—२॥–५ रत्ती।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष। मतांतरसे इसमें शीत एवं ग्राही और उष्ण एवं विलायक ऐसे दो वीर्य होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—व्रणरोपण, अन्त्रव्रणनाशक, आमाशयगत द्रवोंको सुखानेवाली, अन्य हर प्रकारकी मिट्टीकी अपेक्षया अधिक शोथविलयन और दाहप्रशमन है। यह पुराने जख्मों और फोड़ोंको भर लाती है। कठिनतासे भरनेवाले जख्मोंपर इसे जलाकर और धोकर प्रयोग करनेसे वे भर जाते हैं। यदि गर्मीके कारण सूजन हो जाय या आँख आ जाय तो इसके लेपसे लाभ होता है। प्रायः मलहरोंमें इसका समावेश करते हैं। आगसे जलनेपर इसके लेपसे फोला नहीं पड़ता। यह बालकोंके गंजको सुखाती है; पित्तातिसार एवं रक्तष्ठीवनको बन्द करती है तथा गुदाके दाहको शांत करती है। सात माशे खड़ियाको सात तोले पानीमें घोलकर स्थिर होनेके लिये रख देवें। जब मिट्टी नीचे बैठ जावे तब ऊपरका साफ निथरा हुआ पानी लेकर ऐसे रोगीको पिलावें जिसे चोट लगी हो और पुरानी हो गई हो। इससे उपकार होता है। खड़िया, सुमाक और बबूलका गोंद प्रत्येक समभागका महीन चूर्ण बनावें। इसमेंसे १४ माशे लेकर उतना ही शहदमें मिलाकर चाटनेसे पुराने दस्त बन्द हो जाते हैं। जीर्ण अतिसारकी यह अनुपम औषधि है।

आयुर्वेदीय मत—खड़िया मिट्टी मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, ग्राही तथा पित्त, दाह, व्रण, कफ, रक्तस्राव और नेत्ररोगोंको दूर करनेवाली है (रसामृतम्)।

(४) सुरमा सफेद

नाम—(हिं०) सफेद सुरमा; (फा०) सुर्मए सफेद; (अं०) केलसाइट (Calcite)।

वर्णन तथा गुण-कर्म और उपयोग आदि—यह सफेद रंगके परतदार स्फटिकके रूपमें बाजारमें सफेद सुरमाके नामसे मिलता है। यह सुरमाका योग नहीं, अपितु चूना और कोकिलाम्लका यौगिक (कैल्सिअम् कार्बोनेट Calcium Carbonate) है। वि० दे० 'सुरमा' गत वक्तव्य २।

सफेद सुरमेके चूर्णको घीकुआरके रसमें मर्दनकर गजपुटमें पकाकर भस्म बनाते और गोदन्तीभस्म (कुश्ता गावदन्ती) के समान उसका उपयोग करते हैं।

प्रकरण ४

रमल-रेग (सिकता) प्रधान यौगिक

(१) बालू

नाम—(हिं०) बालू , रेत; (अ०) रम्ल; (फा०) रेग; (सं०) सिकता, वालुका, (शर्करा–रेत); (म०) रेती, बालू ; (गु०) रेतो, वेलू ; (लें०) सिलिकम् (Silicum), सिलिका (Silica); (अं०) सिलिकोन् (Silicon), सेन्ड (Sand)।

वर्णन—रेतीले पत्थरके नदियोंके प्रवाहसे टूटकर बने हुये श्वेत कणोंको बालू या रेत (रेग-रमल) कहते हैं। सफेद रंगकी बालू शुद्ध सिलिका होती है। इसमें लाल या पीला रंग लोहेके मिश्रणके कारण होता है। यूनानी वैद्यकमें वह रेत औषधके काममें ली जाती है जो नदीके तटपर तथा नहरोंमें और संगरेजोंके स्थानमें मिले।

प्रकृति—इसमें सर्दी और खुश्की अधिक है यहाँतक कि इसे तीसरे दर्जेमें खुश्क बतलाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको पीसकर योनिमें रखनेसे आर्तवस्राव बन्द होता है तथा गर्भनिरोधक है। बालूको गरम कर गड्ढेमें भरकर उसमें (इस्तिस्काड लहमी) को इस प्रकार बैठावें कि उसका सिर गड्ढेसे बाहर रहे और उसे किसी कपड़ेसे ढँक देवें। कुछ दिन ऐसा करनेसे यह रोग निर्मूल हो जाता है। यदि कुस्वाद एवं दुर्गन्धित पानीके घड़ेमें बालू डालकर रख देवें तो इसके प्रभावसे पानी साफ, निर्गन्ध एवं सुस्वादु हो जाता है। बालूको गरम करके उसमें सेंकना बाजरे और नमकके साथ सेंकनेके बराबर है।

आयुर्वेदीय मत—बालू मधुर, शीतवीर्य, लेखन तथा संताप, श्रम, व्रण और उरःक्षतको दूर करनेवाली है। बालूका स्वेद करनेसे हाथ-पाँवका शैत्य और वायुका नाश होता है। (ध०, नि०; भा० प्र०)। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३–६ माशा)। **अनुपान**—दूध।

(२) संगजराहत

नाम—(हिं०) सरगो(को)ला, सेलखड़ी; (अ०) हज्रुल् जराहत, हज्र एराबी, हज्र ज़ख्म; (फा०) संगेजराहत, संगे ज़ख्म; (सं०) दुग्धपाषाण; (म०) शंखजिरें; (गु०) शंखजीरुं; (मा०) सं(सिं)गराज, घीयाभाटा; (पं०) दूधपथरी; (सिं०) सिंगजिरो; (म०, गु०) घा पाषाण; (ता०) बलपम; (अं०) सिलिकेट ऑफ मॅग्नेसिआ (Silicate of Magnesia), सोप स्टोन् (Soap Stone)।

वर्णन—यह एक प्रकारका पत्थर है जो घाव भरनेके लिए बहुत उपयोगी होता है। इसलिए संगेजराहत (संग = पत्थर, जराहत = घाव) कहलाता है। यह सफेद और चिकना डलीके रूपमें होता है; किंतु यह जितना ही नीलवर्ण हो, उतना ही श्रेष्ठ है। सेलखड़ी इसका एक भेद है। यह वास्तवमें सिकता और मैग्नेशिया (मैग्नेशियम् सिलिकेट—Magnesium Silicate) का ही एक यौगिक होता है। इसकी जानकारी बहुत पीछे की है, प्राचीन नहीं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतेन शीतवीर्य।

गुण-कर्म—उपशोषण, रक्तस्तम्भन और संग्राही (तथा व्रणरोपण एवं दन्तरोगहर) है। **उपयोग**—उपशोषण होनेके कारण व्रणशोषणके लिए इसे मलहरोंमें डाला जाता है तथा इसको महीन पीसकर अकेले क्षतोंपर एवं रक्तस्तम्भनके लिए अवचूर्णन करते हैं। रूक्षण होनेके कारण शुक्रप्रमेह, योनिस्राव, वृक्कबस्तिव्रण, सूजाक और आमाशयमें क्लेदाधिक्य होने पर इसका चूर्ण उपयोग करते हैं। रक्तातिसार (एवं प्रवाहिका) में इसे गायकी

छाछ (या दही) के साथ खिलाते हैं। उपशोषण एवं संग्राही होनेके कारण इसे दाँतोंकी दृढ़ता, शीताद और दंतलेखनके लिये दंतमंजनोंमें डालते हैं। मतांतरसे यह प्रत्येक श्लेष्मविकार, प्रसेक, कास, रक्तष्ठीवन, पित्तज्वर, रक्तपित्त, नकसीर, आमाशयव्रण और मुखस्फोटमें लाभदायक है। कहींसे भी रक्तस्राव होता हो, ऋतु अधिक आ रहे हों, रक्त बन्द न होता हो तो इसकी भस्मके सेवनसे उपकार होता है। सद्योव्रणपर संगजराहतका चूर्ण छिड़कनेसे रक्तस्राव बन्द करता है। **अहितकर**—बस्तिको। **निवारण**—घृत, शर्करा आदि। **प्रतिनिधि**—मुलतानी मिट्टी। **मात्रा**—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

(३) संगेरेशम (कौशेयाश्मा)

नाम—(फा०) संगेरेशम, संग पलीतः; (अ०) हजरुल्फ़तीला; (सं०) कौशेयाश्मा; (द० भारत) कल्नार (र); (अं०) एज्बेस्टोस् (Asbestos)।

वर्णन—यह गारीकूनके समान एक नरम और रेशेदार पत्थर है जो एकत्र दबाये हुये रेशमके तंतुओंकी तरह और कुछ ललाई-पिलाई लिये हुये सफेद रंगका होता है। यह रूईके समान कुट जाता है और बत्ती (फतीला) बन जाता है। यह उष्णताका वाहक नहीं है। इसलिये अग्निसे बचानेके लिये इसका उपयोग करते हैं। यह एक प्रकारका सिकता और मैग्निसियाका यौगिक (सिलिकेट् ऑफ मैग्निसियम्—Silicate of Magnesium) है।

उपयोग—दक्षिण भारतके वैद्य इसका दन्तमञ्जन बनाते हैं और इसकी भस्म बनाकर दन्तपूय, प्रमेह और प्रदरमें प्रयोग करते हैं (रसामृतम्)।

(४) जहरमोहरा (फादजहर मादनी)

नाम—(हिं०) जहरमोहरा; (अ०) हजरुस्सम्म, फ़ादज़हरमादनी, फ़ादजे (बादज़हर) मादनी; (फा०) जहरमोहरः, बाद (पाद) ज़हर कानी; (सं०) नागाश्मा, नागपाषाण, हरिताश्म (नवीन); (लदाक) येषम्; (अं०) सर्पेन्टाइन (Serpentine), सर्पेन्ट स्टोन (Serpent Stone), बेजोर स्टोन (Bezoar Stone)।

प्राप्तिस्थान—चीन, खता (खोतान), तिब्बत, लद्दाख, नेपाल, गढ़वाल, खुरासान और मध्य भारतकी पर्वतमालायें।

वर्णन—यह एक दुग्धपाषाणजातीय हरा, पीला, सफेद, अंगूरी रंगका बहुरंगी (कई प्रकारके रंगका) चिकना चमकदार खनिज पत्थर है। उनमें पिलाई लिये हरे अर्थात् अंगूरी रंगका जहरमोहरा ख़ताई (खुतन देशका पत्थर) श्रेष्ठतर है। इसकी खान खता पर्वतमालामें है।

जहरमोहराके सामान्य लक्षण—यह बिना रेशेका कलमी रवादार पत्थर है। सुगंध, सुंदरवर्णता, सफाई, मृदुता, पिसेपर चिकना और सफेद होना इसके सामान्य लक्षण हैं।

यह पत्थर वैसे तो रंगमें सफेद होता है, पर इसमें कुछ हरी-पीली झलक होती है। वजनमें हलका और हाथसे स्पर्श करनेपर चिकना लगे, उसे उत्तम माना जाता है। इस पदार्थका विवरण आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता है। यह एक यूनानी द्रव्य है, परंतु इसकी उपयोगिता देखकर आयुर्वेदवालोंने अपना लिया है।

रासायनिक संगठन (रचना)—यह चूनजम्, स्फटिकम्, सिलिकम् (सिकता), मैग्नेसियम् और लौहका यौगिक (Silicate of Magnesia and Iron) है। भस्म करनेपर यह अति मन्दक्षार रूपमें होता है।

कल्प तथा योग—पिष्टी, भस्म; खमीरा जहरमोहरा।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—सौमनस्यजनन, उत्तमाङ्गोंको बलप्रद और प्रधानतः वाजीकर एवं ओजोवर्धक (मुक़व्वी अरवाह) है। इसे विषघ्न भी वर्णन किया जाता है। **उपयोग**—यह हृत्स्पंदन और हृदयदौर्बल्य जैसे रोगोंमें प्रयुक्त किया जाता है। प्लेग (ग्रन्थिक सन्निपात) और विसूचिका[1] आदि जैसे जनपदोद्ध्वंसक व्याधियों तथा शीतलामें, मधुसे तथा वमन बन्द करनेके लिये इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। हर प्रकारके विषको दूर करनेके लिये इसको घिसकर पिलाया जाता है। सर्प और वृश्चिकादिके दंशमें इसे घिसकर दष्टस्थानपर लेप किया जाता है। प्रायः मनःप्रसादकर एवं बल्य गुटिकाओं और माजूनोंमें इसे डालते हैं। **प्रतिनिधि**—ज़बरजद्द। **मात्रा**—२४० मि० ग्रा० से १ ग्राम (२ रत्तीसे १ माशा) तक। **अनुपान**—अर्कगुलाब, अर्ककेवड़ा या गावजबानके फूलोंका अर्क। अनेक प्रकारके अतिसार और बालकोंके रोगोंमें यह असीम गुणकारी सिद्ध होता है।

(५) हज्रुल्‌यहूद (संगेयहूद)

Phylum—Echino dermata.
Class—Echinodea.
Order—Regularia.

नाम—(हिं०) बेरपत्थर, पत्थरबेर, हजरतबेर; (अ०) हज्रुल्‌यहूद, जैतून बनी इसरायल, हजरुज़्ज़ैततून; (फा०) संगेजहूदान, संगेयहूद; (सिर०) कीफ़ा यहूदिया; (सं०) अश्मभिद्, बदराश्म; (गु०) हजरत बोर; (अं०) फॉसिल एन्क्रिनाइट (Fossil Encrinite), स्पाइन ऑफ सिडरिस (Spine of Cidaris)।

प्राप्तिस्थान—यह स्यामके बेरूत पर्वत और मक्का-मदीनामें बहुत होता है। यह अरबसे भारतवर्षमें आता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका बेर या बलूत (सीतासुपारी—बाँझकाफल) की आकृतिका लंबगोल, दोनों सिरोंपर नोकदार, लगभग १-१॥ इंच लंबा पत्थर है जो जमीनके भीतर पौधे एवं जीवोंके पथरा जानेसे बन जाता है। बाहरसे इसका रंग मटियाला भूरा होता है और उसपर आड़े गहरे भूरे रंगकी समानान्तर झुर्रियाँ पड़ी होती हैं। भीतरसे यह हरापन लिए हुए सफेद होता है। इसमें कोई स्वाद नहीं होता। यह जलमें शीघ्र पिस जाता है।

रासायनिक संगठन—यह चून कज्जल शैलिकेत अर्थात् चूना और सिकताका यौगिक (Silicate of Lime) है। रचनामें संगेसरमाही इसके समान होता है जो गुणकर्ममें संगे इसमा (Silicate and Sulphate of Lime) के समान है। भस्म करनेपर यह कज्जल ऊष्मिद बन जाता है जो एक हलका क्षार है। इसका रंग बादामीसे भी हलका मटमैला और स्वाद क्षारीय तेजीयुक्त होता है।

कल्प तथा योग—पिष्टी, कुश्ता हज्रुल्‌यहूद, कुश्ता हज्रुल्‌यहूद अकरबी, माजून हज्रुल्‌यहूद।

पिष्टीनिर्माण-विधि—बेरपत्थरको गरम जलसे धोकर, कपड़ेसे पोंछ-सुखा, सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण बनाकर अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्कमें तीन दिन मर्दन कर, छायामें सुखाकर शीशीमें भर लेवें। कई लोग इसको केलेके खम्भेके रस या मूलीके स्वरसकी सात भावना देकर पिष्टी बनाते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है।

---

[1] विसूचिका (हैजा) में जहरमोहरा, दरियाई नारियल और पपीता (अं० इग्नेसिया) को अर्क गुलाबमें घिसकर देते हैं।

गुण-कर्म—वस्ति और वृक्कपर वेरपत्थर मूत्रल तथा अश्मरीघ्न कर्म करता है। यह पित्तशामक, वमनको बंद करनेवाला, अश्मरी शूलहर, मूत्राश्मरीको तोड़नेवाला तथा अश्मरी और शर्कराको मूत्रमार्गसे निकालनेवाला है और पथरी पैदा नहीं होने देता है। **उपयोग**—अश्मरीके उत्सर्गके लिए वेरपत्थरको अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ पिष्टी या भस्मके रूपमें खिलाया जाता है। यह जमे हुए खूनको फाड़कर उत्सर्गित कर देती है। इससे भिन्न इसे मूत्रकृच्छ्र और सूजाकमें भी देते हैं। मूत्रावरोधमें इसको जलमें घिसकर पेडूपर लेप करते हैं। बहुतसे यूनानी चिकित्सक वेरपत्थर को विना भस्म किये इसी प्रकार उसे पानीमें घिसकर अश्मरी रोगीको पिलाते हैं। अनुपान गोखरू या कुलथीका काढा, सोरा, कद्दूके बीज और गोखरूको पीसकर इनका पानी (हिम) निकालकर उसके साथ सेवन कराते हैं। **मात्रा**—०·५ ग्रामसे १ या १·५ ग्राम (४ रत्ती से १-१॥ माशा) तक (भस्म वा पिष्टी)। **अहितकर**—यकृत्को। **निवारण**—गोंद, करफ्स। **प्रतिनिधि**—करफ्स।

(६) क़ल्बुल्हजर

नाम—(हिं०) पत्थरका दिल, पत्थरका जीव, पत्थरकी करे(ले)जी, पत्थरका जिगर (यकृत्); (अ०) क़ल्बुल्हजर (कल्ब = दिल, हृदय; हजर = पत्थर); (सं०) पाषाण जीव; (अं०) ट्रेमोलाइट (Tremolite)।

प्राप्ति—जिस प्रकार जमालगोटेके बीजके दो टुकड़े करनेके पश्चात् भीतर पित्ता या हरी पत्ती निकलती है उसी प्रकार बड़े-बड़े वजनी पत्थरोंको काटने व तोड़नेसे उनके भीतरसे यह पथरीली मुलायम चीज पृथक् पड़ी हुई मिलती है। जिस प्रकार हर सजीव शरीरके भीतर हृदय रहता है जो उनके जीवनका आधार होता है उसी प्रकार परमात्माने अपनी मायासे बड़े-बड़े पत्थरोंके भीतर एक दिलकी तरहका पत्थर पैदा कर रखा है जो इनके लिये दिलका ही दरजा रखता है। इनके जीवनका यह तत्व है। इसीलिये इसे 'कल्बुलहजर' या 'पाषाणका जीव' कहते हैं।

भेदोपभेद—जब बड़े-बड़े वजनी पत्थरोंको काटा या तोड़ा जाता है तो भिन्न-भिन्न प्रकारका पत्थर उनके बीचमेंसे निकलता है। इस समयतक मेरे देखनेमें तीन प्रकारका कल्बुलहजर आया है—

१—सर्वथा बिल्लौर या स्फटिककी तरहका कठोर और रंगमें भी सफेद जो काले रंगके पत्थरोंमेंसे निकलता है। इसे बिल्लौरी क़ल्बुल्हजर कहते हैं।

२—वंशलोचनकी तरहका हलका और मृदु जो हल्के गेरू रंगका होता है। इसे तबाशीरी कल्बुल्हजर (वंशलोचनी पत्थरका दिल) कहते हैं।

३—यह लाल रंगका और कठोर होता है। इसको तोड़नेसे रेत जैसे कण चमकते दृग्गोचर होते हैं। यह सबसे घटिया किस्मका है।

इनके अतिरिक्त किसी-किसीने इनके निम्न दो और भेदोंका उल्लेख किया है—

४—ललाई और कुछ कठोरता लिये हुए।

५—भूरा और कड़ा होता है।

इनमेंसे पहिले दो प्रकारका ही चिकित्सार्थ व्यवहार करना चाहिये। इनमें भी प्रथम जो सेलखरी (खटिका) जैसा सफेद और काले पत्थरसे निकला होता है, पूर्ण गुणयुक्त होता है। अस्तु, चिकित्सार्थ इसका ही सेवन करना चाहिये। इसके अन्य सभी भेद न्यून गुण कभी-कभी गुणहीन होते हैं जिनके प्रयोगसे चिकित्सकको अपयश प्राप्त होता है।

उत्पत्ति एवं श्रेष्ठत्व—पहिले प्रकारका कल्बुलहजर ब्रह्माके पर्वतों विशेषकर मांडलेके बनोंमें स्थित पर्वतोंमें पाया जाता है। यह श्रेष्ठतर एवं उच्चकोटिका होता है।

दूसरे प्रकारका कल्बुल्हजर बुंदेलखंडके पत्थरोंमेंसे निकलता है। यह आसाम और शिलांगसे भी आता है।

तीसरे प्रकारका कल्बुल्हजर चुनारगढ़, मीरजापुर, ग्वालियर और झाँसीके पत्थरोंसे निकलता है। स्मरण रहे कि चुनार और मीरजापुरसे प्राप्त होनेवाले सभी उक्त प्रकारके नहीं होते, अपितु उनमेंसे कोई हरापन लिये हुए पीले एवं कोमल होते हैं।

वक्तव्य—ज्ञात हो कि यह सर्वथा एक नई अनुभवमें आई हुई वस्तु है। इसका वर्णन न तो किसी आयुर्वेदिक ग्रन्थमें और न किसी प्राचीन यूनानी ग्रन्थमें ही मिलता है। फिर भी कई महानुभाव निजी तौरपर इसे अपने-अपने प्रयोगमें लाते हैं। इस प्रकार जिस-जिसको इसका ज्ञान हो गया है, वह इसका प्रयोग करता रहा है। साधारणतया यह यूनानी हकीमोंके ही प्रयोगमें रहा है। निजी तौरपर कदाचित् कोई वैद्य महानुभाव भी इसका प्रयोग करते रहे हों, परन्तु किसी वैद्यने आजतक इसके विषयमें कभी अपना अनुभव प्रकट नहीं किया।

इसके प्रयोग करनेके लिये प्रसिद्धि तो वास्तवमें उस समय हुई कि जब इसका एक सिद्ध प्रयोग श्रीमान् हकीम नूरुद्दीन जीने रुमुजुल्अतिब्बाके प्रथम भागमें प्रकाशित किया था। इस प्रयोगको पढ़नेवाला अनुभवमें लानेका इच्छुक रहता था। बस इस तरह इसके प्रयोग करनेवालोंकी संख्या दिनानुदिन उत्तरोत्तर बढ़ती गई। पुनः यूनानी की उर्दू पत्रिकाओंमें इस पर लोग अपने-अपने अनुभव प्रकाशित करने लगे और इस प्रकार इसको यूनानी हकीमोंमें काफी प्रसिद्धि प्राप्त हो गई है। हम वैद्योंको भी इस अनुभवसिद्धि वस्तुको अवश्य प्रयोगमें लाना चाहिये।

रासायनिक संगठन—यह चूर्णातु, भ्राजातु और सिकताका एक यौगिक है अर्थात् चूर्णातु भ्राजातु सैकतीय (चूभ्रासिज)।

मृत्तिका और कल्बुल्हज्रकी पहिचान—किसी प्रकारकी शुष्क मृत्तिका (मिट्टी) उदाहरणार्थ खटिका (जिसका मिश्रण इसमें किया जाता है) के लगभग १ तोला चूर्णको हाथकी हथेलीमें लेकर उसपर जलके ४–६ विंदु डालकर उस चूर्णको सूँघिए। उस जलमिश्रित मिट्टीसे एक विशेष प्रकारकी गंध—मृत्तिकासंघ (Clay odour) निकलेगी जैसा कि वर्षा ऋतुके आरम्भमें प्रथम वृष्टि होते समय वातावरणमें स्वयमेव (प्रकृत्या) फैलती है। कल्बुल्हज्रमें ऐसा नहीं होता है।

कल्प तथा योग—अक्सीर हाफिजुज्जनीन इसका प्रधान योग है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गर्भस्राव और गर्भपातके लिये यह बहुत अनुभव सिद्ध वस्तु है। जब दूसरी समस्त औषधियाँ जवाब दे देती हैं, चारों ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है तब यह विचित्र वस्तु अपना अद्भुत प्रभाव दिखाकर अपने गुणोंके लिये मोहित कर लेती है।

श्री हकीम नूरुद्दीन महाशयने रुमूज़ुल् अतिब्बाके प्रथम भागमें लिखा है—इस जैसा नुसखा (योग) न कभी सुना और न लाभकारी ही पाया। यह गर्भपातको दूर करेगा और शर्तिया लड़का उत्पन्न होगा। एक रत्ती कल्बुल्हजर सफेद जो काल पत्थरसे निकला हुआ हो, नीली झांई देनेवाला वंशलोचन १ माशा और एक या दो नग मुनक्का मिलाकर प्रतिमास केवल १ मात्रा दूधसे देवें।

इसपर श्री क० जगन्नाथजी वैद्यवाचस्पति लिखते हैं कि हमने इस प्रयोगको खूब आजमाया है और हरबार कामयाबी हुई है, परन्तु विदित रहे कि मैं सदा हर मात्रामें ४ रत्ती कल्बुल्हजर खिलाया करता हूँ। हर महीनेमें केवल १ माशा उपयोग करनेकी बजाय निम्न ढंगसे प्रयोग करता हूँ। ज्योंही यह विदित हो जाय कि गर्भ ठहर गया है इसका प्रयोग शुरु कर देना चाहिये। गर्भ ठहरनेके पहिले, दूसरे और तीसरे महीने प्रातः व सायं १-१

सप्ताह; चौथे, पांचवें और छठे महीनेमें चार-चार दिन; सातवें, आठवें और नवें महीनेमें केवल २-२ दिन ताजे पानी या दूधसे दें। परमात्माकी कृपा एवं दयासे गर्भपात बिल्कुल नहीं होने पाता और बहुत स्वस्थ बच्चा पैदा होता है। जिन स्त्रियोंका सदा एक निश्चित समय पर गर्भ गिर जाया करता है उनको भी इससे शतप्रतिशत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह भी देखनेमें आया है कि इसे प्रयोग करनेवाली स्त्रियोंके प्रायः पुत्र ही होता है।

वक्तव्य—यदि इसकी एक मात्राके साथ छोटी इलायची ४ रत्ती और वंशलोचन १ माशाका योग कर लिया जाय तो अत्युत्तम है। किसी-किसीके मतसे कल्बुल्हज्र, असली बंशलोचन और छोटी इलायचीके बीज प्रत्येक २ रत्ती इन सबको शर्बत बजूरी या मधु अथवा जलके साथ दिनमें दो बार प्रातः-सायं देवें।

गर्भ शूलमें—कल्बुल्हज्र २ रत्ती, असली नागकेसर २ रत्ती, कमलकेसर २ रत्ती—इन सबको साधारण ताजे जलके साथ भोजनके पूर्व दिनमें दो बार प्रातः-सायं देवें।

गर्भसंस्थापनार्थ—२ रत्ती कल्बुल्हज्र भोजनके पूर्व दिनमें दो बार प्रातः-सायं अश्वगन्धकी चायके साथ देवें।

बाँझपन (वन्ध्यात्व) के लिये यह अनुभूत चीज है और प्रायः सदा मनोरथ पूरा होता है। परन्तु विदित रहे कि मासिक धर्मका कोई विकार नहीं होना चाहिये। यदि कोई ऋतुविकार हो तो सबसे पूर्व उसकी चिकित्सा कर लेनी चाहिये। इसके पश्चात् इसका प्रयोग लाभप्रद रहता है। ऋतुस्नानके पश्चात् एक सप्ताहतक ४-४ रत्तीकी मात्रामें इसे दूध या ताजे पानीसे दें। आठवें रोज स्त्री-पुरुषका मेल हो। प्रायः तीन महीनेके भीतर ईश्वरकी दयासे गर्भ ठहर जाता है।

श्वेतप्रदर में यह वस्तु विशेष लाभकारी सिद्ध हुई है। इसे आमलाके पानीसे तीन सप्ताहतक लगावार प्रयोग करनेसे बिल्कुल रोग जाता रहता है। यदि प्रति मात्रामें कुक्कुटाण्डत्वग् भस्म ४ रत्ती मिला दी जाय या सुपारी पाकमें मिलाकर इसका सेवन किया जाय तो सोनेपर सुहागेका काम होता है।

हृदयबलकारक होनेके कारण दिल धड़कने में इसे मुरब्बा आमलापर डालकर चाँदीके एक वर्कमें लपेटकर खालें और ऊपरसे अर्क बेदमुश्क, अर्क केवड़ा या अर्क गावजवान पी लें। जरूर लाभ होगा।

जिन स्त्रियोंकी सन्तान बालशोष (सूखारोग—Marasmus) से मर जाती है, उन्हें गर्भावस्थामें दो मास कल्बुल्हज्रका सेवन करा देवें तो उनकी सन्तान सूखारोगसे नहीं मरेगी। यह उपविष्टक की रामबाण औषधि है।

सर्प, बिच्छू या बर्रे आदिके दष्ट स्थानपर, पहले सूई आदि से डंक निकाल लेनेके बाद तुरत इसे पानी अथवा मद्य या स्पिरिट में घिसकर गाढ़ा लेप करदेनेसे तीन-चार मिनटमें विषप्रभाव नष्ट हो जाता है। सर्प दष्टमें लेप करनेके अतिरिक्त तथा संखिया आदि विषोंको भक्षण किये हुएको इसे एक-एक घंटे बाद १-१ माशाकी मात्रामें तीन-चार बार दूधके साथ सेवन करनेसे अवश्यमेव विषका नाश होता है। एक या दो घंटेके अन्तरसे इसे १-१ माशाकी मात्रामें अर्क सौंफ एवं पुदीनाके साथ सेवन करनेसे विसूचिका की उस अवस्थामें जिसमें औषधिका पचना वन्द हो जाता है और असाध्य अवस्था हो जाती है, अति शीघ्र लाभ होता है। धातुक्षीणता या शुक्रप्रमेह विशेषकर पित्तजमें जिसके रोगियोंकी संख्या अधुना अस्सी प्रतिशत है इसे ३ माशे इसबगोलकी भूसी या उतना ही बड़े गोखरूके चूर्णमें मिलाकर दूधसे सेवन करें या मक्खनमें लपेटकर निगल जावें। इसे तीन माशे तालमखाना के चूर्णमें मिलाकर दूधसे फांकनेसे स्वप्नदोष आराम होता है। इसे छः माशे गोखरूपाक में मिलाकर खाने और ऊपरसे दूध पी लेनेसे शीघ्रपतन रोग नष्ट हो जाता है। अपतन्त्रक रोगमें इसे फांककर ऊपरसे २ तोले अश्वगन्धारिष्ट उतना ही पानी मिलाकर पीनेसे उपकार होता है। पुराने सूजाककी यह रामबाण औषधि है। मद, (मालिन-खोलिया), उन्माद तथा मराक के लिये असीम गुणकारी है। यद्यपि जुनून सबई। मेनिया) में सर्पगन्धा एक श्रेष्ठतम औषध है तथापि मालिनखोलिया (मद) एवं मराक आदिमें यह कल्बुल्हज्रके समान गुणकारी सिद्ध नहीं हुई है।

इसे एक तोला च्यवनप्राशावलेह में मिला कर खाने और ऊपरसे दूध पी लेनेसे उरःक्षतमें बड़ा उपकार होता है। इसके कुछ ही दिनके सेवनसे रोगका नाश हो जाता है। एक-एक घंटेके अन्तरसे १-१ माशाकी मात्रामें इसे अर्क-शाहतरा या बृहत् मञ्जिष्ठादि क्वाथके साथ सेवन करने और ग्रन्थियों (गिल्टियों) पर इसे ही हरे मकोयके स्वरसमें मिलाकर कुनकुना गरम लेप करनेसे ग्रन्थिक सन्निपातज्वर अर्थात् प्लेगका नाश हो जाता है। जीर्णज्वरोंमें अन्यान्य औषधियोंके साथ इसका उपयोग लाभकारी होता है। गर्मियोंमें तृष्णाका अतिवेग होनेपर इसे दो-तीन रत्तीकी मात्रामें मुखमें लेकर चूसनेसे प्यासमें बहुत कुछ कमी हो जाती है। पित्तज शिरःशूलमें इसे पानीमें घिसकर मस्तकके ऊपर लेप करनेसे तुरत लाभ होता है। मुखपाकमें समभाग कल्बुल्हज्र और नीली झाईंके वंशलोचनको मिलाकर महीन पीसकर मुखमें बुरकनेसे पहले बार ही ठंढक पड़ जाती है। रक्तवमनमें कल्बुल्हज्र १॥ माशा, छोटी इलायचीके दाने, कहरुवा शमई और घरका बना सत गिलोय प्रत्येक १ माशा लेकर सबको महीन पीसकर २ तोले शर्बत अनारमें मिलाकर चटनी बना लेवें और इसे थोड़ा-थोड़ा चाटें। पेचिसमें इसे दहीकी लस्सी, साठी चावलोंकी पीच या रेशा खतमीके लोआब (पिच्छा) से लेवें। रक्तार्शमें इसे शर्बत अंजबार या ताजे पानीसे लेवें। खाजमें इसे अर्क उशबा या बृहत् मञ्जिष्ठादि क्वाथके साथ सेवन करने तथा इसे पानीमें घिसकर खाजके स्थानपर मलनेसे बड़ा लाभ होता है। पुरानेसे पुराने एवं हठीले व्रणोंपर भी इसका चूर्ण एक रातमें दो-तीन बार महीन पीसकर छिड़कनेसे अधिकसे अधिक छः-सात दिनमें वे सूख जाते हैं। इनके अतिरिक्त आमातिसार, रक्तातिसार, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, मासिकधर्मकी विकृति और उपदंश इन सब रोगोंमें भी यह रामबाण सदृश काम करता है। मात्रा—१२० मि० ग्राम से ३५० मि० ग्रा० (१-३ रत्ती)। मतांतरसे ०-५ ग्राम से १ ग्राम (१ या ४ रत्तीसे १ माशा) तक।

सेवन-विधि—इसका बारीक चूर्ण बनाकर दिनमें दो बार प्रातः-सायं ताजे पानी व दूध आदिसे देवें।

(अल्हकीम आदि उर्दू तथा धन्वन्तरि और प्राणाचार्य आदि हिंदी आयुर्वेद, यूनानी पत्र-पत्रिकाओंसे साभार संकलित)।

(७) संगमरमर

नाम—(हिं०) मरमर, 'संगमर्मर; (अ०) हजरुर्रुखाम; (फा०) संगमर्मर; (ले०) कैल्सियाई कार्बोनास (Calcii Carbonas); (अं०) कार्बोनेट् ऑफ लाइम् (Carbonate of Lime)।

वक्तव्य—संगमरमर रुखामका एक खास भेद है। मरमरके काले, पीले और लाल आदि भेदके लिये संगमरमर शब्दका प्रयोग उचित नहीं है। केवल इसके सफेद भेदतक ही उक्त शब्दका व्यवहार सीमित रखना चाहिये। औषधके लिये यही उत्तम भी होता है।

वर्णन—एक प्रकारका बहुत चिकना, मुलायम और सफेद प्रसिद्ध पत्थर जो बहुत कीमती होता है। इसमें चूनेका अंश अधिक होता है और इसे जलानेसे अच्छी कली निकलती है। संगमूसा इसका एक भेद है जो काला होता है। इसलिये इसे काला मरमर भी कहते हैं। यह भारतवर्षमें भी मिलता है। पर अच्छा मरमर इटलीसे आता है।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष; इसका लाल भेद गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी जला, महीन पीसकर दाँत माँजनेसे मसूढ़ोंको शक्ति प्राप्त होती है और हिलते हुए दाँत जम जाते (दृढ़ वा स्थिर हो जाते) हैं। इसे राल और जुफ्त (बलूत) के साथ पीसकर लेप करनेसे कठिन सूजन उतरती है। सिक्थ तैल (मोम रोगन) के साथ इसका लेप लगानेसे आमाशय द्वारका शूल आराम होता है। आगसे जले हुए स्थानपर इसका चूर्ण बनाकर छिड़कनेसे लाभ होता है। यह रक्तस्रावको बन्द करता है। खल्वाट (दाउस्सालब) के लिये लाभकारी है। इसे सिरकेके साथ लगानेसे जलोदर (इस्तिस्काऽ) आराम होता है।

(८) शादनज

नाम—(अ०) अल्शाज़नज (इ० बै०), शादनज, हजरुद्दम, हज्रुल्तूर; (फा०) शादनः; (यू०) Aimatites lithros (D. 5. 143); lithros, (अं०) Nummulithe।

वक्तव्य—फारसी 'शादनः'से 'शादनज' अरबी बनाया गया है।

वर्णन—यह एक प्रकारके नरम पत्थरके छोटे-छोटे दाने हैं जो मसूर, बाजरे, पोस्तेके दाने या मूँगके दानेकी शकलके होते हैं, जिनको क्रमशः अदसी, जावरसी और खश्खाशी कहते हैं। इनमें मसूराकृति और रक्तवर्णका सर्वोत्तम समझा जाता है।

प्रकृति—शादनज मग़सूल दूसरे दर्जेमें और ग़ैर मग़सूल तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—शादनज उपशोषण, तंतुसंग्राहक, दृष्टिवर्धक और रक्तस्रावरोधक है। उपयोग—नेत्रकण्डू, नेत्रव्रण, नेत्रस्राव और दृष्टिदौर्बल्यमें अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ खरल करके सुरमाकी भाँति लगाया जाता है। क्षतोंसे रक्तस्राव रोकने और उनको शीघ्र सुखानेके लिये इसको बारीक पीसकर छिड़कते हैं। अतिरज, रक्तातिसार एवं प्रवाहिकामें इसे खिलाते हैं। शादनजको घोकर औषधमें प्रयुक्त करते हैं जिसकी विधि यह है कि—शादनजको महीन पीसकर जलमें घो लें। जो धुलनेसे शेष रहे, उसको दोबारा इसी प्रकार घोलकर तलस्थित करें, यहाँतक कि सम्पूर्ण घुल (महलूल) और धुल (मग़सूल) जाय। अहितकर—बस्तिके रोगोंमें। निवारण—कतीरा और बबूलका गोंद। प्रतिनिधि—दग्ध कान्तपाषाण, दम्मुल्अख्वैन और रसवत। मात्रा—१ माशासे २ माशेतक।

(९) काँच (शीशा)

नाम—(हिं०) काँच, शीशा; (अ०) ज़ुजाज; (फा०) आबगीनः, शीशः; (सं०) काच; (ले०) ग्लेसम् (Glesum); (अं०) ग्लास (Glass)।

वर्णन—यह कोई रत्न या पत्थर नहीं है किन्तु एक मिश्र धातु है जो बालू, रेह वा खारी मिट्टीको आगमें गलानेसे बनती है और पारदर्शक होती है। इसकी चूड़ी, बोतल, दर्पण आदि बनते हैं। यह कड़ा और बहुत खरा होता है तथा थोड़ी चोटसे भी टूट जाता है। यह खनिज और कृत्रिम भेदसे दो प्रकारका होता है। अरस्तू के मतसे बिल्लौर खनिज शीशाका ही एक भेद है जो श्रेष्ठ होता है। गुणधर्मके विचारसे दोनों प्रायः समान होते हैं।

प्रकृति—पहले (मतान्तरसे) दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क। स्वाद—फीका विस्वाद। गुण-कर्म—छेदन, विलयन, चक्षुष्य, लेखन, दाहक; जलाया हुआ प्रदाहरहित आर्द्रताभिशोषणकर्ता है। इसकी राख अधिक सूक्ष्म (लतीफ) है। उपयोग—अत्यन्त महीन पिसा हुआ काँच ३॥ माशाकी मात्रामें हलके सफेद मद्यके साथ पीनेसे वस्तिगत अश्मरीका नाश होता है। इससे वृक्क, वस्ति और प्लीहाका दौर्बल्य तथा मूत्रदाह (या सूजाक) आदि विकार दूर होते हैं। जलाया हुआ शीशा या उसकी राख धूलके समान महीन पीसकर नेत्रमें सुरमाकी भाँति लगानेसे फूली, आँखकी खुजली और जालामें उपकार होता है, तथा नेत्रज्योति निर्मल होती है। दांत पीले हों तो इसके मंजनसे स्वच्छ हो जाते हैं। जैतूनके तेलके साथ इसे लगानेसे बाल उग आते हैं। मेंहदीके साथ लगानेसे कण्ठमाला आदि रोगोंमें उपकार होता है। इसके लिये इसका घोल और भी गुणकारी होता है। (मख्जन)। इसकी भस्म अपने प्रभावसे पथरीको तोड़ती है तथा उसकी पुनरुत्पत्तिको रोकती है तथा शुक्रस्राव एवं शुक्रप्रमेहमें लाभ पहुँचाती और वन्ध्यत्वको दूरकर गर्भधारणयोग्य बनाती है। अहितकर—अन्त्रको क्षतयुक्त करता और आमाशयको हानि पहुँचाता है। निवारण—कतीरा और तर वस्तु। प्रतिनिधि—जबरजद्द। अश्मरिनाशनार्थ जले हुए का प्रतिनिधि बेरपत्थर। मात्रा—१॥ माशा—३॥ माशा।

(१०) कुरण्ड

नाम—(हिं०) कुरविन्द, कुरण्ड, कुरुन पत्थर, सान; (अ०) सुंबाद(ज़)ज (मरूजन), हजरुल्मिसन्न, मिसन्न; (फा०) संगे सुंबाद, सुंबादः, संगे कारद (सान); (सं०) कुरुविन्द (सु०); (ले०) Admantinus (Corundum); (अं०) कोरंडम् स्टोन् (Corundum Stone), ह्वेट स्टोन (Whet stone), ग्राइंड स्टोन (Grind Stone)।

वर्णन—एक प्रकारका खनिज पत्थर जिसपर चाकू और तलवार आदि तेज करते हैं। देखनेमें यह ऐसा मालूम होता है मानो रेत जमी हुई है। कोई नरम और कोई कड़ावालेको उत्तम मानते हैं। इससे रत्नोंपररत्नोंको घिसकर उनकी मैल दूर करते और उन्हें मसृण एवं चमकीला बनाते हैं। सफेद (दुधिया), काला (तेलिया), हरा (मसुरिया) और लाल आदि भेदोंसे यह कई प्रकारका होता है। इनमें अन्तिम तीनों सर्वोत्तम होते हैं। सुम्बादा (कुरण्ड) इसका निकृष्ट वा अधम ओर सान (हजरुल्मिसन्न) उत्कृष्ट भेद है। भारतमें प्रसिद्ध कुरण्ड इसका कृत्रिम प्रकार है। कुरण्ड एक प्रकारका मूर्च्छित अलमीनम है और मिश्रीकी चमकीली डलीके रूपमें जमा हुआ मिलता है। अविशुद्ध अवस्थामें चुंबक आदिसे मिला हुआ जो दानेदार कुरण्ड मिलता है वह 'मानिक रेत' कहलाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क। लाल गरम एवं खुश्क।

गुण-कर्म—लेखनीय, श्वयथु-विलयन विशेषकर रक्तस्तम्भन (रक्तस्रावरोधक) है। **उपयोग**—इसका मंजन दाँतोंको स्वच्छ एवं चमकीला बनाता है और मसूढ़ोंके ढीलेपनको दूरकर उन्हें दृढ़ बनाता है। इसके लेपसे शोथ मिटकर हाथ-पाँव, त्वचागत और अन्य सभी प्रकारकी सूजन उतर जाती है। अक्षतायोनि (कुमारी) नारीके स्तनोंपर इसे पीसकर लगानेसे उनकी वृद्धि रुक जाती है। वृषणोंपर भी इसके लेपसे—विशेषकर उसे सिरकेमें पीसकर लेप करनेसे उक्त लाभ होता है। आगसे जले स्थानपर इसके महीन चूर्णको मुर्गीके अंडेकी सफेदीमें मिलाकर लगानेसे उपकार होता है। अर्शमें इसे मोमके साथ लगानेसे लाभ होता है। इसको जलाकर और महीन चूर्ण करके छिड़कनेसे बहता हुआ रक्त बंद हो जाता है। यह पुराने व्रणोंको सुखाता है। इसके लेपसे छाजन जाता रहता है।

हरे और जैतूनी कुरण्डके टुकड़े करके कोयलोंकी आँचपर जला लेवें। इसे सिरका और नतरूनके साथ पीसकर लगानेसे दाद, कण्ठमाला, सूखी एवं तर खुजली और गोश्तखोरा आराम होते हैं। हरे पत्थरपर गुलरोगन डाल-डालकर लोहा रगड़ने और इस प्रकार प्राप्त उस तेलको बालखोरे अर्थात् खल्वाटपर लगानेसे वहाँ बाल निकल आते हैं। उसपर नेत्रवर्तिको रगड़कर लगानेसे नेत्र अधिक निर्मल हो जाता है तथा अर्म, नेत्रकण्डू (फूला या जाला) और बाम्हनी (सुलाक) इनका नाश होता है। इसके हरे भेदको पीसकर कैरूतीमें मिलाकर लगानेसे गुदभ्रंश आराम होता है। इससे गुदचीर, मांसखोरा, कर्कट और वातमण्डलगत उष्ण शोथोंमें भी उपकार होता तथा उनके क्षतोंका रोपण होता है तथा उनकी वेदना शांत होती है। लाल पत्थरके महीन चूर्णको आँखमें बुरकनेसे जाला कट जाता है। यह अग्निदग्ध और तज्जात व्रणमें लाभकारी है। खाकी रंगके कुरंडपर ताँबा रगड़कर उस धूलिको आँखमें लगानेसे पिड़का आराम हो जाती है। उन फोड़े-फुंसियोंपर भी, जो सहसा निकल आती हैं, खाकी कुरंडको घिसकर लेप करनेसे बड़ा लाभ होता है। अपस्मार और बढ़ी हुई प्लीहामें ३½ माशे कुरंड सिरकाके साथ पीनेसे उपकार होता है। **अहितकर**—वातनाडियों एवं पुट्ठों तथा वृक्कको। **निवारण**—वातनाडियोंके लिये केशर और वृक्कके लिये कतीरा। **प्रतिनिधि**—सानका पत्थर जो इसका उत्कृष्ट भेद है। **मात्रा**—आन्तरिक प्रयोग वर्जित है, केवल बाह्य प्रयोगमें आता है।

(११) कसौटी

नाम—(हिं०) कसौटी; (अ०) हज्रुल्मेहक; (बं०) काष्टि पाथर; (सं०) कष, कषपट्टिका; (अं०) टच स्टोन (A Touch-stone)।

वर्णन—एक प्रकारका काला भारी पत्थर जिसपर रगड़कर सोनेकी परख की जाती है। यह खाकी भी होता है। इसकी खरल भी बनती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क। स्वाद—फीका और कुछ कड़ुआ। अहितकर—वस्तिको। निवारण—शुद्ध मधु। मात्रा—०.७५ ग्राम या ६ रत्तीतक।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वासकृच्छ्रता तथा वृक्कशूलमें इसका सेवन गुणकारी है। स्त्री दुग्धमें घिसकर आँखमें लगानेसे जाला, नेत्रपटलकी कठोरता और नेत्रव्रणमें उपकार होता है।

तीन वा गिल (मृत्तिका) विज्ञानीय

अध्याय ७

नाम—(हिं०) मिट्टी; (अ०) तीन, तुराब; (फा०) खाकेरुस्त, गिल; (सं०) मृत्तिका, मृत्; (अं०) क्ले (Clay–a variety of pipe-clay)।

प्रकरण १

चीनी (मिट्टी)

नाम—(हिं०) चीनी मिट्टी, सच्ची चीनी; (अ०) ग़ज़ारुस्सीनी, तीनुस्सीनी; (फा०) कासए चीनी, गिले चीनी, गिले ज़र्फ़ चीनी; (सं०) चीनमृत्तिका; (लें०) केओलिनम् (Kaolinum); (अं०) पॉर्सिलेन क्ले (Porcelain Clay), चाइना क्ले (China Clay), केओलीन (Kaolin)।

वर्णन—यह एक प्रकारकी अत्यन्त सफेद और उज्ज्वल मुलायम मिट्टी है जिसके बरतन (गजारुस्सीनी) बनाये जाते हैं। यह चीन और लंका आदिमें होती है। वस्तुतः यह देशज श्वेत फेलस्पार या ऐल्युमिनियम् सिलिकेट (Aluminium Silicate) है जो निसर्गतः पाया जाता है। इसको चूर्ण करके तस्वील (निथारने) की विधिसे साफ कर लेते हैं। बाजारमें इसके सफेद, नरम किंवा पांडु श्वेत गट्ठे मिलते हैं। यह सरलतासे चूर्ण हो जाता है और जल वा जलमिले अम्लोंमें अविलेय होता है। शुद्ध चीनी मिट्टीमें ऐल्युमिना ७०%, सिलिका २६% और लोह भस्म (आयर्न ऑक्साइड) ४% होता है। इसका औषधीय प्रयोग अति प्राचीन है।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अपनी शीत और रूक्ष प्रकृतिसे वाहिनियोंमें संकोच और रक्तमें स्कंदन उत्पन्न करके यह स्थानीय रक्तस्रावको बन्द करती है। दंत और नेत्रपर इसका लेखनीय कर्म होता है। इसको बारीक पीसकर अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ दन्तकिट्ट और दन्तशर्कराको नष्ट करने तथा मसूढ़ोंसे रक्तस्राव (शीताद) बंद करनेके लिये मंजनकी भांति दाँतोंपर मलते हैं। नेत्रके सिराजालक (जाला), शुक्ल (फूला), अर्म और धुंधको दूर करनेके लिये इसे सुरमोंमें मिलाकर नेत्रमें लगाते हैं।

प्रकरण २

गिल सफेद

नाम—(हिं०) चिकनी या सफेद मिट्टी; (फा०) कडी, गिल सुफेद; (सं०) श्वेत मृत्तिका; (गु०) खड़; (द०) खड़, धोई हुई खडी; (लें०) ऐल्युमिनियाई सिलिकास (Aluminii Silicas); (अं०) फेलस्पार (Felspar), क्ले (Clay), सिलिकेट ऑफ ऐल्युमिना (Silicate of Alumina), पाइप क्ले (Pipe clay)।

वर्णन—एक प्रकार की सफेद भंगुर मुलायम मिट्टी। इसमें लोहका योग होनेसे यह लोहितवर्णका होता है। इनमेंसे कुछ मिट्टियोंका काला रंग-रूप इसमें बुटामिनी (Bituminous) द्रव्योंके कारण होता है। शोधित वा प्रस्तुत मिट्टी (Pipe clay) का औषधमें प्रयोग उद्धूलन चूर्ण (Dusting Powder) के रूपमें होता है। नौसादरके साथ इसका लेप बनाकर कनपुटियोंपर लगानेसे सिरदर्द आराम होता है।

प्रकरण ३

गिल अरमनी

नाम—(फा०) गिले अरमनी; (हिं०) हिरौंजी, गिल अरमनी; (अ०) तीने अरमनी, तीनुल् अर्मनी (इ० बै०), हजरे अरमनी; (द०) गिले अरमनी; (म०) फूल गेरू; (पं०) हरमजी; (ले०) बोलस् आर्मीनिआ रुब्रा (Bolus Armenia Rubra); (अं०) रेड आर्मीनिअन बोल (Red Armenian bole), बोल आर्मीनिअक (Bole Armeniac), नेटिव फेरिक ऑक्साइड (Native Ferric Oxide)।

वर्णन—यह लोहिया लाल रंग (यकृद्वर्ण) की एक प्रकारकी नरम और चिकनी, चूर्ण वा ललाई लिये भूरे या धारीदार टुकड़ोंके रूपमें, किंचित् सुगंधित और स्वादमें फीकी, मुलायम और किंचित् भारी मिट्टी होती है। यह जिह्वापर चिपक जाती है। इसे ईरान और आर्मीनियासे लाते हैं। उत्तम वह है जो साफ खालिस सुनहले रंगकी हो और जिह्वामें चिपक जाय। गेरू इसका देशी भेद है। मुलतानी मिट्टी और गोपीचंदन दोनों गिल-अरमनीके भेद हैं।

रासायनिक संगठन—यह सिलिकेट ऑफ ऐल्युमिना, मैग्नेसिया और ऑक्साइड ऑफ आयर्नका यौगिक है। साधारणतया सफेद मिट्टी वा खड़ी मिट्टीको लोहभस्म वा गेरूके साथ मिलानेसे यह प्रस्तुत होता है। यह दानेदार, काटनेपर सफेद कणोंसे व्याप्त मालूम होता है। कटा हुआ भाग रेवंदचीनीके सदृश मालूम होता है। हवामें खुला रहनेपर यह बहुत शीघ्रतासे नमीको खींच लेता है। पानीमें डालनेपर यह शीघ्र परमाणुओंमें वियोजित (खंडित) हो जाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और पहले वा दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—यह व्रणलेखन, संग्राही, पिच्छिल (मुग़र्री) और रक्तस्तंभन है। हृदयको उल्लसित और बल प्रदान करनेवाली और ज्वरघ्न है। सूजनपर लेप करनेसे दोषविलोमकरण कर्म करती और कोथप्रतिबंधक है। **उपयोग**—शरीरके अखिल आंतरिक अंगोंसे रक्तस्राव बंद करने तथा उरःक्षत, फुफ्फुसव्रण तथा अन्त्र और आमाशयव्रणको नष्ट करने और दस्तोंको बंद करनेके लिए इसका चूर्ण खिलाते हैं। मरकज्वरों जैसे ग्रंथिकज्वर (ताऊन) आदिमें भी इसका उपयोग कराते हैं। शोथके प्रारम्भमें दोषको विलोम करनेके लिए इसका लेप करते हैं। सद्यः व्रणोंपर छिड़कनेसे यह रक्तस्रावको बंद करती है और नये-पुराने व्रणोंका शीघ्र शोषण-रोपण करती है। **अहितकर**—प्लीहाको। **निवारण**—सफेद चंदन और रूमीमस्तगी। **मात्रा**—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

प्रकरण ४

गिल मख़्तूम

नाम—(फा०) गिले मुख़्तूम; (अ०) तीने मुख़्तूम; तीनुल् मख़्तूम (इ० बै०), मग़रए-काहिनः, मग़रए-मलीसा; (अं०) मार्ल (Marl, Terra Sigillata)।

वर्णन तथा रासायनिक संगठन—यह हलके गुलाबी रंगकी चिकनी मिट्टी है जिसकी टिकियाँ बनी हुई यूनानी दवा बेचनेवाले पंसारियोंके यहाँ मिलती हैं। यह परॉक्साइड ऑव् आयर्न तथा कैल्सियम कार्बोनेट (Per-Oxide of iron and Calcium Carbonate) अर्थात् लोह, ऑक्सिजन और कैल्सियम्का यौगिक है।

प्रकृति—अगदवीर्य सहित दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—यह हृदयबलदायक, सौमनस्यजनन, पिच्छिल, व्रणलेखन, संग्राही, रक्तस्तंभन, श्वयथुविलयन तथा विषों और मरक ज्वरोंके लिए अगद है। **उपयोग**—उरःक्षत, फुफ्फुसव्रण, रक्तष्ठीवन और अन्त्र तथा आमाशय-व्रणमें इसे खिलाया जाता है। मनःप्रसादकर, हृद्य और अगद होनेके कारण ग्रंथिक ज्वर (प्लेग) में इसका उपयोग कराते हैं। संग्राही और रक्तस्तंभन होनेके कारण पित्तज और रक्तज अतिसारमें इसे खिलाते हैं। सद्यःव्रणोंसे रक्तस्राव

रोकने और उनको शीघ्र सुखानेके लिए इसका बारीक पीसकर छिड़कते हैं। इसके अतिरिक्त गिले मख्तूमको प्रत्येक प्रकारके विषका अगद वर्णन किया जाता है। कहते हैं कि हर एक प्रकारके विषमें इसको पिलानेसे क़ै (वमन) और दस्त आकर सम्पूर्ण विषप्रभाव दूर हो जाते हैं। प्राणिज विषोंमें खिलानेके अतिरिक्त दंश स्थानपर इसका लेप भी करते हैं। अहितकर—प्लीहाको। निवारण—कतीरा, अर्क गुलाब और मधु। प्रतिनिधि—गिल-अरमनी। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

प्रकरण ५

गिल मुलतानी

नाम—(फा०, हिं०) गिले मुलतानी; (हिं०) मुलतानी मिट्टी; (पं०) गिलमुलतानी; (अं०) फुलर्स अर्थ (Fuller's Earth), पेल या येलो ओकर (Pale or Yellow Ochre)।

वर्णन—यह पिलाई लिये सफेद या पीले रंगकी परतदार मिट्टी है, जो साधारणतः सिर धोनेके काममें आती है। यह तथा गोपीचंदन दोनों गिल अरमनीके भेद हैं।

प्रकृति—शीत और रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही, रक्तस्तंभन, संशमन और लेखन। उपयोग—संग्राही और रक्तस्तंभन होनेसे इसका निथरा हुआ पानी रक्तमूत्र और नकसीरमें पिलाया जाता है। नकसीरमें शिर और मस्तकपर इसका लेप किया जाता है। गरमी दानोंपर इसका लेप लाभदायक है।[1] अहितकर—अन्त्र और फुफ्फुसको। निवारण—केकड़ेका मांसरस। मात्रा—(फांटके रूपमें) ७ माशेसे १ तोलातक और (चूर्णरूपमें) ३ माशा से ५ माशेतक।

प्रकरण ६

गेरू

नाम—(हिं०, म०) गेरू, गेर; (अ०) मग़रः, मग़रत, तीने मग़र (अहमर); (फा०) गिलेसुर्ख़; (सं०) गैरिक, गिरिज; (बं०) गिरिमाटी; (म०, गु०, द०) गेरू; (गु०) गेरूमाटी; (ता०, ते०, गु०) हिरिंजी, पाउडी; (पं०) गेरी; (ले०) बोलस् रुब्रा (Bolus rubra); (अं०) रेड बोल या रेड ओकर (Red Bole or Ochre), रेड अर्थ (Red Earth)।

वर्णन—यह पिलाई लिये लाल रंगकी एक चिकनी मिट्टी है जो सीसा और लोहके खानोंमें पाई जाती है। इसके यह दो भेद हैं—(१) श्यामता लिये लाल और शुद्ध; इसे (हिं०, गु०) सोनागेरू, (म०) सोनकाव, (सं०) स्वर्णगैरिक, (ले०) फेरम् हीमेटाइट (Ferrum Haematite) और (अं०) रेड ओकर या चॉक (Red ochre or Chalk) कहते हैं। (२) लाल और अशुद्ध; इसे गेरू (सं० पाषाणगैरिक) कहते हैं। गेरू गिले अरमनीका भारतीय भेद है। उत्तम वह है जो शुद्ध हो और पानीमें डालनेसे फूल जाय।

रासायनिक संगठन—गेरू सिलिकेट ऑफ ऐल्युमिना और ऑक्साइड ऑफ आयर्न (अन्यान्य मिट्टियोंकी अपेक्षया सर्वाधिक लोह) होता है। सोनागेरू लोहका हायड्रेटेड सेस्क्वी-ऑक्साइडम् यौगिक तथा कतिपय पार्थिव पदार्थों विशेषतः चीनी मिट्टी (Kaolin) और क़ार्ट्ज (Quartz) का मिश्रण है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

---

[1] ताजा नीबूका रस, तेल वा दही और गुलाबजलमें मुलतानी मिट्टी मिलाकर सिरपर मलने और धोनेसे सिरकी भूसी (Dandruff) दूर होती है, बाल मुलायम होते हैं और सिर ठंढा रहता है। (इं० मे० मे० भा० २ पृ० १०-११)।

गुण-कर्म—पिच्छिल, अतिसारघ्न, रक्तस्तंभन, दोषविलोमकर्ता और उपशोषण है। **उपयोग**—गेरू अतिसार, रक्तातिसार, रक्तमूत्र, अन्त्रव्रण, गर्भाशयव्रण, अतिरज आदि भीतरी अंगोंके रक्तस्रावमें उपयुक्त अनुपानके साथ उपयोग किया जाता है। सूजाक और सदाहमूत्रमें फिटकिरीके साथ चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है। उष्ण शोथोंमें प्रथमतः दोषविलोमकर्ता होनेके कारण लेपोंमें प्रविष्ट किया जाता है। विसर्प (हुमरा), कक्षा (नमला) और अग्निदग्धमें इसको सिरकाके साथ लेपके रूपमें उपयोग किया जाता है। अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ किलासपर इसका लेप लगाया जाता है। **अहितकर**—अन्त्रके लिये। **निवारण**—शर्बत बनफ़्शा। **प्रतिनिधि**—गिल अरमनी। **मात्रा**—चूर्णरूपमें १ माशासे ३ माशे तक और फांटमें १ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत—सोनागेरू मधुर, कषाय, स्निग्ध, शीतवीर्य तथा रक्तपित्त, हिक्का, वमन, विष, दाह, विस्फोट, अर्श, अग्निदग्ध, कण्डू और विसर्पका नाश करनेवाला है। पाषाणगैरिक इससे न्यून गुणवाला है। (नि० र० चू० अ० ११)।

प्रकरण ७

हसनधूप

नाम—(हिं०, बं०) गिल; (भा० बा०) गिले अब्रोरश्री, गिलेफार, हसनधूप; (अं०) सिलिकेट ऑफ् ऐल्युमिना, लाइम एण्ड ऑक्साइड ऑफ आयर्न, (Silicate of Alumina, Lime and Oxide of Iron)।

वर्णन—एक प्रकारकी मिट्टी जो नीले रंगके विरूप एवं विषम पिंडरूपमें पाई जाती है। स्वाद कुछ-कुछ कषाय और गंध मुलतानी मिट्टीके समान होती है। गंधकके खनिज सोतोंसे जमी हुई मिट्टीमें यह पाई जाती है। **इसके गुणकर्म तथा उपयोग मुलतानी मिट्टीके सदृश हैं।**

वक्तव्य—असली हसनधूप पीले रंगकी खुरदरी टिकियोंके रूपमें होता है जिससे गंधककी गंध आती है। मिफ्ताहुल् खजाइनमें इससे चाँदीका एक ऐसा कुश्ता (भस्म) बनानेकी विधि लिखी है जिससे भस्मके लिये प्रयुक्त रुपयेके अक्षर ज्यूंके त्यूं बने रहते हैं और रुपया भस्म हो जाता है। विधि यह है—दो तोले हसनधूपके भीतर एक रुपया रखकर इसे मिट्टीके सरावके भीतर रखकर संपुट बनाकर २ सेर अरने उपलोंकी आँच देवें। इससे उक्त प्रकारकी भस्म तैयार होगी।

प्रकरण ८

गोपीचन्दन

नाम—(हिं०) सोरठी मिट्टी, गोपीचन्दन, पानीसोख; (सं०) सौराष्ट्री, सौराष्ट्र मृत्तिका; (म०) सोरठी माती; (गु०) सोरठी माटी; (बं०) सुगंध मिट्टी; (क०) तुरवीयमणु; (अं०) सिलिकेट आफ ऐल्युमिना (Silicate of Alumina)।

वर्णन आदि—द्वारिकाके समीप गोपी नामक झीलसे प्राप्त होनेवाली एक प्रकारकी मधुर सुगंधित पीली मिट्टी जो विभिन्न आकारके टुकड़ोंके रूपमें पाई जाती है। गुण और गंधमें यह मुलतानी मिट्टीके समान होती है। यह पानीको शीघ्र सोख लेती है। यह सूरतसे लाई जाती है। इसलिये इसे 'सौराष्ट्र मृत्तिका' कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतल, सुगंधित, उल्लासप्रद तथा आनाह (कब्ज) और शरीरके दाहको मिटाती है।

आयुर्वेदीय मत—गोपीचन्दन शीतवीर्य है तथा दाह, क्षत एवं व्रण, विष, विसर्प, रुधिरविकार, पित्त, कफ और प्रदररोगका नाश करता है तथा इसके लेपसे गिरता हुआ गर्भ स्थिर हो जाता है। भावप्रकाशके अनुसार फिटकिरीके समान इसके गुण हैं।

●

मिल्ह व अल्कली (लवण व क्षार) विज्ञानीय

अध्याय ८

प्राक्कथन

यूनानी वैद्यकमें काम आनेवाले लवण (Saline Substances) और क्षार (क्षारमृत्तिका–Saline Earths) सृष्टिके उद्भिज्ज (नबातात), जाङ्गम व प्राणिज (हैवानात) और पार्थिव वा खनिज (हजरियात वा मादनियात) इन त्रिविधात्मक पदार्थोंसे कृत्रिमरूपसे विशेष विधिसे बनाकर प्राप्त किये जाते हैं अथवा प्रकृतिमें वे स्वयं बने-बनाये मिलते हैं। इनमें यहाँ केवल पार्थिव लवणोंका वर्णन किया गया है। उद्भिज्ज लवणों एवं क्षारों, जैसे—जवाखार, चनाखार, सज्जी आदिका वर्णन उद्भिज्ज द्रव्य विज्ञानीय विभाग १ में तथा जाङ्गम लवणों एवं क्षारोंका वर्णन, जैसे—मुरगा, कबूतर, खरगोश, साही, कुत्ता, बिच्छू और केकड़ा आदि प्राणियोंको जलाकर उनकी राखसे प्राप्त किये गये नमक, जो इनमें काफी प्रमाणमें पाये जाते हैं, जाङ्गम-औषधाहारद्रव्य-विज्ञानीय विभाग २ में उन-उन प्राणियोंके वर्णनप्रसंगमें किया गया है। इन जाङ्गम लवणोंमें फॉस्फेट ऑफ लाइम भी पाया जाता है। इसलिये उरोफुफ्फुस व्याधियों विशेषकर कृच्छ्रश्वास एवं कासके लिये ये अधिक गुणकारक होते हैं।

प्रकरण १

नमक (लवण)

नाम—(हिं०) न (नि) मक, नोन; (अ०) मिल्ह, अबुल्जीब; (फा०) नमक; (सं०) लवण; (ले०) सोडियाई क्लोराइडम् Sodii Chloridum, (अं०) साल्ट (Salt), क्लोराइड ऑफ सोडियम् (Chloride of Sodium)।

वक्तव्य—लवणमय पदार्थोंमें लवण और लवणमय मृत्तिकाका समावेश होता है। औषधमें प्रयुक्त लवणके दो भेद हैं—(१) प्रकृतिप्रभव या प्राकृतिक और (२) कृत्रिम। प्राकृतिक लवणके उदाहरण—सैंधव, सामुद्र और साँभर तथा कृत्रिमके कालानमक और काचनमक प्रभृति हैं।

कल्प तथा योग—नमक शैखुर्रईस, सफूफुल् इम्लाह, सफूफनमक, हब्ब पचलोना।

आयुर्वेदीय मत—सब लवण रुचिकर, अन्न आदिको पचानेवाले, स्रंसन करनेवाले तथा वायुनाशक होते हैं। (च० सू० अ० २७/२९९)। लवणोंमें सैंधव सबसे कम गरम, वातहर और कफपित्तकर होता है; औद्भिद सबसे अधिक। सैन्धव सबसे अधिक, स्निग्ध, मधुर और सृष्टमूत्रपुरीष होता है; और औद्भिद सबसे कम होता है। (सु० सू० अ० ४६/३१३)।

(१) सेंधानमक

नाम—(हिं०) सेंधानमक, सेंधालो(नो)न, सेल्हा निमक, लाहौरीनमक; (अ०) मिल्ह तबर्ज़द (मिल्हुल् हजर), मिल्ह दरानी; अल्-मिलहुल् अंदरानी, अलमिल्हुल् दारानी (इ० बै०); (फा०) नमके संग, नमके अन्दरानी (जरानी); नमके लाहौरी (हिन्दी), नमके तबर्ज़द; (सं०) सैंधव, सिन्धुज; (बं०) सैंधवलवण, सैंधवनून; (म०) शेंदे लोण; (गु०) सिंधालूण; (सं०) सैंधव; (ले०) सोडियाई क्लोराइडम् इम्प्योरा (Sodii Chloridum Impura); (अं०) सोडियम् क्लोराइड इम्प्योर (Sodium Chloride Impure), रॉक साल्ट (Rock-Salt, Pure Crystallised Salt) सोडियम् क्लोरेट (Sodium Chlorate)।

वर्णन—इसके छोटे सफेद क्रिस्टली दाने या पारदर्शक घनखंड होते हैं। बाहरसे यह भूरापन लिए सफेद और भीतर सफेद होते हैं। इसका स्वाद शुद्ध नमकीन (Saline) और जलते समय पीला लौ में जल जाता है। इसके यह तीन भेद होते हैं—(१) सफेद, (२) लाल और (३) क्रिस्टली। इनमें शुद्ध सफेद रवादार (मणिभीय) नमक औषधके कामके लिये उत्तम होता है। खानेके लिये भी यह लवणके अन्य भेदोंसे उत्कृष्टतर है। यह खनिज द्रव्य है। पंजाबमें इसकी खानें हैं। सैंधव का अर्थ 'सिंध या सिंधु नदी' के आस-पासके देशोंमें मिलनेवाला नमक है। यह शब्द मिल्हुल् हजर (Rock-Salt) के अर्थमें प्रयुक्त होता है। दरान (स्थान विशेष) से लाया जानेके कारण दारानी, अंदरानी कहते हैं। तवर (Axe) से काटकर टुकड़े किये जानेके कारण इसे 'मिल्हतबरज़द' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टिसे इसमें अधिकांश सोडियम् क्लोराइड, अत्यल्प प्रमाणमें सोडियम् सल्फेट और कार्बोनेट और क्वचित् कैल्सियम् और मैग्नीसियम् क्लोराइड होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष)। इसकी गरमी व खुश्की हर प्रकारके नमकसे कम है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौदावी दोषोंके दलके रास्ते निकालता है, कफ और वायु तथा अम्लोद्गार का नाश करता, क्षुधा की वृद्धि करता और अजीर्णको लाभ पहुँचाता है। आँखोंकी बीमारीमें इसके सिवाय कोई अन्य नमक प्रयोगमें नहीं आता। झाइयोंपर इसे रातमें सोते समय पानीमें पीसकर लगाने और प्रातः गरम पानीसे

धो डालनेसे कुछ ही दिनोंमें लाभ होता है। इसे गुदामें रखनेसे मल और मूत्रका अवरोध मिटता है। इसकी सलाई आँखोंमें फेरनेसे जाला कट जाता है। इसमें दुगुनी मिश्री मिला-पीसकर काजल बना आँखमें लगानेसे मोतिबिंद और जाला आदि मिट जाता है। दाँत कोट हो गये हों तो इसका मंजन करनेसे लाभ होता है।

आयुर्वेदीय मत—सेंधानमक कुछ मधुर, शीतवीर्य, रुचिकर (आहारको स्वादु बनानेवाला), दीपन, वृष्य, नेत्रके लिये हितकर, विदाह न करनेवाला, हृद्य, लघु, स्निग्ध, आरोग्यप्रद, सब लवणोंमें उत्तम तथा विबन्ध, नेत्ररोग, हृद्रोग, व्रण, अरुचि और वातपित्त तथा कफ—इन तीनों दोषोंका नाश करनेवाला है, और सभी लवणोंमें श्रेष्ठ है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; ध० नि० २ वर्ग)।

(२) समुद्र नमक (नमक दरियाई)

नाम–(हिं०) नमक, नू (नो) न, लोन, समुंदरलोन, समुंदर नमक, समुद्दरलोन, समुद्रीनमक; (द०) निमक; (अ०) मिल्हबहरी; (फा०) नमके दरियाई; (सं०) स(सा)मुद्र लवण, सामुद्र; (बं०) निमोक्, करकच; (म०) मीठ; (गु०) मीठुं; (ले०) सोडियाई क्लोराइडम् (Sodii Chloridum); (अं०) कॉमन साल्ट (Common Salt), टेबल साल्ट (Table Salt), सोडियम् क्लोराइड (Sodium Chloride), मुरिएट ऑफ् सोडा (Muriate of Soda)।

वर्णन—समुंदरके पानीसे विशेष विधिसे बनाया हुआ नमक जिसके पारदर्शक घनखंड या छोटे गंधरहित, नमकीन भूरापन लिये सफेद मणिभीय दाने होते हैं जो उदासीन प्रतिक्रियावाले, सुरासार और क्लोरोफार्ममें अविलेय और जलमें विलेय दाने होते हैं। इसमें अल्प मात्रामें (Iodine) होती है। स्वादमें यह कुछ-कुछ तिक्त, खारी एवं सारक तथा गुण-कर्ममें सेंधानमकके समान होता है।

रासायनिक संगठन—सोडियम् क्लोराइडके अतिरिक्त अत्यल्प मात्रामें इसमें पोटासियम् और मैग्नीसियम्के क्लोराइड तथा मैग्नीसियम् और कैल्सियम्के सल्फेट होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह क्षुधावर्धक, पाचन, वायुनाशक एवं वातानुलोमन, सारक, आशुकारी और खारी नमकका प्रतिनिधि है।

अहितकर—खुजली उत्पन्न करता है।

निवारण—स्नेह।

आयुर्वेदीय मत—सामुद्र लवण कुछ मधुर, कुछ तिक्त, मधुरविपाक, कुछ उष्णवीर्य, विदाह न करनेवाला, भेदन, कुछ स्निग्ध, लघु, हृद्य, पलित (केश पकना—सफेद होना) रक्तविकार और कुछ पित्तको उत्पन्न करनेवाला, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात और शूलका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६; च० सू० अ० २७; रा० नि० २ वर्ग)।

(३) सोंचरनमक

नाम—(हिं०) सोंचल (र) लोन, काँच नमक; बिरिया नोन, कचलोन, मनिहारी नमक; (अ०) मिल्हुज्जुजाज; (फा०) नमके कांच (शीशा); (सं०) सौवर्चल; (बं०) संचल लवण; (म०) संचर, पादेलोण; (गु०) संचल; (म०, मार०) संचल लोन; (अं०) सोंचल साल्ट (Sonchal Salt)।

वर्णन—एक प्रकारका नमक जो काले रंगका होता है। यह साधारण नमक तथा सज्जी मिट्टी से बनाया जाता है। इसमें क्लोराइड् ऑफ सोडियम्, सल्फेट ऑफ सोडा और कॉस्टिक सोडा होता है, पर कॉर्बोनेट ऑफ सोडा नहीं होता। किसी-किसीने इसे ही कालानमक भी लिखा है।

प्रकृति, गुण-कर्म तथा उपयोग—आदि कालानमकके समान हैं। दे० 'कालानमक'।

आयुर्वेदीय मत—सौवर्चल लवण रस में कटु और विपाक में कटु (हलका), उष्णवीर्य, सूक्ष्म, लघु, सुगन्धित, रुचिकर, दीपन, भेदन, अत्यन्त पाचन, स्नेहयुक्त, विशद, हृद्य, उद्गार (डकार) को शुद्ध करनेवाला, अत्यन्त पित्तजनक नहीं, तथा वायु, गुल्म, आनाह, शूल और विबन्ध (मलावरोध) को दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

(४) साँभ(ब)र नमक

नाम—(हिं०) साँभरनमक (नून, नोन (लोन); साँभर, गडलोन (हकीम अबुल् कासिम); (अ०) मिल्ह सांभर, मिल्हुल्अजीन, मिल्हुत्तओम; (फा०) नमके साँभर, नमके खुर्दन, नमके तआम, नमके नाल; (सं०) रोमक (सु०), शाकम्भरि (-रीय), साम्भर (र० त० अ० १४), गड लवण; (म०) साँवर लुन या सांभर मीठ; (गु०) साम्भर मीठुं।

वक्तव्य—खानेके काम आनेसे साँभर और समुद्र दोनों नमकोंको फारसीमें 'नमके तआम' कहना चाहिये। परंतु यूनानी ग्रंथोंमें इससे साँभर ही अभिप्रेत होता है।

वर्णन—राजस्थानमें अजमेरके पास स्थित साँभर (सांबर) झीलके पानीसे यह नमक बनाया जाता है। इसके रवे फिटकरीके रवेके समान विषमकोणीय आयताकार (Rhomboidal) होते हैं। स्वाद चरपरा होता है। इसके लौका रंग पीला होता है।

इसमें खानेके नमकके अतिरिक्त सोडियम् कार्बोनेट और सोडियम् सल्फेट तथा थोड़ा आयोडीन होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—साँभर नमक (नमक-ताम) वायुनाशक है तथा श्लैष्मिक दोषोंको मलमार्गसे निकालता है। इसके लेपसे प्लीहाकी सूजन मिटती है। यह प्यास लगाता है। जला हुआ नमक मसूढ़ोंसे पीप निकलना बंद करता तथा दाँतोंका मैल साफ करता है। शरीरकी त्वचामें रक्त जमकर काला हो जाय (मर जाय) तो इसे शहदके साथ लगानेसे साफ कर देता है। नमकको धोनेसे उसकी तीक्ष्णता एवं विरेचनीय शक्ति घट जाती है। शीतल आहारोंमें सम्मिलित करनेसे उसका निवारण (दोषपरिहार) करता है। हर प्रकारके पानीमें मिलानेसे उस पानीका गुणकर्म भी नमक जैसा हो जाता है। अधिक नमक खानेसे रक्त जल जाता है और वीर्य शुष्क हो जाता है।

अहितकर—मस्तिष्क, दृष्टि और फुफ्फुसको तथा दुर्बल मनुष्यको। **निवारण**—मस्तिष्क और फुफ्फुसके लिये धोना और सातर मिलाना तथा दुर्बलोंके लिये स्निग्ध एवं स्नेहमय पदार्थ। **प्रतिनिधि**—अर्धभाग नौशादर और बूरा। **मात्रा**—१.७५ ग्राम या १॥। माशा, (मतांतरसे ७ ग्राम या ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—साम्भर (रोमक) लवण विपाक में कटु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, विष्यन्दी (भावप्रकाशके अनुसार 'अभिष्यन्दि'), व्यवायी, सूक्ष्म, मलका भेदन करनेवाला (दस्तावर), मूत्रल, पित्तको बढ़ानेवाला और वातहर है। (च०; सु०; भा० प्र०)।

(५) कालानमक

नाम—(हिं०) काला नि (न) मक, पादालोन, कालालोन; (अ०) मिल्ह अस्वद, मिल्हुल्मुर्र; (फा०) नमके सियाह, नमके तल्ख; (सं०) कृष्णलवण, काललवण (च०); (बं०) कालेनून; (अं०) ब्लैक साल्ट (Black Salt)।

वर्णन—एक प्रकारका कृत्रिम लवण जिसके गहरे भूरे लाल या ललाई लिये चमकदार दाने होते हैं। स्वादमें यह हलका नमकीन और कुछ-कुछ उत्क्लेशकारक होता है। इसे उत्तर भारत विशेषकर हिसार जिलेके भेवानीमें बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रधानतया (अधिकांश) सोडियम् क्लोराइड, अल्प प्रमाणमें सोडियम् सल्फेट्, ऐल्युमिना, मैग्नीसिया, फेरिक ऑक्साइड और सल्फाइड आफ आयर्नके साथ होता है। अर्थात् थोड़ा सल्फ्युरेट् आयर्न मिला हुआ अशुद्ध क्लोराइड ऑफ सोडियम् है। इसमें गंधकका एक वायु होता है जिससे इसमें एक प्रकारकी गन्ध आती है। काला नमक काँगड़ा जिलेमें प्रकृत (पहाड़ोंमें) भी मिलता है। आजकल यह नमक कृत्रिम रूपसे खानेका नमक ८ भाग, आँवला १ भाग, बहेड़ा १ भाग और सज्जीक्षार १ भाग इनको एकत्र जलाकर बनाया जाता है। प्राचीन कालमें भी यह लवण कृत्रिम ही रहा है।

वक्तव्य—किसी-किसीने आयुर्वेदके 'विड' लवणको 'कालानमक' और किसीने 'सोंचर नमक' माना है। परंतु श्री यादवजी महाराजने विडको नौसादर और सोंचरको काला नमक माना है। किसी-किसीने काला और सोंचर दोनोंको अभिन्न माना है। परंतु दोनोंकी रचना स्वरूप आदिमें साम्य होनेपर भी आंशिक भेद होनेके कारण मैंने दोनोंका पृथक्-पृथक् वर्णन किया है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह पाचन, दीपन और वायुजन्य पीडाको शमन करता है। लाहौरी नमकसे इसमें कोष्ठमृदुकरण, अतिसरण और लेखनकी शक्ति अधिक है। यह तिक्त, उष्ण, हृद्य आर लघु है। इससे खराब डकारें आती हैं, यह भूख बढ़ाता, विबन्ध (कब्ज) एवं उदराध्मान दूर करता और शुक्रकी वृद्धि करता है।

वक्तव्य—आयुर्वेदोक्त 'विडलवण' को प्रायः विद्वानोंने कालानमक माना है। परन्तु चरकने कालानमकको काललवण लिखकर विडलवणका इससे पृथक् वर्णन किया है। चरकोक्त विडलवणके गुणधर्म-प्रयोगका विचार करनेपर वह नौसादर जान पड़ता है। अस्तु, मैंने श्री यादवजी महाराजका अनुकरण कर इसे 'नौशादर' ही माना है। अतः शास्त्रोक्त विडलवणके गुणोंको नौशादरके अन्तर्गत लिखा है।

आयुर्वेदीय मत—काला नमक (काललवण) में सोंचरके सब गुण होते हैं केवल गन्ध नहीं होती। (च० सू० अ० २७/२९८)।

(६) खारीनोन (नमक)

नाम—(हिं०) खारीनो(लो)न (नून), पांगानून, रेहवा कल्लर नमक, सज्जीमिट्टी; (अ०) मिल्हुद्दबाग़ीन; (फा०) नमके शोर; (सं०) पांशुजलवण, औद्भिद लवण; (ले०) सोडी सल्फास (Sodae Sulphas); (अं०) क्रूड सल्फेट ऑफ सोडा (Crude Sulphate of Soda)।

वर्णन—ऊसर भूमिमें क्षार (खार) या लवण मिली हुई मिट्टी (खारीमिट्टी) पाई जाती है, उसको पानीमें घोल, निथार, कपड़ेसे छानकर सूर्यके तापमें या अग्निपर सुखा लेते हैं। उसको खारीनोन कहते हैं। रेहवाली भूमिपर सफेद फूली हुई मिट्टीके रूपमें यह स्वयं भी भूमिसे प्राप्त होता है। यह कालाई लिये बादामी रंगका, अत्यन्त तिक्त और क्षारयुक्त, कटु और तीक्ष्ण होता है। इसमें मुख्य सोडियम् क्लोराइड और सल्फेट होता है और अल्पांशमें सोडियम् कार्बोनेट, चूना और शोरा होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, स्रोतोविशोधका (उद्घाटका,) वमन, लेखन, सारक, उष्णताभिजनन है। यदि जलोदररोगीको स्नान करना जरूरी हो तो खारी नमकको पीसकर पानीमें

मिलाकर कुछ दिन तक इसे धूपमें रखकर गरम करके उससे स्नान करनेसे उपकार होता है। मात्रा—३.५ ग्राम या ३॥ माशेतक।

आयुर्वेदीय मत—औद्भिद् लवण कुछ तिक्त और कटु, क्षारयुक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, और लघु, सूक्ष्म उत्क्ले (शि—खूब मिचली लानेवाला) है। वक्तव्य—या उत्क्लेदि (च०-शरीरमें गीलापन उत्पन्न करनेवाला) और वातानुलोमन है (सु० सू० अ० ४६; च० सू० अ० २७)।

प्रकरण २

क्षार

नाम—(हिं०) खार; (अ०) अल्क़ली; (अं०) अल्काली; (सं०) क्षार; (ले०) ॲलकली (Alkali)।

विविध क्षार और उनके सामान्य गुणधर्म—

कल्प तथा योग—अल्कासिर (क्षारयोग)।

आयुर्वेदीय मत—सब क्षार तीक्ष्ण, गरम, हलके, रूखे, क्लेदी (शरीरके स्रोतोंमें गीलापन उत्पन्न करनेवाले), पाचक, विदारण (विद्रधि आदिको फोड़नेवाले), जलानेवाले (दहन), दीपन, छेदन गुणयुक्त (कफ आदिके संघातको काटनेवाले), अग्निके सदृश, रक्तपित्तकर, वातानुलोमक तथा अश्मरी, गुल्म, अर्श तथा शर्करा इनका नाश करते हैं। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

(१) बूरए अरमनी (पापड़खार)

नाम—(हिं०, म०, गु०) पापड़खार, पापरीलोन; (अ०) बोरक़; (फा०) बोरः, बूरए अरमनी; (सं०) पर्पटक्षार; (अं०) पर्लऐश (Pearl ash)।

वर्णन—यह क्षारयुक्त भूमिसे प्राप्त होता है और कृत्रिम बनाया भी जाता है। इसका प्रयोग पापड़ बनानेमें करते हैं, इसलिये इसको 'पापड़खार' कहते हैं। सफेद, हलका, जालीदार और शीघ्र टूटनेवाला पापड़खार उत्तम समझा जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम व खुश्क।

गुण-कर्म—दोषच्छेदन, वमन और विरेचन इसके प्रधान कर्म हैं। उपयोग—आमाशयगत सांद्र दोष एवं कृमियोंको निकालता और सूजन उतारता तथा वमन और विरेक कराता है।

अन्य मत—वातानुलोमन, मूत्रल, सारक, अम्लतानाशक, विलयन और क्षारकर्मकर है। इसको सेंककर छाछके साथ खानेसे कामलारोग अच्छा होता है। जीरा और सोंठके साथ चूर्ण बनाकर जलके साथ खानेसे पेटका अफारा और दर्द दूर होता है। समभाग पापड़खार और चूनाजलमें पीसकर मस्से (मशक) पर लगानेसे मस्सा निकल जाता है। पके हुए व्रणशोथ (फोड़े) पर लगानेसे शोथका विदारण होता है।

(२) सुहागा

नाम—(हिं०) सु(सो)हागा, तिंकाल; (अ०) बोरक़, मिल्हुस्सानाआ; (फा०) तन्कार, तिन्कार; (सं०) टङ्कण, सौभाग्य, अन्नभेदी; (बं०) सु(सो)हागा; (म०) टांकणखार; (गु०) टंकणखार, खड़ियोखार; (पं०) सोहागा, टिंकाल; (ले०) सोडिआई बाइबोरास (Sodii Biboras); (अं०) बाइबोरेट ऑफ सोडा (Biborate of Soda), बोरैक्स (Borax)।

प्राप्तिस्थान और वर्णनादि—यह तिब्बत, आसाम और नेपालसे आता है। इसकी सफेद रंगकी क्षणभंगुर डलियां या स्वच्छ, गंध और वर्णरहित स्फटिक होते हैं, जिनपर कभी-कभी सफेद चूर्ण जमा हुआ होता है। इसकी प्रतिक्रिया किंचित् क्षारीय और स्वाद हलका मधुर होता है। खनिज और कृत्रिम भेदसे यह दो प्रकारका होता है। खनिज (मादनी) सुहागा तिब्बत, नैपाल, लद्दाख और कशमीरसे आता है। कृत्रिम (मस्नूई) नमक, सज्जी और बूरए अरमनीसे बनाया जाता है।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टिसे इसमें मुख्य द्रव्य सोडियम् बायबोरेट है।

कल्प तथा योग—हब्ब तंकार।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—रोगाणुनाशक, लेखन, आग्नेय, पाचन, वातानुलोमन, श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता, मूत्रार्तवजनन और अर्शाङ्कुरनाशक है। **उपयोग**—पाचन तथा वातानुलोमन होनेके कारण यह आमाशयिक रोगोपयुक्त औषधियोंमें डाला जाता है। श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण यह कास एवं कफज कृच्छ्रश्वासमें प्रयुक्त होता है। प्लीहाकी कठोरताको दूर करनेके लिए भी इसका उपयोग कराते हैं। रोगाणुनाशक, लेखन और आग्नेय होनेके कारण इसके काढ़ेसे व्रणोंको धोते हैं तथा व्रणोंपर छिड़कते और मलहरोंमें डालते हैं। कर्णस्राव तथा सूजाकमें पिचकारीके द्वारा इसका उपयोग करते हैं। मुखव्रणमें इससे गण्डूष कराते हैं। लेखन होनेके कारण मुँहासे, झाइँ और दाद जैसे त्वचाके रोगोंमें तिलाकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसके काढ़ेके पानीसे गुदा और गुप्तांगोंको धोनेसे इन अंगोंकी खुजली दूर हो जाती है। लेखन और आग्नेय होनेके कारण अर्शाङ्कुरोंपर इसका पतला लेप करनेसे यह उनको गिरा देता है। दाँतोंपर मलनेसे उनको चमकोला बनाता है तथा विकारी दाँत या दाढ़पर निरंतर लगानेसे उसको उखेड़ डालता है। इसको अधिक प्रमाणमें खानेसे विषलक्षण प्रगट हो जाते हैं। उदाहरणतः विषभक्षण किए हुए रोगीकी त्वचा रूक्ष हो जाती है; कै और मिचली आती है; विरेक आने लगते हैं इत्यादि। **अहितकर**—विषोंमें सम्मिलित है। **निवारण**—कतीरा और गोंद। **प्रतिनिधि**—बूरए अरमनी। **मात्रा**—०.५ ग्राम या ४ रत्ती।

आयुर्वेदीय मत—कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, सारक, कफनिःसारक, हृद्य, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, आर्तवजनन, बल्य, पित्तकारक, मूढगर्भप्रवर्तक तथा वातरोग, कास, श्वास, विष, आध्मान और नाना प्रकारके व्रणोंका नाशक है।

नव्य मत—यह शैत्यकारक, मूत्रल, रजोनिःसारक, गर्भाशय संकोचक, अम्लनाशक, जीवाणुनाशक स्थानिक अवसादक और पचननिवारक है। गर्भाशयकी संकोचनशक्तिकी क्षीणताके कारण प्रसवमें विलंब होता हो तो अर्गटके साथ सुहागेका प्रयोग करते हैं। सुहागेके चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखव्रण (मुँहके छाले)में लगानेसे लाभ होता है। मुखव्रणमें सुहागा गरम पानीमें मिलाकर कुल्ले कराये जाते हैं। सूजाक और श्वेतप्रदरमें टंकणद्रव (सुहागा २॥ रत्ती, पानी २॥ तोले)की उत्तरवस्ति देनेसे लाभ होता है। योनिकण्डूयनमें टंकणद्रवसे प्रक्षालन करनेसे लाभ होता है। आयुर्वेदमें टंकणको वत्सनाभके विषका निवारण माना गया है।

सज्जी

नाम—(हिं० म०, गु०, कों०) सज्जी, सोडा, सज्जीखार; (अ०) नतरून, मिल्ह अल्क़ली, शख़ार, अश्ख़ार; (फा०) नूरए सुलैमानी; (सं०) स्व(स)र्जिकाक्षार; (द०) सज्जी नून; (बं०) साजिमाटि; (लें०) सोडियाई (सोडी) कार्बोनास इम्प्योरा (Sodii (Sodae) Carbonas Impura); (अं०) सोडियम् कार्बोनेट (Sodium Carbonate), कार्बोनेट ऑफ सोडा (Carbonate of Soda), सोडा (Soda), वाशिंग सोडा (Washing Soda)।

वक्तव्य—यह सज्जीका वह भेद है जो फूली हुई (रेहवाली) जमीनकी मिट्टी (सज्जी या कल्लर नामी मिट्टी) से निकाली जाती है। इसीका विवरण यहाँ किया गया है। लाना प्रभृति क्षारयुक्त उद्भिज्जोंसे बनाई हुई सज्जीखारके विवरणके लिये उद्भिज्ज औषधाहार विज्ञानीय विभागान्तर्गत 'उश्नान' शीर्षकमें वर्णित सज्जीका विवरण देखें। आजसे सत्तर-अस्सी साल पहिले जबतक हमारे देशमें सोडा या साबुन विलायतसे नहीं आया था उस समय ही नहीं, अपितु हजारों वर्ष पूर्वसे हमारे देशके लोग कपड़े धोनेके लिये इन पदार्थोंका प्रयोग करते चले आ रहे हैं और आजतक भी धोबी इसी नमकीन खारी मिट्टी अर्थात् कल्लरसे कपड़े धोते हैं। दूसरी वस्तु जिससे कपड़े धोनेका साधारणतया काम लिया जाता था, वह सज्जी थी।

स्मरण रहे कि आयुर्वेद और यूनानी वैद्यकमें केवल उद्भिज्ज द्रव्योंसे ही क्षार बनानेका विधान मिलता है। परन्तु आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक अर्थात् डॉक्टरीमें उद्भिज्ज द्रव्योंसे क्षार न निकालकर खनिज द्रव्योंसे क्षार निकाले जाते हैं।

टि०—शेष क्षारोंमेंसे जवाखारका जो शीर्षकमें तथा नौशादर, शोरा और फिटकिरीका वर्णन इसी (पार्थिव द्रव्य-विज्ञानीय विभाग)के ज़विम्नुफूसाध्याय २ में देखें।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टिसे इसमें सोडियम् कार्बोनेट मुख्य होता है। इसके अतिरिक्त थोड़े अंशमें सोडियम् सल्फेट, नमक (सोडियम् क्लोराइड), पोटास आदि अन्य लवण और कुछ अशुद्धियाँ होती हैं।

आयुर्वेदीय मत—सज्जीखार और जवाखार अग्निसमान तीक्ष्ण (उष्णवीर्य) होते हैं और शुक्र, कफ, मलावरोध (विबन्ध), अर्श, गुल्म और प्लीहा (वृद्धि) इनके विनाशक हैं। (सु० सू० अ० ४६–३२५)। सज्जीखार तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, क्लेदन करनेवाला, पाचक, ग्रन्थि और व्रणशोथका विदारण करनेवाला; दाह करनेवाला, दीपन, छेदन और अग्नितुल्य है (चरक)।

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

[तृतीय खण्ड]

औषधाहार द्रव्य

विज्ञानीय विभाग ३

(१) अरगजा

नाम—(हिं०) अरगजा; (अ०; फा०) ग़ालिया।

वर्णन—कई सुगंधित पदार्थोंको मिलाकर बनाया हुआ एक सुगंधित योगौषध है। एक सुगंधित योग जो सुँघाने अथवा किसी अंग वा सारे शरीरपर मलनेके काम आता है। योग यह है—कस्तूरी, कपूर और अंबर अशहब—इन तीनोंके बारीक चूर्ण (महलूल)को निलोफर (मतांतरसे सुक्क) वा बकाइन (मतांतरसे रोगन बान)के तेलमें सुरक्षित रखें। यह केशर, चंदन और कपूर आदिके मिलानेसे भी बनता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शेख के अनुसार अंबर और रोगन बान मिला होनेके कारण यह कठिन सूजनको नरम करता तथा गर्भवतीके जरायुशूलके लिये गुणकारी है। मस्तिष्कमें रूक्षता एवं उष्णता उत्पन्न करनेके कारण इसके सूंघनेसे मृगीमें लाभ पहुँचता है तथा इसी हेतु उनकी असली उष्णता उद्दीप्त होती है। यह शीतल सिरदर्दको भी लाभ पहुँचाता है तथा मद्यके साथ सेवन करनेसे नशा उत्पन्न करता है। अपनी सुगंध एवं स्वभावके कारण धड़कन (हृत्स्पंदन)को लाभ पहुँचाता तथा हृदयको बल प्रदान करता है। गर्भाशयके भीतर इसकी फलवर्ति स्थापन करनेसे उसके शीतल वेदनाओं (रोगों)को लाभ पहुँचाता तथा मूत्र एवं आर्तवका प्रवर्तन करता है। अपतन्त्रककी रोगिणीका गर्भाशय इसके द्वारा नीचे उतर जाता है (क्योंकि वर्णन किया गया है कि उक्त रोगकी दशामें गर्भाशय ऊपरको चढ़ जाता है) और वक्रीभूत गर्भाशयको सीधा किया जाता है; क्योंकि सुगंधके कारण गर्भाशय उसकी ओर प्रवृत्त होता एवं गति करता है। आर्तवका प्रवर्तन करनेसे यह गर्भाशयको शुद्ध करता है तथा इसको गर्भधारणके योग्य बना देता है; क्योंकि गर्भधारण न होने देने योग्य मलोंसे गर्भाशयको शुद्ध करता है तथा अपनी सुगंधके कारण उसको शक्ति प्रदान करता है।

(२) अलकतरा

नाम—(हिं०) अलकतरा, तारकोल; (अ०) कतरान मादनी, कतरान जुगालेसंग, ज़िफ्त जबली; (उ०) तिजारती तारकोल, कोलतार; (ले०) पिक्स कार्बोनिस (Pix Carbonis); (अं०) कोलटार (Coal-tar), टार (Tar)।

वर्णन—यह पत्थरके कोयलेको आगपर गलाकर निकाला हुआ एक गाढ़ा पदार्थ है। कोयलेको बिना पानी दिए भभकेपर चढ़ाकर जब गैस निकाल लेते हैं तब उसमें दो प्रकारके पदार्थ रह जाते हैं—एक पानीकी तरह पतला, दूसरा गाढ़ा। यही गाढ़ा काला पदार्थ अलकतरा (व्यापारिक तारकोल) है। इससे कृमिनाशक औषधियाँ, जैसे—नेपथलीन, कार्बोलिक एसिड, फिनाइल आदि तैयार होती हैं। कीर इससे भिन्न द्रव्य है। इसको १२०° फारनहाइटके उत्तापपर एक घंटा तक पकाने और बराबर हिलाते रहनेसे यह शुद्ध हो जाता है। इस शोधित एवं शुद्ध अलकतराको अँगरेजीमें प्रिपेयर्ड कोलटार (Prepared Coal-tar) कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुणकर्ममें यह कतरानके समान है। अन्तर केवल यह है कि इसका आंतरिक प्रयोग नहीं करते। चिरज पामा (नारफारसी) में इसके प्रयोगसे लाभ होता है। इसका कई प्रकारसे प्रयोग करते हैं—(१) शुद्ध मद्यके द्वारा इसका प्रवाही प्रस्तुत कर चिरकारी त्वग्रोगोंमें इसे बीस गुना पानीमें मिलाकर बाह्यरूपसे लगाते हैं। (२) इससे क्रिओलीन नामक एक काले रंगकी औषधि बनाई जाती है। यह भी त्वग्रोगोंमें गुणकारक है और स्त्रीके जननावयवमें कार्बोलिक एसिडके स्थानमें काम आती है। उरःक्षत, सूजाक और अन्त्रके कोथ एवं शोथमें एकसे पाँच ग्रेनकी मात्रामें इसका उपयोग करते हैं। (३) आइज़ाल भी कोलतारका ही एक

यौगिक है जिसे कोथनिवारणके लिये काममें लेते हैं। इसका अढ़ाई प्रतिशत शक्तिका विलयन धात्रीकर्ममें बहुत प्रयुक्त होता है। इसे दाद और सिरके गंजके ऊपर मलनेसे कभी-कभी लाभ होता है। (४) लाइसॉल इसका एक काले रंगका जलविलेय प्रवाही है। यह प्रबल कोथप्रतिबंधक है। इसका दो प्रतिशतका विलयन शल्यक्रियामें बहुप्रयुक्त है। इससे शस्त्रोंपर कोई दाग आदि नहीं पड़ता, किन्तु यह उससे ऐसे चिकने एवं फिसलनदार हो जाते हैं कि इनका पकड़ना कठिन हो जाता है। (५) सल्लीन जो फीनोलका एक नया समरूप प्रतिनिधि है, न तो दाहक है और न विषैला। यह एक उत्तम कोथहर औषध है जो कण्डूमें लाभकारी है। यह कार्बोलिक एसिडकी अपेक्षा या उससे तीस गुना तीक्ष्ण है। उष्ण देशोंमें जब मुखपाक मुख एवं कण्ठसे आगे बढ़कर आमाशय और अन्त्रमें व्यापमान हो जाता है तव उसमें तीन बूंदकी मात्रामें इसे खिलाते और इस प्रकार प्रति दो-दो तीन-तीन घंटेके बाद इसे देते हैं।

(३) ईंट

नाम—(हिं०) ईंट (टा); (अ०) आजुर, लबन, क़र्मीद; (फा०) खिश्त; (सं०) इष्टिका; (अं०) ब्रिक (Brick)।

वर्णन—यूनानी ग्रन्थोंमें दो प्रकारकी ईंटका उल्लेख मिलता है। (१) सफेद ईंट जो चूने या लोहारोंकी भट्ठीमें पकाई जाती हैं। यह सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है और यूनानी चिकित्सामें काम आती है। (२) लाल ईंट जो पजाबमें पकाई जाती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरे या चौथेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको महीन पीसकर क्षतों पर बुरकनेसे खून बहना बन्द हो जाता है और खट्टे अंगूरके पानी (अभावमें सिरका) के साथ पित्तीपर इसका लेप करनेसे लाभ होता है। इससे उसकी वृद्धि रुक जाती है और वह पुनः प्रगट नहीं होती। कोरी सफेद ईंटको आगमें तपाकर पानी या शराबमें बुझाने और उस समय चादर ओढ़कर शिरको भाप देनेसे सिरका पुराना दर्द तथा सर्दी एवं प्रसेक (नजला) आदि शिरोरोग आराम होते हैं। वेदनास्थलपर सेंक करनेके लिये गरम की हुई ईंटपर थोड़ा सा जल वा मद्य छिड़ककर उसे किसी कपड़ेमें लपेटकर सेंक करना चाहिये। ईंटको गरम करके उसपर सिरका डालकर बद और पथरीको सेंकनेसे उन्हें बिठा देती है। बवासीर, सर्दीके दर्द और खूनी पेचिशमें गरम ईटपर बैठनेसे लाभ होता है। कोरी ईंटके छोटे-छोटे टुकड़े दहीमें डालकर रातभर रखने और सबेरे उसे छानकर पीनेसे पुराने क्षत भरते, आर्तवरक्त बन्द होता और वीर्यका शोषण होता है। चीनीके साथ सेवन करनेसे यह अत्यन्त रूक्षता उत्पन्न करता और आर्तवके रक्तको बन्द करता है। मधुमेहमें कुएंकी पुरानी ईंट परीक्षित हैं, और शुक्र-तारल्यका निवारण करती है। मूत्रमार्ग विस्तृति (बन्द कुशाद) रोगमें सात बार बड़के दूधमें सौ वर्ष पुरानी ईंटके चूर्णको भिगोकर टिकिया बनाकर कोयलोंकी आगमें पकाकर बनाया हुआ कपड़छन चूर्ण पुरानी खांड़ मिला प्रतिदिन हथेलीभर फाँकनेसे लाभ होता है। वहुपरीक्षित है। **अहितकर**—अन्त्र, आमाशय और वृक्कको। **निवारण**—कतीरा, बबूलका गोंद और सिरका। **प्रतिनिधि**—ठीकरी और सीपी। **मात्रा**—६ ग्राम से ९ ग्राम (६–९ माशे) तक।

(४) कांजी

भारतीय वा देशी—

नाम—(हिं०) कांजी; (फा०) आबकामा हिन्दी; (सं०) काञ्जि(ञ्जि)कम्, काञ्जि(ञ्जि)का, काञ्जी (कम्); (अं०) सावर ग्रुएल (Sour Gruel)।

वर्णन—एक प्रकारका खट्टा रस जो कई प्रकारसे संधानविधि द्वारा बनाया जाता है। कल्पना विधिके लिये देखें प्रथम खण्डके कल्परूपनामविज्ञानीय अध्यायगत 'मुरिय्य' शब्द।

विदेशी वा विलायती—

नाम— (हिं०) विलायती कांजी; (फा०) आबकाम: (आब = पानी; कामः = कामखका संक्षिप्त रूप, अर्थ सालन या अचार = अखारका पानी); (अ०) मुर्री, मुर्रिय (मुम्‌रिय = सुस्वादु, सुपाच्य); (अं०) विनेगर सॉस (Vinegar Sauce)।

वर्णन—एक प्रकारका कृत्रिम अम्ल प्रवाही जो जौके आटा और पुदीनाके साथ संधानित करके विशिष्ट प्रमाणमें फूज़ज (काञ्ज्युत्पादक द्रव्य–आबकामाका माया जिसको गेहूँ और जौके आटेसे तैयार करते हैं), नमक और सौंफ मिलाकर विशेष विधिसे बनाते हैं।

१. इसे 'कवामख़', 'कवामीख़' भी कहते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष, मतांतरसे दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। भारतीय काँजी शीतल एवं स्निग्ध किंचित् संग्राही।

गुण-कर्म—सांद्रदोषछेदन–लेखन (जाली), पाचन, क्षुधाजनन, शारीरद्रवोंका उपशोषण वा लेखन और उदरकृमिनाशन। **विशिष्ट कर्म**—रक्त और पित्तकी उग्रताका शामक।

उपयोग—शीतला वा मसूरिका रोगसे नेत्रकी रक्षाके लिये रोगारम्भमें इसका आश्च्योतन करते हैं। इसके अतिरिक्त जब नेत्रमें शीतलाके दाने निकल आते हैं तब भी इसे आँखके भीतर टपकाते हैं। गलशुण्डी (लहात) और कण्ठशालूक (वरम लौज़तैन)में इसका गण्डूष वा गरारा कराते हैं। स्थौल्य दूर करने तथा अपचन, अरुचि और उदरकृमि नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं।

अहितकर—वक्ष, कास तथा अर्शमें और खाज, दाद एवं कुष्ठरोगी को।

निवारण—पिच्छिल एवं मधुर पदार्थ तथा वसा और बारंबार स्नानागारमें प्रवेश करना।

प्रतिनिधि—एक कांजी दूसरे की। **मात्रा**—३ ग्राम से ९ ग्राम (३ माशेसे ९ माशे) तक या आवश्यकतानुसार।

(५) कागज

नाम—(हिं०) कागज, मसीपत्र; (अ०; फा०) काग़ज़; (अ०) क़िर्तास; (अं०) पेपर (Paper)।

वर्णन—सन, रूई, पटुआ, बांस आदिको सड़ाकर बनाया हुआ प्रसिद्ध महीन पत्र जिसपर अक्षर लिखे वा छापे जाते हैं। मात्र किर्तास संज्ञासे कागज वर्दी (पटेरसे बना कागज) अभिप्रेत होता है। इनमें साफ सफेद मिश्रदेशीय कागज सर्वश्रेष्ठ होता है।

कल्प तथा योग—नफूख हाबिस रुआफ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—जलाया हुआ कागज संग्राही, रक्तस्तम्भन और उपशोषण है। **उपयोग**—क़ागजको जलाकर प्रतिश्याय (जुकाम)में धूनी देते हैं। नकसीर बंद करनेके लिये इसकी राखको नाकमें नस्य देते (नफूख करते) हैं। मसूढ़ोंका रक्तस्राव बंद करनेके लिये उनपर इसे मलते हैं। सद्यः क्षतसे रक्तस्राव रोकने तथा उसे सुखानेके लिये इसे छिड़कते हैं। फुफ्फुसव्रण तथा अन्त्रामाशयव्रणमें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका चूर्ण खिलाते हैं। रक्तस्तंभन इसका प्रधानकर्म है। **अहितकर**—वृक्क और अन्त्रको। **निवारण**—तृणकान्त (कहरुवा) और खूनखराबा। **प्रतिनिधि**—जलाया हुआ पटेर (गोंदल)। **मात्रा**—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

(६) काजल

नाम—(हिं०) काजल, कालिख; (अ०) सख़नाज; (फा०) दूद, स्याही दूद चिराग़; (सं०) कज्जल; (अं०) लॅम्प ब्लैक (Lamp Black)।

वर्णन—वह कालिख जो दीपकके धूएँके जमनेसे किसी ठीकरे आदिपर लग जाती है और बड़ी काली एवं चमकदार होती है। इसके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके तेलोंको जलाकर उसका धूआँ लेकर व्यवहार किया जाता है।

कल्प तथा योग—कोहल काजल।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—चक्षुष्य है। प्रत्येक चीजका काजल गुण-कर्ममें अपने जनक द्रव्यके समीप होता है। जैसे—बदामके तेलसे, बना नेत्रको शक्तिप्रद, काहूके तेलसे बना क्षोभहर वा शामक और संमिश्र द्रव्योंसे बना उनके मिलित गुण-कर्म युक्त होता है। **उपयोग**—नेत्ररोगोपयोगी अंजनोंमें पड़ता है। इससे बने अंजन नाना प्रकारके नेत्ररोगोंमें नेत्रको मलसे शुद्ध एवं निर्मल करने तथा नेत्र एवं दृष्टिको शक्ति देनेके लिये प्रयुक्त होते हैं। **अहितकर**—कंठ और फुफ्फुसको। **निवारण**—अनुकूल औषध एवं जलमें रखना। **प्रतिनिधि**—एक काजल दूसरे की वा सुरमा।

(७) कीर

नाम—(हिं०; द०) कील; (अ०) क़ीर, क़ार; (फा०) क़ी(क़ि)ल, कज़्फ़; (ते०) कीलु; (त०; सिं०) किल; (कना०) कीलू।

वर्णन—ललाई लिये काले रंगकी एक वस्तु जो भूमिमेंसे गरम जलकी भाँति जोश मारकर निकलती है। किसी-किसीके मतसे फरात नदीके कूलपर एक स्थान है जहाँपर इसका सोता है। उसमेंसे गरम पानीके साथ उक्त द्रव उबलकर निकलता है और अन्तमें जमकर कड़ा हो जाता है। बसरा और बगदादकी तरफके लोग इसको जमाकर नावों, दीवारों, स्नानागारकी सहन और हौजोंपर मलते हैं। यह 'क़फ्रुल्यहूद' अर्थात् मिट्टीके तेलके समीप है, प्रत्युत उसकी किस्म है तथा 'जिफ्त बहरी' की किस्मसे है। इसमें तीन वर्षतक वीर्य स्थिर रहता है। स्वाद तिक्त एवं कुस्वाद होता है। पतला और जमा हुआ भेदसे यह दो प्रकारका होता है। पतला जिसे सय्याल (तरल) कहते हैं, सबसे अधिक गर्म है। जमे हुएको जबही कहते हैं। यह सर्वाधिक संग्राही है। सय्यालमें मिट्टी मिलाकर काढ़ा करनेसे वह कड़ा हो जाता है। इसकी संग्राही शक्ति मध्यम और विलीन करनेवाली अधिक होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह पिच्छिल दोषोंका पाचक है। इसके चाबनेसे मस्तिष्क और दाढ़ोंसे द्रव छँट जाते हैं और उनकी सर्दी दूर हो जाती है तथा वाक्कष्ट, हकलापन और दन्त सुप्तता या दाँत कोट होना तथा मसूढ़ोंके रोग आराम होते हैं। यह चेहरेके रंगको निखारता है तथा उरोगत पिच्छिल दोषोंका परिपाक करता है। यह दीपन-पाचन तथा वातानुलोमन है तथा खान-पानके परिवर्तन एवं मरकवायुजनित विकारोंका प्रतिबन्धक है। यह आमाशय, यकृत् और प्लीहाको शक्ति देता है। कीर लगाये हुए बरतनमें पानी पीनेसे जलपरिवर्तन एवं उसकी सान्द्रता उभय दोषोंका निवारण होता है। यह आंतरिक अंगोंको उष्णता प्रदान करता और जलोदर एवं प्लेगको नष्ट करता है। इसके लेपसे सूजन उतरती है और व्रण आदिका परिपाक होता है। यह अस्थिभंग, कण्डरा-वितान (मोच) और अभिघातज वेदनाको शमन करती तथा अस्थिका संधान करती है। (मख्जन)।

कोयला

नाम—(हिं०; बं०) कोयला; (अ०) फ़ह(ह्)म; (फा०) ज़ुगाल, अंकुश्त; (सं०) अंगार; (द०) कोलसा; (म०) कोलसे; (गु०) कोयलो, कोलसो; (सिंह०) अंगुरु; (ले०) कार्बन (Carbon); (अं०) चारकोल (Charcoal)।

वर्णन—किसी पदार्थका जलकर काला पड़ा हुआ अंश। यह जंगम और उद्भिद उभय प्रकारकी सृष्टिमें

पाया जाता है। इसके यह तीन भेद होते हैं—(१) हड्डीका कोयला, (२) लकड़ीका कोयला और (३) पत्थरका कोयला।

(८) लकड़ीका कोयला

नाम—(हिं०) लकड़ीका कोयला; (अ०) फ़ह्‌मुल्‌ख़शब; (फा०) ज़ुग़ाले चोबी; (सं०) काष्ठाङ्गार; (बं०) काष्ठकोयला; (म०) लाकडाचा कोल्‌सा; (द०) लकड़ीका कोल्‌सा; (गु०) लाकडुकोएलो; (पं०) कोइला; (ले०) कार्बोलिग्नाई (Carboligni); (अं०) वुड चारकोल (Wood Charcoal), मेडिसिनल चारकोल (Medicinal Charcoal)।

कल्पना-विधि और परिचय—यह अन्तर्धूमदग्ध विधिसे बनाया जाता है। यह काले, भंगुर, सुषिरपूर्ण गंध एवं स्वादरहित और बहुत हलके टुकड़ोंके रूपमें पाया जाता है। जिस लकड़ीसे यह बनाया गया होता है उस लकड़ीकी आकृति एवं रचना इसमें पूर्ववत् बनी रहती है। खुली वायुमें उच्चतापपर जलानेसे लगभग दो प्रतिशत राख अवशेष रूपमें रह जाती है। यह सर्द और गरम अपनी लकड़ीके अनुसार होता है।

(९) हड्डीका कोयला

नाम—(अ०) फ़ह्‌मुल्‌ हैवान, फ़ह्‌मुल्‌ अज़्म; (फा०) ज़ुग़ाले हैवानी, ज़ुग़ाले उस्तख़ाँ (उस्तख़ानी); (बं०), (द०) हडका कोलसा; (म०) हड कोलसे; (ले०) कार्बो ऐनिमेलिस (Carbo Animales); (अं०) ऐनिमल चारकोल (Animal Charcoal), बोनब्लैक (Bone-black)।

निर्माण-विधि, रासायनिक संगठन और परिचय—यह हड्डियोंको वायुसे बचाकर तीव्राग्नि देनेसे प्राप्त होता है। इसमें कज्जल (कार्बन), फॉस्फेट ऑफ कैल्सियम् और कार्बोनेट ऑफ कॅल्सियम् (खड़ी-चॉक) होता है। इससे लवण दूर कर देनेपर यह शुद्ध 'हड्डीका कोयला' कहलाता है। यह सौभागमें दस भाग प्राप्त होता है और अब यह काले रंगका चूर्ण होता है जिसमें न कोई गंध होती है और न कोई स्वाद।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हड्डीके कोयलेका उपयोग प्रायः रंग दूर करनेके लिये होता है। औषधकी भाँति इसका उपयोग बहुत कम होता है। यह अफीम, कुचला और बछनागका उत्तम प्रतिविष (अगद) है। जिन रोगोंमें लकड़ीका कोयला दिया जाता है उनमें इसको दे सकते हैं। लकड़ीके कोयलेके उपयोगसे आमाशयके रोगोंमें बड़ा लाभ होता है। उदाहरणतः अम्लपित्त और आध्मान रोगमें इसे देते हैं। सड़े-गले घावोंमें इसे पुलटिसमें मिलाकर लगाते हैं। यह एक उत्तम कोथनिवारक एवं दुर्गंधहर है। अधिक मात्रामें देनेसे यह हलका विरेचक है। दाँतोंको साफ एवं स्वच्छ करनेके लिये मंजनकी भाँति प्रायः कोयलेका उपयोग होता है। यह मसूढ़ोंको शक्ति देता और मुखकी दुर्गन्धको दूर करता है। इस हेतु चौथाई भाग नमकके साथ मंजनकी भाँति इसका उपयोग करना चाहिये। किन्तु यह दाँतोंकी रचनाको हानि पहुँचाता है।

(१०) पत्थरका कोयला

नाम—(हिं०) पत्थरका कोयला; (अ०) हजरुल्‌ ग़ाग़ातीस, हजरग़ाग़ीतूस, ग़ाग़ाती; (अं०) मिनरल कोल (Mineral Coal)।

वर्णन—प्राचीन कालमें किसी समय पृथ्वी गर्भमें उथल-पुथल होनेपर जंगलके जंगल भूगर्भमें समा गये थे। वही वृक्ष आज हमें पत्थरके कोयलेके रूपमें मिल रहे हैं। सारांश पत्थरका कोयला वास्तवमें पर्वतोंमें दबे हुए वृक्ष हैं जो कालांतरसे अश्मीभूत हो गये (पत्थर बन गये) हैं। इसी प्रकार जानवर भी पत्थर बन जाते हैं। पत्थरका कोयला परतदार भारी और काला होता है। इसमें अभ्रक जैसे अंश चमकते हैं। इसे आगमें डालनेसे जलजाता है और बारह भागमेंसे ग्यारह भाग जलकर एक भाग शेष रह जाता है। जलानेसे इसमेंसे एक विशेष

प्रकारकी 'कीर वा मिट्टीके तेल' या जानवरकी सींग जलने जैसी गंध निकलती है। दीसकूरीदूस के अनुसार जो आगमें शीघ्र जलने लगे और कीर एवं लहसुन जैसी गंध दे वह श्रेष्टतर है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह मृदुसारक एवं यक्षतासहित अत्यंत श्वयथुविलन है। गहरे घावमें इसे भरनेसे वह भर जाता है। अपतन्त्रकी मूर्च्छा इसकी गंधसे दूर हो जाती है। इसकी धूनीसे भौमकीट घरसे भाग जाते हैं। मृगीके रोगीको इसकी गंधसे बचाना चाहिये। जिसको यह रोग न हो इसके कतिपय भेदके सूँघते-सूँघते उसे यह रोग हो जाता है। दुर्बल मस्तिष्कवालोंको इसके धुएँकी गंध बहुत हानि करती है। वातरक्त की औषधियोंमें इसे मिलाकर लेप करनेसे बड़ा लाभ होता है। इसके सेवनसे गर्भका रहना और आर्तवरक्तका आना बंद हो जाता है। अहितकर—फुफ्फुस को। निवारण—केसर। मात्रा—१.७५ ग्राम या १॥। माशे खुश्क।

(११) चक्कीकी झाड़न

नाम—(हिं०) चक्कीकी झाड़न; (अ०) गुब्बारुर्हा; (फा०) गर्दआसिया।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रसिद्ध द्रव्य है। यह रूक्षता करती है और वातनाड़ियोंको शक्ति देती है। इसके सूंघने से नकसीरका खून बंद होता है। इसको पानीमें मिलाकर मस्तकपर लेप करनेसे दोष आँखोंकी ओर नहीं आता।

(१२) पानी

नाम—(हिं०) पानी; (अ०) माऽ (बहुव० मियाह, अम्वाह), अरक़; (फा०) आब; (सं०) जल, अप्, आप; (ले०) ऐकुवा (Aqua); (अं०) वॉटर (Water)।

वर्णन—वायु एवं प्रकाशकी भाँति पानी भी विश्व का एक प्रसिद्ध तत्व है। भाप, कुहरा, ओस, बादल, ओला, बर्फ और पाला आदि इसीके विविध रूप हैं, जिनके गुणकर्म परस्पर भिन्न-भिन्न हैं और समान भी हैं। मीठा और स्वच्छ होना, शीघ्र आमाशयसे नीचे उतर जाना, पाचन होना, क्षुधा बढ़ना, शरीरका हलका रहना, पेटमें अफारा एवं गुड़गुड़ाहट न होना, पेटमें भारीपन न होना, शीघ्र गरम और शीघ्र शीतल हो जाना आदि इसके हलका होनेकी पहिचान हैं।

प्रकृति—शीत एवं स्निग्ध (तर)। पानीसे अधिकतर तर कोई अन्य वस्तु नहीं है। इसलिये प्यास बुझाना और आमाशय तथा यकृत् (जिगर) का दाह मिटाना जितना पानीसे होता है, उतना किसी भी अन्यप्रवाही (द्रव) से नहीं होता।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पानी तृषाहर, स्निग्ध (तरावट पैदा करनेवाला) तथा आमाशयका दाह, पित्तविकार, शिरोभ्रमण, मूर्च्छा; मिचली और चेपदार दोषोंका नाश करता है। असंसृष्ट होनेसे इससे प्राणिशरीर को पोषण प्राप्त नहीं हो सकता, प्रत्युत यह उद्भिज और प्राणिज (जाङ्गम) आहारद्रव्योंको पतला करता है, उनका अनुपान हो जाता है, दोष एवं धातुओंको सूक्ष्म स्रोतों एवं शरीरके गंभीरतर भागोंमें पहुँचाता है, शरीरमें तरावट उत्पन्न करता, ओजोको उल्लास प्रदान करता, गर्मी एवंसंतापको बुझाता, आमाशय और यकृत्की गर्मीको दबाता, सांद्र एवं चेपदार दोषोंको अवयवोंके धरातलसे धो डालता और ऐसे दोषोंको पतला कर देता है जिससे वे निर्हरण योग्य बन जाते हैं। यह पाचन, पाक, शोषण, निर्हरण और परिवर्तनमें सहायता करता है तथा आहार और औषधोंकी क्रिया-प्रतिक्रियामें सहायक है। ये गुण इसे यथासमय और उचित प्रमाणमें पीनेसे प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत पीनेसे हानि पहुँचनेका भय होता है। पानी जितना कम पियें उतना ही अच्छा है। बहुत पानी और

विशेषत: अत्यन्त शीतल पानी पीनेसे शीतल रोग, जैसे—कम्पवात और जलोदर उत्पन्न करता है। आमाशयको शिथिल, वाततंतुओंको दुर्बल तथा यकृत् एवं अन्त्रको भी दुर्बल करता, शरीरका वर्ण विवर्ण कर देता, विस्मृति एवं बुद्धिमान्द्य उत्पन्न करता तथा नींद अधिक लाता और (हवास)में गुरुत्व उत्पन्न करता है। इससे प्रसेक (नजला) विकार होने लगता है और हाथ-पांवपर और आंखके गोलके नीचे शोष पैदा हो जाता है। पानी पीनेका काल वास्तविक प्यास है। खाना खानेके बीचमें या उसके पीछे या खानेके दो-तीन घड़ी बाद पानी पीना अच्छा है। खाना खाकर तृप्त होनेके समय, खाना खानेके तुरंत बाद, आमाशयसे खान नीचे उतरनेसे पूर्व अथवा खाना खानेके बीचमें पानी पीना श्रेयस्कर नहीं है। परंतु उष्णप्रकृति पुरुषके लियो अथवा जिनके आमाशयमें गर्मी हो उनके लिये यह उचित है कि भोजनके मध्य थोड़ा पानी पीवे, सहसा अधिक नहीं पीवे, भूखके समय पानी कम पीवे, चूसकर पीवे अथवा पानीके बदले शर्बत या थोड़ा खाना खाकर पानी पीवे, जिसमें कम हानि हो। भूखमें पानी पीना वर्ज्य है, क्योंकि इससे बुढ़ापा आता है तथा नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार रात्रि जागरण करके पानी पीनेसे नजला (प्रसेक) पैदा होता है। व्यायाम, अत्यधिक आयास, स्त्रीसहवास, स्नान और तर फलों, जैसे—खरबूजा एवं तरबूज आदिके सेवनोपरान्त पानी पीनेसे बड़ा नुकसान होता है। खड़े होकर, कमर बँधे होकर और औंधा लेटकर पानी पीना भी अहितकारक है। विना कलई किये तांबे और सीसे (नाग)के पात्रमें भी पानी पीना वर्जित है।

पानी पीनेके लिये उपर्युक्त विधि और निषेधका पालन आवश्यक होनेपर इन अवस्थाओंमें उनका न पालन (भंग करना) भी उचित है, जैसे—उष्ण देश, प्लेगके प्रसारकालमें, गर्मीकी ऋतु, उष्ण एवं बलिष्ठ प्रकृतिमें तथा जिनके हृदय, यकृत् और आमाशयमें गर्मी हो एवं मस्तिष्क बलवान् हो, इन अवस्थाओंमें उपर्युक्त विधि-निषेधका पालन करना आवश्यक नहीं, फिर भी उक्त अवस्थाओंमें भी अधिक पानी नहीं पीना चाहिये तथा सदैव नियमोल्लंघन नहीं किया जाय। उष्ण प्रकृतिवालोंके लिये विशेषत: उष्णवायु एवं प्लेगके संचारकालमें नीहार मुँह पानी पीना लाभदायक है। यदि उष्ण प्रकृतिवाला धैर्य रखकर पानी नहीं पीवे तो शोष एवं दाहोत्पत्तिकी आशंका होती है। एक बारमें बहुत सा पानी नहीं पीना चाहिये, अपितु थोड़ा-थोड़ा कमसे कम तीन बारमें तीन सांसोंमें पीवे। तरोताजा मेवों और फलोंके बाद पानी पीनेसे सांद्र आमदोष, आध्मान, वायु और गुड़गुड़ाहट सहित दर्द पैदा हो जाता है। यद्यपि पानीके विषयमें अभी बहुत कुछ विवरण करना शेष है, तथापि विस्तारभयसे उनको यहीं छोड़ दिया जाता है। इसीलिये यहाँ आयुर्वेद एवं नव्यमत भी नहीं दिये गये हैं।

(१३) फुक्काअ

एक प्रकारका मद्य जो मदकारक न हो।

प्रकृति—गरम वतर; मधुकृत फुक्काअ गरम-खुश्क होता है।

गुण-कर्म—वृक्क और वस्तिको उष्णता प्रदान करता है तथा मूत्रका प्रवर्तन करता है।

(१४) बर्फ़

नाम—(हिं०) बर्फ़; (फा०) बर्फ़; (अ०) सल्ज; (अं०) आइस (Ice)।

वर्णन—यह मशीनों आदिकी सहायता अथवा और कृत्रिम उपायोंसे ठंढक पहुँचाकर जमाया हुआ पानी है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—स्वापजनन, संताप एवं तृष्णाहर और स्थानीय संग्राही। उपयोग—बर्फको अधिकतया ग्रीष्म ऋतुमें प्यास बुझानेके लिए पीते हैं। यह उष्णप्रकृतिवालोंको सात्म्य है; उनकी प्यास बुझाती और आमाशयको बलप्रदान करती (दीपन) है; परंतु शीतल कफ प्रकृति और बुड्ढोंके लिए असात्म्य (अनुपयोगी) है। उनकी प्यास बुझानेकी जगह कभी-कभी अधिक प्यास लगाती है। आमाशय, वातनाड़ी और आंतरिक अंगोंकी सूजन एवं

कठोरताको यह हानि पहुँचाती है तथा दाँतोंको भी हानि पहुँचाती है। उष्ण शोथोंके प्रारम्भमें दोषोंको विलोम करनेके लिए इसका बहिर् प्रयोग किया जाता है। नेत्राभिष्यंदके प्रारम्भमें नेत्रके ऊपर बर्फ रखना लाभदायक है। उष्ण दंतशूलमें बर्फके पानीसे कुल्ले करानेसे दर्द शांत होता है। बर्फकी सर्दी जहाँ लगती है वहाँकी रक्तकेशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं; अतएव बर्फको बारीक करके तालुपर लगानेसे नकसीर बन्द हो जाता है। कोई-कोई हकीम वेदनाशमनार्थ इसको वेदनास्थलपर बांधते हैं। कोई-कोई सरसाम (सन्निपात) में उष्णप्रकृतिके रोगियोंके शिर-पर इसे बाँधते हैं। कंठके भीतर चिमटी हुई जोकको निकालनेके लिए भी बर्फ खिलाते हैं। बर्फका पानी पीनेसे उत्तम यह है कि निर्मल जलका गिलास भरकर बर्फ या बर्फके पानीमें रख दिया जाय, जिसमें बर्फकी सर्दीसे यह पानी शीतल हो जाय। बर्फकी रूक्षता केवल इस दृष्टिसे है कि कभी बर्फका पानी पीनेसे प्यास बढ़ जाती है। वरन् वस्तुतः यह जमा हुआ पानी है। इसी मुगालतासे किसी-किसीने बर्फको गरम लिखा है (किताबुल् अदविया)।

(१५) बारूद

नाम—(फा०) बारूद (त); (सं०) अग्निचूर्ण, चूर्ण।

वर्णन तथा कल्पना—एक प्रकारका चूर्णयोग जिसके उपादान और कल्पनाविधि इस प्रकार हैं—शोरा ५ पल, गंधक १ पल और अन्तर्धूमदग्ध आक तथा सेहुँड़ आदिका शुद्ध कोयला १-१ पल। इन सबको एकमें मिलाकर खूब बारीक पीसकर इसे आक तथा सेहुँड़के ही रसमें पुट देकर धूपमें सुखा लेना चाहिये। तदुपरांत इसे शर्कराकी तरह पीस देनेसे बारूद (अग्निचूर्ण) तैयार होता है। बारूद पहले-पहल भारतवर्षमें बनी, वहाँसे मुसलमानोंने सीखा, जिनके द्वारा यूरोपमें इसका प्रचार हुआ।

कल्प तथा योग—दवाए नासूर, (रोगन नासूर)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—लेखन और छेदन। उपयोग—बारूदको तिलके तेलमें खरल करके नासूरमें टपकाते हैं। यह दुष्टमांसको नष्ट करके व्रणको शीघ्र भर लाती है। कतिपय त्वचाके रोगों, जैसे-दादपर लगानेसे यह उसको नष्ट करती है। कतिपय सद्यःक्षतोंसे रक्तस्राव रोकनेके लिये इसे छिड़कते हैं। यद्यपि इससे अधिक दाह होता है, किंतु रक्तस्राव बन्द हो जाता है। आमवातमें संधियोंपर पछने लगाकर बारूद छिड़कनेसे वेदना शांत होती है। इसका आंतरिक प्रयोग नहीं होता।

अहितकर—वृक्क (गुर्दा) और फुफ्फुस।

निवारण—कतीरा और शहद।

(१६) मिट्टी का तेल

नाम—(हिं०) मिट्टी का तेल; (अ०) क (क़) फ़रुल्यहूद, निफ़्त; (मार०) घासलेट तेल; (ले०) पेट्रोलियम् (Petrolium); (अं०) रॉक ऑइल (Rock Oil), केरोसिन ऑइल (Kerosene Oil)।

वर्णन—एक प्रसिद्ध ज्वलनशील, खनिज, तरल पदार्थ जिसका व्यवहार प्रायः सारे संसारमें दीपक आदि जलाने और प्रकाश करनेके लिये होता है। औषधमें भी इसका व्यवहार होता है।

प्रकृति—चौथे दर्जेतक गरम और खुश्क (शैख)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह प्रमाथी, स्रोतोद्घाटक, वाजीकर, वातविलयन, उदरकृमिनाशक व निःसारक, आर्तवजनन, कोथप्रतिबंधक और शीतल व्याधियोंके लिये हितकर है। इसमें कपड़ा भिगोकर योनिमें रखनेसे आर्तवरक्त जारी हो जाता है। इसे कानमें टपकानेसे दर्द और बहिरापन जाता रहता है। इस तेलमें कपड़ा भिगोकर

उससे घाव साफ करनेसे उत्तेजना प्राप्त होती है, कोथका निवारण होता है और दुष्टमांस उत्पन्न होने नहीं पाता है। यद्यपि घावपर लगानेसे कुछ तीक्ष्णताका अनुभव होता है, पर कोई हानि नहीं होती। इसके पीने या धुआँ लेने (सूंघने) से मृगी उत्पन्न नहीं होती। पर यदि किसीको पहिलेसे मृगीका रोग हो तो उसे हानि होती है। इसे सिरकेके साथ पीनेसे आमाशयमें जमा हुआ रक्त विलीनीभूत हो जाता है। इसे क्षतपर लगानेसे सूजन नहीं होने पाती। शीतल व्याधियोंमें इसका पीना और लगाना अगदका कार्य करता है। पक्षाघात, अंगघात, अर्दित, कम्पवात, अपतानक, स्वाप, आमवात तथा अन्यान्य रोगोंमें इसका प्रयोग गुणकारी है। इसके पीनेसे पेटका वायुका दर्द आराम होता है। इससे बत्ती तर करके गुदामें रखनेसे पेटके कीड़े मर जाते हैं। इसके पीनेसे और लगानेसे वातरक्त एवं संधिशूल जाता रहता है और विषैले कीड़े-मकोड़ेका विष उतर जाता है। इससे मूत्र भी अधिक होता है। गर्भाशयगत वायु विलीन होती है, उसकी सर्दी मिटती है, पथरी और अर्श आराम होता है और गर्भाशयसे मृत शिशु निकल पड़ता है। अपतन्त्रकमें इसकी धूनी गुणकारी है। चार-चार तोले मिट्टीका तेल तीन-तीन घंटोंपर पिलाते रहनेसे प्लेग (ग्रन्थिक सन्निपात) का नाश होता है। **अहितकर**—यकृत्, फुफ्फुस और उष्ण प्रकृतिवालोंको तथा शिरःशूलकारक है। **निवारण**—कतीरा, इसबगोलका लबाब, पोस्ता और सिरका। **प्रतिनिधि**—समतोल सिलारस, कतरान, जावशीर और तिहाई हब्बसनोबर। **मात्रा**—१॥ माशा, सफेद भेद २। और काली ३॥ माशेसे ७ माशेतक।

(१७) रोशनाई

नाम—(हिं०) स्याही, सियाही; (अ०) मिदाद; (फा०) रोशनाई, स्याही; (सं०) मसी; (अं०) इंक (Ink)।

वर्णन—काजल, गोंद और तीसीके तेलका एक प्रसिद्ध योग जो लिखनेके काममें आता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—इसे बाह्य त्वचापर लगानेसे यह शीतजनन, शामक, संग्राही और उपशोषण (रूक्षण) कर्म करता है। **उपयोग**—पित्तज शिरःशूल एवं नकसीर बन्द करनेके लिये रोशनाईको पानीमें घोलकर मस्तकपर लेप करते हैं। दग्धावयवका दाह शांत करने तथा उसका घाव सुखानेके लिये भी इसे लगाते हैं। नासागतरक्तपित्त (नकसीर) बन्द करने तथा अर्धावभेदक नष्ट करनेके लिये यह विशेष गुणकारी है। **अहितकर**—रूक्षताजनक है। **निवारण**—स्नेह (तेल)।

(१८) साबुन

नाम—(हिं०) साबुन; (सं०) सर्वक्षार; (अ०; फा०; हिं०; बं०; गु०) साबून; (ता०) शब्बु; (ते०) सब्बु; (बर्मी) शुप्पिय; (ले०) सैपो (Sapo); (अं०) सोप (Soap)।

वर्णन—यह रासायनिक क्रियासे प्रस्तुत एक प्रसिद्ध पदार्थ (योग) है जो सज्जी चूना और किसी तेल, जैसे-तिलतेल, नारियलका तेल या चर्बी आदिके मेलसे प्रस्तुत किया जाता है और जिससे शरीर और वस्त्रादि साफ किए जाते हैं। यह औषधके काम भी आता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—लेखन, आग्नेय, व्रणशोथपाचन-दारण एवं विलयन तथा विरेचन और विशेषकर श्वयथुविलयन एवं आर्तवजनन है। **उपयोग**—यह अधिकतया बाह्यरूपसे उपयोग किया जाता है। सुतरां लेखन होनेके कारण शरीरकी त्वचाको मलादिसे शुद्ध करने तथा प्रायः त्वचाके रोगोंमें प्रयुक्त किया जाता है। कोहल साबुन या चिकनी दवाके नामसे प्रसिद्ध साबूनसे बना योगौषध फूले और मोतियाबिन्दमें प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त व्रणोंको

इससे धोते हैं जिससे वे शुद्ध हो जाते हैं। व्रणशोथपर लेपकी भाँति पकाकर बाँधनेसे यह उनको पकाकर फोड़ डालता है। बारीक की हुई मेंहदीकी पत्तीके साथ इसे सिरकेमें पकाकर संधिवातपर लेप करते हैं। इसकी वर्ति बनाकर गुदामें रखनेसे तीव्र मलावरोध (कब्ज) दूर हो जाता है तथा इसको जलमें घोलकर पिचकारीके द्वारा बस्ति देनेसे दस्त होकर आँतें शुद्ध हो जाती हैं। अहितकर—कण्ठ तथा आमाशयमें शोथ और आभ्यंतरिक अंगोंमें व्रण उत्पन्न करता है। निवारण—तिल, कद्दू और बादामका तेल और कपूर आदि। प्रतिनिधि—चूना।

प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श-ग्रन्थ के खण्ड ३ में आये उद्भिज्ज औषधाहार-द्रव्यों तथा उनके उपयुक्त अंगों एवं विषयों के विभिन्न भाषा के शब्दों (नामों) की वर्णानुक्रमणिका

हिंदी वर्णानुक्रमणिका

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
(अ)	
अंकबूत (अ०)	११३
अंकुश्त (फा०)	२६४
अंगबीन (फा०)	१४१
अंगार (सं०)	२६४
अंगुर (सिह०)	२६४
अंज़ीर (फा०)	१९०
अंड (हिं०)	३
अंडा (हिं०)	५
अंडेका छिलका (हिं०)	५
अंडेकी जर्दी (हिं०)	५
अंडेकी सफेदी (हिं०)	५
अंदलीब (अ०)	१०८
अंबर (अ०; सं०; हिं०)	६
अंबरग्रिस (अं०)	६
अंबर ग्रेसिआ (ले०)	६
अउत्तान (अ०)	३६
अउर (अं०)	७३
अकीक (अ०; हिं०; पं०)	२२५–२२६
अक़्रब (अ०)	१०५
अक़रब बहरी (अ०)	१५५
अक़्रबुल् बहर (अ०)	२७
अक़्रबुल्माऽ (अ०)	२७
अक्सीरुद्दम (अ०)	१७५
अॅगेट (अं०)	२२५
अग्निगर्भ (सं०)	२२८
अग्निजार (सं०)	६
अङ्गारचूड़क (सं०)	१०८
अज़गाव (फा०)	१५७
अजा (सं०)	९१
अजाराफ़ियून (यू०)	१४८
अज़ाराफ़ी (अ०)	१४८
अजिनपत्रा (सं०)	५३
अजीन (अ०)	३२
अजुवर (अं०)	२२६
अज़्फ़ारुत्तीब (अ०)	८२
अज़्म (अ०)	१६१
अञ्जन (सं०)	२१४
अणशलिया (गु०)	२६
अण्ड (सं०)	३, ४
अण्डत्वक् (सं०)	५
अण्डपीत (सं०)	५
अनज्ज (अ०)	९१
अन्नभेदी (सं०)	
अबरक (फा०)	२०४
अबरेशम (फा०)	८
अबावोल	७
अबुक़ल्मून (अ०)	२२६
अबुनमरून (अ०)	१४५
अबुल्जीव (अ०)	२५२
अबुल्बहर (अ०)	२७
अबुल्मलीह (अ०)	३१
अबुसबअ (अ०—नवीन)	१८
अबक़्र (अ०)	१८०
अब्रीन (अं०)	६
अब्रेकोहन, अब्रे मुर्दः (फा०)	९
अभ्रक (सं०; वं०; गु०; म०)	२७४
अमोनियम् क्लोराइड (अं०)	१७९
अमोनियाई क्लोराइडम् (ले०)	१७९
अम्आउल् अर्ज़ (अ०)	२६
अम्लस (अ०)	१११
अयस् (सं०)	१९३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
अयस्कान्त (सं०) २०५
अरक़ (अ०) ८६
अरगजा (हि०) २६१
अरबअ (अ०—प्राचीन) १८
अरूसक (अ०) १०७
अउरोमैस्टिक्स हार्डविकिआई (ले०) १५०
अर्कुल्‌उरूस (अ०) २०४
अर्जेन्टम् (ले०) १८८
अर्णवफेन (सं०) १४८
अर्थ-वर्म (अं०) २६
अर्नब अर्नबबर्री (अ०) ३३
अर्सानीकून (अ०) १७७
अर्सिनुस लेविएटुस (ले०) १३३
अर्सेनिकम् रुब्रम् (ले०) १७८
अर्सेनिकोन (यू०) १७६
अर्सेनियाई डाइसल्फ़ाइडम् (ले०) १७८
अलक़ (अ०) ६६
अलकतरा २६१–२६२
अलकली (ले०) २५६
अल्क़ली (अ०) २५६
अल्काली (अ०) २५६
अल्मास (फा०) २१९
अल्मिलहुल् अंदरानी (अ०) २५२
अल्‌शाज़नज (अ०) २४३
अलशियुं (गु०) २६
अलेक्ट्रोरिस ग्रीआ (ले०) ५२
अल्‌सरतानुल् बहरी (अ०) २७ पा. टि. अश्खार
(अ०) २५७
अश्मजतु (सं०) २०५
अश्मभिद् (सं०) २३७
अश्व (सं०) ४९
अश्वा-पय (सं०) ५०
अश्वीदुग्ध (सं०) ७५
अश्शम्‌उल् अब्यज (अ०) १४२
अश्शम्‌उल् अस्फ़र (अ०) १४१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
असद (अ०) १००
असग्सांडा (हिं०) १५०
असृक् (सं०) ३४
अस्प (फा०) ४९
अस्थि (सं०) १६१
अस्मानी (पं०) २२१
अस्ल (अ०) १४१
अस्लुन्नहल (अ०) १४१

(आ)

आंड, आँडी (हिं०) ३
आइवरी (अं०) १६३
आइसिन् ग्लास (अं०) ११७
ऑइस्टर (अं०) १५६
आउल (अं०) १०
ऑक्स (अं०) ३८
ऑक्साइड ऑफ ज़िंक (अं०) १९२
आक्सीद सुबं (अ०—नवीन) २११
ऑक्सीदुर्रसास (अ०—नवीन) २११
ऑक्सीहुल् खारसीन (अ०—नवीन) १९२
आज (अ०) १६३
आज़ुर (अ०) २६२
आटोलिप्स (अं०) ११७
आत (तु०) ४९
आथेनेब्रामा इंडिका (ले०) १४
आदम, आदमी (अ०; फा०) ७
आदमी व औरत (हिं०) ७
ऑनिक्स (अं०) २३०
आनुक (अ०) १९०
आफ़्ताब परस्त (फा०) ४३
आबकामः (फा०) २६३
आबकामा हिंदी (फा०) २६२
आबगीनः (फा०) २४३
आबपनीर (फा०) ८१
आबरेशम (फा०) ८

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
आबेपुश्त ३
आमष (सं०) १२१
आयर्न (अं०) १९३
आयर्न पाइराइट्स (अं०) १९९
आयर्न सल्फाज (अं०) २०३
आयर्न रस्ट (अं०) २०२
ऑरम (ले०) १८७
आर्टोलन (अं०) ९७
आर्डिआ टोर्री (ले०) ९६
आर्डिआ यूरिआ (ले०) ९६
आर्डिआ सिनेरिआ (ले०) ९६
आर्सेनिअस एसिड (अं०) १७६
आर्सेनिक (अं०) १७६
आर्सेनिक डाइसल्फाइड (अं०) १७८
आर्सेनिकम् (ले०) १७६
आर्सेनिआई डाइसल्फाइडम् (ले०) १७७
आर्सेनिकम एल्बम् (ले०) १७६
आविक (सं०) १०८
आविक क्षीर (सं०) ११०
आश बच्चगां (फा०) ६४
ऑस सेपी (ले०) १४८
ऑसियम् (ले०) १६१
आसिल (अ०) १११
ऑस्ट्रिच (अं०) १४५
ऑस्ट्रिया ग्रीफॉइडीस (ले०) १५६
ऑस्प्रे अं०) ६८
आहक (फा०) २३३
आहू (फा०) १६१
आहूए मुश्की खुतन (फा०) २१

(इ)

इंडियन क्रेन (अं०) १५१
इंडियन हेरिंग (अं०) १६५
इंडियन डोमेस्टिकेटेड गेम ऑरफॉक (अं०) १२४
इंडियन बटन–क्वेल (अं०) १३७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
इक्थियो (यू०) २१७
इक्थियोकोला (ले०) २१७
इक्यान (अ०) १८७
(ई)क्युअस कैबालुस (ले०) ४९
इन्लुविन (अं०) १४६
इन्लुवीज (ले०) १४६
इन्दुर (वं०)
इन्द्रगोप (सं०) १०७
इन्द्रनील (सं०) २२१
इन्द्रवधू (सं०) १०७
इन्द्री (हिं०) १४५
इन्फ़ेहा (अ०) ८१
इन्सान (अ०) ७
इबरेशम (अ०) ८
इबिल (अ०) ११
इब्न अर्स (अ०) ८४
इब्न आवा (अ०) ४४
इब्बज़ (अ०) १२५
इय्यल (अ०) १०४
इलि (ली) (सं०) १६५
इलि(लो)श माछ (बं०) १६५
इल्या (अ०) ११०
इल्लि(ल्ली)स (सं०) १६५
इल्सा (हिं०) १६५
इष्टिका (सं०) २६२
इस्कङ्कूर (अ०) १४७
इस्पंज (हिं०) ९
इस्फंज (अ०) ९
इस्फ़ेदाज (अ०)
इस्फ़ेदाब (फा०) २११
इस्मद (अ०) २१३
इस्रिज (अ०) २१३

(ई)

ईंगुर (हिं०) २१३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

इंट (हिं०) २६२
इंटा (हिं०) २१३
ईक्युअस आसिनेस (ले०) ३६
ईडा (गु०) ५
ईसगो (अं०) २००
ईल (अं०) १०२
ईहामृग (सं०) १११

(उ)

उंदर (गु०)
उंदोर (म०) ५८
उक़ाब (अ०) १०
उच्चिटिङ्ग (सं०) ६८
उज्कूह (अ०) १०३
उडुस (हिं०) ३१
उदाश्वत् (सं०) ७८
उद्र, उद्विडाल (सं०) १३
उपचक्र (सं०) ५२
उपास्थि (सं०) १६१
उरभ्र (सं०) १०८
उर्ज़ा (अ०) ७४
उर्दक (फा०) ९८
उर्ना (अ०) ८०
उर्फ़िया (अ०) ८४
उलाग (फा०) ३६
उलुवः (फा०) १०
उलू(ल्लू)क (सं०) १०
उल्लू (हिं०) १०
उपूपा एपोप्स (ले०) १६५
उस्तुर (फा०) ११
उषरगोघा (सं०) १५०
उष्ट्र (सं०) ११
उष्ट्रीक्षीर (सं०) ७५
उस्तख्वाँ (खान) (अ०) १६१
उस्फ़ूरः (अ०) ५३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

उस्रुन्ज (अ०) २१३
उस्रुब (फा०) १९०

(ऊ)

ऊँट (हिं०; बं०) ११
ऊँटनी (हिं०) ११
ऊँटनी का दूध (हिं०) ७५
उदबिलाव (हिं०) १३
ऊन (हिं०) १३
उनकी चर्बी (हिं०) १४, १५
ऊर्ण (सं०) १३
उर्णनाभ (सं०) ११३
ऊर्णवसा (सं०) १४

(ऋ)

ऋक्ष (सं०) १३३
ऋष्य (सं०) ८३

(ए)

एकेन्टिना फुलिका (ले०) १८२
एक्रिडोथेरीज जिन्जेनिआनुस (ले०) १२९
एग (अं०) ५
एग्रीन वीज़न (अं०) १६३
एज्बेस्टोस् (अं०) २३७
एड़क (सं०) ११०
एडमॉस (ले०; यू०) २१९
एडेप्स लेनी (ले०) १४
एपुल स्नेल (अं०) ४८
एमेरल्ड (अं०) २२२
एम्बेरिजा हॉर्टलाना (ले०) ९७
एरमीनु (ता०; ते०) १३५
एरिनेसियस् कोल्लेरिस (ले०)
एलम् (अं०) १८१
एलीफास इंडिकुस (ले०) १६३
एलीफैन्ट (अं०) १६३
एलीफैन्ट्स मिलक (अं०) ७५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**

एलुमेन (ले०) १८१
एसिडम् आर्सेनिओसम् (ले०) १७६
एस्फाल्ट (अं०) २०५
एस्फाल्टम् (ले०) २०५

(ऐ)

ऐक्सिस ऐक्सिस (ले०) ५६
ऐगेमा एगिलिस (ले०) १३३
ऐडेप्स (ले०) १५८
ऐनास क्रेका (ले०) १२५
ऐनास डोमेस्टिका (ले०) ९८
ऐनिमल फ्लेश (अं०) १२१
ऐनुल् हयात (म० ज०) १७४
ऐनुल् हर्रः (अ०) २२३
ऐन्टिगोन ऐन्टिगोन (ले०) १५१
ऐन्टिमनी सल्फाइड (अं०) २१४
ऐन्टिमोनियाई सल्फाइडम् (ले०) २१४
ऐन्सर ईंडिकुस् (ले०) १६०
ऐमेन्डेवा ऐमेन्डेवा (ले०) १३९
ऐम्फिप्नस कूचिया (ले०) १०२
ऐल (अ०) १०४
ऐल्युमिनियाई सिलिकास (ले०) २४७
ऐस (अं०) ३६
ऐस मिल्क (अं०) ७५
ऐसिन् ग्लास (बम्ब०) ११७
ऐसेज मिल्क (अं०) ३७
ऐस्तुर बैडिउस (ले०)
ऐस्साइजर (अं०) ९९

(ओ)

ओझडी (हिं०) १५
ओट्टर (अं०) १३
ओरीक्टोलागुस कनीकुलुस (ले०) ३३
ओलिउम् पिसिस (ले०) ११७
ओविस विग्नी (ले०) १०८
ओविस साइक्लोसेरोस (ले०) ११०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**

(औ)

औद्भिद् लवण (सं०) २५५

(क)

कंसक (सं०) १९५
कचक (फा०) ४८
कचकडा १६
कचलोन (हिं०) २५३
कच्छप (सं०) १५
कच्छप पृष्ठ (सं०) १६, १७
कच्छपीय वैक्सिन १७
कछुआ (हिं०) १५
कछुए की चर्बी या तेल (हिं०) १६, १७
कज (च) क (फा०) २९, १४०
कजफ (फा०) २६४
कज़ीब (अ०) १४५
कजुदइप्पाल (ता०) ३६
कज्जल (सं०) २६३
कज्जुनप्पाल (मल०) ३६
कज़्दुम (फा०) १०५
कट्ल-फिश बोन (अं०) १४८
कठफोड़ (र) वा (हिं०) १७
कठफोडा (रा) (हिं०) १७–१८
कडी (फ़ा०) २४७
कतरान मादनी (अ०) २६१
कत्तेहालु (कना०) ३६
कत्थील (द०) १९०
कथीर (मा०) १९०
कथील (म०) १९०
क़दस (अ०) ११३
कनक (सं०) १८७
क (ख) नखजूरा (हिं०) १९
क़ (कु) न फुज (अ०) १५३
कनस (श) लाई (हिं०) १९
कन्हैया (हिं०) ७

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
कपर्द (दिका) (सं०)	२९
कपि (सं०)	९१
कपूर	१८३
कपोत (सं०)	१९
कफ़रुल्‌हिंद (अ०)	२०५
कफ़शक (फा०)	३४
कफेदरिया (फा०)	१४८
कफ्तार (फा०)	१३६
कबक (फा०)	५२
कबकेकू (फा०)	७०
क़बज (अ०)	५२
कबके दारी (फा०)	५२
कबिद (अ०)	६३
कबूतर (हिं०; गु०)	१९
कब्श अ०)	१०८
कमक (हिं०)	१००
क़म्ल (अ०)	६५
कम्बु (सं०)	१४८
करकच (ब०)	२५३
करक(ग)द्दन (अ०; फा०)	४५
करचलो (गु०)	२७
करवा (हिं०)	९८
करेट (ठ) व्या (सं०)	८२
कर्कट (क) (सं०)	२७
कर्पास (फा०)	४२
कर्ड (अं०)	७७
कर्डल्ड मिल्क (अं०)	७७
कर्णजलौ(लू)का (सं०)	१८
क़र्न (अ०)	१५६
क़र्नुल्‌ग़ज़ाल (अ०)	१६२
कर्पूर शिलाजतु (सं०)	१८०
कर्वस (फा०)	६१
कर्वाशः (फा०)	६१
क़र्मीद (अ०)	२६२
कर्रोसिह्व सब्लिमेट (अं०)	१७६

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
कलखापरी (म०)	२११
कलध्वनि (सं०)	८४
कलनारु (र) (द० भारत)	२३७
कलहंस (हिं०)	९८
कलेजा (हिं०)	६३
कल्क़नार (यू०)	१८१
क़ल्कदोस (यू०)	१८१
कल्कन्त (यू०)	१८१
कल्कीस (यू०)	१८१
कल्ब (अ०)	२४
क़ल्ब (अ०)	७४
कल्ब बर्री (अ०)	४४
कल्बमाई (अ०)	१३
क़ल्बुल्‌हजर (अ०)	२३९–२४२
कल्बः (अ०)	२५
कल्लापाया (हिं०)	८७
कवड़ी (ता०; कों०; म०; कना०)	२९
कव्वारी (फा०)	३०
क़श्र बैज़ा (अ०)	५
कष (सं०)	२४४
कष पट्टिका (सं०)	२४४
कसकुट (हिं०)	१९५
कसीस	२०३
कसौटी (हिं०)	२४४–२४५
कस्तूरिय हिरन (हिं०)	२१
कस्तूरी (सं०; हिं०; म०; गु०; बं०; कना०; ता०; ते०; मल०)	२१
कस्तूरी मृग (सं०)	२१
क़स्दार (अ०)	१९०
कहरुबा	२३०

(का)

काँकडा (बं०)	२७
काँच, शीशा (हिं०)	२४३
काँजी (हिं०)	२६२–२६३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**

काँटा चूहा (हिं०) १५३–१५४
कांसव (म०) १५
काँसा (हिं०; बं०) १९५
कांसाजन (गु०) १९२
काँसी (मार०; पं०) १९५
कांसुं (गु०) १९५
कांसे (म०) १९५
क्रांस्य (सं०) १९५
काइट (अं०) ५८
काऊ (अं०) ३८
काऊज मिल्क (अं०) ७५
काक (सं०; बं०) २८
कागज (हिं०) २६३
काग़ज (अ०; फा०) २६३
कागन: (फा०) १०७
काच (सं०) २४३
काचमणि म०) २२८
काचवो (गु०) १५
काछिम (बं०) १५
काजल (हिं०) २६३–२६४
काञ्चन (सं०) १८७
काञ्जि (ञ्जि) कम् (सं०) २६२
काञ्जि (ञ्जि) का (सं०) २६८
काठ्ठोकरा (बं०) १७
काणबिच्छा (बं०) १८
कादम्ब (सं०) ९८
कानिसः (अ) १४६
कान्त (चुंबक) पाषाण (सं०) २०५
कॉपर (अं०) १८९
कॉपर पायराइड्स (अं०) १९८
कॉपर (क्युप्रिक) सल्फेट (अं०) २०१
काबूद (पं०) २२१
कॉमन आइवोरा (अं०) ८५
कॉमन इंडियन गार्डेन लिज़र्ड (अं०) ४३
कॉमन ग्रे-टेल (अं०) ९६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**

कॉमन वैग-टेल (अं०) ३१
कॉमन साल्ट (अं०) २५२
कामेलुस ड्रोमेडेरिउस (ले०) ११
काम: (फा०) १२६
क़ार (अ०) २६४
कार: (अ०) १२३
कार्किनोस (यू०) २७
कार्टिलेज (अं०) २६
कार्डियम् (ले०) ७४
कार्तन, कार्तन : (फा०) ११३
कार्बन (ले०) २६४
कार्बोनेट ऑफ लाइम् (अं०) २४२
कार्वुस स्प्लेन्डेन्स (ले०) २८
कॉर्वुस मैक्रोरिकुस (ले०) २८
कालकोस (यू०) १८९
काला कौआ (हिं०) ८
कालानमक २५४–२५५
काला सुरमा (हिं०) २१३
कालिख (हिं०) २६३
कालूज (फा०) १९
कालेनून (बं०) २५४
काष्टिपाथर (बं०) २४४
कासए चीनी (फा०) २४७
कासीस (सं०) २०३
किंग-फिशर (अं०) २३–२४
किञ्चु (ञ्चि) लि (लु) क (सं०) २६
किट्टासिकला मालाबारिका (ले०) १४५
किड्नी (अं०) ४५
किप्रिआ मोनेटा (ले०) २९
किरमजी (ता०; कला०) २३
किरमजु (ते०) २३
किरमिज (जा) (गु०) २३
क़िर्तास (अ०) २६३
किर्द (अ०) ९१
किर्म आबरेशम (फा०)

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ	शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
किर्म गिलखुर्दः (फा०)	२६	कुक्कू (अं०)	२८
किर्मदानः (फा०)	२३	कुचकुचवा (हिं०)	१०
किर्म बादामा (फा०)	८	कुञ्जिष्क (फा०)	५३
किर्म रंगरेजां (फा०)	२३	कुठाकु (सं०)	१७
किर्म शबताब (फा०)	६५	कुतिया (हिं०)	२५
किर्म सिरगीं (फा०)	४४	कुत्ता (हिं०)	२४–२५
किर्मिज (हिं०)	२३	क़ुन्बुर (अ०)	५१
क्रिमिज फरंगी (फा०)	२३	कुन्नः (फा०)	५७
किर्मे ज़मीं (फा०)	२६	क़ुबुर (अ०)	५१
किर्मे मख्मल (फा०)	१०७	कुमरी (अ०)	२५–२६
किल (त०; सिं०)	२६४	कुरण्ड (हिं०)	२४४
किलकिला (हिं०)	२३–२४	कुरर (सं०)	६८
क्रिलनी (हिं०)	५७	कुरविन्द, कुरुविन्द (हिं०)	२४४
किलानिया (ले०)	१५	कुर्री	(१) १६१; (२) २६
किल्स (अ०)	२३३	कुरुन पत्थर (हिं०)	२४४
किल्सुर्रसास (रासा०)	२११	कुर्द (अ०)	५७
किसारी (हिं०)	८४	कुल (फा०)	१५५
कीटजा (अ०)	१३८	कुलाग़ (फा०)	२८
कीमूलिया (अ०)	३, २३४	कुलाग़ बुज़ुर्ग स्याह (फा०)	२८
कीर (हिं०)	७३	कुलिङ्ग (सं०	५३
कीर ( )	२६४	कुलीर (सं०; क०)	२७
कीर (अ०)	२६४	क़ुल्क़न्द यू०)	२०३
कील (हिं०; द०)	२६४	क़ुल्ज़ (अ०)	१८९
कीलु (ते०)	२६४	कुल्यः (अ०)	४५
कीलू (कना०)	२६४	कुल्लः (फा०)	१५५
कुंदुस (अ०)	१३	क़ुन्नाअ (अ०)	३३
कुऐन (अ०)	१०८	कुस्गुर्व (अस्फ०)	४८
कुकड़ (पं०)	१२४	कुसवारी, कुसारी, कुसियारी (हिं०)	८
कुकड़ा (हिं०)	१२४	कूकर (हिं०)	२४
कुक (कु) री (हिं०)	२५	कूञ्चिका सं०)	८०
कुकुर (बं०)	२४	कूर्म (सं०)	१५
कुक्कुट, कुक्कुटी (सं०)	१२४	कृकल (सं०)	२४
कुक्कुटाण्डत्वक् (सं०)	५	क्रिकेट (अं०)	६८
कुक्कुर (सं०; हिं०)	२४	क्रमिकोश (सं०)	८
कुक्कुरी (सं०)	२५	क्रमिजा (सं०)	१३८

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
कृष्णलवण (सं०)	२५४
कँचा (बं०)	२६
केओलिनम् (ले०)	२४७
केओलीन (अं०)	२४७
केकड़ा (हिं०)	२७–२८
केकड़े की मसी (हिं०)	२७
केकरा (हिं०)	२७
केचवा (हिं०)	२६
केचुआ (हिं०)	२६
केजीन (अं०)	८०
केनू (फा०)	९९
केनिस फेनिलियारिस (ले०)	२४
केमल्स मिल्क (अं०)	७५
केरूस (यू०)	१४१
केल्साइट (अं०)	२३५
केश (सं०)	१०४
केसरी (सं०)	१५५
कैट अं०)	१०५
कैटफिश (अं०)	१५५
कैट्स आई (अं०)	२२३
कैनिस ऑरिउस (ले०)	४४
कैनिस ल्यूपुस (ले०)	१११
कैन्सर (अं०)	२७
कैप्रा हीर्कुस (ले०)	९१
कैमेल (अं०)	११
कैलोमेल (अं०)	१७५
कैलोलीज वर्सिकलर (ले०)	४३
कै (का) ल्कस (ले०)	२३३
कैल्सियम् (ले०)	
कैल्सियम् सल्फेट (अं०)	२३४
कैल्सियाई कार्बोनास (ले०)	२४२
कैल्सियाई सल्फास (ले०)	२३४
कैसेकी फेर्रूजीनिया (ले०)	५२
कैस्टर (अं०)	६४
कैस्टोरिउम् (ले०)	६४

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
कोकिल (ला) (सं०; बं०)	२८
कोक्कुस कैक्टी (ले०)	२३
कोव्ब्र (अं०)	१४०
कोव्ब्र सेल (अं०)	१४०
कोडी (गु०)	२०
कोबिन	२४
कोचिनील (अं०)	२३
कोव्वु (क०)	५५
कोय (इ) ल (हिं०)	२८
कोयला (हिं०; बं०)	२६४–२६५
कोयलो (गु०)	२६४
कोरंडम् स्टोन (अं०)	२४४
कोरल (अं०)	१२६
कोरेल्लिउम् रुब्रम् (ले०)	१२६
करैसियास बेंगालेंसिस (ले०)	८३
कोलुम्बा डोमेस्टिका (ले०)	१९
कोलुम्बा लिविया (ले०)	१९
कोल्टार (अं०)	२६१
कोल्तार (उ०; हिं०)	२६१
कोल्सा (द०)	२६४
कोल्से (म०)	२६४
कोल्सो (गु०)	२६४
कोशेय वस्त्र (सं०)	९
कोष (श) (सं०)	८
कोष (श) कार (कृत्) (सं०)	८
कोहल (इ० बै०)	२१३
कौआ (वा) (हिं०)	२८–२९
कौकबुल् अर्ज़ (अ०)	२०४
कौडिया, कौडिल्ला (हिं०)	२३
कौड़ी (हिं०)	२९–३०
कौवारी (हिं०)	३०
कौरी (अं०)	२९
कौशेयाश्म (सं०)	२३७
क्युप्रम् (ले०)	१८९
क्युप्रम् (क्युप्राई) सल्फास (ले०)	२०१

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
क्युप्राई सब् एसीटास (ले०)	२००
क्रमेलक (सं०)	११
क्रव्य (सं०)	१२१
क्रिकलास (सं०)	४३
क्रूड सल्फेट ऑफ सोडा (अं०)	२५५
क्रेटा (ले०)	२३४
क्रेटी (ले०)	२३४
क्रैब (अं०)	२७
क्रोकोपुस फीनीकोप्टेरुस (ले०)	१६३
क्रोकोडाइल (अं०)	११५
क्रोकोडीलुस पोरोसुस (ले०)	११५
क्ले (अं०)	२४७
क्लेमेटर जैकोबिनुस (ले०)	८५
क्लेरिफायड बटर (अं०)	७९
क्लोराइड ऑफ सोडियम् (अं०)	२५०
क्विक लाइम् (अं०)	२२३
क्विक सिल्वर (अं०)	१७४
क्वैल (अं०)	९७
(ख)	
खंजन, खंजरीट (हिं०)	३१
खच्चर (हिं०, फा०)	३०–३१
खच्चोर घोड़ा (बं०)	३०
खञ्जन, खञ्जरीट (सं०)	३१
खटकीरा (ड़ा) (हिं०)	३१
खटमल (हिं०)	३१-३२
खटिका (सं०)	२३४
खटिनी (सं०)	२३४
खड़ू (म०)	२३४
खड़ (द०)	२४७
खड़िया (हिं०)	२३४–२३५
खड़ि (रि) या (हिं०)	२३४
खड़ियो खार (गु०)	२५६
खड़ी (बं०)	२३४
खडू (म०; गु०)	२४७

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
खद्योत (सं०)	६५
खपरिया (हिं०)	२११
खपरियो (मा०)	२११
खपरिला (पं०)	२११
खफ़्फ़ाश (अ०)	५३
खबजदोर (फा०)	४४
ख़मीर (हिं०, अ०)	३२–३३
ख़मीर तुर्श, ख़मीर मायः (फा०)	३२
खर (फा०)	३६
खर (सं०)	३६
खरगोश, खरहा	३३–३४
खरगोश (हिं०, फा०)	३३
खरगोश काला	३३
खरगोश दरियाई	३३
खरगोश सफेद	३३
खरमोहरा (फा०)	२९
खरहा (हिं० द०)	३३
खरक्षीर (सं०)	३६
ख़रातीन (अ०)	२६
ख़रेमादः (फा०)	३६
खर्पर तुत्था (सं०)	२११
खर्पर सत्व (सं०)	१९१
ख़ाकेरुस्त (फा०)	२४७
खाटासि (बं०)	६२
ख़ातिफ़ (अं०)	१११
खापर (बं०)	२११
ख़ाय (फा०)	३
ख़ायेमुर्ग (फा०)	५
खार (हिं०)	२५६
खार पुश्त (फा०)	१५३
ख़ारसीन (अ०)	१९१
खारीनोन (नमक) (हिं०)	२५५–२५६
ख़िंज़ीर (अ०)	१५८
ख़िंज़ीरुल् बहर (अ०)	१५७
खिड़हिच, खिड़ (खडिरिच) (हिं०)	३१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

खिरस (फा०) १३३
खिश्त (फा०) २६२
खुज (ज्ज) (अ०) ३३
खीर (सिं०) ७५
खुटक (ढै); वढइया (हिं०) १७–१६५
खुटखुट बढ़ई (हिं०) १६५
खुत्ताफ़ (अ०) ७
खुनफ़सा (अ०) ४४
खुब्सुल्हदीद (अ०) २०२
खुर (हिं०) ३४
खुरोस (–च, –ट) (फा०) १२४
खुर्मा (फा०) ८४
खुलद (अ०) ६०
खुस्यः (अ०) ३
खुस्यतुल्बहर फाहेशा (अ०) ६४
खून (फा०) या रक्त ३४-३५
खूय (फा०) ८६
खूसट (हिं०) १०
खृगल (सं०) ४५
खेंकड़ा (हिं०; म०) २७
खेचर (सं०) २०३
खोक (फा०) १५८,
खोक आवी (फा०) १५७
खोक माही (फा०) १५७

(ग)

गंगासालिक (बं०) १२९
गंधक (किबरीत) (हिं०; बं०; कश०;
गु०; म०; द०; कों०; सिंध; पं०) १७३
गऊ, गाय (हिं०; गु०; म०; कों०) ३८
गंधमुखी (सं०) ६०
गंधकम् (ते०) १७३
गगन भेड़ वा हवासिल ३५
गच (फा०) २३३
ग़ज़ारुस्सीनी (अ०) २४७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

ग़ज़ाल (अ०) १६१
गडलोन (हिं०) २५४
गण्ड (सं०) ४५
गण्डूपद (सं०) २६
गदहा (हिं०) ३६
गदही ३६
गदही का दूध ३६-३८, ७५
गदहेका दूध (द०) ३६
गधनु दूध (गु०) ३७
गधा, गधी (हिं०) ३६
ग़नम (अ०) ९६
गन्धमार्जाराण्ड (सं०) ६४
गन्धमार्जारवृषण (सं०)
गन्दकम् (ता०) १७३
गन्द्रोक (बं०) १७३
गन्धपाषाण (सं०) १७३
गपछैया (हिं०) १३४
गरउल्जुब्न (जलूद) (अ०) १५०
गर (रा) उस्समक (अ०) ११७
ग़राबुल्लैल (अ०) १०
गरुड़ (सं०; हिं०) १०
गर्दभ, गर्दभी (सं०) ३६
गर्दभी क्षीर (सं०) ३६
गर्दभी दुग्ध (सं०) ७५
गर्दभीपय (सं०) ३६
गलीबाज (फा०) ५८
गॅलेना (अं०) २१३
गवय (सं०) ८३
गरगवा (हिं०) ५३
गवरैया (हिं०) ५३
ग्लास (अं०) २४३
ग्लेसम् (लें०) २४३
ग्लोवीकिफेलुस ईडिकुस (लें०) १६६
ग्लो-वर्म अं०) ६५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

ग्वालिन (हिं०) ४२
गांडवल (म०) २६
गाडिदेपालु (द०) ३६
गाघर च दूद (म०) ३७
गामूस (फा०) ११२
गाय और बैल ३८
गायका गोबर ४०
गायका दूघ ३८, ७५
गायका पित्त ३९-४०
गायका मांस ३९
गायका पेशाब (मूत्र) ४१
गायकी चर्बी ४०
गायकी हड्डी और सींग ४०
गायके बछड़ेका वृषण ४१
गारू (सं०) १२९
गारुत्मक (सं०) २२२
गॉल (अं०) ८८
गॉलब्लैडर (अं०) ८८
गॉलस्टोन (अं०) ८९
ग़ालिया (अ०; फा०) २६१
गाव (फा०) ३८
गावकोही (फा०) १०४
गावदश्ती (फा०) १५७
गावमादा (फा०) ३८
गावमेश (फा०) ११२
गावरोहन (उर्दू) ४६
गाववहशी (फा०) ८३
गिंजाई ४२
गिद्ध ४२
गिरगिट (-टान) (हिं०) ४३
गिरिज (सं०) २०५, २४९
गिरिमाटी (बं०) २४९
ग़िर्रिउस्समक (अ०) ११७
गिल (हिं०; बं०) २४९

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

गिल अरमनी २४८
गिल कीमूलिया ३, २३४
गिलम(मु)ख़्तूम २४८-२४९
गिलमुलतानी (पं०) २४९
गिलसफेद २४७
गिलसुर्ख़ २४९
गिलहरी ४३-४४
गिले(ल)अरमनी (फा०; द०) २४८
गिले जर्फ़ चीनी (फा०) २४७
गिलेमुलतानी (फा०; हिं०) २४९
गिले(ल) सुर्ख़ (फा०) २४९
गीदड़ ४४
गुंगबहरी (हिं०) १०२
गुंदबेदस्तर (फा०) ६४
गुज़रूफ़ (अ०) २६, १६१
गुज़ाफ़ (अ०) २८
गुबरैला ४४-४५
गुर्ग (फा०) १११
गुरा (अ०) १४९
गुराज (फा०) १५८
गुराब नूह (अ०) २८
गुराबुल् अस्वद (अ०) २८
गुर्दः (फा०) ४५
गुर्दा ४५
गुर्बए ज़बाद (फा०) ६२
गुर्बः (फा०) १०५
गुलाबी फिटकिरी १८३
गुल्लि (हिं०; पं०) १२६
गु (गो) हेरा (द०; माल०; राज०) १०६
गूदा (हिं०) ११८
गूह या बीट ४५
गृध्र (सं०) ४२
गृहगोधा (सं०) ६१
गेंडा (हिं०) ४५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**
गेर (हिं०; म०) २४९
गेरी (पं०) २४९
गेरू (हिं; म०; गु०; द०) २४९-२५०
गैंजेटिक पॉरपॉइज (अं०) १५७
गैंडर (बं०) ४५
गैंडा ४५-४६
गैन्डर (अं०) १६०
गैरिक (सं०) २४९
गैलुस पग्नेक्स (ले०) १२४
गैलुस पुसिल्लुस (ले०) १२४
गो, गोरू (बं०) ३८
गो, गौ (सं०) ३८
ग़ोक (अ०) १२८
गोगिर्द (अ०) १७३
गोजर (हिं०) १८
गोट्स मिल्क (अं०) ७५
गोदन्ती (हड़ताल गावदन्ती) (हिं०) २३४
गोधा (सं०) ४७
गोधिका (सं०) ४७
गोपालिका (सं०) ४२
गोपित्त (सं०) ४६
गोपीचन्दन (हिं०) २५०
गोबरौरा (हिं०) ४४
गोमयोत्था (सं०) ४४
गोमेद (सं०; हिं०; बं०; गु०; म०) २२३
गोमेदक (सं०) २२३
गोरब (फा०) ९८
गोरूचन्दन (गु०) ४६
गोरोचनमु (तें०) ४६
गोरोचन ४६-४७
गोरोचना (सं०) ४६
गोलोचन (हिं०) ४६
गोल्ड (अं०) १८७
गोल्ड लीफ (अं०) १८७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**
गोशखज (फा०) १९
गोशमाही (फा०) ४८
,, (शीराजी) २९
,, (फा०) १५६
गोश्त (फा०) १२१
गोस (हिं०) १२१
गोस्पं(स्फं)द (फा०) १०८
गोस्फंद (फा०) ९१
गोह ४७-४८
गोहटा (हिं०) ४७
गोहर (हिं०) १०६
गौज़न (फा०) १०४
गौधारः (सं०) १०६
गौधेर (प) (सं०) १०६
गौरा (हिं०) ५३
गौरेया (हिं०) ५३
गौहर (फा०) २१९
ग्राइंड स्टोन (अं०) २४४
ग्राह (सं०) ११५
ग्रीनडव (अं०) १६३
ग्रीन लैंड ह्वेल (अं०) १६६
ग्रीन विट्रियल (अं०) २०३
ग्रेटील (अं०)
ग्रेफिश (अं०) ६७

(घ)

घर्घरके (सं०) १०
घापाण (बम्ब० बाजार) २३४
घापषाण (म०; गु०) २३६
घिघृत (बं०) ७९
घिलोटी (बम्ब०) १३४
घी (हिं०; गु०; अं०) ७९
घी और मक्खन ७९–८०
घीउ (हिं०) ७९
घीयामाटा (मा०) २३६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

घुघुआ, घुग्घू (हिं०) १०
घुण (सं०) ४८
घुन ४८
घु (घू) न (हिं०) ४८
घूक (सं०) १०
घृत (सं०) ७९
घोंघा, घोंघी ४८–४९
घोंघा (हिं०) ४८
घोटक (सं०) ४९
घोड़ा, घोड़ी ४९–५०
घोड़ी का दूध ५०–५१; ७५
घोरपड़ (म०) ४७
घोल (सं०; बं०) ७८

(च)

चंडूल ५१–५२
चकई (हिं०) ५२
चकमक पत्थर (हिं०; म०) २२८
चकवा ५२
चकवी (हिं०) ५२
चकावक (फ़ा०) ५१
चकोर ५२–५३
चक्कवा (हिं०) ५२
चक्रवाक (सं०) ५२
चटक (सं०) ५३
चटकी (सं०) ५३
चन्द्रकान्त (सं०; हिं०) २२९
चबनी हड्डी (हिं०) १६१
चमक पत्थर (पं०) २०५
चमगादड़ ५३–५४
चमगीदड़ (हिं०) ५३
चमड़ा वा खाल ५५
च (चा) मर (सं०) १५७
चमरपुच्छी गौ (सं०) १५७
चमरी (मृग) (सं०) १५७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

चरई पाखी (बं०) ५३
चरबी ५५–५६
चरवाशक (फ़ा०) १६८
चर्ख़ (फ़ा०) १३६
चर्बी (हिं०; बं०; म०; गु०; द०; कों०) ५५
चर्मचटक (म०) ५३
चलपासः (फ़ा०) ६१
चाँदी (नुक्रा) १८८–१८९
चाँदी की उपधातु १९९
चाइना क्ले (अं०) २४७
चाइनीज बीट्ल्स (अं०) ७२
चाक़ (अं०) २३४
(हिं०) ८१
चातक (सं०; बं०) ८५
चारक़ोल (अं०) २६४
चाष (सं०) ८३
चास (सं०) १००
चिंगड़ी (बं०) ६७
चिउँटा (हिं०) ५९
चिकना (बं०) ५५
चिकनी या सफेद मिट्टी (हिं०) २४७
चिङ्गट (सं०) ६७
चिडा (हिं०) ५३
चित्तल (मृग) ५६–५७
चित्रपक्ष (सं०) ८४
चित्र बदल (सं०) ८६
चित्र व्याघ्र (सं०) ५७
चिरोडी (गु०) २३४
चिर्क (र्ग) (फ़ा०) १२९
चिर्के आहन (फ़ा०) २०२
चिल्ल (सं०) ५८
चींटा, चींटीं (हिं०) ५९
चीचडी ५७
चीज़ (अं०) ८०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
चीतर (हिं०) ५६
चीतल (हिं०) ५६
चीता ५७
चीन मृत्तिका (सं०) २४७
चीनी (मिट्टी) (हिं०) २४७
चील ५८
चील्ह (हिं०) ५८
चुंबक २०५
चुणी (बं०) २२०
चुना, चुन्ना (म०) २३३
चुम्मक (हिं०) २०५
चुस्ता (हिं०) ८१
चूची (हिं०) ७३
चून (ण) (बं०) २३३
चूना २३३
चूनो (गु०) २३३
चूर्ण (सं०) २३३
चूहा ५८–५९
चेखुर (हिं०) ४३
चेल्को पाइराइट (अं०) १९८
चोर्बी (बं०) ५५
चौना मारूलिडस (लै०) १६०
चौना स्ट्राइएटुस (लै०) १६०
चौपायों का हाथ-पैर (हिं०) ८७
च्यूँटा-च्यूंटी ५९–६०

(छ)

छछूंदर (री) ६०
छाग (सं०) ९१
छागल (सं०) ९१
छागीदुग्ध (सं०) ७५
छाछ ७८
छाश (गु०) ७८
छिपकली ६१–६२
छिपुआ मछली (हिं०) १३४
छुछुन्दर (सं०) ६०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
छेड़, छेड़ी (हिं०) ९१
छे (छा) ना (हिं०) ८७
छेलक (सं०) ९१
छेलिका (सं०) ९१
छोटा काला कौआ (हिं०) २८
छोटा शंख (हिं०) ४८

(ज)

जंगलः (फा०) ३४
जंगली खरगोश ३३
जंगली चूहा (घूँस) ५९
जंगली साम अबरस (अ०) ६१
जंगार (हिं०; गु०) २००
जंगार (ल) (फा०) २००
जंगार फिरंगी (फा०) २०१
जंगार मादनी २०१
जंगाल (द०) २००
जंगिल क्रो (अं०) २८
ज़ंजार (अ०) २००
जंतुका (सं०) १३८
ज़ंबूर (अ०) ९९
जंबूरुल् अस्वद (अ०) ९९
जग़ल (अ०) ३०
जज़अ (अ०) २२३
ज़न (फा०) ७
ज़नव (अ०) ८८
जन्तु ६२
जन्वुक (सं०) ४४
ज़बर जद्द २२३
ज़बाद (अ०) ६२
६३
ज़बुअ (अ०) १३६
ज़बुअर्जा अ०) १३६
ज़ब्ब (अ०) ४७
ज़ब्ल (अ०) १६
ज़मः (फा०) १८१
जमफ (अ०) ३१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
जमल (अ०) ११
जमील (अ०) १०८
ज़म्ज (क्ष०) ३१
जम्मुजुल्माऽ (अ०) २३
ज़मुद (पं०) २२२
ज़र (फा०) १८७
जरख (हिं०) १३६
जराद (अ०) ६८
जरारीह (अ०) ७२
जरीश (अ०) ४५
ज़र्‌अ (अ०) ७३
ज़र्नीख (अ०) १७७
ज़र्नीख अस्फ़र (अ०) १७७
ज़र्नीख अह्मर (अ०) १७८
जर्नीख सुर्ख (फा०) १७८
ज़र्नीखे ज़र्द (फा०) १७७
जलकपि (सं०) १५७
जलकुक्कुट (सं०) १२५
जलमाज्ञार (म०) १३
जलमुरगा (हिं०) १२५
जलाया हुआ ताँबा (हिं०) २००
जलायुका (सं०) ६६
जलशुक्ति (बं०) १५६
जलु (म०; कों०, गु०) ६६
जलू (लौ) का (सं०) ६६
जलो (फा०) ६६
जवादि (सं०) ६२
जवाहिर (हिं० गु०) २१४
जसद (फा०) १९१
जसद कानी (फा०) २११
जसद की मली (मा०) १९२
जस्त (म०. पं०) १९१
जस्ता शिगुफ़्त (फा०) १९२
जस्ता (जस्त) हिं०) १९१-३९२
जस्ते का फूल (हिं०) १९२-१९३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
जस्ते (सीसे और कलई) की उपधातुएँ २१०–२११
जस्स (अ०) २३३
ज़हब (अ०) १८७
जहरमोहरा (फादज़हर मादनी) (हिं०) २३७
ज़हरः (फा०) ८८
ज़हरज (अ०) ८८
जाइन (फा०) १८१
ज़ाक सफ़ेद (फ०) १८१
ज़ाक सब्ज (फा०) २०३
ज़ाग (फा०) २८
जाज
ज़ाज अब्यज (अ०) १८१
ज़ाज अलज़ाज अब्यज़ (अ०) १८१
ज़ाज अस्फ़र (अ०) १८१
ज़ाज अहमर (अ०)
ज़ाज ज़र्द (अ०) १८१
ज़ाज रूमी (फा०) १८१
ज़ाज सब्ज (अ०) २०३
ज़ाज सुर्ख (फा०) १८१
जाज सूरी (फा०) १८१
ज़ाजे अख़्ज़र (श०) २०३
जान्तवाश्मरी (सं०) ८९
जामूश (सं०) (अ०) ११२
जाल जीभ (हिं०) ५१
जिंक (अं०) १९१
जिंक ओर (अं०) २११
ज़िंकम् (लै०) १९९
जिंक सल्फेट (अं०) १८१
जिगर (फा०) ६३
जिन्जफर (मख़्जन) (अ०) १७५
जिन्साई ऑक्साइडम् (लै०) १९२
जिप्सम (अं०) २३४
ज़िफ्त जबली (अ०) २६१
ज़िफ़्दअ (अ०) १२८
ज़िबेथ (अं०) ६२

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
ज़िबेथ कैट (अं०) ६२
ज़िब्ख (अ०) ४७
जिलेटीन (अं०) १४९
जिल्द (अ०) ५५
ज़िल्फ़ (अं०) ३४
ज़िल्फ मा'ज (अ०) ९५
जिह्वा (सं०) ६४
ज़ीव (अ०) १११
जीभ ६४
जीवः (फा०) १७४
ज़ी (जै) वक़ (अ०) १७४
जुंदबे (बा) दस्तर ६४-६५
जुआँ (हिं०) ६५
जुगनू ६५
जुजाज (अ०) २४३
जुन्द (हिं०) ६४
जुगरात (फा०) ७७
जुग़ार (फा०) २६
जुगाल (फा०) २६४
ज़ुबान (फा०) ६४
जुबाब (अ०) ११४
जुबुन (अ०) ८७
जुब्दुलक़मर (अ०) २२९
जुब्न (अ०) ८०
जुरज़ूर (अ०) १२९
जुर्र (फा०) १०१
जुहरा (रासा० परि०)
जूँ ६५-६६
जूंका अण्डा ६६
जूज़ पिच् (अं०) २०५
जेइब (अ०) १११
जेड (अं०) २२६
जेम (अं०) २१९
जेलेटीनम् (ले०) १४९

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
जैकल (अं०) ४४
जैतून बनी इसरायल २३७
जैन्कस पायरम् (ले०) १४०
जोंक (हिं; बं०; द०; पं०) ६६-६७
ज़ोम (मु) र्रद (अ०) २२२
ज़ौ (ज़ू) लज (अ०) १८८
जौहर (अ०) २१९
ज्योतिरिंग (सं०) ६५

(झ)
झिंगवा ६७
झिंगा (हिं०) ६७
झिनुक (बं०) १५६
झिल्ली (सं०) ६८
झींगुर ६८

(ट)
टंग (अं०) ६४
टङ्कण (सं०) २५६
टचस्टोन (अं०) २४४
टटेरी, टिटिहरी ६८
टरकेसिमस टरीकना (ले०) २२९
टर्कोइज (अं०) २२९
टर्टल (अं०) १५, १६
टर्बिनेला रेपा (ले०) १४०
टांकणखार (म०) २५६
टाइगर (अं०) १००
टार (अं०) २६१
टॉरटाइज (अं०) १५, १६
टिक (अं०) ५७
टिकाल (पं०) २५६
टिकेट (अं०) ५७
टिटिहरी (हिं०) ६८
टिटिहा (हिं) ६८
टिट्टिभ (भि) (सं०) ६८

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

टिड्डी ६८-६९
टिन् (अं०) १९०
टेट्राओ कोटुर्निक्स (ले०) ९७
टीडी (हिं०) ६८
टुर्मेलीन (अं०) २३०
टूटरू (हिं०) २६
टूर्निक्स मैकुलेटुस (ले०) १३०
टेबल साल्ट (अं०) २५३
टेरोपुस ईंडिकुस (ले०) ५३
टेल़ (अं०) ८८
टेलिनी फ्लाई (अं०) ७२
टेस्टिकल (अं०) ३
टैल्क (अं०) २०४
टैल्कम् (ले०) २०४
टोपेज (अं०) २२१
टोपेजिओ (ले०) २२१
ट्रेमोलाइट (अं०) २३९
ट्रैपडोर स्पाइडर (अं०) ११३

(ड)

डंग (अं०) ४५
डव (अं०) ८४
डाएमंड (अं०) २१९
डॉग (अं०) २४
डाहुक (सं०) २३
डिकोसेरोस बाइकार्निस (ले०) ८२
डिम् (बं०) ५
डिम्ब (सं०) ५
डियर (अं०) १६१
ड्रेक (अं०) १६०
डैक्टिलोपिउस कोक्कुस (ले०) २३
डैना (हिं०) ८५
डोम कौआ (हिं०) २८

(ढ)

ढील (हिं०) ६५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

ढूँवारा (हिं०) ४८

(त)

तक्र (सं०) ७८
ततैया (हिं० ९९
तद्रज (अ०) १३७
तदरव (फा०) १३७
तन्कार (फा०) २५६
तरक्षु (सं०) ७१
तरमरी (गु०) २३०
तरुणास्थि (सं०) २६-१६१
तलक (फा०) २०४
तलक़ (अ०) २०४
तक्षक (बं०) ६१
ताक (म०) ७८
ताँबा(मिस) (हिं०) १८९
तांबु (गु०) १८९
ताँबे का मैल १८९
ताँबे की उपधातुएँ २००
ताऊस (अ०) १३१
तामा (हिं०, बं०) १८९
ताम्र (सं०) १८९
ताल (सं०) १७७
तालीकून (अ०) १९५
तिआ (बं०) ७३
तिकाल (हिं०) २५६
तितिर (बं०) ७०
तित्तिर (सं०) ७०
तिन्कार (फा०) २५६
तिमि (सं०) १६६
तिमिङ्ग (ङ्गि) ल (सं०) १६६
तिम्साह (अ०) ११५
तिला (फा०) १८७
तिल्ली (प्लीहा) ६९
तीतर ७०-७१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
तीतुल (हिं०) ७०
तीन वा गिल (मृत्तिका)
तीनुल् अरमनी (अ०) २४८
तीनुल् मख्तूम (अ०) २४८
तीनुस्सीनी (अ०) २४७
तीने अरमनी (अ०) २४८
तीने मुख्तूम (अ०) २४८
तुँवे (बं०) २०१
तुख्म मुर्ग़ (फा०) ५
तुत्थ (क) (सं०) २०१
तुत्थाञ्जन (सं०) २०१
तुनव्वित (अ०) ९९
तु (तो) रमली (म०) २३०
तुरमुरी (ली) (हिं०) २३०
तुरवीय मणु (क०) २५०
तुराब (अ०) २४७
तुराबुल्फ़ार (अ०) १७६
तुराबुल् हालिक (अ०) १७६
तुवरी (सं०) १८१
तूतिया (हिं०; उ०) २०१
तूतियाए अख़्ज़र (अ०) २०१
तूतिए सब्ज़ (फा०) २०१
तूप (म०) ७९
तेंदुआँ ७१
तेल ११७
तेल की मक्खी ७२
तेलिन (हिं०) ७२
तेलिनी पोका (बं०) ७२
तेलिनी माशी (म०) ७२
तेहाल (अ०) ६९
तैरुल् (तयूरुल्) माऽ (अ०) १२५
तैल मक्षिका (सं०; हिं०) ७२
तोता (फा०) ७३
तोमडी (हिं०) १५५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
तोलुक्क पेट्ट (ता०) ७०
त्रपु (सं०) १९०
त्रांवुं (गु०) १८९
त्वक् (सं०) ५५

(थ)

थन ७३-७४
थीओन (यू०) १७३

(द)

दई (बं०) ७७
दऊ का हाथी (हिं०) १०७
दग्ध काक (सं०) २८
दग्ध ताम्र (सं०) २००
दज्ज (अ०) ५२
दधि (सं०) ७७
दधिमस्तु (सं०) ८१
दन्दाने पी (फ़ी) ल (फा०) १६३
दम (अ०) ३४
दरिया का सूअर (उ०) १५७
दर्दुर (सं०) १२८
दस्त (नेपा०) १९१
दस्ता (बं०) १९१
दही (हिं०; गु०; म०; कों०) ७७-७८
दही का तोड़ (हिं०) ८१
दहान फिरंग (फा०) २०१
दह्नः (फा०) २०१
दह्नए फिरंग २०१
दह्नज (अ०) २०१
दात्यूह (सं०) २३
दामा (हिं०) १४५
दारकोब (फा०) १७
दारचिकना (हिं०) १७६
दारचिक्कण (सं०) १७६
दार्चिगना (पं०) १७६

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
दार (रा) शिकना (फा०)	१७६
दार्वाघाट (सं०)	१७
दि इंडियन ग्रे-श्राइक (अं०)	१३६
दि इंडियन पर्ल ओइस्टर (अं०)	१३०
दि इंडियन पार्कूपाइस (अं०)	१५३
दि इंडियन रेड मुनिया या वैक्स विल (अं०)	१३९
दि इंडियन श्यामा (अं०)	१४५
दि कामन मैना (अं०)	१२९
दि ग्रेट वन-ह्रॉर्न्ड राइनोसेरॉस (अं०)	४५
दि बैंक मैना (अं०)	१२९
दि ब्लैक पार्ट्रिच (अं०)	७०
दिमाग (हिं०; अ०)	११९
दिल (फा०)	७४
दिवांध (सं०)	१०
दि सारस क्रेन (अं०)	१५१
दि स्ट्राइप्ड हाइना (अं०)	१३६
दि स्पंज (अं०)	९
दि स्पॉटेड मुनिया (अं०)	१३९
दीक (अ०)	१२४
दी कोएल (अं०)	२८
दी बेंगाल मॉंगूज (अं०)	८४
दीमक (फा० हिं०)	७४
दुजाज (अं०)	१२४
दुबा	११०-१११
दुंबा मेढ़ा (हिं०)	११०
दुग्व पाषाण (सं०)	२३६
दुग्ध (क्षीर) वर्ग	७५-७७
दुग्धविकार	७७
दुद्धी (हिं०)	२३४
दुधिया (हिं०)	२३४
दुब्ब (ब्ब:) (अ०)	१३३
दुम (फा०)	८८
दुम ज़ुंबानक (फा०)	३१
दुम्ब: (फा०)	११०
दुई (फा०)	१३०

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
दुर्र नजफ़ (फा०)	२२९
दुर्राज (अ०)	७०
दुलफ़ीन (यू०; रू०)	१५७
दूद (म०)	७५
दूदुल् क़िर्मिज़ (अ०)	२३
दूदुल् मितर (अ०)	१०७
दूदुल् हरीर (अ०)	८
दूदुस्सबागीन (अ०)	२३
दूध (हिं०; द०; बं०; म०; गु०)	७५
दूध पथरी (पं०)	२३६
दूध या दही का माइय्यत (उर्दू)	८१
देवँका (हिं०)	७४
देवचा (फा०)	६६
दोग़ (फा०)	
दोहन कबिदेल्हूत (अ०)	११७
दोहनुस्समक (अं०)	११७
द्रोणकाक (सं०)	२८
द्वीपि (सं०)	५७

(ध)

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
धनचिडी (हिं०)	३५
धनूस (हिं०)	८२
धनेच्छू (सं०)	८२
धनेश (स)	८२
धात (हिं०)	३

(न)

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
नकुल (सं०)	८४
नक्तचारी (सं०)	१०
नक़्श परे ताऊस (फा०)	१३१
नख (सं०; हिं०)	८२
नखला (बम्ब०; म०; गु०)	८२
नखी (बं०)	८२
नगर (अ०)	१४५
नगीना (हिं०)	२१९

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

नतरून (अ०) २५७
नमक (लवण) २५२
नमके कांच (फा०) २५३
नमके खुर्दनी (फा०) २५४
नमके ता' म (फा०) २५४
नमके तबर्जद (फा०) २५२
नमके तल्ख़ (फा०) २५४
नमके दरियाई (फा०) २५३
नमके शोर (फा०) २५५
नमके संग (फा०) २५२
नमके सियाह (फा०) २५४
नमिर (अ०) ७१
नमूर (अ०) ३३
नम्ल (अ०) ५२
नम्ली (अ०) १३१
नरगाव (फा०) ३८
नरसार (सं०) १७९
नवसागर (म०; गु०) १७९
नसूर (अ०) ४८
नाइटिंगेल (अं०) १०८
नाइट्रेट ऑफ पोटाश (अं०) १८०
नाक़ूस (अ०) १४०
नाख़ून परियाँ (फा०) ८२
नाग (सं०) १९०, १५०
नागपाषाण (सं०) २३७
नागाश्मा (सं०) २३७
नामूस (अ०) ११६
नाशिफ़ (अ०) १२६
नाहर (सं०) १००
निट (अं०) ६६
निशादल (सं०; वं०) १७९
नीरनाई (कना०) १३
निहंग (फा०) ११५
नीरुकुक (ते०) १३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

नील (सिं०) २२१
नी(ली)लकण्ठ ८३
नीलकल्क (सं०) २००
नी(ली)लगाय ८३
नील(ला)गाव (फा०) ८३
नीलम (हिं०; फा०; म० पं०; ते०; ता०) २२१
नीलाङ्ग (ण्ड) क (सं०) ८३
नीलाञ्जन (सं०) २१३
नीलाथोथो २०१-२०२
नीला याकूत (हिं०) २२१
नीलाश्मा (सं०) २२६
नुक़्रा (अ०) १८८
नुख़ाअ (अ०) ११९
नुत्फ़ः (अ०) ३
नुहास (अ०) ५२
नुहोकिरी (सिंह०) ३७
नूनी (हिं०) १४५
नूरए सुलैमानी (फा०)
नूरा (मल०) २३३
नृसा (द) रः (सं०) १७९
नेउर (ला) (हिं०) ८४
नेजानेजी (ले०) १५०
नेटिका (अं०) १४४
नेटिव फेरिक ऑक्साइड (अं०) २४८
नेवला ८३-८४
नैपाली (सं०) १७८
नोआम (अ०) १४५
नोन (हिं०) २५२
नोषादर (फा०; पं०) १७९
नोहास (अं०) १८९
नौसादर (हिं०) १७९-१८०
न्यङ्कु (सं०) १०४

(प)

पंख (हिं०) ८५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

पंजपायः (फा०) २७
पंडुक (सं), फाख्ता ८४-८५
पंडुखी (हिं०) ८४
पंबः रूमी (फा०) १७२
पटबीजना (हिं०) ६५
पटिना (हिं०) ८६
पडुखी (हिं०) ८४
पढना (हिं०) ८६
पण्डाक्ता (सं०) ८४
पतत्र (सं०) ८५
पत्थर ११७
पत्थर का जिगर (हिं०) २३९
पत्थर का दिल (हिं०) २३९
पत्थर की करे (ले) जी (हिं०) २३९
पथरी (हिं०) १४६
पद्मराग (सं०) २२०
पनडुब्बा (बी) (हिं०) १२५
पनीर ८०-८१
पनीरमाया (फा०) ८१-८२
पन्ना (जमुर्रद) २२२
पपहिया (हिं०) ८५
पपि (पी) हरा (हिं०) ८५
पपिहा (हिं०) ८५
पपीहा ८५
पयस् (सं०) ७५
पर (फा०) ८५-८६
परक्लोराइड ऑफ मर्करी (अं०) १७६
परभृत (सं०) २८
परवाला (गु०) १२६
परेवा (हिं०; म०) १९,८४
पर्पटक्षार (सं०) २५६
पर्ल (अं०) १३०
पर्ल ऐश (अं०) २५६
पलंग (फा०) ७१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

पला (बं) १२६
पशम (फा०) १३
पसीन (फा०) ८६
पसीना (हिं०) ८६
पहिना ८६-८७
पक्ष (सं०) ८५
पांडुक (हिं०) ८४
पागानून (हिं०) २५५
पांशुज लवण (सं०) २५५
पाइकह्वेल (अं०) १६६
पाइथान रेटिक्युलेटस (ले०) ८८
पाइप क्ले (अं०) २४७
पाच (म०) २२२
पाचा (फा०) हाथपैर ८७-८८
पाठीन (सं०) ८६
पाण्डु (सं०) ८४
पा (बा) द जहर हैवानी (फा०) ८९
पादालोन (हिं०) २५४
पानीसोख (हिं०) २५०
पानुं (गु०) २२२
पापड़खार (हिं०; म०; गु०) २५६
पायखाना (फा०) ४५
पायरीलोन (हिं०; म०; गु०) २५६
पायरा (बं०) १९
पाये (हिं०) ८७
पारद (सं०) १७४
पारा (हिं०; द०; बं०; म०; गु०) सीमाब १७४
पारावत (सं०) १९
पारेवा (गु०) १९
पारो (गु०) १७४
पार्सिलेन क्ले (अं०) २४७
पाल (मल०) ७५
पालतू खरगोश (हिं०) ३३
पालु (ते०) ७५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
पालाट पाना (ते०) ८३
पाषाण जीव (सं०) २३९
पासेर डोमेस्टिकुस (ले०) ५३
पाकिमाक्षार (सं०) १८०
पाहगुजराती
पिंक्टेडा वुल्गेरिस (ले०) १३०
पिंक्टेडा मारगेरेटिफेरा (ले०) १३०
पिक (सं०) २८
पिक्स कार्बोनिस (ले०) २६१
पिग (अं०) १५८
पित (हिं०) ८८
पितराई (हिं०) २००
पितल (म०; गु०; बं०) १९५
पित्त (सं०) ८८
पित्तकोष (सं०) ८८
पित्तल (सं०) १९५
पित्ता (हिं०) ८८
पित्ताशय (सं०) ८८
पिपोलक (सं०) ५९
पिपीलिका (सं०) ५९
पियः (फा०) १५८
पियः पशम (फा०) १४
पि (पी, पे) रोत्रा (हिं०) २२९
पिलाग्लोबोसा (ले०) ४८
पिश्शः (फा०) ११६
पिसेस (ले०) ११७
पिस्तान (फा०) ७३
पीकॉक (अं०) १३१
पीजेन (अं०) १९
पीतळ (हिं०) १९५
पीयूष (सं०) ७७
पील (फा०) १६५
पीह (फा०) ५५
पुखराज (हिं०) याकूत जर्द २२१-२२२

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
पुच्छ (क) (सं०) ८८
पुटपुटी (हिं०) १४५
पुष्पराग (सं०) २२१
पुष्पाञ्जन (सं०) १९२
पूँछ (हिं०) ८८
पूदनः (फा०) ९७
पूनुगु (ता०) ६२
पूनुगूपिली (ते०) ६२
पूल्लूगू पूवेय (ता०) ६२
पृथुश्रृङ्ग (सं०) ११०
पृषत् (सं०) ५६
पेंडकी (हिं०) ८४
पेउस (हिं०) ७७
पेचक (बं०) १०
पेडिक्यूलस ह्यूमनुस कैपिटिल (ले०) ६५
पेडुकी (हिं०) ८४
पेद्रुबझार (बम्ब०) ८९
पेनिस (अं०) १४५
पेपर (अं०) २६३
पेबल् (अं०) २२२
पेरोज (क) (सं०) २२९
पेल या येलो ओकर (अं०) २४९
पेलीकन (अं०) ३५
पेलीकेनस आनो क्रोटेलुस (ले०) ३५
पेवस (हिं०) ७७
पेवो क्रिस्टेटुस (ले०) १३०
पेशाब (गु०) ८८
पेशाब या मूत्र ८८-८९
पैक्लोमेरुस लाइकोजा (ले०) ११३
पैक्लोमेरुस टेनिजा (ले०) ११३
पैन्डियोन हैलीईटस (ले०) ६८
पैन्थर (अं०) ५७
पैन्थेरा पार्डस (ले०) ५७
पैन्थेरालियो (ले०) १००

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
पैयः (फा०)	५५
पैरट (अं०)	७३
पैलिमान माल्कोम्सोनाइ (ले०)	६७
पोंवले (म०)	१२६
पोखराज (बं०; म०; गु०)	२२१
पोटासियाई बाईक्रोमास (ले०)	१८१
फोटेसी (सिआई) नाइट्रास (ले०)	
पोटैसियम् नाइट्रेट (अं०)	१८०
पोपक (फा०)	१६५
पोरगल (ते०)	१६३
पोर्सिलेनियस शेल (अं०)	२९
पोस्त (फा०)	५५
पोस्त बैज़ए मुर्ग़ (फा०)	५
प्योरिफायड ऑक्सगॉल या ऑक्सबाइल (अं०)	४६
प्रवाल (सं०; हिं०)	१२६
प्रवालमूल (सं०)	१ ६
प्रस्राव (सं०, बं०)	८८
प्रान (अ०)	६७
प्रेशस् स्टोन (अं०)	२१९
प्रेस्बीटीज एन्टेल्लुस (ले०)	९१
प्लम्बम् (ले०)	१९०
प्लम्बाई ऑक्साइडम् (ले०)	२११
प्लम्बाई ऑक्साइडम् रुब्रम (ले०)	२१३
प्लम्बाई कार्बोनास (ले०)	२१२
प्लम्वाई सल्फ्युरेटम् (ले०)	२१३
प्लीहा (सं०)	६९
प्लैटेनिस्टा गैन्जेटिका (ले०)	१५७
प्लोसिउस फिलिपिनुस (ले०)	९९
फटक (गु०)	२२८
फटकडी (गु०)	१८१
फटकी (म०)	१८१
फटक (कि) री (बं०)	१८१
फरमेन्टम् (ले०)	३२
फरस (अ०)	४९

शीर्षक एवं ज्ञब्द (नाम)	पृष्ठ
फर्मेन्ट (अ०)	३२
फ़र्स (अ०)	४९
फ़ह्द (अ०)	५७
फ़ाखता (फा०)	८४
फ़ाखिता (फा०)	८४
फ़ादज़हर मादनी (अ०)	२३७
फ़ादक्षहर हैवानी (अ०)	८९-९०
फ़ायर फ्लाई (अ०)	६५
फ़ार (अ०)	५८
फारतुन्नख्ल (अ०)	४३
फारतुल् मिस्क (अ०)	६०
फॉसिल एन्क्रिनाइट (अं०)	२३७
फ़िज़्ज़ (अ०)	१८८
फिटकरी (हिं०)	१८१-१८२
फिश (अं०)	११७
फिश ऑइल (अं०)	११७
फिश लिवर ऑइल (अं०)	११७
फी (पी) रोजः (फा०)	२२९
फीरोज़ज (अ०)	२२९
फीरोजा	२२९-२३०
फ़ील (अ०)	१६३
फीसेज (ले०)	४५
फुफ्फुस (सं०)	९७
फुसाफ़िस (अ०)	३१
फुलर्स अर्थ (अ०)	२४९
फूलखड़ी (बं०)	२३४
फूलगेरू (म०)	२४८
फेदर (अं०)	८५
फेफड़ा	९०-९१
फेरम् (ले०)	१९३
फेरस सल्फेट अं०)	२०३
फेराई सल्फास (ले०)	२०३
फेरी ऑक्साइडम् मैग्नेटिकम् (ले०)	२०५
फेरीटिमा पोस्थुमा (ले०)	२६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
फेरी-पर ऑक्साइडम् सन्नम् (ले०) २०२
फेरोसोफेरिक ऑक्साइड (अं०) २०२
फेल (ले०) ८८
फेल टॉरीडिप्यूरेटम् (ले०) ४६
फेलबोविनुम् प्योरिफि केटुम् (ले०) ४६
फेलस्पार (अं०) २४७
फेलिस जुबेटा (ले०) ५७
फेलिस टिग्रिस (ले०) १००
फेलिस डोमेस्टिका (ले०) १०५
फेलिस लेपार्डस (ले०) ७१
फेलिस लिओ (ले०) १५५
फैट (अं०) ५५
फैलकन (अं०) १००
फैल्को कैलिडुस (ले०) १००
फ्यूनैम्बुलस पिन्नैन्टी (ले०) ४३
फ़ (ह) म् (अ०) २६४
फ्रॉग (अं०) १२८
फ्रैन्कोलिनुस पांडीसेरिआनुस (ले०) ७०
फ्लाइंग फॉक्स (अं०) ५३
फ्लाई (अं०) ११४
फ्लावर्स ऑफ लेड (अं०) २११
बंदर (रा) (हिं०) ९१
बऊज (अ०) ११६
बक (अ०) ११६
ब (व) क (सं०) ९६
बक़र (अ०) ३८
बकरा व बकरी (हि०; बं०; गु०; द०; म०) ९१–९३
बकरा का खुर ९५-९६
वकरी का दूध ७५, ९४-९५
बकुला (हिं०) ९६
बक़्र वहशी (अ०) ८३
बक़्रूल् वहश (अं०) (गु०) ८३
बगुला ९६
बघेरी (घे०) ९७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
वगौघा (हिं०) ९७
बघेरा (हिं०) ७१
बज़ (ते०) २२९
बटई (हिं०) ९७
बटन क्वेल (अं०) ९७
बटर मिल्क (अं०) ७८
बटेर ९७-९८
बटेर पाखी (बं०) १३७
बत (अ०) ९८
बत्तक (ख) (हिं०) ९८
बत्तख ९८-९९
बदराश्म (सं०) २३७
बनगाय (हिं०) ८३
बनरा (हिं०) ९१
बनरोहू (हिं०) १४७
बनात (अ०) ६५
बन्दर ९१
बफलो (अं०) ११२
बफलोज मिल्क (अं०) ७५
बबगा (अ०) ७३
बबर (हिं०) १५५
बभ्रु (सं०) ८४
बम्हनी (हिं०) १०३
बया ९९
बरला (बं०) ९९
बरहसिंघा (हिं०) १०४
बराज (अ०) ४५
बरैया (हिं०) ९९
बर्कर (सं०) ९१
बर्मि (हिं०) १०२
बरैं, भौंरा ९९-१००
बलपम (ता०) २३६
बलि (सं०) १७३
बलीना (ले०) १६६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

बलीवर्द (सं०) ३८
बस्त (सं०) ९१
बहरी (अ०) १००
बाँगी (अफ०) १२४
बॉस ग्रविवएन्स (ले०)
बाइ-वाल्वशेल (अं०) १५६
बाइबोरेट ऑफ सोडा (अं०) २५६
बाइल (अं०) ८८
बाइ सल्फ्युरेट ऑफ आर्सेनिक (अं०) १७८
बाघ (हिं०) १००
बाघ या शेर १००-१०१
बाज़ (फा०) १०१-१०२
बाज़ी (अ०) १०१
बाद (पाद) जहरकानी (फा०)
बादमोहरा (फा०) (सं०) २९
बानर (हिं० बं०) ९१
बाफक (फा०) ९९
बाबुवातनह (फा०) ७
बाम १०२-१०३
बमनी, बमनी १०३
बाम (म्ह) नी (हिं०) १०३
बाम मछली (हिं०) १०२
बाम माछ (बं०) १०२
बॉम्बिक्स मोराई (ले०) ८
बार (हिं०) १०४
बारहसिंगा १०४
बारूद (फा०) १८०
बाल १०४-१०५
बालुका (सं०) २३६
बालू २३६
बॉस टॉरूस (ले०) ३८
बिच्छू १०५
बिडालाक्ष (सं०) २२३
बियर (अं०) १३३
बिरिंज (फा०) १९५
बिरिया नोन (हिं०) २५३
बिलार (हिं०) १०५
बिल्ली १०५-१०६
बिल्लोर (गु०) २२८
बिल्लौर (फा०) २२८
बिषखपरा १०६-१०७
बीग (हिं०) १११
बीज (हिं०) ३
बीट्ल्स (अं०) ४४
बीर बहूटी १०७
बीविल (अं०) ४८
बुआरी (हिं०) ८६
बुज़ (फा०) ९१
बुज़्ज़ाकुल्कमर (अ०) २२९
बुलक(अं०) ३८
बुलबुल १०७-१०८
बुसु (स्सु) द (अ०) १२६
बुसुद अहमर (अ०) १२६
बूक (फा०) १०
बूज़ीन (फा०) ९१
बूढ (हिं०) १०७
बूतीमार (फा०) ९६
बूम (अ०) १०
बूरए अरमनी (पापड़ खार) २५६
बूरद (फा०) ७८
बेख़ मर्जा (अ०) १२६
बेजोर (ले०) ८९
बेजोर स्टोन (अं०) २३७
बेड-बग (अं०) ३१
बेर-पत्थर (हिं०) २३७
बेल-मेटल (अं०) १९५
बेलू (गु०) २३६
बैज़ (अ०) ३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
वैज़, वैज़ा (अ०) ५
बैट (अं०) ५३
बैल ४१–४२
बैलागो आट्टू (लै०) ८६
बैलीनोप्टेरा ईंडिका (अं०) १६६
बोआरी (हिं०) ८६
बोदार (गु०) २११
बो (ब) दालक (सं०) ८६
बोद्दारश्रृंग (सं०) २११
बोन (अं०) १६१
बोयाल माछ (बं०) ८६
बोरः (फा०) २५६
बोरक (अ०) २५६
बो (बौ) ल (अ०) ८८
बोलस् आर्मीनिआ रुब्रा (लै०) २४८
बोलस् रुब्रा (लै०) २४९
बोस बुबेलुस (लै०) ११२
बोसीसेफुस ट्रैगोकैमीलुस (लै०) ८३
ब्युटिरम डिप्यूरेटम् (लै०) ७९
ब्यूथस प्रजाति (लै०) १०५
ब्रॉस (अं०) १९५
ब्राह्मणी (सं०) १०३
ब्रिक (अं०) २६२
ब्रेकिप्टेर्नुस बेंगालेंसिस (लै०) १७
ब्रेन (अं०) ११९
ब्लड (अं०) ३४
ब्लैक ॲन्टिमनी (अं०) २१४
ब्लैक बिटयूमेन (अं०) २०५
ब्लैक साल्ट (अं०) २५४
ब्ल्यू विट्रिऑल (स्टोन) (अं०) २०१

(भ)

भरद्वाज (सं०) ९७
भरुही (हिं०) ९७
भल्लुक (सं०) १३३
भारवाह (सं०) ३६
भाल (हिं०) १३३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
भालू (हिं०) १३३
भिड (हिं०) ९९
भूनाग (सं०) २६
भेक (सं०; हिं०) १२८
भेजा (हिं०) ११८, १५५
भेटुलि (सं०) १०२
भेड़ और भेड़ा १०८-१०९
भेड़ नग्ज़ः (अ०) १०८
भेड़ का दूध ११०
भेडा (हिं०) १०८
भेड़िया १११-११२
भेड़ी (हिं०) १०८
भेड़ी का दूध ७५
भैंस का दूध ११३
भैंस व भैंसा
भोडल (हिं०) २०४
भ्रमर (सं०) ९८

(म)

मंडूर २०२-२०३
मईज (अ०) ९१
मकडी (हिं०) ११३
मकड़ी व मकड़ा ११३-११४
मकर (सं०) ११५
मक्खी ११४-११५
मखमली कीड़ा (गु०) १०७
मख़ीस (अ०)
मगर ११५-११६
मग़रए काहिनः (इ० वै०) २४८
मगरमच्छ (हिं०) ११५
मगस (फा०) ११४
मग़ज़ (अ०) ११९
मग़जेसर (फा०) ११९
मॅग्नेट (अं०) २०५
मग़रः (अ०) २४९
मग़रत (अ०) २४९
मच्छ (हिं०) ११७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**

मच्छड़ ११६-११८
मच्छरंग (बं०) २३
मछरंगा (हिं०) २३
मच्छर (हिं०) ११६
मच्छी (हिं०; बं०) ११७
मच्छी की सिरीश (द०) ११७
मछरिया (हि०) ११७
मछली (हिं०) ११७
मछली का तेल (हिं०; द०) ११७
मछली का सरेश (हिं०) ११७
मछली के जिगर का तेल (हिं०) ११७
मछली के सिर का पत्थर (हिं०) ११७
मज्जा (सं०) ११९
मज्जा (भेजा) ११९-१२०
मठा (ट्ठा) (हिं०) ७८
मठो (गु०) ७८
मड-वर्म (अं०) २६
मणी (णि) (हिं०) २१९
मण्ड (सं०) ८१
मण्डूक (सं०) १२८
मण्डूर (सं०; म०; गु०) २०२
मत्कुण (सं०) ३१
मत्स्य (सं०) ११७
मत्स्य तैल (सं०)
मत्स्य यकृत्तैल (सं०) ११७
मत्स्यराज (सं०) १३५
मत्स्यशिर प्रस्तर (सं०) ११७
मथित (सं०) ७८
मदना (सं०) १२९
मद्य (हिं०) १४१
मधु (सं०) १४१
मधूच्छिष्ट (सं०) १४१
मनछाल (बं०) १७८
मनशिल (गु०; पं०) १७८
मनशिला (सं०) १७८
मनशील (म०) १७८

शीर्षक एवं शब्द (नाम) **पृष्ठ**

मनसिल (कना०; कीं०) १७८
मनिहारी नमक (हिं०) २५
मनुष्य (सं०; हिं०) ७
मन्नी (अ०) ३
मन्नुल्कीतुस (अ०) १६६
ममोला (हिं०) ३१; ५१
मयूर (सं०) १३१
मयूर तुत्थ (सं०) २०१
मयूरपक्ष (सं०) १३१
मरकत (सं०) २२२
मरक़शीशाए फ़िज़्ज़ी (अ०) १९९
मरमर (हिं०) २४२
मरमेस (अ०) ४५
मरवारीद (फा०) १३०
म (मि) रार: (अ०) ८८
मरुगोधिका (सं०) १३४
मर्कट (सं०) ९१
मर्कटक (सं०) ११३
मर्क़शीशा (अ०) १९८
मर्क्युरिक सल्फाइड (अं०) १७५
मर्क्युरी (अ०) १७४
मर्ग (र्गे) मूश (फा०) १७६
मर्गी (फा०) १२६
मर्जां (अ०) १२६
मर्जान (पं०) १२६
मर्दुम (फा०) ७
मल (सं०) ४५
मलख़ (फा०) ६८
मल्ल (सं०) १७६
मशक (सं०) ११६
मसीपत्र (हिं०) २६३
मस्क (अं०) २१
मस्क डीयर (अं०) २१
मस्क रैट (अं०) ६०
मॅस्कीटो (अं०) ११६
मस्तिष्क (सं०) ११९

शीर्षक एवं शब्द नाम)   पृष्ठ

मस्तु (सं०) ८१
मस्तुलुंग (सं०) ११९
मस्ल (अ०) ८१
मस्ली (म०; कों०) ११०
महा (अ०) १५७
महात (अ०) १५७
महिष (सं०) ११२
महिषी दुग्ध (सं०) ११३
महिषी क्षीर (सं०) ७५
मक्षिका (सं०) ११४
माँछ (हिं०) ११७
मांस (सं०; हिं०) १२१–१२३
माइका (अं०) २०४
माइक्रोटर्मीज ओबेसी (लें०) ७४
माइलेब्रिस शिकोरिआई (लें०) ७२
माउल् जुब्न (अ०) ८१
माउस (अं०) ५८
माएज: (अ०) ९१
माखी (सि०) १४१
माखी (छी) (हिं०) ११४
माछु (बं०) ११७
माछेर तैल (बं०) ११७
माज़ (अ०) ९१
माठा (हिं०) ७८
माणेक (गु०) २२०
मादए ख़र (फा०) ३६
माद्दए तौलीद (फा०) ३
मानक (पं०) २२०
मानिक (याक़ूत) २२०
मायु (सं०) ८८
मार (फा०) १५०
मारमलूक (फा०) १०३
मारमाही (फा०) १०२
मार्माहीज (अ०) १०२
मार्जार (सं०) १०५
मार्जारनेत्री (म०) २२३

शीर्षक एवं शब्द (नाम)   पृष्ठ

मार्वल (अं०) २३४
मार्ल (अं०) २४८
मालकी (अ०) ९६
मालिकुल् हजीन (अ०) ९६
मालीतरना (यू०) १८१
मावा (हिं०) ३२
मास (हिं०) १२१
(अ०) २१९
मॉस्कस (ले०) ८१
मॉस्कस मॉस्किफेरस (ले०) २१
माही (फा०) ११७
(हिं०) ७८
माहीख्वार (फा०) १२५
माहीरोबियाँ (फा०) ६७
मिक् (ग्) नातीस (अ०) २०५
मिट्टी (हिं०) २४७
मिनरल पिच (अं०)
मिल्क (अं०) २०५
मिस्क (अ०) २१
मिल्वस मिग्रान्स (ले०) ५८
मिल्ह (अ०) २५३
मिल्ह अॅमोनिया (अ०, १७९
मिल्ह अलकली (अ०) २५७
मिल्ह अस्वद (अ०) २५४
मिल्ह तबरज़द (अ०) २५२
मिल्ह बहरी (अ०) २५३
मिल्ह सांभर (अ०) १५४
मिल्हुज़्ज़ुजाज (अ०) २५३
मिल्हुत्ता'म (अ०) २५४
मिल्हुद्दबागीन (अ०) २५५
मिल्हुन्नार (अ०) १७९
मिल्हुल् अजीन (अ०) २५४
मिल्हुल्र्मुर (अ०) २५४
मिल्हुस्सानाआ (अ०) २५६
मिस (फा०) १८९
मिस्टिकीटस (ले०) १६६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

मीट (अं०) १२१
मीठ (म०) २५३
मीठुं (गु०) २५३
मीण (गु०) १४१
मीन (सं०) ११७
मीनरंक (सं०) १२५
मीनु (ता०; मल०; क०) ११७
मुआ बादल (हिं०)
मुएल (अं०) ३८
मुक़ादिम कुराअ (अ०) ८७
मुक्ता (सं०) १३०
मुख़्ल (अ०) ११९
मुति आमु (ते०) १३०
मुत्तु (क०; सिं०; ता०) १३०
मुद्राशंख (बं०) २११
मुरगा व मुरगी १२४-१२५
मुरगाबी १२५-१२६
मुरदासन (हिं०) २११
मुरदा संख २११-२१२
मुरदासिग (घी) (हिं०) २११
मुरिएट ऑफ सोडा (अं०) २५३
मुर्ग़ईसा (अ०) ५३
मुर्ग़ कखक (फा०) ३१
मुर्ग़ खानगी (फा०) १२४
मुर्ग बुस्तान (अ०) १०८
मुर्ग़ मसीह (अ०) ५३
मुर्ग़सुलेमान (फा०) १६५
मुर्गा (हिं०) १२४
मुर्गे ताऊस (फा०) १३१
मुर्ग़े हक़गो (फा०) २५
मुर्दाड शिग (म०) २११
मुर्दारसंग (फा० नवीन) २११
मुर्दासंज (अ० प्राचीन) २११
मुर्दासंग (पं०) २११
मुर्रिय (अ०) २६३
मुर्री (अ०) २१३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

मुलतानी मिट्टी (हिं०) २४९
मुश्क (फा०; द०) २१
मुषली (सं०) ६१
मुष्क (सं०) ३
मुष्क बिलाई (हिं०) ६२
मुस रैटस (ले०) ५८
मुसीचः (फा०) ३१
मुसेल (अं०) ४८
मुस्का डोमेस्टिका (ले०) ११४
मूँगा (हिं०) मर्जां १२६–१२८
मूँगा की जड़ (हिं०) १२६
मू (फा०) १०४
मूत (हिं०; म०) ८८
मूतर (गु०) ८८
मूत्र (सं०) ८८
मून स्टोन (अं०) २२९
मूमियाई हिंदी (फा०) २०५
मूय (फा०) १०४
मूश (फा०) ५८
मूशक परां (फा०) ४३
मूशकोर (फा०) ६०
मूशे (फा०) ८४
मूषक (सं०) ५८
मूसकोर (शीराजी) ५३
मूसल सांडा (हिं०) १५०
मूसा (हिं०) ५८
मृग (सं०) १६१
मृगचर्मज (सं०) ६२
मृगश्रृङ्ग (सं०) १६२
मृत् (सं०) २४७
मृत्तिका (सं०) २४७
मृद्दार श्रृंग (सं०) २११
मेघजीवन (सं०) ८५
मेघा (हिं०) १२८
मेझुका (हिं०) १२८
मेढक १२८-१२९

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

मे (में) ढ़ (ड) क (हिं०) १२८
मेढ (सं०) १०८
मेढा (हिं०) १०८
मेण (म०; कना०) १४१
मेद (सं०; हिं०) ६२,११९
मेदः (सं०) ११०
मेदस् (सं०) ५५
मेयर्स मिल्क (अं०) ७५
मेरिना शेल (अं०) २९
मेल (ले०) १४१
मेश (फा०) १०८
मेष (क) (सं०) १०८
मेष (बं०) १०८
मेषी दुग्ध (सं०) ७५
मेह (सं०) ८८
मैकासुस् र्हीसुस (ले०) ९१
मैग्निफाइंग ग्लास (अं०) २२८
मैग्नेटिक आर्यन ओर (अं०) २०५
मैन (अं०) ७
(अ०; फा०) १४१
मैनसल (मार०) १७८
मैनसिल (हिं०) १७८
मैना (हिं०) १२९
मैमी (ले०) ७३
मैमून (फा०) ९१
मैरी (हिं०) ११०
मैरो (अं०) ११९
मैल (हिं०) १२९-१३०
मोक्ता (बं०) १३०
मोखा (फा०) ५९
मोटेसिल्ला मैडरासपटेन्सिस (ले०) ३१
मोती (हिं०; बम्ब०; म०; गु०, को०) १३०-१३१
मोधु (बं०) १४१
मोनिटर लिजर्ड (अं०) ४०–१०६
मोनोमेरियम् मिनिमम (ले०) ५९
मोबुया कैरिनेटा (ले०) १०३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

मोम (हिं०; फा०; बं०; द०) १४१
मोमज़र्द (फा०) १४२
मोम सफेद (फा०) १४२
मोर (हिं०; म०; गु०) १३१-१३२
मोर के पर का चँदवा १३१
मोरचुत (म०) २०१
मोरथुथो (गु०) २०१
मोरपंख १३१
मोरपंखी (हिं०) १३१
मोल्पैस्टीज काफेर (ले०) ११८
मोसेल (ता०) ३३
मोसोलीच तेल (म०; बम्ब०) ११७
मोस्तु (कना०) ७७
मौक्तिक (सं०) १३०
मौर (बं०) १३१
म्युटिला ऑक्सिडेन्टालिस (ले०) १०७
म्यूल (अं०) ३०

(य)

यकृत् (सं०) ६३
यकृत् का तेल ११७
यमाम (अ०) ८४
यशब (अ०) २२६
यशम (फा०) २२६
याक (अं०) ३८
याक़ूत (अ०) २२०
याक़ूत कवूत (अ०) २२१
याक़ूत ज़र्द (फा०) २२१
यू (अं०) १०८
यूका (सं०) ६५
यूकाण्ड (सं०) ६६
यूडिनैमिस स्कोलोपेसिउस (ले०) २८
यूरिन (अं०) ८८
येलो ऑर्पिमेंट (अं०) ११७
येलो बीज-वैक्स (अं०) १४२
येलो सल्फ्युरेट ऑफ आर्सेनिक (अं०) १७७
येषम् (लदाख) २३७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

योज़ (फा०) ५७

(र)

रंग (सं०) १९०
रक्त (सं०) ३४
रक्तकृमि (सं०) २३
रक्तपीत (सं०) १६३
रक्तमातृका (सं०) १३८
रक्तांजनी (सं०) १०३
रक्ताश्म (सं० नवीन) २२५
रङ्कूर (अं०) ४८
रजत (सं०) १८८
रजतमाक्षिक (सं०) १९९
रत्न (सं०) २१९
रत्न मणि २१९
रमल-रेग (सिकता) प्रधान यौगिक रम्ल (अ०) २३६
रस (सं०) १७४
रसक (सं०) २११
रसकपूर (हिं०; पं०) १७५-१७६
रसकर्पूर (सं०; द०) १७५
रसक सत्व (सं०) १९१
रसास (अ०) १९०
रसासुल् अस्वद (अ०) १९०
रहजुल्फ़ार (अ०) १७६
राइनॉसेरॉस युनिकॉर्निस (लें०) ४५
राँग (पं०) १९०
राँगा (हिं०) १९०
रॉक क्रिस्टल (अं०) २२८
रॉक साल्ट (अं०) २५२
राजगिद्ध (सं०) ४२
राजावर्त (क) (सं०) २२६
राम सालिक (बं०) १२९
रा (रे) वटी (हिं०) २२६
रास (अ०) १५५
रासभ (सं०) ३६
रॉ सिल्क कोकून (अं०) ८
रासो (फा०) ८४

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

रासोख्त (फा०) २००
रात्रिजागरः (सं०) २४
रिग्वः (अ०) ८८
रियः (अ०) ९०
रीछ या भालू (हिं०) १३३-१३४
रीतिका (सं०) १९५
रीतिकृत (सं०) २११
रीतिज (सं०) १९२
रीमे आहन (फा०) २०२
रीश (अ०) ८५
रूइ माछ (बं०) १३५
रुडी गूज (अं०) ५२
रुद्राक्षक (सं०) २२३
रुधिर (सं०) ३४
रूपा (बं०; हिं०) १८८
रूपामाखी १९९
रूपुं (गु०) १८८
रूबिएनस (लें०) २२०
रूबी (अं०) २२०
रूय (फा०) १९१
रूय सोख्त (फा०) २००
रूसोख्तज (संगरासिख) २००
रेग (फा०) २३६
रेगज़ादः (फा०) १३४
रेगमाही (फा०) १३४-१३५
(पं०) १४७
रेड अर्थ (अं०) २४९
रेड ऑक्साइड ऑफ लेड (अं०) २१३
रेड ऑर्पिमेन्ट (अं०) १७८
रेड आर्मीनियन बोल (अं०) २४८
रेड बोल या रेड ओकर (अं०) २४९
रेड-वेन्टेड बुलबुल (अं०) १०८
रेत (हिं०) २३६
रेत की मछली (हिं०) १३४
रेतस् (सं०) ३
रेती (म०) २३६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
रेनिन (अं०) ८१
रेनेट (अं०) ८१
रेल्ज़र (अं०) १७८
रेशम (फा०; हिं०) ८
रेशम का कीड़ा (हिं०) ८
रेशमी कपड़ा ९
रेहू (हिं०) १३५
रैइया (अं०) १४७
रैइया जाति (ले०) १४७
रैट (अं०) ५८
रैना टिग्रीना (ले०) १२८
रैम (अं०) १०८
रोइं (फा०) १९५
रोग़न (फा०) ७९
रोग़न ज़र्द (फा०) ७९
रोग़न जिगर माही (फा०) ११७
रोग़न सतूर (फा०) ७९
रोग़ने माही (फा०) ११७
रोज (झ, ह) (हिं०) ८३
रोझ (सं०) ८३
रोबाह (फा०) १३९
रोबियां (अ०) ६७
रोम (सं०) १०४
रोमक (सं०) २५४
रोहिण (सं०) ८३
रोहि (ही) त (क) (सं०) १३५
रोहित मच्छ (बं०) १३५
रोही (हिं०) १३४
रोही या रोहितका फिश (अं०) १३५
रोह्व १३५
रौप्य (सं०) १८८
रौप्य माक्षिक (सं०) १९९

(ल)

लंग (अं०) ९०
लकड़बग्घा (बग्गा) १३६-१३७
लॅक् (ले०) ७५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
लग्घड़ (हिं०) १३६
लघुशंख (सं०) ४८
लघ्वी (म०) ८८
लटोरा १३५-१३६
लबनुन्निआज (अ०) ७५
लबनुन्निसा (अ०) ७५
लबनुर्रिमाक (अ०) ७५
लबनुल् अतान (अ०) ३६,७५
लबु बामेट्टा (ता०) १३७
लब्न (अ०) ७५-२६२
लब्नुल् काह (अ०) ७५
लब्नुल्ज़ान (अ०) ११०
लब्नुल् जामूस (अ०) ७५-११३
लब्नुल्फील (अ०) ७५
लब्नुल्बक़र (अ०) ७५
लब्नुल्मा'ज (अ०) ९४
लब्नुल् हामिज़ (अ०) ७०
लव (क) (सं०) १३७
लवण (सं०) २५०
लवा (हिं०) १३७-१३८
लसणियो (गु०) २२३
लसण्या (म०) २२३
लहसन्या (हिं०) २२३
लहसुनिया (हिं०) २२३-२२४
लहू, लोहू (हिं०) ३४
लह्म (अ०) १२१
लाइम (अं०) २३३
लॉक (अं०) १३८
लाख (हिं०) १३८
लाजवर्द (अ०) २२६
लाजवर्द (फा०; पं०; हिं०) २२६-२२७
लॉयन (अ०) १००, १५५
लार्क (अं०) ५२
लार्ज ब्लैक ऐन्ट (अं०) ५९
लार्ड (अं०) १५८
लाल १३८-१३९, २२०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

लाव (क) (सं०) १३७
लावका (हिं०) १३७
लाह (हिं०) १३८
लाही (हिं०) १३८
लाहौरी नमक (हिं०) २५२
लाक्षा (सं०) १३८
लिंग (हिं०) १४५
लिंगुअम् (ले०) ६४
लिथार्ज (अं०) २११
लिबाड (अ०) ७७
लिम्निआ प्लैनॉर्बिस (ले०) ४८
लिवर (अं०) ६३
लिसान (अ०) ६७
लीख (हिं०) ६६
लीच (अं०) ६६
लुक् (अ०) १३८
लुट्रा लुट्रिओला (ले०) १३
लुट्रा वुल्गारिस (ले०) १३
लूत (हिं०) ११३
लूता (सं०) ११३
लूलू (अ०) १३०
लेड (अं०) १९०
लेड ऑक्साइड (अं०) २११
लेड कार्बोनेट (अं०) २१२
लेनी (ले०) १३
लेपर्ड (अं०) ७१
लेपुस रूफीकॉडेटुस (ले०) ३३
लैंड स्नेल (अं०) ८२
लैक असिनी (ले०) ३७
लैक्किफेर (टेकारिआ) लक्का (ले०) १३८
लैनियस एक्सूबिटर (ले०) १३६
लैनियस विट्टेटुस (ले०) १३६
लैपिस लेजुली (ले०) २२६
लैम्प ब्लैक (अं०) २६३
लैम्पिरिस जाति (ले०) ६५
लैसर्टा स्किङ्कुस (ले०) १४७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

लोकस्ट (अं०) ६९
लोकस्टा माइग्रेटोरिया (ले०) ६८
लोखंड (म०) १९३
लोखडी (हिं०) १३९
लोड स्टोन (अं०) २०५
लोढुं (गु०) १९३
लोपाक (सं०) १३९
लोबिया रोहू (ले०) १३५
लोब्स्टर (अं०) ६९
लोम (हिं०) १३९
(सं०) १०४
लोमडी १३९-१४०
लोमर (री) (हिं०) १३९
लो (लौ) ह (सं०) १९३
लोहकीट (हिं०) २०२
लोहमल (सं०) २०२
लोहा (हि०; द०; बं०; उ०) १९३-१९४
लोहे की उपधातुएँ

(व)

वंग (कलई) १९०
वज्र (सं०; कना०; कों०) २१९
वज्रचर्मा (सं०) ४५
बदअ (अ०) ४८, १४०
वद्अ, वद्अय (अ०) २९
वय (सं०) ९९
वरक या पत्र १८७
वरट (टी) (सं०) ९९
वरनाग (सं०) २१४
व (वा) राट (सं०) १५८
वराटक, वराटिका (सं०) २९
वर्क़ुज़्ज़हब (अ०) १८७
वर्क़ेजर (फा०) १८७
वर्क़े तिला (फा०) १८७
वर्डिग्रिस (अं०) २००
वर्तक (सं०) ९७
वर्तज (फा०) ९७

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
वर्तिचटक (सं०) ९७
व (वा) र्तीक (सं०) ९७
वर्मि मत्स्य (सं०) १०२
वर्हि (सं०) १३१
वल्चर (अं०) ४२
वल्पीज प्रजाति की जातियाँ (ले०) १३९
वल्मीक (सं०) ७४
वल्लाकी (बम्ब०) १६
बसख़ (अ०) १२९
वसा (सं०) ५५
वांताद, वांताशी (सं०) २४
वायस (सं०) २८
वॉल लिज़र्ड (अं०) ६१
वालीक (सं०) ९७
वालुका मत्स्य (सं०) १३४
वाशिंग सोडा (अं०) २५७
वास्प (अं०) ९९
विंग (अं०) ८५
विट् (सं०) ४५
विडारक (सं०) १०५
विडाल (सं०) १०५
विद्रुम (सं०) १२६
विनेगर सॉस (अं०) २६३
विलायती काँजी (हिं०) २६३
विवेर्रा जिवेथा (ले०) ६२
विषख (खो) परा (ड़ा, ड़ी) (हिं०) १०६
विष्ठा (सं०) ४५
विसतुइया (हिं०) ६१
वीर्य (सं०) ३
वुड पेक्टर (अं०) १७
वुमन (अं०) ७
वूल (अं०) १३
वूल फैट (अं०) १४
वूल्फ़ (अं०) १११
वूल्फ़ स्पाइडर (अं०) ११३
वृक (सं०) १११

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
वृक्क (सं०) ४५
वृश्चिक (सं०) १०५
वृषण (सं०) ३
वृक्षशायिका (सं०) ४३
वैक्रान्त (तुरमुरी) २३०
वैकृन्तक (सं०) २३०
वैक्स (अं०) १४१
वैडू (दू) र्य (सं०) २२३
वैरानुस नेबुलोसुस् (ले०) १०६
,, मानिटर (ले०) ४७
,, सैल्वेटर (ले०) ४७
व्याघ्र (सं०) १००
व्याघ्रनख (सं०) ८२
व्योमाश्म (सं० नवीन) २२६

(श)

शंख १४०-१४१
शंखजिरें (म०) २३६
शंखविष (सं०) १७६
शंखो (म०) १४०
शंगर्फ (फा०) १७५
शक़र (अ०) ८३
शकरतीग़ाल (शकरतगर) (फा०) १४१
शकरन हिंदी (फा०) ७२
शकक़राक (अ०) ८३
शक्रनील (सं०) २२१
शङ्ख (अ०) १४०
शतपाद (त्), शतपादिका, शतपदी (सं०) १८
शनि (गु०) २२१
शपरह (फा०) ५३
शब (अ०) १९५
शफ्नीन बहरी (अ०) १४७
शबः मादनी (अ०) २११
शब अफ़रोज (फा०) ६५
शबूत (अ०) १३५
शबूद (फा०) १३५
शब्ग़ज (फा०) ३१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
शम्बर (सं०) १०४
शम्बुक (सं०) ४८
शरडो (गु०) १३४
शरीरमल् (सं०) १२९
शली (सं०) १५३
शल्लक (की) (सं०) १५३
शवीरम् (द०) १७६
शश, शशक (सं०) ३२
शशघातक (सं०) १४१
शष्कुली (सं०) १६०
शहत (हिं०) १४१
शहद १४१–१४५
शहरी वजग़ (अ०) ६१
शह्‌म (अ०) ५५
शह्‌मुल् अर्ज (अ०) २६
शह्मुल् खिज़ीर (अ०) १५८
शह्मुस्सूफ़ (अ०) १४
शात (अ०) ९१
शांकुची (सं०) १४७
शांख (बं०) १४४
शाकम्भरि (-रीय) २५४
शाख (फा०) १५६
शाख आहू (फा०) १६२
शाख मर्जां (फा०) १२६
शादनः (फा०) २४३
शादनज (इ० बै०) २४३
शानः मुरङ्कब (फा०) १६५
शामा, श्यामा १४५
शा (सा) रंग (सं०) ८५
शा'र (अ०) १०४
शारक (फा०) १२९
शारिका (सं०) १२९
शाल वा शङ्कर माछ (बं०) १६०
शाहबू (फा०) ६
शाहबूम (फा०) १०
शाहीन (अ०) १००

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
शिंगरफ १७५
शिकरा (हिं०) १०१
शिखि (सं०) १३१
शिखि पिच्छ (सं०) १३१
शिग़ाल (फा०) ४४
शि (सि) झ़फ़र (अ०) १७५
शिब्ब (अ०) १८१, १९१
शिमुलखार (बं०) १७६
शिर (सं०) १५५
शिरगोला (म०) २३४
शिलाजत (ते०) २०५
शिलाजतु (सं०) २०५
शिलाजीत (हिं०; बं०; म०; गु०) २०५
शिवरत्न (सं०) २२८
शिशुमार (सं०) १५७
शिश्न १४५
शिसें (म०) १९०
शीप (अं०) १०८
शीप्सया यूज मिल्क (अं०) ७५
शीर (फा०) ७५
शीर गावमेश (फा०) ११३
शीरे उलाग़ (फा०) ३६, ७५
शीरे खर, शीरे खरे मादः (फा०) ३६
शीरे खुफ्ता (फा०) ७७
शीरे गाव (फा०) ७५
शीरे गावमेश (फा०) ७५
शीरे गोस्फंद (फा०) ११०
शीरे ज़नान (फा०) ७५
शीरे दफ्लः (फा०) ७७
शीरे पील (फा०) ७५
शीरे बुज (फा०) ७५,९४
शीरे मादियाँ (फा०) ५०,७५
शीरेकेश (फा०) ११०,७५
शीरेशुतुर (फा०) ७५
शीशः (फा०) २४३
शीशा (पं०) १९०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

शुक (सं०) ७३
शुक (क्क) (अ०) १७६
शुकुचः (सं०) १४७
शुक्ति (सं०) १५६
शुक्र (सं०) ३
शुतुर (फा०) ११
शुतुश्मुर्ग १४५–१४६
शुनः श्व, श्वान (सं०) २४
शुनी (सं०) २५
शुबात् (अ०) १३५
शुल्ब (सं०) १८९
शुश (फा०) ९०
शृगाल (सं०) ४४
शृङ्ग (सं०) १५६
शृङ्गि (ङ्गी) (सं०) १५५
शेंदूर (म०) २१३
शेंदे लोण (म०) २५२
शेर (फा०) १००
शेरनी का दूध १०१
शेर बबर (हिं०) १५५
शेरमगस (फा०) ११३
शेरेंकलाँ (फा०) १५५
शैंको विष (बं०) १७६
शैलनिर्यास (सं०) २०५
शोणित (सं०) ३४
शोरा कलमी (फा०; हिं०; पं०) १८०
शोरा खार (म०)
शोरो (सुरो) खार (गु०) १८०
श्येन (सं०) १०१
श्वेत मृत्तिका (सं०) २४७

(स)

संखिया (हिं०) १७६–१७७
संखियो (गु०) १७६
संग आतशीजनः (फा०)
संगखुद्य २२८
संगगाव (फा०) ४६

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

संग चकमाक
संगजराहत २३६–२३७
संगजहन्नम
संगदान १४६
संगपलीतः (फा०) २३७
संगबसरी (फा०; हिं०) २१०–२११
संगमरमर (फा०) २४२
संगमर्मर (हिं०) २४२
संगमूसा
संग (सिंग–) राज (मा०) २३६
संगरासिख
संगरूशनाई (फा०) २९८
संगसरमाही (फा०) ११७
संग सुलेमान (नी) (हिं०) २३०
संगे आहनरुबा (फा०) २०५
संगे कारद (फा०) २४४
संगे चमक (फा०) २०५
संगे जख्म (फा०) २३६
संगे जराहत (फा०) २३६
संगे जहूदान (फा०) २३७
संगे पुश्त (फा०) १५
संगे यशब (फा०) २३६
संगे यहूद (फा०) २३७
संगे रेशम (कौशेयाश्मा) (फा०) २३७
संगे सुरमः (मा) (फा०) २१०
संगे सुंबाद (फा०) २४४
संचर (म०) २५३
संचल (गु०) २५३
संजाब १४६–१४७
सं (सिं) जाब (फा०) १४६
संधूर (पं०) २१२
संबुल (हिं०) १७६
सअनाज (अ०) २६३
सकंकूर (कङ्कू) (हिं०) १४९
सकुची १४७
सग (फा०) २४

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
संगे आबी (फा०) १३
सगे मादः (फा०) २५
सच्ची चीनी (हिं०) २४७
सजार (रु) (हिं०) १५३
सज्जो (हिं०; म०; गु०; कों०) २५७–२५८
सज्जीखार
सज्जी नून (द०) २५७
सज्जी मिट्टी (हिं०) २५५
सदफ़ (आ०) १५६
स (सो) न किरवा (हिं०) ६५
स (सि) न्नौर (अ०) १०५
सन् स्टोन (अं०) २२८
सपुर्ज (फा०) ६९
सफरा (अ०) ८८
सफेद मोहरा (फा०) २९
सफेदरोई (फा०) १९५
सफेदा (हिं०; म०; द०) २१२
सफेदो (गु०) २११
सफैदां (पं०) २११
सफ़्रागून (अ०) ३१
सब एसीटेट ऑफ कॉपर (अं०) २००
सब् क्लोराइड ऑफ मर्क्युरी (अं०) १७५
सब्जक (फा०) ८३
समक (अ०) ११७
समीन (अ०) ५५
समुंदर झाग (हिं०) १४८
समुन्दर नमक (हिं०) २५३
समुन्दरफेन १४८
समुन्दर लोन (हिं०) २५३
समकुर्रमल (अ०) १३४
समाना (अ०) ९७
समुद्र नमक (नमक दरियाई) २५३
समुद्रफीण (गु०) १४८
समुद्र लवण (सं०) २५३
समूर १४८–१४९
सम्न (अ०) ४९

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
सम्मुल्खार (हिं०) १७६
सम्मुल्फ़ार (अ०) १७६
समूसाम् (अ०) १११
सम्हर (हिं०) १४७
सयानी (अ०) (हिं०) ९७
सरगो (को) ला (हिं०) २३६
सरतान (अ०) २७
सरतान मुहरक (अ०) २७
सरीच (फा०) ३१
सरेश ११७
सरेश (म) पनीर १४९
सरेशम् (फा०) १४९
सरेस १४९
सर्प (सं०) १५०
सर्पिस् (सं०) ७९
सर्पेंट (अं०) १५०
सर्पेन्ट स्टोन (अं०) २३७
सर्पेन्टाइन (अं०) २३७
सलाजित (पं०) २०५
सलाजीत (मा०) २०५
सल्फर (अं०) १७३
सल्फाइड (सल्फ्युरेट) ऑफ लेड (अं०) २१३
सल्सल् (अ०) १९
ससा (द०) ३३
सहरेस (हिं०) १४९
सहस्र दंष्ट्र (सं०) ८६
सहाबुल् बहर (अ०) ९
सह्ल (अ०) २८
साँडा १५०
साँप १५०–१५१
साँबर लुन या सांभर मीठ (म०) २५४
साँभर (हिं०) १०४
साँभ (ब) र नमक (हिं०) २५४
साइप्रिनस रोहिता (ले०) १३५
साइमेक्स लेक्टरेरिउस (ले०) ३१
,, हेमिप्टेसस (रोटण्डेटुस) (ले०) ३१

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
साकुच (हिं०) १४७
साग़िय (अ०) १०८
साजि माटि (बं०) २५७
साम्भर मीठुं (गु०) २५४
साम्हर (हिं०) १०४
सारल (सं०) १२९
सारस (सं०; बं०; हिं०) १५१–१५२
सारसल (हिं०) १५३
सारिक (सं०) १२९
सारिका (हिं०) १२९
सारियोजिप्स (लै०) ४२
सारी (हिं०) १२९
सालब (अ०) १३९
सालारमंदरा १५२
सालार मंदरा १५२
साल्ट (अं०) २५२
साल्टपीटर (अं०) १८०
सावर (सं०) १७
सावर ग्रुसल (अं०) २६२
सास (फा०) ३१
साहो १५३
सिंग जिरो (सिं०) २३६
सिंगी १५४–१५५
सिंघ (हिं०) १००
सिंदूर (सं०) २१३
सितारे ज़मीन (फा०) २०४
सि (सें) दू (धु। र (हिं०) २१३
सिंघालूग (गु०) २५२
सिंह १५५
सिकता (सं०) २३६
सिगट (हिं०) ४४
सिटेसियम् (लै०) १६६
सिट्टाक्युला क्रामेरी (लै०) ७०
सितुही (हिं०) १५६
सिनुल्फ़ील (अ०) १६३
सिनेबार (अं०) १७५

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
सिनेमोन स्टोन् (अं०) २२३
सिन्धुज (सं०) २५२
सिपश (फा०) ६५
सिमरिख (हिं०) १७५
सिन्म्प (म०; गु०; कों०) १५६
सियार (हिं०) ४४
सिर, सरी १५५
सिरकी चर्बी १६६
सिरिन्ज (फा०) २१३
सिरेश (म) पनीर (फा०) १५०
सिरेशम माही (फा०) ११७
सिलाची (सं०) १३८
सिलाजित (क०) २०५
सिलिकम् (लै०) २३६
सिलिकेट ऑफ ऐल्युमिना (अं०) २५०
,, ,, मॅग्नेसिआ (अं०) २३६
सिलिकोन् (अं०) २३६
सिल्क पॉड (अं०) ८
सिल्क वर्म-मॉथ (अं०) ८
सिल्ला सिरेटा (लै०) २७
सिल्वर (अं०) १८८
सींग १५६
सींगी (हिं०) १५५
सींघ (हिं०) १५६
सीतल (अ०) ५६
सीप १५६–१५७
सीपी (हिं०) १५६
सीम (फा०) १००
सीमाब (फा०) १७४
सीमेन (अं०) ३
सीरम (अं०) ८१
सीष (पं०) १९०
सीसक (सं०) १९०
सीसा (सुर्ब) १९०-१९१
सीसुं सीसु (गु०) १९०
सीसे (बं०) १९०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

सीसे की उपधातुएँ
सीह (हिं०) १५३
सुंबाद (ज़) ज (अ०, २४४
सुगंध मिट्टी (बं०) २५०
सुग़रात (अ०) ७७
सुग्गा (हिं०) ७३
सुण्णा (क०) २३३
सुधा (सं०) २३३
सुफ़ेदाब (फ़ा०) २११
सुफ़्र (अ०) १९५
सुम ३४
सुमे बुज़ (फ़ा०) ९५
सुरंज (फ़ा०) २१३
सुरद (अ०) १३६
सुरभि (सं०) ३८
सुरमा (हिं०; बं०; म० २१३-२१४
सुरमासफ़ेद (हिं०) २३५
सुरमी (सौवीराञ्जन) २१४
सुरमी का पत्थर (हिं०) २१४
सुरमो (गु०) २१३
सुरसुर (अ०) ६८
सुरागाय (हिं०) ३८
सुरागाय १५७
सुर्ख़क (फ़ा०) ३१
सुर्ख़ाब (फ़ा०) ५२
सुर्ब (फ़ा०) १९०
सुर्मए सफ़ेद (फ़ा०) २३५
सुलहफ़ात (अ०) १५
सुलैमानी (अ०) १७६
सुवर्ण (सं०) १८७
सुवर्णपत्र (सं०) १८७
सुवर्ण (स्वर्ण) माक्षीक (सं०) १९८
सुषुम्णागत मज्जा (सं०) ११९
सुहागा (हिं०) २५६-२५७
सु (सो) हागा (बं०) २५६
सूँस, सूइस १५७-१५८

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

सूअर १५८-१६०
सूअर का नख १५९
सूअर का मूत्र १६०
सूअर की चर्बी (हिं०) १५८
सूअर की विष्ठा १६०
सूअर की हड्डी १५९
सूअर का दूध १६०
सूआ (हिं०) ७३
सू (शू) कर (सं०) १५८
सूकरवसा (सं०) १५८
सूफ़ (अ०) १३
सूर्यकान्त (आतशी पत्थर) २२८-२९
सूर्यकान्त मणि (हिं०; म०) २२८
सूस (अ०) ४८
सूसमार (फ़ा०) ४७
सूस स्क्रोफा (ले०) १५८
सेंधानमक (हिं०) २५२-२५३
सेकुची (हिं०) १४७
सेतखडी
सेन (हिं०) १०१
सेन्टिपीड (अं०) १८
सेन्ड (अं०) २३९
सेफायर (अं०) २२१
सेफायरस (ले०) २२१
सेरा (ले०) १४१
सेरा ऐल्बा (ले०) १४२
सेरा फ्लेवा (ले०) १४२
सेरिपेरियम् (ले०) ८१
सेर्वुस काश्मीरियानुस (ले०) १०४
सेर्वुस डुवेन्सेली (ले०) १०४
सेर्वुस डैमा (ले०) १६१
सेलेनाइट अं०) २३४
सेल्हानिमक (हिं०) २५२
सेही (हिं०) १५३
सैंधव (सं०) २५२
सैंधव लवण (बं०) २५२
सैन्ड लिज़र्ड (अं०) १३४

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
सैल अमोनिएक (अं०) १७९
सैलेमेंडर (अं०) १५२
सैलेमण्ड्रा (यू०) १५२
सैलेमैन्ड्रा ऐट्रा (ले०) १५२
सोंचर नमक २५३-२५४
सोंचल (र) लोन (हिं०) २५३
सोंचल साल्ट (अं०) २५३
सोडा (हिं०; अं०; म०; गु०; कों०) २५७
सोडियम् कार्बोनेट (अं०) २५७
सोडियम् क्लोराइड इम्प्योर (अं०) २५२
सोडियाई (सोडी) कार्बोनास इम्प्योरा (ले०) २५७
,, क्लोराइडम् (ले०) २५२-२५३
,, ,, इम्प्योरा (ले०) २५२
,, बाइबोरास (ले०) २५६
सोडी सल्फास (ले०) २५५
सोदानी (अ०) १७
सोनु (गु०) १८७
सोने (म०) १८७
सोनकिरवा (बं०) ६५
सोना (तिला) (हिं०; बं०) १८७
सोनागेरू (हिं०, गु०) २४९
सोनामाखी (हिं०;) १९८
सोने का वरक (हिं०) १८७
सोने की उपधातुएं १९८
सोन्मक्की (म०) १९८
सोपस्टोन (अं०) २३६
सोफालक (फा०) २१०
सोफेदा (बं०) २११
सोबर (म०) १०४
सोबरन (हिं०; बं०) १८७
सोमल (सं०; हिं०; म०) १७६
सोरक (सं०) १८७
सोरठी माती (म०) २५०
सोरठी मिट्टी (हिं०) २५०
सोरा (बं०) १८०
सोरेक्स सेरुलेसेन्स (ले०) ६०

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
सौगन्धिक (सं०) २२०
सौभाग्य (सं०) २५६
सौर (अ०) ३८
सौर (ली) (हिं०) १६०
सौरक्षार (सं०) १५
सौराष्ट्र मृत्तिका (सं०) २५०
सौरी १६०
सौवर्चल (सं०) २५३
सौवीराञ्जन (सं०) २१३
स्कोलोपेन्ड्रा मोर्सिटान्स (ले०) १८
स्किङ्क (अं०) १४७
स्किथ (क) (सां०) १४१
स्किन (अं०) ५५
स्किम्ड-मिल्क (अं०) ७८
स्क्विर्रेल (अं०) ४३
स्कैराबिउस (ले०) ४४
स्टूल (अं०) ४५
स्टेनम् (ले०) १९०
स्ट्रूथिओ कैमिलो (ले०) १४५
स्ट्रेप्टोपीलिया चाइनेंसिस (ले०) ८४
स्तन (सं०) ७३
स्तोकक (सं०) ८५
स्त्री (सं०) ७
स्त्री का दूध ७५
स्त्री स्तन्य (सं०) ७५
स्नेक (अं०) १५०
स्नेल (अं०) ४८
स्नेल शेल (अं०) ४८
स्नेह (सं०) ५५
स्नेहमक्षिका (सं०) ७२
स्पंज (फा०) ९
स्पर्म (अं०) ३
स्पर्म ह्वेल (अं०) ६
स्पर्मेसेसी (अं०) १६६
स्पॉटेड डियर (अ०) ५६
स्पांजिया ऑफिसिनेलिस (ले०) ९

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ

स्पाइन ऑफ सिडरिस (अं०) २३७
स्पिग-टेल्ड सांडा (अं०) १५०
स्प्लीन (अं०) ६९
स्फटिक (सं०; हिं०) २२८
स्फटिका (सं०) १६१
स्मराग्डॅस (ले०) २२२
स्माल ऐन्ट (अं०) ५९
स्याही दूद चिराग (फा०) २६३
स्वर्ण (सं०) १८७
स्वाइन (अं०) १५८
स्वालो (अं०) ७
स्वेट (अं०) ८६
स्वेद (सं०) ८६

(ह)

हंटिंग लेपर्ड (अं०) ५७
हंस १६०–१६१
हजरत बेर (हिं०) २३८
हजरत बोर ,गु०) २३८
हजर मिक्नातीस (अ०) २०५
हजर सुलेमानी (अ०) २३०
हजरुज़्ज़ैतून (अ०) २३७
हजरुन्नार (अ०) २२८
हजरुल् असम (अ०) २२८
हजरुल् क़मर (अ०) २२९
हजरुल् कोहल (अ०) २१०
हजरुल् बिल्लौर (अ०) २२८
हजरुल् मूसा (अ०) २०५
हजरुल् यशब (अ०) २२६
हजरुल् हदीद (अ०) २०५
हजरुल् हूत (अ०) ११७
हजरुस्सम्म (अ०) २३७
हजरुस्समक (अ०) ११७
हज़ार आवाज़ (फा०) १०८
हज़ार दास्ताने हिंद (फा०) १४५
हज़ार पाव (फा०) १८
हज़्र ज़ख्म् (अ०) २३६

हज़्र रूशनाई (फा०) १९८
हज़्रुन्नूर (अ०) १९८
हज़्रुर्रुख़ाम (अ०) २४२
हज़्रुल् जराहत (अ०) २३६
हज़्रुल्फतीला (अ०) २३७
हज़्रुल्बक्रर (अ०) ४६
हज़्रुल् मेहक (अ०) २४४
हज़्रुल्यहूद (संगे यहूद) २३८-२३९
हड़ताल (हिं; म०; गु०) १७७-१७८
हड्डी १६१
हत्थी (गु०; म०; द०) १६३
हथिनी का दूध ७५
हथेला घुगु (बं०) १६३
हदीद (अ०) १९३
हद्बः (अ०) ४२
हनी (अं०) १४१
हबाह (हि) ब (अं०) ६५
हमाम (अ०) १९
हय्यः (अ०) १५०
हरतार (हिं०) १७७
हरमजो (पं०) २४८
हरातूतिया (हिं०) २०३
हराम मग़्ज़ (फा०) ११९
हरिण (सं०) १६१
हरितमणि (सं०) २२६
हरिताल (हिं०) (सं०; बं०) १७७ १६३
हरिन १६१-१६२
हरिन का सींग (हिं०) १६२
हरिन्मणि (सं०) २२२
हरियल १६३
हरिल (हिं०) १६३
हरी बुलबुल (हिं०) १६३
हरेवा १६३
हर्ट (अं०) ७४
हर्पेस्टिस जर्डोनी (ले०) ८४
,, मान्टिकोलुस् (ले०) ८४

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
,, स्मिथियाई (ले०) ८४
हलज़ून (अ०) १४०
,, खुर्द (फा०) ४८
हलवानू (एक वर्षीय छाग शिशु) ९३-९४
हलीब (अ०) ७५
हवासिल (अ०) ३५
हसनधूप (भा० बा०) २५०
हस्त-पाद (सं०) ८७
हस्ति (सं०) १६३
हस्तिदन्त (सं०) १६३
हस्तिनी क्षीर सं०) ७५
हाइड्रार्जिराइ परक्लोराइडम् (ले०) १७६
,, बाई सल्फ्युरेटम् (ले०) १७५
,, सब्क्लोराइडम् (ले०) १७५
हाइना हाइना (ले०) १३६
हाउस क्रो (अं०) २८
हाउस स्पैरो (अं०) ५३
हॉक (अं०) १०१
हॉग (अं०) १५८
हाड़ (हिं०) १६१
हाती (बं०) १६३
हाथी १६३-१६५
हाथी दाँत (हिं०; म० गु०) १६३
हाफ़िर (अ०) ३४
हारीत (सं०) १६३
हार्ट (अं०) १६१
हार्ट्स हॉर्न (अं०) १६२
हॉर्न (अं०) १५६
हॉर्स (अं०) ४९
हालु (कना०) ७५
हॉल्कियोन स्माइरेंसिस (ले०) २३
हिंगलो (गु०) १७५
हिंगुल (हिं०; म०; बं०) १७५
हिङ्गुल (सं०) १७५
हिदात (अ०) ५८
हिपेटिस (ले०) ६३

शीर्षक एवं शब्द (नाम) पृष्ठ
हिमार, हिमार अहली (अ०) ३६
हिरिंजी (ता०; ते०) २४९
हिरन (हिं०) १६१
हिरवाँ (अ०) ४३
हिरा (म०) २१९
हिराकस (म०) २०३
हिरा कोसिस (बं०) २०३
हिरुडिनेरिया ग्रेनुलोजा (ले०) ६६
हिरुन्डो रस्टिका (ले०) ७
हिरौंजी (हिं०) २४८
हिर्दौन (अ०) १०३
हिर्रीस (अ०) १९, १०२
हिल्शा फिश (अं०) १६५
हिलसा १६५
हिल्शा इलिशा (ले०) १६५
हिस्ट्रिक्स ल्युकुरा (ले०) १५३
हीमा (ले०) ३४
हीर (पं०) २१९
हीरक (सं०) २१९
हीरा (हिं०; बं०) २१९-२२०
हीराकसी (गु०) २०३
हीराकसीस (हिं०) २०३-२०४
हीराकोस (बं०) २०३
हीरो (गु०) २१९
हुंडार (हिं०) १११,१३६
हुदहुद १६५-१६६
हुम्रुल अर्ज (अ०) २६
हुलाम (अ०) १४९
हूत (अ०) ११७
हूप (अं०) १६५
हूफ (अं०) ३४
हूशा (फा०) ५८
हृत्, हृदय (सं०)
हेज—हॉग (अं०) १५३
हेटीरोन्यूस्टीज फ़ोस्सिलिस (ले०) १५५
हेड लाउस (अं०) ६६

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
हैमीडैक्टीलुस फ्लैविविरिडिस (ले०)	६१
हेयर (अं०)	१०४
हेलसा (हिं०)	१६५
हेलिक्स ऐस्पेरा (ले०)	८२
हेसोनाइट (अं०)	२२३
है (हाइ) ड्रार्त्रिरम् (ले०)	१७४
हैण्ड एण्ड फूट ऑफ एनिमल्स (अं०)	८७
होमो सेपिएन्स (ले०)	७
हौलदिली (हिं०)	२२६
ह्यूमन मिल्क (अं०)	७५
ह्वाइट ऐन्ट (अं०)	७४
ह्वाइट बीज वैक्स (अं०)	१४२

शीर्षक एवं शब्द (नाम)	पृष्ठ
ह्वाइट लेड (अं०)	२१२
ह्वाइट विट्रियल् (अं०)	१८१
ह्वे (अं०)	८१
ह्वेट स्टोन (अं०)	२४४
ह्वेल	१६६-१६७
(क्ष)	
क्षार (सं०)	२५६
क्षीर (सं०)	७५
क्षीरम् (मल०)	७५
क्षुर (सं०)	३४
क्षुल्लक (सं०)	४८

यूनानी द्रव्यगुणादर्श खण्ड ३ के प्राणिज-खनिज-विविध औषधाहार-द्रव्यों के लेटिन, ग्रीक, अँगरेजी आदि शब्दों (नामों) की आंग्ल वर्णानुक्रमणिका

A

Achatina fulica (L.) ८२
Acidum arseniosum (L.) १७६
Acridotheres gingenianus (L.) १२९
Adamas (L.; Gk.) २१९
Adeps (L.) १५८
Adeps lanae (L.) १४
Admantianus (L.) २४४
Aerugo (E.) २००
Agama agilis (L.) १३४
Agate (E.) २२५
A green pigeon (E.) १६३
Aimatites lithros (D. 5-143) (Gk.) २४३
Alectoris graea (L.) ५२
Alum (E.) १८१
Alumen (E.) १८१
Aluminii Silicas (L.) २४७
Amandava amandava (L.) १३९
Ambergris (E.) ६
Ambragresea (L.) ६
Ambrein (E.) ६
Ammonii Chloridum (L.) १७९
Ammonium Chloride (E.) १७९
Amphipnous cuchia (L.) १०२
Anas crecca Linn. (L.) १२५
Anas domestica (L.) १८
A neel (E.) १०९
Animal flesh (E.) २१
Anser indicus (L.) १६०
Antigone antigone Linn. (L.) १५१
Antimonii sulphidum (L.) २१४
Antimony sulphide (E.) २१४
Apple Snail (E.) ४८
Ardea cinerea (L.) ९६
Ardea putea (L.) ९६
Ardea torra (L.) ९६
Argentum (L.) १८८
Arsenic (E.) १७६
Arsenic disulphide (E.) १७८
Arsenicum (L.) १७६
Arsenicum album (L.) १७६
Arsenicum rubrum (L.) १७८
Arsenii disulphidum (L.) १७८
Arsenii trisulphidum (L.) १७७
Arsenious acid (E.) १७६
Asbestos (E.) २३७
Asphalt (E.) २०५
Asphaltum (L.) २०५
Ass (E.) १३६
Asses' milk (E.) ३७
Assiger (E.) ९९
Asturbadius (L.) १०१
Athenebrama indica (L.) १०
A touch stone (E.) २४४
Aurum (L.) १८७
Axis axis (L.) ५६
Azure (E.) २२६

B

Balaena (L.) १६६
Balaenoptera rostrata (E.) १६६

Bat (E.) ५३
Bear (E.) १३३
Bed bug (E.) २१
Beetles (E.) ४४
Bell metal (E.) १९५
Bezoar (L.) ८९
Bezor stone (E.) २३७
Biborate of soda (E.) २५६
Bile (E.) ८८
Bisulphurate of Arsenic (E.) १७८
Bivalve shell (E.) १५६
Black antimony (E.) २१४
Black bitumen (E.) २०५
Black salt (E.) २५४
Blood (E.) ३४
Blue vitriol (Stone) (E.) २०१
Bolus Armenia Rubra (L.) २४८
Bolus rubra (L.) २४९
Bombyx mori Moth. (L.) ८
Bone (E.) १६१
Bos bubalus Linn. (L.) ११२
Boselaphus tragocamelus (L.) ८३
Bos grunniens (L.) १५७
Bos taurus Linn. २८
Brachipternus bengalensis (L.) १७
Bram (E.) ११९
Brass (E.) १९५
Buffalo (E.) ११२
Buffalo's milk (E.) ७५
Bullock (E.) ३८
Butter milk (E.) ७८
Button-quail (E.) ९७
Butyrum Depuratum (L.) ७९

(C)

Calcii Carbonas (L.) २४२
Calcii Sulphas (L.) २३४
Calcite (E.) २३५
Calcium sulphate (E.) २३४
Caloles versicolor (L.) ४३
Calomel (E.) १७५
Calx (L.) २३३
Camel (E.) ११
Camel's milk (E.) ७५
Camelus dromedarius (L.) ११
Cancer (E.) २७
Canis aurens (L.) ४४
Canis familiaris (L.) २४
Canis lupus (L.) १११
Capra hircus Gmelin. (L.) ९१
Carbon (L.) २६४
Carbonate of Lime (E.) २४२
Cardium (L.) ७४
Cartilage (E.) २६
Casarca ferruginea (L.) ५२
Casein (E.) ८७
Castor (E.) ६४
Cat (E.) १०५
Cat fish (E.) १५५
Cat's eye (E.) २३३
Centipede (E.) १८
Cera (L.) १४१
Cera alba (L.) १४२
Cera flava (L.) १४२
Cervus cashmirianus (L.) १०४
Cervus draama (Linn.) १६१
Cervus duvancelli (L.) १०४
Cetaceum (L.) १६६
Chalco Pyrite (E.) १९८
Chalk (E.) २३४
Charcoal (E.) २६४
Chauna marulius (L.) १६०
Chauna striatus (L.) १६०
Cheese (E.) ८०
Chelonia (L.) १५
China clay (E.) २४७

Chineese betles (E.) ७२
Chloride of Sodium (E.) २५२
Cimex hemiptesus notundatus(L.) ३१
Cimex lecturarius (L.) ३१
Cinnabar (E.) १७५
Cinnamon stone (E.) २२३
Clamator jacobinus Bedd. (L.) ८५
Clarified butter (E.) ७९
Clay (E.) २४७
Coal-tar (E.) २६१
Coccus cactil (L.) २३
Cachineal (E.) २३
Columba domestica (L.) १९
Columba livia (L.) १९
Common grey Heron (E.) ९६
Common Indian garden lizard (E.) ४३
Common Indian garten-lizard (E.) ४३
Common Ivora (E.) ८५
Common salt (E.) २५३
Common Wagtail (E.) ३१
Coracias bengalensis (L.) ८३
Conch (E.) १४०
Conch shell (E.) १४०
Copper (E.) १८९
Copper Pyrites (E.) १०८
Copper (cupric) Sulphate (E.) २०१
Coral (E.) १२६
Corallium rubrum (L.) १२६
Corrosive sublimate (E.) १०६
Corundum stone (E.) २४४
Corvus macrorhyncus (L.) २८
Corvus splendens Veill २३
Cow (E.) ३८
Cow's milk (E.) ७५
Cowry (E.) २९
Crab (E.) २७
Cretae (L.) २३४
Creta (L.) २३४
Criccket (E.) ६८
Crocodile (E.) ११५
Crocodilus porosus (L.) ११५
Crocopus phoenicopterus (L.) १६३
Crude Sulphate of Soda (E.) २५५
Cuckoo (E.) २८
Cupri (–us) Subacetas
Cuprum (L.) १८९
Cuprum (Cupri) Sulphas (L.) २०१
Curd (E.) ७७
Curdled milk (E.) ७७
Cuttle-fish bone (E.) १४८
Cyprae moneta Linn (L.) २९
Cyprinus rohita (L.) १३५

(D)

Dactylopius coccus (L.) २३
Deer (E.) १६१
Diamond (E.) २११
Dichoceros bichornis (L.) ८२
Dog (E.) २४
Dove (E.) ८४
Drake (E.) १६०
Duck (E.) ९८

(E)

Earth-worm (E.) २६
Egg (E.) ५
Egret or heron (E.) ९६
Elephant (E.) १६३
Elephant's milk (E.) ७५
Elephas indicus (L.) १६३
Emberiha hortulana (L.) ९७
Emerald (E.) २२२
Equus asiness Linn (L.) ३६
Equus caballus Linn (L.) ४९
Erinaceus collaris (L.) १५३

Eudynamis scolopesius Linn. (L.) २८
Ewe (E.) १९८

(F)

Faeces (L.) ४५
Falco calidus (L.) १००
Falcon (E.) १००
Fat (E.) ५५
Feather (E.) ८५
Fel (L.) ८८
Fel Bovinum Purificatum (L.) ४६
Felis domestica (L.) १०५
Felis jubata (L.) ५७
Felis leo (L.) १५५
Felis leopardus (L.) ७१
Felis tigris (L.) १००
Felspar (E.) २४७
Fel tauri depuratus (L.) ४६
Ferment (E.) ३२
Fermentum (L.) ३२
Ferri Oxidum Magneticum (L.) २०५
Ferri Peroxidum Rubrum (L.) २०२
Ferri Sulphas (L.) २०३
Ferrosoferic Oxide (E.) २०२
Ferrous Sulphate (E.) २०३
Ferrum (L.) १०३
Fire fly (E.) ६५
Fish (E.) ११७
Fish-liver oil (E.) ११७
Fish oil (E.) ११७
Flowers of lead (E.) २११
Fly (E.) ११४
Flying-fox (E.) ५३
Fossil Encrinite (E.) २३७
Francolinus pondicerianus
Gmel. (L.) ७०
Frog (E.) १२८
Funambulus pennanti (L.) ४३

(G)

Galena (E.) २१३
Gall (E.) ८८
Gall bladder (E.) ८८
Gall stone (E.) ८९
Gallus pugnex Linn. (L.) १२४
Gallus pusillus Linn. (L.) १२४
Gander (E.) १६०
Gangetic porpoise (E.) १५७
Gelatin (E.) १४९
Gelatinum (L.) १४९
Gem (E.) २१९
Genus Buthus (L.) १०५
Ghee (E.) ७९
Glass (E.) २४३
Glesum (L.) २४३
Globicephalus indicus (L.) १६६
Goat's milk (E.) ७५
Gray fish (E.) ६७
Glow-worm (E.) ६५
Gold (E.) १८७
Gold bat (E.) १८७
Green dove (E.) १६३
Green Land-whale (E.) १६६
Green Vitriol (E.)
Grey teel (E.) १२५
Grind stone (E.) २४४
Gypsum (E.) २३४

(H)

Haema (L.) ३४
Hair (E.) १०४
Hand and foot of animals (E.) ८७
Hare (E.) ३३
Hart (E.) १६१
Hart's horn (E.) १६२

Hassonite (E.) १२३
Hawk (E.) १०१
Head louse (E.) ६६
Heart (E.) ७४
Hedge-hog (E.) १५३
Helix aspera (L.) ८२
Hemidactylus flaviviridis (L.) ६१
Hepatis (L.) ६३
Herpestes jerdoni (L.) ८४
H. monticolus (L.) ८४
Herpestes smithii (L.) ८४
Heteropneustes fossilis (L.) १५५
Hilsha fish (E.) १६५
Hilsha ilisha (L.) १६५
Hirudinaria granulosa (L.) ६६
Hirundo rustica (L.) ७
Hoof (E.) ३४
Hog (E,) १५८
Holcyon smyrensis Linn. (L.) २३
Homo Sapiens (L.) ७
Honey (E,) १४६
Hoop (E.) १६५
Horn (E.) १५६
Horse (E). ४१
House crow (E.) २४
House sparrow (E.)
Human milk (E.) ७५
Hunting leopard (E.) ५७
Hyaena hyaena (L.) १३६
Hydrargyri Bisulphuratum (L.) १७५
H. Perchloridum (L.) १७६
H. Subchloridum (L.) १७५
Hydrargyrum (L.) १७४
Hystrix Leucura (L.) १५३

(I)

Iethyo (Gk.) ११७
Icthyocolla (L.) ११७
Indian crane (E.) १५१
Indian Button-Quail (E.) १३७
Indian domesticated game or Cock (E.) १२४
Indian herring (E.) १६५
Indian Pilot Whale (E.) १६६
Ingluvies (L.) १४६
Ingluvin (E.) १४६
Iron (E.) १९३
Iron Pyrites (E.) १९९
Iron rust (E.) ०२
Iron Sulphas (E.) २०३
Isinglass (E). ११७
Ivory (E.) १६३

(J)

Jackal (E.) ४४
Jade (E.) २२६
Jews pitch (E.) २०५
Jungle crow (E.) २४

K

Kaolin (E.) २४७
Kaolinum (L.) २४७
Karkinos (Gk.) २७
Kidney (E.) ४५
King fisher (E.) २३. २४
Kinnabari (D. 5, 109) (Gk.) १७५
Kite (E) ५८
Kittacincla malabarica (L.) १४५
Kohi-dumba in Afghanistan (E.) ११४

(L)

Lac. (L.) ७५
(E.) १३८
Lac asinae (L.) ३७
Laccifer (Tachardia) lacca (L.) १३८
Lacearta scincus Linn. (L.) १४७
Lamp black (E.) २६३

Lampyris Spp. (L.) ६५
Lanae (L.) १३
Land Snail (E.) ८२
Lanius exubitor Linn. (L.) १३६
Lanius vittatus (L.) १३६
Lapis Lazuli (L.) २२६
Lard (E.) १५८
Large black ant (E.) ५९
Lark (E) ५२
Lead (E.) १९०
Lead Carbonate (E.) २१२
Lead Oxide (E.) २११
Lead stone (E.) २०५
Leech (E.) ६६
Leopard (E) ७१
Lepus ruficaudatus (L.) ३३
Lime (E.) २३३
Lime (E.) २३३
Lime and Oxide of Iron (E.) २४९
Limnaea planorbis (L.) ४८
Linguuni (L.) ६४, १००
Lion (E.) १५५
Litharge (E.) २११
Liver (E.) ६३
Lobea rohu (L.) १३५
Lobster (E.) ६९
Locust (E.) ६९
Locusta migratoria (L.) ६८
Lung (E.) ९०
Lutra lutreola Shaw (L.) १३
Lutra vulgaris (L.) १३

(M)

Macasus rhesus (L.) ९१
Magnetic Iron ore (E.) २०५
Magnifying glass (E.) २२८
Mammae (L.) ७३
Man (E.) ७
Marble (E.) २४४
Mare's milk (E.) ७५
Marina shell (E.) २९
Marl (E.) २४८
Marrow (E.) ११९
Meat (E.) १२१
Mel (L.) १४१
Mercuric sulphide (E.) १७५
Mercury (E.) १७४
Mica (E.) २०४
Microtermes obesi (L.) ७४
Milk (E.) ७५
Milus migrans (L.) ५८
Mineral (E.) २०५
Mobuya carinata (L.) १०३
Molpastes cafer (L.) १०८
Monitor lizard (E.) १०६
Monitor lizard (E.) ४७
Monomorium minimum (L) ५९
Moon stone (E.) २२९
Moschuo (L.) २१
Moschus moschiferous Linn. (L.) २१
Mosquito (E.) ११६
Motecilla maderaspatensis Gmelina (L.) ३१
Mouse (E.) ५८
Mudworm (E.) २६
Muel (E.) ३०
Muriate of Soda (E.) २५३
Musca domestica (E.) ११४
Musk (E.) २१
Musk deer (E.) २१
Musk rat (E.) ६०
Mussel (E.) ४८
Mutilla occidentalis (L.) १०७
Mylabris cickorii Fabr. (L) ७२
Mysticetus (L) १६६

(N)

Naja naji (L) १५७
Natica (E.) १४८
Native Ferric Oxide (E.) २४८
Nightingale (E.) १०८
Nit (E.) ६६
Nitrate of Potash (E.) १८०
Nummulithe (L.) २४३

(O)

Oleum piscis (L.) ११७
Onyx (E.) २३०
Ortolon (E.) ९७
Oryctolagus cuniculus (L.) ३३
Osprey (E.) ६८
Os-sepiae (L.) १४८
Osseum (L.) १६१
Ostrea gryphoides Schl. (L.) १५६
Ostrich (E.) १४५
Otoliths (E) ११७
Otter (E.) १३
Ovi albumen (L.) ५
Ovis cycloceros (L.) ११०
Ovis vignei Bath (L.) १०८
Ovi vitallus (L.) ५
Owl (E.) १०
Ox (E.) ३४
Oxide of Zinc (E.) १९२
Oyster (E.) १५६

(P)

Pachlomerus cteniza (L) ११३
Pachlomerus lycosa (L.) ११३
Palaemon malcolmsonii (L.) ६७
Pale or yellow ochre (E.) २४९
Pandion haliaetus (L.) ६८
Panther (E.) ५७
Panthera leo (L.) १००
Panthera pardus (L.) ५७
Paper (E.) २६३
Pariah (E.) ५८
Parrot (E.) ७३
Passer domesticus Linn. (L.) ५३
Pavo cristatus Linn. (L.) १३१
Peacock (E.) १३१
Pearl (E.) १३०
Pearl ash (E.) २५६
Pebal (E.) २२८
Pediculus humanus capitis (L.) ६५
Pelecanas onocratalus (L.) ३५
Pelican (E) ३५
Penis (E.) १४५
Perchloride of Mercury (E.) १७६
Pied king-fisher (E.) २४
Pig (E.) १५८
Pigeon (E.) १९
Pila globosa (L.) ४८
Pinctada margaratifera (L.) १३०
Pinctada vulgaris (L.) १३०
Pipe clay (E.) २४७
Pisces (L.) ११७
Pise carbonis (L.) २६१
Platanista gangetica (L.) १५७
Ploceus philippinus (L.) ९९
Plumbi Carbonas (L.) २१२
Plumbi Oxidum Rubrum (L.) २१३
Plumbi Oxidum (L.) २११
Plumbi Sulphuratum (L.) २१३
Plumbum (L.) १९०
Poke whale (E.) १६६
Porcelain clay (E.) २४७
Porcelaneous shell (E.) २१
Potasii Bichromas (L.) १८१
Potassii Nitras (L) १८०
Potassium Nitrate (E.) १८०

Prawn (E.) ६७
Precious stone (E.) २१९
Presbytes entellus (L.) ९१
Psittaculo krameri (L.) ७३
Pteropus indicus (L.) ५३
Purified ox-gall or ox-bile (E.) ४६
Python reticutalus (L.) ८८

(Q)

Quail (E.) ९७
Quick lime (E.) २३३
Quick silver (E.) १७४

(R)

Rabbit (E.) ३३
Raia (E.) १४७
Raia species (L.) १४७
Ram (E.) १०८
Rancour (E.) ४८
Rana tigrina (L.) १२८
Rat (E.) ५८
Raw silk-cocoon (E.) ८
Realgar (E.) १७८
Red Armenian bole (E.) २४८
Red Bole or Ochre (E.) २४९
Red earth (E.) २४९
Red Orpiment (E.) १७८
Red oxide of lead (E.) २१३
Red-vented Bulbul (E.) १०८
Rennet (E.) ८१
Rennin (E.) ८१
Rhinoceros unicornis Linn. (L.) ४५
Rock crystal (E) २२८
Rock salt (E.) २५२
Rohee or Rohitaka fish (E.) १३५
Rubianus (L.) २२०
Ruby (L.) २२०
Rudy goose (E) ५२

(S)

Scarabeus (E.) ४४
Salamander (E.) १५२
Salamandra atra (L.) १५२
Salamandra (Gk.) १५२
Sal-Ammoniac (E.) १७९
Salt (E.) २५२
Saltpeter (E.) १८०
Sand (E.) २३६
Sand Lizard (E.) १३४
Sapphire (E.) २२१
Sapphirus (E.) २२१
Sareogyps (Sp.) (E.) ४२
Scink, skink (E.) १४७
Scilla serrata (L.) २७
Scolopendra moristans (L.) १४
Sea crab (E.) Foot-note २७
Selenite (E.) २३४
Semen (E.) ३
Seriparium (E.) ८१
Serpent (E.) १५०
Serpentine (E.) २३७
Serpent stone (E.) २३७
Serum (E.) ८१
She Ass's milk (E.) ६५
Sheep (E.) १०८
Sheep's or Bwe's milk (E.) ७५
Silicate of Alumina (E.) २५०
Silicate of Magnesia (E.) २३६
Silicon (E.) २३६
Silicum (E.) २३६
Silk pod (E.) ८
Silk-worm Moth (E.) ८
Silver (E.) १८८
Skimmed milk (E.) ७८
Skin (E.) ५५
Small Ant (E.) ५९

Smaragdus (E.) २२२
Snail (E.) ४८
Snail shell (E.) ४८
Snake (E.) १५०
Soap stone (E.) २३६
Soda (E.) २५७
Sodae Sulphas (L.) २५५
Sodii Biforas (L) २५६
Sodii (Sodae) Carbonas Impura (L.) २५७
Sodium Carbonate (E.) २५७
Sodium Choride Impure. (E.) २५२
Sodii Chloridum (E.) २५२
Sodii Chloridum Impura (L.) २५२
Sonchal Salt (E) २५३
Sorex cerulescens (L.) ६०
Sour gruel (E.) २६२
Sperm (E.) ३
Spermaceti (E.) १६६
Sperm whale (E.) ६
Spine of cidaris (E.) २३७
Sping-tailed sanda (E.) १५०
Spleen (E.) ६१
Spongia officinalis (L.) ९
Spotted deer (E.) ५६
Squirrel (E.) ४९
Stannum (E.) १९०
Stool (E.) ४५
Strepto-pelia chinensis (L.) ८४
Struthio camelo (L.) १४५
Subacetale of Copper (E.) २००
Sub-chloride of mercury (E.) १७५
Sulphide (Sulphuret) of lead (E.) २१३
Sulphur (E.) १७३
Sun-stone (E.) २२८
Sus scrofa Linn (L.) १५८
Swallow (E.) ७
Sweet (E.) ८६
Swine (E.) १५८

(T)

Table Salt (E.) २५३
Tail (E.) ८८
Tale (E.) २०४
Talcum (L.) २०४
Tar (E.) २६१
Telini fly (E.) ७२
Terchesious turchina (L.) २२९
Terra sigillata (L.) २४८
Testicle (E.) ३
Tetrao coturnix (L.) १७
The Bank Myna (E.) १२९
The Bengal mongoose & Ichnenmon (E.) ८४
The Black Partridge (E.) ७०
The common Myna (E.) १२९
The great one-horned rhinoceros (E.) ४५
The Indian grey shrike (E·) १३६
The Indian pearl oyster (E.) १३०
The Indian Shama—a small singing bird (E.) १४५
The Indian red Munia or Wax-bill (E.) १३९
Theion (Gk.) १०३
The Koel (E.) २८
The Little Button Quail (E.) १३७
The porcupine (E.) १५३
The Saras crane (E.) १४१
The sponge (E.) ९
The spotted Munia (E.) १३९
The Striped-Hyaaena (E.) १३६
The white footed antelope of Pennant and antilope pieta of Pallas (E.) ८३
The white of egg (E.) ५
The yolk of egg (E.) ५
Tiger (E.) १००
Tik, Ticket (E.) ५७

Tin (E.) १९०
Tongue (E.) ६४
Topagio (E.) २२१
Topaz (E) २२१
Tortoise (E.) १५, १६
Trap-door spider (E.) ११३
Tremolite (E.) २३९
Turbinella rapa (L.) १४०
Turmaline (E.) २३०
Turnix maculatus (L.) १३७
Turquoise or Turkis (E.) २२९
Turtle (E.) १५, १६

(U)

Udder (E.) ७३
Upupa epops (L.) १६५
Urine (E.) ८८
Uromastix hardwickii (L.) १५०
Ursinus labiatus (E.) १३३

(V)

Vaccine of tortoise (E.) १७
Varanus monitor (L.) ४०
Varanus nebulosus (L.) १०६
V. salvator (L) ४७
Verdigris (E.) २००
Vinegar Sauce (E.) २६३
Viverra Zibetha Linn (L.) ६२
Vulpes spp. (L.) १३९
Vulture (E.) ४२

(W)

Wallago attu (L.) ८६
Wall-lizard (E.) ६१
Washing Soda (E.) २५७
Wasp (E.) ११
Wax (E.) १४१
Weervil (E.) ४८
Whet stone (E.) २५४
Whey (E.) ८१
White ant (E.) ७४
White bees-Wax (E.) १४२
White breasted King-fisher (E.) २४
White lead (E.) २१२
White Vitriol (E.) १८१
Wing (E.) ८५
Wolf (E.) १११
Wolf-Spider (E.) ११३
Woman (E.) ७
Wood-pecker (E.) १७
Wool (E.) १३
Wool fat (E,) १४

(X)

Xanchus pyrum (L) १४०

(Y)

Yak (E.) ३८
Yellow-bees-wax (E) १४२
Yellow Orpiment (E.) १७७
Yellow Sulphuret of Arsenic (E.) १७७

(Z)

Zibeth (E.) ६२
Zibeth cat (E.) ६२
Zinc (E.) १९१
Zincore (L.) २११
Zinci Oxidum (L.) १९२
Zincum (L.) १९१

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

(द्वितीय खण्ड)

ले०—वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह
प्रकाशक—आयुर्वेदिक एवं तिब्बी
अकादमी, उत्तर प्रदेश
मूल्य-५० रुपये पृष्ठ संख्या-९२०

मैंने बड़ी ही बारीकी के साथ इस ग्रंथ का अनुशीलन किया है और मैं यह प्रमाणित करता हूँ कि यह ग्रंथ जानकारियों की खान है।

इसका मूल्य, जो कि ५० रुपये है, कागज, छपाई और गेट अप की उत्तमता की दृष्टि से किसी भी प्रकार अधिक नहीं है।

—बापालाल जी० वैद्य

यह ग्रंथ विद्यार्थियों, शोधकार्य करनेवालों तथा आयुर्वेदीय–यूनानी–एलोपैथी इन पद्धतित्रय का समन्वयात्मक अध्ययन, परिशीलन एवं समीक्षा करनेवालों के लिए तथा चिकित्सकों के लिए भी परमोपादेय एवं संग्रहणीय है। अभी तक हिन्दी में तो क्या स्वयं यूनानी में भी इस प्रकार की शोधपूर्ण रचना का अभाव रहा है। हिन्दी में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। निकट भविष्य में इस प्रकार के प्रयास की संभावना भी नहीं की जा सकती। इस अद्वितीय प्रयास के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

—क० गणपति सिंह वर्मा
सम्पादक, रसायन